रामचरितमानस-भाषा-रहस्य

(भाषाशास्त्रीय शोधपरक अध्ययन)

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

रामचरितमानस-भाषा-रहस्य

(भाषाशास्त्रीय शोधपरक अध्ययन)

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'
एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

प्रथम संस्करण, २०००

शकाब्द १८९६; विक्रमाब्द २०३१; खृष्टाब्द १९७४

मूल्य

मुद्रक

यतीन प्रेस

पटना-४

समर्पण

जिनके सरल निष्ठावान् कर्मठ व्यक्तित्व के प्रति मेरा सदा
श्रद्धामय स्नेह रहा है और जिन्होंने मेरे साहित्यिक
जीवन को ही 'स्व' मानकर अपनी सर्व-आकांक्षाओं
और सुखों को तिलांजलि दे दी, उन्हीं
जीवनसंगिनी **श्रीमती बसन्तीदेवी शर्मा**
को यह मेरी सोलहवीं
सारस्वत ग्रन्थ-कृति स्नेहपूर्वक
सादर समर्पित है।

अम्बाप्रसाद 'सुमन'

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।

—महात्मा तुलसी

× × ×

जंगम तुलसी तरु लसै, आनँदकानन खेत ।
कविता जाकी मंजरी, राम भ्रमर रस लेत ।।

—काशीनरेश श्रीउदितनारायण सिं०

× × ×

भारी भवसागर उतारतौ कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतौ ।

—बेनी कवि

× × ×

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।

—तुलसी, रामच०, बाल०, श्लोक ७

× × ×

कामिहि नारि पिआरि जिमि,
लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर,
प्रिय लागहु मोहि राम ।।

—तुलसी, रामच०, उत्तर० १३० ।—

"कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।"

—**तुलसी** : रामचरितमानस, बाल० १४।९

× × ×

"आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ।।"

—**आनन्दकानन ब्रह्मचारी**

× × ×

"भाषा भनिति भोरि मति मोरी । हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी ।।"

—**तुलसी** : रामचरितमानस, बाल० ९।४

× × ×

"भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ।।"

—**तुलसी** : रामचरितमानस, बाल० ३१।२

× × ×

"निज कबित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ।।
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं । ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।

—**तुलसी** : रामच०, बाल० ८।११,१२

× × ×

"तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् ।
तस्मादियं व्याकृता वाक् ।।"

—(ऐन्द्रवायवावग्रहे ब्राह्मण)

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥"

—कालिदास

× × ×

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ।"

—पाणिनि

× × ×

"अर्थ का साक्षात्कार ज्ञान का सार और साहित्य का अन्तिम फल है। हे मनीषियो ! मन से इस अर्थ को पूछो और रस के दिव्य स्वाद को प्राप्त करो ।"

—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

× × ×

"लक्षणा, व्यंजना, उपमान, प्रतीक, अलंकार-विधान, बिम्ब-सृष्टि, छन्द आदि जितने भी रसानुभूति के साधन हैं, उन सबका माध्यम शब्द का अर्थ है और उस अर्थ का मूल आधार है शब्द की व्याकरणिक स्थिति । अतः, व्युत्पत्ति एवं व्याकरणिक रूप-सहित शब्द का अर्थज्ञान ही काव्य की रसानुभूति का मुख्य सोपान है ।"

—लेखक

"जीवन-बोध आनन्द और उदात्तता की समन्वयात्मक सम्पूर्णता है, जिसका परिणाम तृप्ति-लाभ है। सौन्दर्यनिष्ठ दृष्टि जीवन के परिप्रेक्ष्य में एक चाप हो सकती है, पूर्ण वृत्त नहीं। पूर्ण वृत्त जीवन-बोध ही है। अतः, उसके लिए काव्यशास्त्र के साथ भाषाशास्त्र का ज्ञान भी अपेक्षित है।" —**लेखक**

× × ×

"पुस्तक लिखने के बाद लेखक को यह समझ लेना चाहिए कि वह एक ऐसा निशाना है, जिसपर हर कोई चाँदमारी कर सकेगा; किन्तु लेखक को उस चाँदमारी से घबराना नहीं चाहिए, अपितु उसे तटस्थ भाव से आत्मविवेचन करते हुए अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए।" —**लेखक**

प्रस्तावना

'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन' की उल्लेखनीय कृति है। डॉ० सुमन हिन्दी के कृती लेखक हैं और भाषा-विज्ञान में इनकी विशेष रुचि है। इनके प्रकाशित ग्रन्थों में 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी व्रजभाषा-शब्दावली', 'हिन्दी-भाषा', 'हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप', 'भाषा-विज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग', 'मानक शब्दार्थतत्त्व' तथा 'रामचरितमानस : वाग्वैभव' विशेष उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थों की इस नामावली से ही प्रकट है कि डॉ० सुमन एक द्रुतहस्त लेखक हैं और लेखन-कार्य के प्रति दत्तचित्त रहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में डॉ० सुमन ने लोकप्रिय 'रामचरितमानस' की भाषा का अभिनिवेशपूर्ण अध्ययन किया है और 'मानस' के विभिन्न संस्करणों—गुप्त-संस्करण, गीता प्रेस-संस्करण और काशिराज-संस्करण—में प्राप्त उसके भाषिक रूप के साथ ही उसकी आर्थी व्याख्या भी प्रस्तुत की है। इससे निश्चय ही 'भाखा' और 'भनिति' को महत्त्व देनेवाले गोस्वामी तुलसीदास की सर्वोत्कृष्ट रचना पर एक नया प्रकाश पड़ता है। डॉ० सुमन की मुख्य धारणा यह है कि काव्यार्थ का मूलाधार शब्द की व्याकरणिक स्थिति है। इसलिए, व्युत्पत्ति एवं व्याकरणिक रूप-सहित शब्दार्थ का ज्ञान ही काव्य-निबद्ध रसानुभूति का मुख्य सोपान है। इसी परिप्रेक्ष्य में विद्वान् लेखक ने 'रामचरितमानस' में न्यस्त शब्दार्थ-जनित रस और उसकी काव्य-भाषा के रहस्य को सुधी पाठकों के समक्ष स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस प्रकार, प्रस्तुत ग्रन्थ में 'मानस' की भाषा-संरचना, शब्द-स्वरूप, भाषा-पद्धति एवं शब्द-प्रयोग की शैली पर पर्याप्त सामग्री संकलित की गई है।

डॉ० सुमन ने यह निरूपित किया है कि 'मानस' की भाषा-संरचना और शब्दों के व्याकरणिक रूप के साथ शब्दार्थ की अवगति होने पर ही सच्चे काव्यार्थ का ज्ञान हो सकता है और तभी पाठक मूल काव्यस्रष्टा की सृष्टि का वास्तविक आनन्द ले सकता है। अपनी इसी निरूपणा के अनुरूप डॉ० सुमन ने प्रस्तुत ग्रन्थ में 'मानस' की भाषा की व्याकरणिक संरचना और 'मानस' में पिरोये हुए अभिधेयार्थ-सहित वाक्य-विन्यास का हृदयावर्जक विश्लेषण उपस्थित किया है। यह विश्लेषण मुख्यतः ध्वनि-विचार, शब्द-विचार, रूप-विचार, वाक्य-विचार एवं अर्थ-विचार की दृष्टि से उपन्यस्त किया गया है। अतः, यह कहा जा सकता है कि डॉ० सुमन ने एड्विन ग्रीब्स, केलॉग, विजयानन्द त्रिपाठी, देवकीनन्दन श्रीवास्तव इत्यादि द्वारा प्रस्तुत किये गये एतद्विषयक अध्ययन को आगे बढ़ाया है।

डॉ० सुमन ने 'रामचरितमानस' की भाषा का अध्ययन उपस्थित करते समय बड़े ही अतन्द्र रूप में शब्द और पद के भेद को दृष्टिगत रखा है तथा यह दिखलाने की चेष्टा की है कि किस प्रकार 'शब्द' तुलसी के हाथों कारक-वचन-सूचक विभक्ति-प्रत्यय से समन्वित साभिप्राय 'पद' बनते हैं। इस दृष्टि से लेखक ने 'रामचरितमानस' में प्रयुक्त सुबन्त रूपों का बहुत ही सूक्ष्मेक्षिकापूर्ण विश्लेषण किया है और उनके अकारान्त, उकारान्त इत्यादि

प्रयोगों की बारीकियों की तर्कसम्मत व्याख्या की है तथा उनके भिन्न व्याकरणिक रूपों की स्थितियों पर पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों के अभिमत के प्रसंग में प्रकाश डाला है। लेखक ने, विशेषकर, 'भाषा-कवि' तुलसी द्वारा प्रयुक्त कर्त्तृवाच्य तिङन्त क्रियाओं और कर्मवाच्य कृदन्त क्रियाओं का जो अन्तर स्पष्ट किया है, वह बहुत ही रोचक और विचारोत्तेजक है। लेखक के इस अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि 'रामचरितमानस' में कहीं भी 'अपशब्दित' भाषा का प्रयोग नहीं है। इस प्रकार, प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने 'रामचरितमानस' की भाषा के व्युत्पत्तिमूलक आर्थी स्वरूप, 'मानस' में प्रयुक्त उपसर्गों की सार्थक-सटीक व्याख्या, अर्द्धालियों के शब्दान्त में किये गये स्वर-परिवर्त्तन, प्रातिपदिकों की भेद-बहुल स्वरान्तता, उद्वृत्त स्वर-संयोग, ऊष्मीकरण, अनुनासिकीकरण, 'मानस' की भाषा में संस्कृतोन्मुखी ब्रजावधी के तत्त्व, नामिक पदों में विभक्ति-प्रत्यय-योग और पार्श्वतीय विषय के रूप में 'मानस' के भाषा-पंचामृत तथा 'मानस' में प्रयुक्त तदेव एवं अवधी शब्दों का युक्तिपरिपुष्ट अध्ययन कर प्रतिपाद्य विषय से संबद्ध हमारे इतःपूर्व उपलब्ध ज्ञान का प्रशसनीय विस्तार किया है।

आशा है, मानस-चतुःशती के आसन्न वर्ष में परिषद् द्वारा प्रकाशित यह श्रद्धामुखर सारगर्भ ग्रन्थ 'मानस' के जिज्ञासु पाठकों को आह्लादित करेगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना
गुरु-पूर्णिमा, सं० २०३१ वि०

डॉ० कुमार विमल
निदेशक

आत्मनिवेदन

कर्त्तव्य, धर्म, भक्ति, सदाचार, काव्यकला और रसानुभूति आदि की दृष्टि से तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' हिन्दी-साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व के साहित्य में एक अनुपम ग्रन्थ है। यह स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध—सबके लिए समान उपयोगी और जीवन का मार्गदर्शक है। साहित्यप्रेमियों एवं साहित्यशास्त्रियों के लिए इसमें शब्दार्थजनित रस और काव्यकला का आस्वाद मिलता है। भले ही, 'मानस' में तुलसी की रामभक्ति की सुरसरी बहती हो, किन्तु 'रामचरितमानस' की सर्जना के क्षणों में तुलसी का कविरूप ही प्रमुख माना जायगा; क्योंकि ग्रन्थारम्भ के प्रथम श्लोक में ही महाकवि तुलसीदास कविता की देवी सरस्वती की ही सर्वप्रथम वन्दना करते हैं, जो नमस्कारात्मक मंगलाचरण है। मानव-कल्याण की मूलाधार धर्मनीति और सदाचार का जितना प्रचार इस ग्रन्थ द्वारा हुआ है, उतना शायद ही किसी अन्य ग्रन्थ से हुआ हो। मेरा यह सौभाग्य ही था कि मेरी पूज्या पितामही ने मुझे बचपन में ही 'रामचरितमानस' की पूरी कथा सुना दी थी। इसी कारण युवावस्था में तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' मेरे लिए श्रद्धेय तथा परमप्रिय ग्रन्थ बन गया था। अपने छात्र-जीवन में जब किसी रामायणी पण्डित (व्यास) की कथा का समाचार सुन पाता था, तब यथासम्भव वहाँ पहुँचता था और कथा-श्रवण किया करता था। तीस वर्ष की आयु के उपरान्त मेरे अनुभव एवं अध्ययन ने एक दिन मुझसे चुपके-चुपके एकान्त में कहा कि कुछ रामायणी पण्डित (व्यास) 'रामचरितमानस' का व्याकरणिक भाषा-ज्ञान न होने से कभी-कभी कुछ पदों या शब्दों के वास्तविक अर्थ न करके, उनका अनर्थ ही करते हैं। उन चामत्कारिक, किन्तु अवास्तविक अर्थों से अशिक्षित जनता कुछ क्षणों के लिए चमत्कृत तो हो जाती है, किन्तु शिक्षित एवं प्रबुद्ध श्रोता के मन में उस व्यास-विशेष के प्रति अश्रद्धा-सी जग जाती है। इसलिए, मेरे मन ने अनुभव किया कि एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता है, जिसमें 'रामचरितमानस' के भाषिक रूप-सहित आर्थी व्याख्या प्रस्तुत की गई हो।

एक बार एक रामायणी व्यास ने किष्किन्धाकाण्ड की अर्द्धाली 'कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।' (किष्कि० २।१) में आई हुई क्रिया **आए** के साथ प्रयुक्त **बन आए** का अर्थ किया था **बनकर आये**। अर्थात्, राम हनुमान् से कहते हैं कि 'हम वास्तविक रूप में (ब्रह्म-रूप में) नहीं, अपितु बनकर, अर्थात् मानव-रूप में आये हैं।'

इस अर्थ से सामान्य जनता चमत्कृत तो हो जाती है, किन्तु यह अर्थ वस्तुतः अनर्थ ही है। यदि 'बनकर आए' अर्थ तुलसी को अभीष्ट होता, तो वे अर्द्धाली में 'बनि आए'

लिखते । उनकी भाषा में यही रचना-प्रकृति मिलती है । इसी चरण में 'मानकर' के अर्थ में 'मानि'[१] लिखा भी है ।

गीता प्रेसवाली प्रति में 'रघुपति छबि देखें' (बाल० २३२।५) का अर्थ किया गया है— 'श्री रघुनाथजी की छवि देखकर ।' **देखें** का व्याकरणानुसार अर्थ है **देखने से । देखकर के** अर्थ में तो तुलसी **देखि** क्रिया लिखते हैं ।

इस दृष्टि से विचार करते हुए मैंने सोचा कि यदि तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाषा-संरचना एवं शब्द-स्वरूप को सार्थ स्पष्ट करनेवाली कोई पुस्तक लिखी हुई मिले, तो पता चले कि 'रामचरितमानस' में तुलसी की अपनी भाषा-पद्धति एवं शब्द-प्रयोग-शैली क्या रही है ? तुलसी कवि ही नहीं, भाषाओं के पण्डित भी हैं । 'रामचरितमानस' में भी उनकी भाषा-संरचना का एक प्रांजल एवं व्याकरण-सम्मत स्वरूप मिलना चाहिए और हमें उस स्वरूप के दर्शन पूरे 'रामचरितमानस' में आदि से अन्त तक मिल सकते हैं । वैसी कोई उत्तम पुस्तक कहीं देखने को मुझे नहीं मिली । मन के एक कोने में यह बात पड़ी रही और मैं अपने जीवन के अन्य कामों में फँसा रहा । दिन बीतते रहे और उक्त विचार पर विस्मृति की परतें जमती रहीं ।

सुयोग या दैवयोग से सन् १९६४ ई० में मुझे दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास के स्नातकोत्तर एवं अनुसन्धान-संस्थान का अध्यक्ष-पद दिया गया और दक्षिण में हिन्दी-सेवा की भावना से मैं मद्रास गया ।

उत्तर भारत के हिन्दी-विद्वान् अपनी दक्षिण-यात्रा के समय प्रायः दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास में भी आया करते थे । संयोग था कि उन दिनों, अर्थात् सन् १९६५ ई० में एक बार श्रीगंगाशरण सिंह जी (संसत्सदस्य, भारत-सरकार, दिल्ली) भी सभा में पधारे और हिन्दी-स्नातकोत्तर एवं अनुसन्धान-संस्थान की साहित्य-परिषद् में तुलसी के 'रामचरितमानस' पर उनका एक महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण भी हुआ । उस भाषण को सुनकर मेरे मन के कोने में दबी हुई पुरानी बात प्रेरणा पाकर पुनः ऊपर आ गई और मैंने योजनाबद्ध रूप में सन् १९६५ ई० से 'मानस' की भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया । सन् १९६६ ई० में अपनी पहली संस्था अलीगढ़-विश्वविद्यालय में वापस आने पर भी अध्ययन-कार्य चलता रहा । एक उत्तम बात यह थी कि अलीगढ़-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में कुछ मेरे मित्र तथा संगी-साथी ऐसे भी थे, जिनके अध्ययन का प्रिय ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' ही था और उन्होंने उसके पारायण भी किये थे । बन्धुवर डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल तो अपनी दैनिक पूजा में नियमित रूप से 'मानस' का पाठ किया करते थे और अब भी करते हैं । शब्दों की सन्दर्भ-सूचना में मुझे डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल से बड़ी सहायता मिली है ।

---

१. मिलाइए : 'देखि रामु आतुर **चलि आए** ।' (अर० ३।५)
'बहुत काल मइँ कीन्हि मजूरी ।
आजु दीन्हि बिधि **बनि** भलि भूरी ।।' (अयो० १०२।६)
बनि (अयो० १०२।६) = बनाकर । बरषि (अयो० १३४।३) = बरसाकर । बरिसि (बाल० ३०९।४) = बरसाकर ।

यदा-कदा आदरणीय डॉ० हरवंशलाल शर्मा, प्रिय भाई डॉ० शिवशंकर शर्मा, डॉ० गिरिधारी लाल शास्त्री, डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया और डॉ० विश्वनाथ शुक्ल ने भी बहुत से शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक आर्थी व्याख्या की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। लेखन-काल में सर्वश्री आदरणीय डॉ० बाबूराम सक्सेना, डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान', डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, डॉ० 'राकेश' गुप्त और श्रीशिवानन्द मिश्र से भी विचार-विमर्श हुआ है। डॉ० अशोक रामचन्द्र केलकर ने भी दो विदेशी विद्वानों की कृतियों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। कुछ नवीन एवं महत्त्वपूर्ण सुझाव मुझे अग्रजतुल्य आदरणीय डॉ० नगेन्द्रजी से भी प्राप्त हुए हैं। अतः, इस पुस्तक में परोक्ष रूप से उन सबका कुछ-न-कुछ योगदान अवश्य है। इसके लिए लेखक आभार मानते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता है। 'मानस' के कुछ पाठभेदों पर लेखक को डॉ० माताप्रसादजी गुप्त से भी पर्याप्त मार्ग-दर्शन मिला था। आज वे भौतिक शरीर से जीवित नहीं हैं। उनकी स्वर्गगत आत्मा के प्रति लेखक श्रद्धामयी कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

काव्य में वस्तु और शैली का ऐसा एकीभूत समन्वय रहता है कि उसे पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। 'काव्य' का अस्तित्व और महत्त्व उसकी 'कला', अर्थात् 'शैली' में ही निहित है। अनुभूति या भाव तो सामान्य सहृदय जन में भी घनीभूत अवस्था में उद्बुद्ध हो सकता है, किन्तु जबतक वह अर्थव्यंजक सरस समर्थ भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त न हो, तबतक 'काव्य' संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। अतः, एक प्रकार से शब्दशक्ति, भाषा, अलंकार, छन्द, काव्य-बिम्ब आदि सम्प्रेषक तत्त्व ही काव्य के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने ध्वनि, रीति, गुण, वक्रोक्ति आदि को जो काव्य की आत्मा कहा है, वह सब भाषा के माध्यम से ही तो व्यक्त हो सकता है। भर्त्तृहरि-कृत 'वाक्यपदीय' जैसे अनेक व्याकरण-ग्रन्थों में जो परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के मूल स्वरूप की बातें कही गई हैं और पश्चिमी विद्वानों—दान्ते, वर्ड्सवर्थ, क्रोचे, रिचर्ड्स आदि—ने जो कुछ अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में लिखा है, उससे काव्य की भाषा की सूक्ष्मरूपता ही व्यक्त होती है। शब्दों का उद्देश्य केवल अपने रूपों को व्यक्त करना ही नहीं है, अपितु वाक्य के सन्दर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में वे भाव या विचार को पूर्णतया बोधगम्य एवं अनुभूत भी बनाते हैं। स्थूल को सूक्ष्म और सूक्ष्म को स्थूल रूप में शब्द (अथवा कहिए पद) ही अभिव्यक्त करते हैं। इन सबसे सिद्ध होता है कि वास्तव में 'काव्य', अर्थात् 'कविता' की अभिव्यक्ति के लिए भाषा उसके भाव-तत्त्व (अनुभूति) से अधिक महत्त्वपूर्ण है, प्रमुख है। काव्य-शैली को समझने के लिए भाषा-ज्ञान परमावश्यक है। काव्य की रसानुभूति भी पाठक काव्य-भाषा के माध्यम से ही करता है। यदि कुन्तक और क्रोचे की व्याख्याओं में कुछ तथ्य है, तो पाठकों को 'मानस' की अभिव्यंजना का महत्त्व समझने में प्रस्तुत कृति सम्भवतः पर्याप्त उपादेय सिद्ध होगी।

किसी भाषा की व्याकरणिक संरचना की जानकारी ही उसकी वास्तविक जानकारी मानी जा सकती है। किसी भाषा के वाक्य-विन्यास के अन्तर्गत पद-क्रम-बन्धन में ही उसकी

ध्वनियों और शब्दरूपों का अस्तित्व सार्थक है। भाषा का सम्बन्ध एक ओर वस्तु-जगत् से और दूसरी ओर भाव-जगत् से होता है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' तुलसी के भाव-जगत् से वस्तु-जगत् का सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः, इस सम्बन्ध को हम 'मानस' की भाषा-संरचना के समझ लेने पर ही ठीक तरह जान और पहचान सकते हैं।

हिन्दी के आदिकालीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों के वास्तविक अर्थों को जानने के लिए यह परम आवश्यक है कि उनका पहले भाषिक स्वरूप प्रस्तुत किया जाय। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाषा-संरचना और शब्दों के व्याकरणिक रूप के साथ शब्दार्थ की अवगति होने पर ही सच्चे अर्थ का ज्ञान हो सकता है; और तभी पाठक मूल काव्यस्रष्टा की सृष्टि का वास्तविक आनन्द ले सकता है। सम्पूर्ण अर्थज्ञान की आधारशिला अभिधेयार्थ है और अभिधेयार्थ का आधार व्याकरणिक रूप-सहित शब्दार्थ-ज्ञान है। 'वाक्' रूप की अवगति ही वास्तविक अर्थावगति है; क्योंकि अर्द्धनारीश्वर शंकर के स्वरूप की भाँति वाक् और अर्थ परस्पर सम्पृक्त हैं। वाक्यगत शब्दार्थ-ज्ञान ही हमें स्रष्टा की बिम्ब-सृष्टि के स्पष्ट दर्शन करा सकता है और तभी हमें तृप्ति-लाभ हो सकता है। 'सासु सकल जब सीयँ निहारीं।' (काशि०, अयो० २४५।४) में कौन द्रष्टा है और कौन दृश्य? यह जानना परमावश्यक है।

सारांश यह कि लक्षणा, व्यंजना, उपमान, प्रतीक, अलंकार-विधान, बिम्ब-सृष्टि, छन्द आदि जितने भी रसानुभूति के साधन हैं, उन सबका माध्यम शब्द का अर्थ है और उस अर्थ का मूल आधार है शब्द की व्याकरणिक स्थिति। अतः, व्युत्पत्ति एवं व्याकरणिक रूप-सहित शब्द का अर्थज्ञान ही काव्य की रसानुभूति का मुख्य सोपान है।

तुलसी ने अयोध्याकाण्ड में श्रीरामचन्द्रजी की माता कौशल्या के लिए लिखा है—'बोली मधुर बचन महतारी।'—(अयो० ५२।६)। फिर, अरण्यकाण्ड में सीताजी के लिए लिखा—'मरम बचन जब सीता बोला।'—(अर० २८।५)। जब उक्त दोनों वाक्यों में कर्त्ता स्त्रीलिंग एकवचन हैं, तब एक वाक्य में **बोली** और दूसरे वाक्य में **बोला** क्यों?

'माँगी नाव न केवटु आना' के **'आना'** पद का अर्थ **आया** नहीं, अपितु **लाया** है। इसे भाषा के स्वरूप-ज्ञान के आधार पर ही जाना जा सकता है।

जब केवट भगवान् राम से कहता है—'बरु तीर मारहुँ लखनु' (अयो० १००। छन्द) तब 'वाक्' रूप को न जाननेवाला पाठक यह नहीं समझ सकता कि यहाँ 'मारहुँ' का क्या अर्थ है? और 'जनु **जोगीं** परमारथु पावा' (अयो० २३६।३) में **जोगीं** से क्या तात्पर्य है? **'जोगीं'** से **'पावा'** का क्या सम्बन्ध है? केवल **तीर, मारना** और **लक्ष्मण** की अवगति से प्रथम वाक्य के अर्थ का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। 'मारहुँ' का वास्तविक अर्थ वाक्य-रचना के परिप्रेक्ष्य में क्या है, इसे व्याकरणिक रूप की पहचान करनेवाला ही समझ सकता है।

अयोध्याकाण्ड में एक अर्द्धाली आती है—'गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सबु मातु चढ़ाईं' (गीता प्रेस, अयो० २०२।८)। गीता प्रेस-संस्करण के टीकाकार ने 'सुहाईं' के अर्थ को छोड़ ही दिया है। उक्त अर्द्धाली के पूर्वार्द्ध में 'सुनावँ' है, लेकिन उत्तरार्द्ध में 'नाव' है। ऐसा क्यों? **सुहाई** क्रिया है या विशेषण? विशेषण है, तो किसका?

भरतजी को चित्रकूट जाने के मार्ग में उन स्थानों के भी दर्शन हुए, जहाँ राम, सीता और लक्ष्मण ने निवास किया था। तुलसी लिखते हैं—'कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे' (अयो० १९९।३)। यहाँ देखे क्रिया **कनक बिन्दु** के कारण बहुवचन में है। किन्तु, बालकाण्ड में कौशल्या के लिए तुलसी लिखते हैं—'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।' (बाल० २०१।७) यहाँ बालक बहुवचन में है। फिर भी **देखा** लिखा गया है। क्यों ?

चारों भाई (राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) विवाह हो जाने पर जब अयोध्या पहुँच जाते हैं, तब उनकी माताएँ उन्हें देखती हैं। तुलसी लिखते हैं—'जननिन्ह सादर बदन निहारे'—(बाल० ३५८।८)। पाठक को शंका होती है कि तुलसी ने माताओं की ओर से पुत्रों के प्रति 'सादर' क्यों लिखा ? ठीक ऐसी ही शंका निम्नांकित अर्द्धाली के 'सादर' शब्द में होती है—'**सादर** सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी' (अयो० ५२।६)।

इसी प्रकार की अनेक शंकाओं के समाधानों के साथ प्रस्तुत कृति में 'रामचरितमानस' की भाषा का स्वरूप-विवेचन ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि की दृष्टि से विस्तार-सहित किया गया है। शैली और प्रविधि ऐसी अपनाई गई है, जिससे भाषाशास्त्र-प्रेमी के साथ-साथ सामान्य रामचरितमानस-प्रेमी जन भी लाभान्वित हो सके।

मानस की भाषा की व्याकरणिक संरचना को जानने के उपरान्त पाठक को वे कसौटियाँ और गुर मालूम हो जायेंगे, जिनके आधार पर वह सुगमता से जान सकेगा कि मानस में 'रामपदारबिन्द' (काशि०, उत्तर० १।३) जैसा पाठ क्यों ठीक है तथा 'रामपदारबिन्दु' पाठ क्यों अशुद्ध है।

पुस्तक कैसी बन पड़ी है, इसे तो विद्वान् ही जानेंगे। पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार कराने में मेरे शिष्य प्रियवर डॉ० श्रीराम शर्मा, श्रीविष्णु अवस्थी, श्री कमल सिंह, मेरी पत्नी श्रीमती बसन्ती देवी तथा मेरी पुत्रियों—शारदा, वीणा और ममता 'मधु' ने बड़ा परिश्रम किया है। पत्नी अपनी दैनिक पूजा में 'रामचरितमानस' का नित्य पाठ करती हैं। उन्हें 'मानस' की अनेक चौपाइयाँ याद भी हैं। जब मुझे किसी शब्द-विशेष के सन्दर्भ की आवश्यकता हुई, तब उनकी स्मृति ने भी मेरी पर्याप्त सहायता की है। भगवान् राम इन सबका मंगल करें।

'रामचरितमानस-भाषा-रहस्य' नाम से यह एक ऐसी पुस्तक हिन्दी-जगत् को भेंट की जा रही है, जिसके लिखने का प्रयास मेरा आत्मबोध भी रहा है। यदि इस कृति से मानस-भाषा-प्रेमी पाठकों को कुछ परितोष हो सका, तो प्रस्तुत प्रयास और भी अधिक सार्थक हो सकेगा। मानस की भाषा के वास्तविक अभिधेयार्थ-सहित वाक्य-विन्यास को समझने में प्रस्तुत कृति अवश्य सहायक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, लेखक उनके रचयिताओं का हृदय से आभारी है।

'रामचरितमानस' की भाषा के स्वरूप पर विचार करते समय प्रमुख रूप से तीन संस्करणों के पाठों से सहायता ली गई है :

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-सम्पादित श्रीरामचरितमानस, साहित्य-कुटीर, प्रयाग, सन् १९४९ ई०।

२. गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'श्रीरामचरितमानस', सं० २०१६ वि० ।

३. पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र-सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' (काशिराज-संस्करण), प्रथम संस्करण, सन् १९६२ ई० ।

पाठों के उद्धरणों के लिए अधिकांश में गुप्त-संस्करण को प्रधानता दी गई है । जहाँ किसी संस्करण का नाम-निर्देश नहीं है, वहाँ गुप्त-संस्करण का नाम ही समझना चाहिए। विशेष प्रसंग में और पाठभेद के स्थलों पर गीता प्रेस और काशिराज के संस्करणों से भी उद्धरण दिये गये हैं और उनका नामोल्लेख भी कर दिया गया है। शब्द-सन्दर्भ के लिए जो अर्द्धालियाँ या अन्य छन्दों के चरण उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ-साथ क्रमशः काण्ड, दोहा या सोरठा और अर्द्धाली की संख्याएँ भी दे दी गई हैं । उदाहरणार्थ, यदि कहीं उद्धरण के साथ 'अर० २८।५' लिखा हुआ मिले, तो पाठक को समझना चाहिए कि वह उद्धरण 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड के २८वें दोहे की ५वीं अर्द्धाली से सम्बद्ध है । दोहे के स्थान पर कहीं-कहीं अन्य छन्दों, सोरठों आदि की संख्या भी मिल सकती है । मुद्रण की भूलों के लिए क्षमा-याचना ।

बुद्ध-पूर्णिमा, २०३१ वि०
हिन्दी-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम-विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (उ० प्र०)

अम्बाप्रसाद 'सुमन'

संकेताक्षर-विवृति

अ	=	अरबी
अप०	=	अपभ्रंश
अयो०	=	अयोध्याकाण्ड
अर०	=	अरण्यकाण्ड
अर्धमा०	=	अर्धमागधी
अव०	=	अवधी
उत्तर०	=	उत्तरकाण्ड
एकव०	=	एकवचन
किष्कि०	=	किष्किन्धाकाण्ड
खड़ी०	=	खड़ी बोली
छं०	=	छन्द
देश०	=	देशज
दो०	=	दोहा
पा०	=	पाली
पाइअ०	=	पाइअसद्दमहण्णवो (प्राकृतशब्दमहार्णव)
पुं०	=	पुंलिग
प्रा०	=	प्राकृत
फा०	=	फारसी
बहुव०	=	बहुवचन
बाल०	=	बालकाण्ड
व्रज०	=	व्रजभाषा
रामच०	=	रामचरितमानस
लंका०	=	लंकाकाण्ड
सं०	=	संस्कृत
सं० रा०, सन्देशरा०	=	सन्देशरासक
सुन्दर०	=	सुन्दरकाण्ड
सो०	=	सोरठा
स्कं०	=	स्कन्ध
स्त्री०	=	स्त्रीलिंग
हिं०	=	हिन्दी
हेम०, हे० व्या०, हेम० व्या०	=	सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन, अर्थात् = हेमचन्द्र-कृत व्याकरण (सिद्धहैमशब्दानुशासन)
√	=	धातुचिह्न
>	=	पर-रूप-विकास-चिह्न
<	=	पूर्व-रूप-विकास-चिह्न
वर्ण से आगे की ओर) वर्ण के नीचे ‿	=	ह्रस्व स्वर का चिह्न
ॆ	=	ह्रस्व 'ए' की मात्रा

विषय-सूची

रामचरितमानस-भाषा-रहस्य

(क) विषय से सम्बद्ध पूर्वप्रकाशित प्रमुख ग्रन्थों पर एक दृष्टि और प्रस्तुत कृति

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' की भाषा के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व मैंने विषय-सम्बद्ध पूर्वप्रकाशित जिन ग्रन्थों का विशेष अध्ययन किया है, उनमें निम्नांकित ग्रन्थ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं :

१. डॉ० जॉर्ज ए० ग्रियर्सन-कृत 'नोट्स ऑन तुलसीदास'।

२. श्रीएडविन ग्रीव्स-कृत 'नोट्स ऑन दि ग्रैमर ऑव रामायण ऑव तुलसीदास'।

३. श्रीविजयानन्द त्रिपाठी-कृत 'मानस-व्याकरण'।

४. डॉ० बाबूराम सक्सेना-कृत 'एवोल्यूशन ऑव अवधी'।

५. श्री एस्० एच्० केलाग-कृत 'ग्रैमर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज'।

६. डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव-कृत 'तुलसीदास की भाषा'।

यों तो अपने अध्ययन के लिए मैंने उपर्युक्त छहों ग्रन्थों से लाभ उठाया है, किन्तु मेरे विषय से सीधा सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें दो ही हैं : १. श्रीएडविन ग्रीव्स-कृत 'नोट्स आन दि ग्रैमर ऑव रामायण ऑव तुलसीदास' और २. श्रीविजयानन्द त्रिपाठी-कृत 'मानस-व्याकरण'।

यद्यपि ग्रीव्स महोदय ने अपनी छोटी-सी पुस्तक में कतिपय व्याकरणिक रूपों का ही छोटा-सा संकलन प्रस्तुत किया है, तथापि यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक होने के कारण महत्त्वपूर्ण है। कुछ अभावों और त्रुटियों के रहते हुए भी यह रामायणीय व्याकरण-पुस्तिका व्याकरण के मार्ग में एक वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करती है।

श्रीविजयानन्द त्रिपाठी का 'मानस-व्याकरण' (मानस-संघ, रामवन, सतना) भाषा-विवेचन के मार्ग में हिन्दी-भाषा के माध्यम से व्याकरणिक रूप को प्रस्तुत करनेवाली प्रथम पुस्तक तो मानी जा सकती है, किन्तु जहाँतक व्याकरण और भाषा-विवेचन की वैज्ञानिकता का प्रश्न है, वहाँ यही कहा जा सकता है कि पुस्तक कुछ सन्देहों और भ्रान्तियों को जन्म देती है और विश्लेषण भी वैज्ञानिक उपादेयता से पर्याप्त दूर है।

श्रीकेलाग ने 'ग्रैमर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज'[१] में 'उच्च हिन्दी' के साथ हिन्दी-प्रदेश की सभी प्रमुख बोलियों पर व्याकरणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। बोलियों के प्रसंग में उन्होंने 'डाइलेक्ट ऑव दि रामायण' उपशीर्षक से 'रामचरितमानस' की भाषा का विवेचन अपनी उक्त पुस्तक में किया है। विवेचन यद्यपि संक्षिप्त ही है, किन्तु वैज्ञानिक और महत्त्वपूर्ण है। श्रीकेलाग के उक्त व्याकरण-ग्रन्थ से मुझे कई नई बातें मालूम हुईं। किन्तु,

---

१. A Grammar of the Hindi language, Routledge & Kagan Paul Ltd., Brodway House, 68-74 Carterlane, London E. C. 4, 1955.

दो-एक स्थल ऐसे भी पाये गये, जहाँ श्रीकेलाग 'मानस' की भाषा के कुछ व्याकरणिक रूपों के समझने में वास्तविकता को नहीं पकड़ सके हैं ।

संज्ञा-शब्दों का विवेचन प्रस्तुत करते हुए श्रीकेलाग लिखते हैं कि उच्च हिन्दी में जो संज्ञा शब्द अकारान्त मिलते हैं, वे रामायण की भाषा में उकारान्त पाये जाते हैं, जैसे 'सिर', का 'सिरु', सर का 'सरु', 'मुँह' का 'मुँहु' ।

प्रथम तो श्रीकेलाग महोदय जिन्हें 'शब्द' कहते हैं, वे शब्द व्याकरणिक दृष्टि से 'शब्द' न होकर 'पद' हैं, अर्थात् वे कारक-वचन-सूचक विभक्ति-प्रत्यय से समन्वित हैं, तात्पर्य यह है कि सुबन्त हैं । तुलसी 'रामचरितमानस' में **सर** भी लिखते हैं और **सरु** भी। इतनी बात अवश्य है कि **सरु** का प्रयोग ऋजु अवस्था में कर्त्ता और कर्म के पुंलिग एकवचन में ही मिलेगा । यदि कहीं तुलसी को **सर** का प्रयोग करण (तृतीया), सम्प्रदान (चतुर्थी), अपादान (पंचमी), सम्बन्ध (षष्ठी) या अधिकरण (सप्तमी) में करना पड़े अथवा **सर** के साथ किसी परसर्ग का योग करना पड़े, तो इस शब्द को **सर** के रूप में ही लिखा जायगा । दोनों प्रकार के उदाहरण :

'मध्य बाग **सरु**[1] सोह सुहावा ।' (बाल० २२७।७)

(सुन्दर बाग के मध्य तालाब शोभा पाता है ।)

उक्त अर्द्धाली में **सरु** पद का प्रयोग इसीलिए है कि यह अकारान्त पुंलिग शब्द है और प्रथमा विभक्ति (कर्त्ताकारक) के एकवचन में ऋजु अवस्था के अन्तर्गत आया है ।

किन्तु, निम्नांकित अर्द्धाली में 'सर' पद का प्रयोग है ।

'**सर समीप** गिरिजागृह सोहा ।' (बाल० २२८।४)

(तालाब के पास पार्वती का मन्दिर शोभा पाता था ।)

उपर्युक्त अर्द्धाली में **सर** का प्रयोग 'समीप' परसर्ग के साथ है, अर्थात् संज्ञा की तिर्यक् अवस्था के अन्तर्गत है । इसका कारक भी कर्त्ता या कर्म नहीं है, अपितु सम्बन्ध है । इसीलिए **सरु** पद न लिखकर **सर** पद लिखा गया है ।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जब **सर** शब्द स्त्रीलिंग होगा, तब कर्त्ता, कर्म की एकवचनीय ऋजु अवस्था में भी तुलसी उसे उकारान्त नहीं करेंगे । उकारान्त पद बनाने की पद्धति तो अकारान्त पुंलिग संज्ञा शब्दों में ही पाई जाती है । निम्नांकित अर्द्धाली में **सर** (=चिता) का प्रयोग कर्मकारक (द्वितीया) में हुआ है, किन्तु इस पद को तुलसी ने उकारान्त नहीं किया । कारण स्पष्ट है कि **सर** शब्द यहाँ 'चिता' के अर्थ में स्त्रीलिंग है । तुलसी लिखते हैं :

'येहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा ।'. . . . (अर० ८।८)

(इस प्रकार मुनि शरभंग जी चिता रचकर)

'बाण' के अर्थ में 'सर' शब्द पुंलिग है । जब इसके साथ कोई परसर्ग आयगा, तब एकवचन

---

१. अकारान्त पुंलिग शब्दों में उकारान्तता की ऐसी प्रवृत्ति ब्रजभाषा में आज भी मिलती है। उदाहरण : 'मोरु उड़ि गयौ'; 'चोरु पकरौ गयौ'।

में होने पर भी पद में उकार नहीं होगा। जो बात उपर्युक्त **सर समीप** (बाल० २२८।४) में थी, वही निम्नांकित अर्द्धाली के **सर के** (किष्कि० ६।१) में है :

'परा बिकल महि **सर के** लागें।' (किष्कि० ६।१)

(**बाण के** लगने से बाली व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।)

अतः, श्रीकेलाग का यह कथन, कि उच्च हिन्दी का अकारान्त शब्द 'मानस' में उकारान्त हो जाता है, ठीक नहीं है। तुलसी के 'मानस' में तो व्याकरणिक स्थितियों के अनुसार **सर** और **सरु** दोनों प्रकार के पद-प्रयोग मिलते हैं। अर्थात्, कर्त्ता, कर्मकारक की ऋजु अवस्था के पुंलिंग एक वचन में **सरु**[1] पद होगा, इससे इतर स्थिति में **सर**।

'डाइलेक्ट ऑव दि रामायण' के विवेचन के अन्तर्गत ही श्रीकेलाग ने एक स्थान पर यह भी कहा है कि **अ** या **इ** के स्थान पर 'मानस' में **ए** मिलता है, जैसे **कहहु** के स्थान पर **कहेहु**।

श्रीकेलाग महोदय 'मानस' के इन प्रयोगों के वास्तविक रूप समझने में भूल कर गये हैं। **कहहु** और **कहेहु** अलग-अलग प्रयोग हैं। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में अलग-अलग व्याकरणिक रूपों की स्थितियों में **कहहु** का प्रयोग भी किया है और **कहेहु**[2] का भी।

कहहु क्रियापद वर्त्तमानकाल, आज्ञादि अर्थ में, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदरसूचक एकवचन में आता है, और **कहेहु** क्रियापद भविष्यत् काल, आज्ञादि अर्थ में, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदरसूचक एकवचन में आता है। दोनों क्रियापदों में काल का अन्तर है। इसे मानक हिन्दी में समझाते हुए यों कहा जा सकता है :

१. **कहहु** = तुम कहो। (वर्त्तमानकाल)
२. **कहेहु** = तुम कहना। (भविष्यत्काल)

तुलसीदास लिखते हैं :

'मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ **कहहु** कहा बिस्वासा।'

(उत्तर० ४६।३)

(मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्य से आशा करता है, तो तुम **कहो**, उसका क्या विश्वास है?)

× × ×

'सीता हरन तात जनि **कहेहु**[3] पिता सन जाइ।' (अर० ३१।-)

(हे तात! सीता-हरण पिता से जाकर तुम मत **कहना**।)

---

१. मिला० 'दहमुहु णिग्गउ'। '**छंमुहु** झाइवि'—(हैम व्या० ८।४।३३१।२)। 'अपभ्रंशे अकारस्य स्यमोः परयोः उकारो भवति।' (हैम व्या० ८।४।३३१)।

२. मध्यमपुरुष, बहुवचन में आज्ञादि अर्थ में 'भणेहु', 'परिहरेहु' क्रियाएँ 'पउमसिरिचरिउ' (४।१५) में आई हैं।

३. मिलाइए **पूँछेहु** (किष्कि० २३।२) = तुम पूछना। **राखेहु** (उत्तर १०६।१५) = तुम रखना। **कहेसु** (किष्कि० १।४) = तू कहना।

तुलसी **कहहु** और **कहेहु** क्रियापदों का प्रयोग क्रमशः वर्त्तमानकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन; और भूतकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन में भी करते हैं।

१. कहहु = तुम कहते हो। (वर्त्तमानकाल, निर्देशार्थ)

२. कहेहु = तुमने कहा था। (भूतकाल, निर्देशार्थ)

'माँगु माँगु पै **कहहु** पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।'[1]
देन **कहेहु** बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु॥ (अयो० २७।-)

(हे प्रिय! 'तू माँग, तू माँग' तो कहते हो, किन्तु कभी न देते हो, न लेते हो। दो वरदान देने के लिए तुमने कहा था, उन्हें भी पाने में सन्देह हो रहा है।)

उपर्युक्त दोहे की **कहहु** और **कहेहु** क्रियाएँ सिद्ध करती हैं कि तुलसी ने दोनों क्रियाएँ दो भिन्न व्याकरणिक रूपों में प्रयुक्त की हैं। केलाग महोदय को कुछ भ्रान्ति ही हो गई है। इसीलिए, उन्होंने यह लिख दिया कि **कहहु** के स्थान पर 'मानस' में **कहेहु** पाया जाता है। यह भी सम्भव है कि उन्होंने 'रामचरितमानस' के प्रामाणिक संस्करणों में उक्त क्रियाओं को आद्यन्त न देखा हो।

'रामचरितमानस' की संज्ञाओं में कारकीय विभक्ति-प्रत्ययों को बताते हुए श्रीकेलाग महोदय लिखते हैं कि **—हि** और **—हिं** विभक्ति-प्रत्यय रामायण में कर्म और सम्प्रदानकारक में प्रयुक्त हुए हैं।

यदि सूक्ष्म और गम्भीर रूप से विचार किया जाय, तो 'मानस' के पाठकों को विदित होगा कि तुलसी के 'मानस' में **—हि** और **—हिं** विभक्ति-प्रत्यय अधिकरणकारक में भी प्रयुक्त हुए हैं। पाठभेद के कारण हम यहाँ तीन संस्करणों से उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं:

'प्रगट न कहहिं मनहि[2] मुसुकाहीं।' (काशिराज०, बाल० २१८।२)
(प्रकट रूप से नहीं कहते हैं और **मन में** मुसकाते हैं।)

'**प्रभुहि सेवकहि** समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु।' (काशिराज, बाल० २८१।-)
(**स्वामी में** और **सेवक में** युद्ध कैसा? हे विप्रवर! क्रोध त्यागिए।)

'गगनु मगन मकु **मेघहि** मिलई।' (काशिराज, अयो० २३१।१)
(चाहे आकाश **बादल में** समाकर मिल जाय।)

ये ही उद्धरण गीता प्रेस-संस्करण में इस प्रकार हैं:

'प्रगट न कहहिं **मनहिं**[3] मुसुकाहीं।' (गीता प्रेस, बाल० २१८।२)

---

१. **लेहु** = तुम लेते हो, तुम लो। **लेहि** = तू ले। **लेहु** (अयो० २८।३), **लेहि** = (अयो० १०२।४)।

२. **मनहि** = मन + हि = मन में हैम व्या० ८।४।३४१।३। कलिहि = कलि + हि (= कलियुग में)।

३. मनहिं = मन + हिं (= मन में) हैम व्या० ८।४।४२२।१३। घरहिं = घर + हिं (= घर में)। सं० एकस्मिन् > प्रा० एकहिं = एक में। प्रा० रसहिं = रस में। सं० स्मिन् > हिं। सं० एभिः > एहिं > हिं।

'**प्रभुहि सेवकहि** समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु।' (गीता प्रेस, बाल० २८१।-)

× × ×

'गगनु मगन मकु **मेघहिं** मिलई।' (गीता प्रेस, अयो० २३२।१)

डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण के पाठ इस प्रकार हैं :

'प्रगट न कहहिं **मनहिं** मुसुकाहीं।' (गुप्त-संस्क०, बाल० २१८।२)

× × ×

'**प्रभुहि सेवकहि** समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।' (गुप्त-संस्क०, बाल० २८१।०)

× × ×

'गगनु मगन मकु **मेघहिं** मिलई।' (गुप्त-संस्क०, अयो० २३२।१)

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि **—हि** या **—हिं** विभक्ति-प्रत्यय अधिकरण (सप्तमी) के भी सूचक हैं। सम्भवतः, अधिकरणकारक-सूचक संज्ञापदों पर केलाग महोदय की दृष्टि नहीं पहुँची होगी। **महुँ** परसर्ग भी सप्तमी को प्रकट करता है। 'मानस' में यह विश्लिष्ट अवस्था में मिलता है, अर्थात् मूल शब्द और 'महुँ' के मध्य **ही** आदि अव्यय आ गये हैं। जैसे 'मनहि महुँ' (=मन ही में)। उदा०

'देखि **मनहि महुँ** कीन्ह प्रनामा।' (गीताप्रेस, सुन्दर० ८।७)

'एवोल्यूशन ऑव अवधी'[१] में डॉ० बाबूराम सक्सेना ने बड़े गम्भीर एवं विशद अध्ययन के साथ प्राचीन अवधी और आधुनिक अवधी के व्याकरणिक रूपों को प्रस्तुत किया है। प्राचीन अवधी के उदाहरण प्रस्तुत करने के सन्दर्भ में डॉ० सक्सेनाजी ने 'रामचरितमानस' से भी उद्धरण दिये हैं। इन उद्धरणों से 'मानस' की भाषा के स्वरूप-विवेचन में लेखक को पर्याप्त मार्गदर्शन मिला है। किन्तु, **अब** और **अबि** प्रत्ययान्त अन्यपुरुषीय क्रियापदों के व्याकरणिक रूप-विवेचन में लेखक का डॉ० सक्सेनाजी से कुछ मतभेद है।

डॉ० सक्सेनाजी अपने ग्रन्थ[२] (पृ० २६१, अनुच्छेद ३०५) में क्रियापदान्त **—अब** को अन्यपुरुष एकवचन तथा बहुवचन के अन्तर्गत सामान्य भविष्यत्काल का सूचक मानते हैं। सारांश यह है कि डॉ० सक्सेनाजी के मत से **रहब** (अयो० १०४।५) क्रियापद कर्त्तृवाच्य का तिङन्त प्रयोग है। उदाहरण :

'जेहिं बन जाइ **रहब** रघुराई। परनकुटी महँ करबि सुहाई।' (अयो०, १०४।५)

'रामचरितमानस' में **—अब, —अबि** प्रत्ययान्त क्रियाओं पर विचार किया जाय, तो विदित होगा कि **रहब** और **करबि** जैसे प्रयोग कर्त्तृवाच्य के नहीं है, अपितु क्रमशः भाववाच्य और कर्मवाच्य के हैं। व्याकरणिक रूप को स्पष्ट करने के दृष्टिकोण से उपर्युक्त अर्द्धाली (अयो० १०४।५) का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है :

---

१. Evolution of Awadhi, Allahabad, Indian Press, 1937.
२. Evolution of Awadhi.

रघुराज से जिस वन में रहा जायगा, वहीं मेरे द्वारा सुन्दर पर्णकुटी बनायी जायगी।
सं० वसितव्यम् = रहब (अयो० १०४।५)—कर्म नहीं है।
सं० कर्त्तव्या = करबि (अयो० २०४।५)—कर्म 'परनकुटी'।

कर्मवाच्य में क्रिया कृदन्त-रूप में होती है और उसका लिंग-वचन कर्म के लिंग-वचन के अनुसार आता है। सम्पूर्ण 'मानस' में —अबि प्रत्ययान्त क्रियापद वहीं मिलते हैं, जहाँ कर्म स्त्रीलिंग, एकवचन है। अत:, **करबि** जैसे प्रयोग अन्यपुरुष में कर्त्तृवाच्य के नहीं, अपितु कर्मवाच्य के हैं। निम्नांकित उदाहरणों से भी हमारे कथन की पुष्टि होती है :

'भाषाबद्ध **करबि** मैं सोई।' (बाल० ३१।२)

(वह कथा मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी।)

'मैं कछु **करबि** ललित नरलीला।' (अर० २४।१)

(मेरे द्वारा कुछ सुन्दर नर-लीला की जायगी।)

उपर्युक्त उद्धरणों में **करबि** स्त्रीलिंग, एकवचन कर्मवाच्य की क्रियाएँ इसीलिए हैं कि उनके कर्म क्रमश: **कथा**, और **नरलीला** स्त्रीलिंग, एकवचन में हैं।

'एवोल्यूशन ऑव अवधी' में **बियाहब** पाठ के साथ इसे सामान्य भविष्यत्काल में अन्यपुरुषीय एकवचन की क्रिया माना गया है और उदाहरण दिया गया है :

'सीय **बियाहब** राम।' (एवोल्यूशन ऑव अवधी, पृ० २६३, अनु० ३०५)

डॉ० सक्सेनाजी के द्वारा अर्थ लिखा गया है—'राम सीता को ब्याहेंगे।'[१]

वास्तव में, उपर्युक्त उद्धरण गुप्त-संस्करण, गीताप्रेस-संस्करण और काशिराज-संस्करण में इस प्रकार मिलता है :

'सीय **बिआहबि** राम'—(गुप्त-संस्क०, बाल० २४५।-)
'सीय **बिआहबि** राम'—(गीताप्रेस, बाल० २४५।-)
'सीय **बिआहबि** राम'—(काशिराज०, बाल० २४५।-)

उक्त तीनों ही संस्करणों में **बिआहबि** पाठ है। डॉ० सक्सेनाजी अन्यपुरुष में एकवचन या बहुवचन में **—अबि** प्रत्यय नहीं मानते। जब **अबि** के साथ पाठ मिलता है, तब समस्या यह उठती है कि 'राम बिआहबि' वाक्य व्याकरण से किस आधार पर साधु सिद्ध होगा।

वास्तव में, **बिआहबि** भविष्यत्काल में कर्मवाच्य स्त्रीलिंग एकवचनीय क्रिया है और इसका कर्म **'सीय'** है, जो स्त्रीलिंग, एकवचन में है। अर्थ होगा : 'राम द्वारा सीता ब्याही जायगी।'

इसी आधार पर निम्नांकित अर्द्धाली में **देबि** भी भविष्यत्काल में स्त्रीलिंग एकवचन कर्मवाच्य की कृदन्त क्रिया है, जिसका कर्म **रजाई** (= आज्ञा) स्त्रीलिंग, एकवचन में है :

---

१. 'Rāma (honorific pl.) will marry Sita' (E. A., p 263)

'तब मोहि कहँ जसि **देबि** रजाई।' (अयो० १०४।६)

(तब मुझको जैसी आज्ञा दी जायगी।)

अतः, अन्त में निष्कर्षरूपेण यह कहा जा सकता है कि 'मानस' में भविष्यत्‌काल की कर्त्तृवाच्य तिङन्त क्रियाएँ अन्य पुरुष में **अब** या **अबि** प्रत्यय के साथ नहीं मिलतीं। वे केवल कर्मवाच्य या भाववाच्य की स्थिति में ही पाई जाती हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया है। 'एवोल्यूशन ऑव अवधी' में सामान्य भविष्यत्‌काल के अन्य पुरुष में **—अब** प्रत्ययान्त कर्त्तृवाच्य क्रियाओं के जो उदाहरण 'रामचरितमानस' से लेकर अनु० ३०५ में दिये गये हैं, वे हमारे विचार से सन्दिग्ध हैं।

'तुलसीदास की भाषा'[१], पुस्तक में डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव द्वारा वैज्ञानिक पद्धति से तुलसी के ग्रन्थों की भाषा का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उक्त पुस्तक में एक बहुत बड़ा अंश 'व्याकरणिक विवेचन' शीर्षक के साथ लिखा गया है, जिसके अन्तर्गत तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' से भी उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

डॉ० श्रीवास्तव ने क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूपों का विवेचन प्रस्तुत करने में कर्त्तृवाच्य और कर्मवाच्य के क्रियापदों को स्पष्टतः नहीं समझाया। उनके उस विश्लेषण से पाठक कुछ भ्रान्ति में पड़ जाता है।

'तुलसीदास की भाषा' (पृ० १३८) में निम्नांकित उद्धरण की **देखी** क्रिया को सामान्य भूतकाल में अन्यपुरुष बहुवचन का रूप माना गया है। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के मतानुसार **देखी** क्रिया अपने कर्त्ता 'रिषिन्ह' (अन्यपुरुष, बहुवचन) के अनुसार आई है :

'रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी।' ('तुलसीदास की भाषा', पृ० १३८)

फिर, आगे पृ० १४१ पर 'तुम्ह **देखी** सीता मृगनैनी' में **देखी** को सामान्य भूतकाल में मध्यमपुरुष, बहुवचन का रूप लिखा गया है। सारांश यह है कि डॉ० श्रीवास्तव के अनुसार **देखी** क्रिया सामान्य भूतकाल में कर्त्तृवाच्य है और पुरुष तथा वचन में अपने कर्त्ता **तुम्ह** (मध्यमपुरुष, बहुवचन) के अनुसार है।

एक ही **देखी** क्रिया को पहले सामान्यभूत में अन्यपुरुषीय बहुवचन की और फिर मध्यमपुरुषीय बहुवचन की बताया गया है। ये कथन भ्रान्तिमूलक हैं।

वास्तव में, **देखी** क्रियाएँ उपर्युक्त उद्धरणों में कर्त्तृवाच्य की नहीं हैं। ये कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं। कर्मवाच्य की क्रियाएँ लिंग-वचन में अपने कर्म का अनुसरण करती हैं, कर्त्ता से उनका कोई रूपगत सम्बन्ध नहीं होता। ऐसी अवस्था में कर्त्ता प्रायः तृतीया विभक्ति (करणकारक) में आता है।

'रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी।' (बाल० ७८।१)

---

१. 'तुलसीदास की भाषा', लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २०१४ वि०।

(वहाँ ऋषियों द्वारा पार्वती कैसी देखी गई ? अर्थात्, वहाँ ऋषियों ने पार्वती कैसी देखी ?)

'तुम्ह **देखी** सीता मृगनैनी ।' (गीताप्रेस, अर० ३०।६)

(तुम्हारे द्वारा मृगनयनी सीता क्या देखी गई है ? अर्थात्, क्या तुमने मृगनयनी सीता देखी है ?)

	कर्त्ता	कर्म	क्रिया
१.	रिषिन्ह (पुं०, बहुव०)	**गौरि** (स्त्री०, एकव०)	**देखी** (सामान्यभूत, स्त्री०, एकव०)
२.	तुम्ह (पुं०, बहुव०)	**सीता** (स्त्री०, एकवचन)	**देखी** (सामान्यभूत, स्त्री०, एकवचन)

१. सं० ऋषिभिः गौरी दृष्टा = रिषिन्ह गौरी देखी ।

२. सं० युष्माभिः सीता दृष्टा ? = तुम्ह सीता देखी ?

देखी क्रिया लिंग-वचन में कर्म के अनुसार है, अतः कर्मवाच्य की क्रिया है । इसका कर्त्ता के पुरुष-वचन से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

डॉ० श्रीवास्तव अपनी उसी पुस्तक के पृ० १३६ पर पहले **कीन्ह** क्रिया को सामान्य भूतकाल में अन्यपुरुष, बहुवचन की बताते हैं और फिर पृ० १४१ पर **कीन्हि** को सामान्य भूतकाल में मध्यमपुरुष, एकवचन की भी कहते हैं :

'सुरन्ह मनहिं मन **कीन्ह** प्रनामा ।' ('तुलसी की भाषा', पृ० १३६)

'**कीन्हि** कृपानिधि सब अधिकाई ।' (वही, पृ० १४१)

उक्त दोनों पंक्तियाँ 'रामचरितमानस' से उद्धृत हैं । प्रथम उद्धरण बालकाण्ड (१००।७) से और द्वितीय अयोध्याकाण्ड (गीताप्रेस, ३००।५) से लिया गया है । अर्थ इस प्रकार हैं :

१. देवताओं द्वारा मन-मन में प्रणाम किया गया, अर्थात् देवताओं ने मन-मन में प्रणाम किया ।

२. कृपानिधि द्वारा सब अधिकता ही की गई, अर्थात् दयासागर ने सब अधिकता ही की ।

	कर्त्ता	कर्म	क्रिया
१.	सुरन्ह (पु०, ब०व०)	**प्रनाम** (पु०, एकव०)	**कीन्ह** (भूतकाल, पु०, एकव०)
२.	कृपानिधि (पु०, एकव०)	**अधिकाई** (स्त्री०, एकव०)	**कीन्हि** (भूतकाल, स्त्री० एकव०)

१. सं० सुरैः प्रणामः कृतः = सुरन्ह प्रनाम **कीन्ह** ।

२. सं० कृपानिधिना अधिकता कृता = कृपानिधि अधिकाई **कीन्हि** (कीन्ही) ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि **कीन्ह** क्रिया इसलिए पुंलिंग, एकवचन है कि उसका कर्म 'प्रनाम' पुंलिंग, एकवचन है। **कीन्हि** इसीलिए स्त्रीलिंग, एकवचन है कि उसका कर्म 'अधिकाई' स्त्रीलिंग, एकवचन है। अतः, ये क्रियापद कर्मवाच्य के हैं, कर्त्तृवाच्य के नहीं। इन क्रियापदों का, कर्त्ताओं के लिंग, वचन, पुरुष आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः, यह कहा जा सकता है कि 'तुलसीदास की भाषा' पुस्तक में सामान्य भूतकाल की कुछ क्रियाओं का विवेचन भ्रान्तिमूलक है। उनके स्वरूप-विश्लेषण में स्पष्टता नहीं है।

ऐसी कर्मवाच्य क्रियाओं को लेखक ने अपनी प्रस्तुत कृति में क्रियाओं के अध्याय में स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयत्न किया है। कर्त्तृवाच्य तिङन्त क्रियाओं और कर्मवाच्य कृदन्त क्रियाओं का अन्तर भी उसी अध्याय में लिखा गया है। 'दिग्दर्शन' शीर्षक अध्याय में भी अन्य व्याकरणिक कोटियों के साथ कुछ क्रियारूपों को भी यथासम्भव स्पष्ट किया गया है। जिन व्याकरणिक कोटियों पर यदि कुछ अधिक प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत हुआ है, तो उन पर पृथक् शीर्षक से परिशिष्ट भाग में लेख भी लिखे गये हैं। ऐसी स्थिति में पाठकों को यत्र-तत्र इस कृति में विषय-विश्लेषण की पुनरावृत्ति और विस्तार का आभास भी मिल सकता है; परन्तु उस पुनरावृत्ति से पाठक को विषय की आत्मा का ज्ञान ही अधिक होगा। भाषा-विवेचन में व्याकरणिक व्याख्याएँ सामान्य पाठक को कुछ क्लिष्ट-सी लगा करती हैं। उस क्लिष्टता के परिहार के लिए ही ऐसा किया गया है। सामान्य 'मानस'-प्रेमी पाठक भी यदि तुलसी के अभिव्यक्ति-कौशल का आनन्द लेना चाहेगा और 'मानस' के भाषा-रहस्य को समझने में रुचि लेगा, तो हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत कृति से वह अवश्य लाभान्वित होगा। भाषा के मर्म का ज्ञान होने पर पाठक को अर्थबोध में निश्चित रूप से आनन्द प्राप्त होता है। इसलिए, प्रस्तुत पुस्तक की पुनरुक्तियाँ जो एक भाषाशास्त्री के समक्ष 'पुनरुक्ति' दोष के रूप में आ सकती हैं, वे ही एक सामान्य पाठक के लिए 'पुनरुक्तिप्रकाश' अलंकार भी सिद्ध हो सकती हैं। मूल कारण यह है कि पुस्तक लिखते समय लेखक के सामने साधारण शिक्षित 'मानस'-प्रेमी पाठक भी रहा है।

भाषा-स्वरूप की स्पष्टता के लिए ध्वनि-विचार, रूप-विचार और अर्थ-विचार में रूप-विचार और अर्थ-विचार ही अपेक्षाकृत अधिक उपादेय सिद्ध हो सकते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत कृति में अन्तिम दो पर विस्तार में और ध्वनि-विचार पर संक्षेप में लिखा गया है। विश्लेषण में संक्षिप्त रूपवाली सांकेतिक पद्धति को कम ही अपनाया गया है। शेष अच्छा-बुरा मर्मज्ञ पाठक ही समझेंगे। लेखक तो इस कृति को महात्मा तुलसी के चरणों में समर्पित अपना एक श्रद्धा-सुमन ही मानता है। यह श्रद्धा-सुमन महात्मा तुलसी के प्रेमी पाठकों को भी अर्पित है।

(ख) दिग्दर्शन

प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' की भाषा के स्वरूप पर विचार किया गया है। 'मानस' की भाषा के विवेचन के लिए प्रमुख आधार डॉ० माताप्रसाद गुप्त-सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' (साहित्य-कुटीर, १७२, ऐलेनगंज, प्रयाग, सन् १९४९ ई०)[१] रहा है और आवश्यकता पड़ने पर गीताप्रेस गोरखपुरवाले मानस-संस्करण तथा पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित काशिराज-संस्करण को भी देख लिया गया है। पाठान्तर के समय यत्र-तत्र गीताप्रेसवाले संस्करण (सं० २०१६ वि०) और काशिराज-संस्करण (सन् १९६२ ई०) का नाम निर्दिष्ट करते हुए तथ्य-निरूपण किया गया है।

'रामचरितमानस' के भाषा-विवेचन की यात्रा में जो शब्द, पाठ, ध्वनि, रूप आदि प्रदेश मुझे दृष्टिगोचर हुए, उन्हें मेरी बुद्धि ने यथाशक्ति परखने का प्रयत्न किया है।

(क) **शब्द** : तुलसी शब्द-प्रयोग के लिए कवि ही नहीं, प्रवीण पण्डित भी हैं। शब्दों को अमर करने के लिए अथवा विस्मृति में दबे हुए शब्दों को प्रकाश में लाकर जीवन्त बनाने के लिए वे यदा-कदा कुछ विचित्र शब्दों के भी प्रयोग कर देते हैं। उनका अर्थ जानना साधारण पाठक के बल-बूते की बात नहीं। 'रामचरितमानस' में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिन्हें पाठक पर्याप्त मनन-चिन्तन के पश्चात् ही समझ पाता है। यदि कोई पाठक उनका व्युत्पत्तिमूलक आर्थी स्वरूप जानने का अभिलाषी है, तो उसे निश्चित रूप से शब्द-सागर में गहरा गोता लगाना पड़ेगा, तभी वह कुछ प्राप्त कर सकता है। **अनपायनी, अनख, आरो, कोहाव, खगहा, गुदरत, गुदारा, चपरि, चाँड़, जनकोरा, बरेखी, रहसी, सहरोसा** आदि ऐसे ही शब्द हैं।

(क) १. तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' के किष्किन्धाकाण्ड (दो० २५।८) में **अनपायनी** शब्द 'भगति' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया है :

'नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्ही।[२] **अनपायनी** भगति प्रभु दीन्ही।'

(किष्कि० २५।८)

कुछ टीकाकारों ने 'अनपायनी भगति' का अर्थ 'अचल भक्ति' लिखकर अपना काम पूरा कर दिया है।

वास्तव में, **आय** शब्द का अर्थ 'प्राप्ति या 'लाभ' है। √अय्+घञ् से **आय** की सिद्धि होती है। जो हमारे पास आती है, वह वास्तव में हमारे लिए **आय** है और जो हमसे

---

१. 'रामचरितमानस' के उद्धरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ सन्दर्भ जानने के लिए काण्ड का नाम, दोहा संख्या और चौपाई छन्द की अर्द्धाली-संख्या भी लिख दी गई है। गुप्त-संस्करण के उद्धृत स्थलों के साथ संस्करण-नाम सर्वत्र नहीं है, लेकिन गीताप्रेस और काशिराज का नामोल्लेख है।

२. ब्रजभाषा में इसके समानान्तर **कीनीं** और **करी** रूप प्रचलित हैं। ब्रज० **कीनीं** = मानस में **कीन्हीं**।

दूर जाती है, हमें त्यागती है, वह **अपाय** (अप + आय) है। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि जो साधना, क्रिया या चिन्तना हमें दूर फेंकती है, वह **अपायनी** हुई और जिसके द्वारा किसी का नैकट्य या सान्निध्य प्राप्त हो, उसे **अनपायनी** कहेंगे। जिस भक्ति से भगवान् का सामीप्य या सान्निध्य प्राप्त होता है, उसे 'अनपायनी भक्ति' कहा जा सकता है। अतएव, उक्त अर्द्धाली (किष्किं० २५।८) का अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है :

अर्थ : उसने (उस स्त्री ने) भगवान् से अनेक प्रकार से विनती की। प्रभु ने उसे अपना सान्निध्य प्राप्त करानेवाली भक्ति दी।

(क) २. तुलसी ने अरण्यकाण्ड (३०।१५) में **अनख** शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने 'स्पर्द्धा' लिखा है। वास्तव में, मूल शब्द संस्कृत में **अनक्षि** है। इसीसे **अनख** शब्द का विकास हुआ है—सं० अनक्षि>अनक्ख>अनख=बुरी आँख, अर्थात् ईर्ष्या या स्पर्द्धा। 'ईर्ष्या' या 'स्पर्द्धा' लाक्षणिक अर्थ है। वाच्यार्थ में 'बुरी आँख' के जान लेने के पश्चात् ही हम उसपर आधृत लक्ष्यार्थ 'स्पर्द्धा' को ठीक तरह समझ सकते हैं। 'स्पर्द्धा' का 'अनक्षि' से किस प्रकार सम्बन्ध है, इसको समझ लेने के बाद ही निम्नांकित अर्द्धाली में राम के कथन का अर्थ स्पष्ट होता है :

'किमि सहि जात **अनख** तोहि पाहीं।
प्रिया बेगि प्रगटसि[1] कस नाहीं।।' (अरण्य ३०।१५)

अर्थ : हे सीते! तुमसे उनकी (खंजन, मृग, श्रीफल, कदली आदि की) **अनक्षि** (स्पर्द्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र प्रकट क्यों नहीं होती हो?

'रामचरितमानस' की निम्नांकित अर्द्धाली में **आरौ** शब्द का प्रयोग हुआ है :

'घुरुघुरात हय **आरौ** पाएँ।
चकित बिलोकत कान उठाएँ।।' (बाल० १५६।८)

टीकाओं के देखने से यह तो मालूम हो जाता है कि **आरौ** शब्द का अर्थ 'आहट' है, किन्तु शब्द की आत्मा के दर्शन पाठक को इससे नहीं हो पाते। वस्तुतः, मूल संस्कृत शब्द **रव** है, जिसमें **आ** उपसर्ग के योग से **आरव** शब्द की सिद्धि होती है। उपसर्ग के लग जाने पर भी शब्द कभी-कभी अपने अर्थ को अक्षुण्ण रखता है। अतः, 'रव' (=आवाज, शब्द, आहट) का जो अर्थ है, वही **आरव** का है। सं० **आरव** से ही **आरौ** का विकास हुआ है—सं० आरव>आरउ>आरौ। इस विकास-क्रम की अवगति हो जाने के उपरान्त पाठक को शब्द की आत्मा के स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं।

(क) ३. तुलसी ने 'रामचरितमानम' के अयोध्याकाण्ड (२८।१) में **कोहाव** शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ 'मान' किया गया है। प्रश्न यह है कि **कोहाव** का अर्थ 'मान' क्यों और कैसे है? अर्द्धाली इस प्रकार है :

'जानेउँ[1] मरमु राउ हँसि कहई।
तुम्हहि **कोहाव** परम प्रिय अहई।।' (अयो० २८।१)

---

१. मिला० 'देखेउँ' (सुन्दर० ४७।-); 'जानेउँ' (लंका० ३०।६)।

कोहाव शब्द का विकास सं० 'क्रोध-भाव' से हुआ है। सं० क्रोध-भाव>कोह-भाव (समाक्षर-लोप से)>कोहाव (=क्रोध का जन्ममात्र)। 'क्रोध' अपनी जन्मावस्था में बहुत हलका और क्षीण होता है। उसे हम **अमर्ष** के निकट मान सकते हैं। इसीलिए, 'कोहाव' का अर्थ 'मान' है। 'मान' की स्थिति में नारियाँ सच्चे अर्थों में क्रोधवती नहीं बनतीं। वे मनुहार चाहती हैं, निहोरे कराती हैं। मनोनुकूल मनुहार प्राप्त हो जाने पर प्रसन्न भी हो जाती हैं। 'क्रोधभाव', अर्थात् **कोहाव**[1] वास्तव में क्रोध की एक ऊपरी झलक-सी है, इसीलिए उसे **मान** बताया गया है।

(क) ४. अयोध्याकाण्ड की निम्नांकित अर्द्धाली में **खगहा** शब्द आया है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने 'गैंडा' किया है। **खगहा** का अर्थ 'गैंडा' क्यों है? इसकी जिज्ञासा मननशील पाठक के मन में बनी रहती है :

'**खगहा** करि हरि बाघ बराहा।
देखि महिष बृष साजु सराहा॥' (अयो० २३६।३)

खग + **हा** से **खगहा** शब्द बना है। इसका अर्थ है—'जो खाँग से मारता है।' स्मरण रखना चाहिए कि गैंडे की नाक पर एक सींग होता है, जिसकी शक्ल तलवार, अर्थात् खड्ग की तरह होती है। उस सींग को **खाँग** या **खाग** कहते हैं—सं० खड्ग>खग्ग>खाग, खाँग। गैंडा अपनी **खाँग** से ही किसी अन्य जीवधारी पर चोट किया करता है। 'खड्गेन हन्ति इति **खड्गहा**। 'खड्गहा' शब्द से ही **खगहा** शब्द विकसित है। 'खाँग' का अर्थ समझ लेने के बाद **खगहा** का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। साहित्य का यह रूढयौगिक शब्द है।

(क) ५. तुलसी के 'मानस' में **अनपायनी** जैसे तदेव शब्द (तत्सम शब्द) और **अनख** जैसे तद्भव शब्द ही प्रयुक्त नहीं हुए हैं, अपितु फारसी परम्परा के अनेक विदेशी शब्द भी प्रयोग में लाये गये हैं। **गुदरत** और **गुदारा** ऐसे ही शब्द हैं। तुलसी लिखते हैं :

'मिलि न जाइ नहिं **गुदरत** बनई।' (अयो० २४०।५)

अर्थ : लक्ष्मण से न मिला जाता है और न राम की सेवा त्यागते बनती है।

अर्थ से यह विदित हो जाता है कि 'गुदरत बनई' का अर्थ है 'त्यागते बनता है।' 'गुदरत' के व्याकरणिक अर्थ दो हो सकते हैं—१. त्यागता है। २. त्यागते हुए। ये दो अर्थ क्यों और किस आधार पर हैं? यह प्रश्न सहज रूप से उत्पन्न होता है। वास्तव में, फारसी **गुज़स्तन** का अर्थ 'अलग होना,' 'गुज़रना,' 'जाना' या 'दूर जाना' है। एक प्रकार से फारसी 'गुज़स्तन्' मस्दर (धातु) के 'गुज़रद' मुज़ारे से विकसित होकर अवधी में 'गुदरत' रूप बनता है। 'गुदरत' क्रिया का एक रूप है। अर्थात्, फा० **गुज़रद** 'मानस' में **गुदरत**। फारसी की 'ज़' ध्वनि अवधी की 'द' ध्वनि में परिवर्त्तित हुई है। **कागज़** के लिए भी तो 'मानस' में **कागद** (बाल० ९।११) शब्द आया है।

---

१. दाऊद-कृत 'चांदायन' में 'रूठकर' या 'मान करके' के अर्थ में 'कुहाइ' का प्रयोग है—'चाँदा चली कुहाइ' (चांदायन, पृ० ४२)=चाँदा रूठकर चली।

(क) ६. इसी प्रकार, फारसी से विकसित **गुदारा** शब्द भी तुलसीकृत 'रामचरित-मानस' के अयोध्याकाण्ड (२०२।७) में आया है :

'मा भिनुसार **गुदारा** लागा।' (अयो० २०२।७)

अर्थ : प्रातःकाल हुआ और नदी पार करने के लिए नावों का खेवा लगा। फारसी गुज़ारह् >गुज़ारा >गुदारा (=नदी पार करना, खेवा)।

चौदहवीं शताब्दी से हिन्दी-काव्य में अरबी-फारसी के पर्याप्त शब्द सहज भाव से आने लग गये थे और हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सम्पर्क से जन-जीवन में भी प्रचलित हो गये थे। व्रजभाषा का **बालम** शब्द भी अरबी-फारसी-परम्परा से आया हुआ शब्द है, जिसका प्रयोग कबीर ने अपनी कविता में बहुत किया है। इसे अरबी के **बाल** (प्रियतम, पति) से बने हुए सम्भवतः फारसी रूप **'बालम'** (=मेरा पति) का हिन्दी में आगमन समझना चाहिए। जैसे :

'तड़पे बिन **बालम** मोर जिया'। (कबीर)

(क) ७. बालकाण्ड में एक लघु प्रसंग आया है, जो राजा प्रतापभानु द्वारा एक जंगली सूअर के शिकार से सम्बद्ध है। राजा प्रतापभानु ने घोड़े पर चढ़कर जिस तरह सूअर का पीछा किया, उसे तुलसी इन शब्दों में लिखते हैं :

'नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाहु॥' (बाल० १५६।-)

उपर्युक्त दोहे के तीसरे चरण में **चपरि** शब्द आया है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने 'तेजी से' किया है। 'चपरि' का ऐसा अर्थ किस प्रकार है, इसकी जिज्ञासा पाठक के मन में बनी रहती है। संस्कृत में 'चंचल' या 'तेज' के अर्थ में एक शब्द **चपल** है। इसमें 'अण्' प्रत्यय के योग से **चापल** बनता है। व्याकरण से 'चापल' भाववाचक संज्ञा है और अर्थ है 'चंचलता' या तेजी। सप्तमी विभक्ति के एकवचन में 'चापल' से **चापले** रूप बनेगा, जिसका अर्थ है 'तेजी में' या 'शीघ्रता' में'। उसी **चापले** पद से **चपरि** शब्द का विकास हुआ है—सं० **चापले**>**चापलि चापरि**>**चपरि**। संस्कृत का सप्तमी विभक्ति-प्रत्यय –ए अपभ्रंश में —इ में बदल गया था। सं० तले>अप० तलि (हैम व्या० ८।४।३३४।१)= तले में।

(क) ८. जब श्रीरामचन्द्रजी ने पिनाक (शिवजी का धनुष) तोड़ दिया, तब कुछ क्रूर, कपूत और मूढ राजा तमतमाये और युद्ध करने के लिए तैयार होकर कहने लगे :

'**तोरें** धनुपु **चाँड़**[1] नहिं सरई।
जीवत **हमहि कुँअरि** को बरई॥' (बाल० २६६।४)

√तोर+एँ=तोरें (बाल० २६६।४)=तोड़ने से (तृतीया एकवचन)।

---

१. इस शब्द पर मेरा मनन-चिन्तन प्रियभाई डॉ० विश्वनाथ शुक्ल की प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ।

गीताप्रेस, गोरखपुरवाली प्रति में उक्त दोहे का पाठ इस प्रकार है :

'तोरें धनुपु **चाड़** नहिं सरई ।
जीवत **हमहि कुँअरि** को बरई ।।' (गीताप्रेस, बाल० २६६।४)

√तोर + एँ = तोरें[1] (गीता प्रेस, बाल० २६६।४) = तोड़ने से (तृतीया एकवचन)।
काशिराज-संस्करण का पाठ इस तरह है :

'**तोरे** धनुपु **चाड़** नहि॰ सरई ।
जीवत हमहि कुअँरि को बरई ।।' (काशिराज, बाल० २६६।४)

√तोर + ए = तोरे (काशिराज, बाल० २६६।४) = तोड़ने पर (सप्तमी एकवचन)

उपर्युक्त दोहे में **चाँड़** शब्द आया है, जिसे गीताप्रेस और काशिराजवाले संस्करणों में **चाड़** रूप में छापा गया है। कुछ टीकाकारों ने 'चाड़' का अर्थ 'चाह' किया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण में **तोरें** पाठ है और काशिराज-संस्करण में **तोरे** पाठ है। गहराई से अर्थ पर विचार किया जाय, तो **तोरें** और **तोरे** में अर्थ-भेद है। 'तोरें' में तृतीया विभक्ति का प्रत्यय है और 'तोरे' में सप्तमी का। **तोरें** का अर्थ है **तोड़ने से** और **तोरे** का अर्थ है 'तोड़ने पर'।

गीता प्रेस की प्रति के टीकाकार ने लिखा है :

'धनुष तोड़ने से ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)।'

यहाँ **चाँड़** या **चाड़** शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ विचारणीय है। वास्तव में, इसका मूल शब्द एक विशेषण के रूप में है और वह है **चण्ड**। **चण्ड, प्रचण्ड** शब्द 'उग्र' या 'बलवान्' के अर्थ में प्रचलित हैं। 'चण्ड' शब्द में 'अण्' प्रत्यय के योग से **चाण्ड** शब्द बनेगा, जिसका अर्थ है 'प्रचण्डता', 'बलवत्ता' अथवा 'वीरता'। इसी सं० **चाण्ड** से 'चाँड़' या **चाड़** का विकास हुआ है—सं० **चाण्ड** > **चाँड** > **चाँड़** >। 'तोरें धनुषु **चाँड़** नहिं सरई।' का अर्थ यह होगा :

'धनुष तोड़ने से बलवत्ता (वीरता) सिद्ध नहीं होती है। हमारे जीवित रहते हुए देखें राजकुमारी को कौन वरण करता है? तात्पर्य यह कि राम को अभी तो उपस्थित राजाओं से युद्ध करना पड़ेगा।'

(क) ९. जनकपुरवासियों के लिए तुलसीदासजी ने निम्नांकित अर्द्धाली में **जनकौरा** शब्द का प्रयोग किया है :

'कौसलपति गति सुनि **जनकौरा** ।
भे सब लोक सोक बस बौरा ।।'[2] (अयो० २७१।१)

---

१. मिला० **हारें** (बाल० २७३।७) = हारने से। **काटें** (लंका० २१।६) = काटने से।

२. गीता प्रेसवाली प्रति में यही पाठ है, लेकिन काशिराज-संस्करण में **लोक** के स्थान पर **लोग** पाठ है।

अर्थ : कौसलपति (राजा दशरथ) की मृत्यु का समाचार सुनकर सब जनकपुरवासी लोग शोक के वश में बावले हो गये, अर्थात् सुध-बुध भूल गये ।

जनकौरा का अर्थ 'जनकपुरवासी' कैसे हुआ ? यहाँ यही तो विचारणीय है । इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ ज्ञात होने पर ही तो सारस्वत जिज्ञासु के मन की कली खिल सकती है ।

पुर, अर्थात् नगर में रहनेवाले को **पौर** कहते हैं । यह संस्कृत-साहित्य का प्रचलित शब्द है । 'पौर' से प्राकृत भाषा में **पउर** का विकास हुआ और फिर **अउर** । **अउर** का सन्धीकृत रूप **और** हुआ । 'जनक' व्यक्तिवाचक शब्द होने के कारण ज्यों-का-त्यों बना रहा । **जनक** और **और** के योग से **जनकौर** शब्द बना, जो 'जनक के नगर के निवासी' के अर्थ में लोकभाषा में प्रचलित रहा । शब्द के रूप में तो परिवर्त्तन हो गया, किन्तु लोक ने अर्थ प्राचीन ही स्वीकार किया । मूल और विकास इस प्रकार है—सं० **जनक-पौर** > **जनक अउर** > **जनकौर** ।

(क) १०. बालकाण्ड (८१।३) में तुलसी ने 'वरान्वेषण' के अर्थ में एक लोक-शब्द **बरेखी** लिखा है । गुप्त-संस्करण और गीताप्रेस-संस्करण में इसे **बरेषी** के रूप में और काशिराज-संस्करण में **बरेखी** रूप में लिखा गया है । पार्वतीजी मुनीश्वरों से कहती हैं :

'जों तुम्हरें हठ हृदय बिसेषी ।
रहि न जाइ बिनु किएँ **बरेषी** ।।' (गुप्त० संस्क०, बाल० ८१।३)

बरेषी (बरेखी) तद्भव शब्द है, जो संस्कृत के **वरेक्षा** (वर + ईक्षा) से विकसित हुआ है—सं० **वरेक्षा** > **वरेक्खी** >[1] **बरेखी** (= वर देखना)

(क) ११. तुलसी ने 'हर्षित हुई' अर्थात् **हरसी** के अर्थ में निम्नांकित अर्द्धाली में **रहसी** शब्द का प्रयोग किया है :

'तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी ।
रहसी[2] चेरि घात जनु फाबी ।।' (अयो० १७।२)

अर्थ : जैसी होनहार है, वैसी ही मति फिर गई । दासी मानों अपना दाँव फबाकर (सफल बनाकर) प्रसन्न हुई ।

प्रश्न यह है कि **रहसी** का प्रयोग तुलसी ने 'प्रसन्न हुई' अर्थ में किस आधार पर किया है ? मूल बात यह है कि **रहसी** मूल क्रियापद नहीं है । क्रियापद तो **हरसी** (हरषी) है, जिसका अर्थ है 'प्रसन्न हुई' । वर्त्तमान प्रचलित भारतीय आर्यभाषाओं में और संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं, जो वर्ण-विपर्यय के सिद्धान्त पर बने हैं । पंजाबी का **काचू**, फा० **चाकू** से;

---

१. मध्यभारतीय आर्यभाषा-काल में प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल के आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द ईकारान्त बन गये थे । जैसे : सं० **वक्रा** > अप० **वंकी** = टेढ़ी ।

२. 'रानी **रहसी** देखि मुख' (सं० जगन्मोहन शर्मा, उस्मान-कृत चित्रावली, ना० प्र० सभा, ४।४६) ।

व्रजभाषा का **करसी** (=छोटा हल्का कण्डा) सं० **करीष** से और संस्कृत का **सिंह** अपने मूल शब्द **हिंस्र** से वर्ण-विपर्यय के सिद्धान्त पर ही निर्मित हुआ है। सं० हिंस्र > **हिंस** > **सिंह** के विकास-क्रम को देखकर वर्ण-विपर्यय के सिद्धान्त की अवगति अच्छी तरह हो जाती है कि 'ह्' और 'स्' किस प्रकार एक दूसरे के स्थान पर जा बैठे हैं और 'सिंह' का निर्माण कर चुके हैं। **हरसी** के 'ह्' और 'र्' ने भी अपने स्थानों को आपस में बदलकर **रहसी**[1] क्रियापद का निर्माण किया है। इसका प्रयोग अवधी के अन्य प्राचीन काव्यों में भी मिलता है।[2]

(क) १२. जब ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से राम-लक्षण को माँगते हैं, तब राजा ऋषि से कहते हैं :

'माँगहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्बस देउँ आजु **सहरोसा**॥' (बाल० २०८।३।)

टीकाकारों ने उक्त अर्द्धाली का अर्थ इस प्रकार किया है : 'हे मुनि ! आप पृथ्वी, गौ, धन और खजाना माँग लीजिए। मैं बड़े हर्ष के साथ आज अपना सर्वस्व दे दूँगा।'

ऊपर के इस अर्थ से प्रकट है कि टीकाकारों के मतानुसार **रोस** शब्द का अर्थ हर्ष है। किन्तु, **रोस** शब्द का अर्थ तो 'रोष', अर्थात् 'क्रोध' होता है, जैसा कि तुलसी ने 'रामचरितमानस' की निम्नांकित अर्द्धालियों में प्रयुक्त किया है :

'भएउ न नारद मन कछु रोषा।
कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥' (बाल० १२७।१)

× ×

'कहु तजि रोषु राम अपराधू।
सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥' (अयो० ३२।६)

इतना ही नहीं, निम्नांकित दोहे में दन्त्य 'स' के साथ भी **रोस** शब्द 'क्रोध' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। श्रीरामचन्द्रजी क्रुद्ध परशुराम से प्रार्थना करते हैं कि :

'प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु बिप्रबर **रोसु**।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालक हू नहिं दोसु॥' (बाल० २८१।)

जब उपर्युक्त तीन स्थलों पर तुलसी **रोस** का प्रयोग 'क्रोध' के अर्थ में कर रहे हैं, तब **सहरोसा** (बाल० २०८।३) का अर्थ 'हर्ष के साथ कैसे ? यदि 'सहर्ष' शब्द की कल्पना की जाय, तो 'सहर्ष' का विकास 'सह रोस' हो नहीं सकता, ध्वनि-परिवर्त्तन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल बैठता है।

कुछ कोशकारों और टीकाकारों ने **रोस** या **रोष** का अर्थ 'हर्ष' लिखा तो है, किन्तु उस अर्थ की आत्मा का साक्षात्कार नहीं कराया है।

---

१. इस शब्द की ओर मेरा ध्यान बन्धुवर डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल ने आकृष्ट कराया था।

२. दे० 'चित **रहसा** जानहुँ निधि पाई' (उस्मान-चित्रावली, ना० प्र० सभा, काशी, सन् १९१२ ई०, १३।१४; ६।२)।

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' के प्रेमी पाठकों को यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि कभी-कभी तुलसी काव्य-सर्जना के क्षणों में बुद्धि-व्यायाम कराने के लिए शब्द की रिडिल (पहेली) अपने पाठकों के लिए फेंक देते हैं। **भरनी** (बाल० ३१।६), **बनज** (अयो० ६०।५), **सहरोसा** (बाल० २०८।३) आदि ऐसे ही गूढ शब्द हैं, जिनका प्रयोग एक 'रिडिल' (गूढ पहेली) के रूप में किया गया है।

'मोरनी' के अर्थ में **भरनी** शब्द ग्रन्थों में बहुत कम मिलता है। **भरणी** अमरकोश में तो है ही नहीं। **वन** शब्द 'जल' के अर्थ में साहित्य में बहुत ही कम पाया जाता है। इसी **वन** शब्द से तुलसी ने **बनज** शब्द बनाया और 'कमल' के अर्थ में प्रयुक्त किया। संस्कृत-साहित्य में भी जल के अर्थ में **वन** शब्द का प्रयोग बहुत ही कम मिलेगा। अमरकोश में जल के पर्यायवाची नामों में एक अप्रचलित नाम 'वन' भी दिया गया है :

'आप: स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्।
पय: कीलालममृतं जीवनं भुवनं **वनम्**॥ (अमर० १।१०।३)

तुलसी का **रोस** शब्द भी पहेली के रूप में प्रयुक्त है। **सहरोसा** (बाल० २०८।३) के **रोस** का मूल संस्कृत का **मर्ष** शब्द है। **अमर्ष** का अर्थ 'क्रोध' है। इसके विलोम **मर्ष** का अर्थ हुआ 'हर्ष' या 'प्रसन्नता'। उक्त 'रोस' (बाल० २०८।३) का विकास संस्कृत-शब्द **मर्ष** से हुआ है। सं० **मर्ष** > **मरस** (वर्णविपर्यय से) > रमस > रवँस > रउँस > रोंस > रोस—यह विकास-क्रम सम्भव है। अतः, **सहरोस** का वही अर्थ है, जो 'सहमर्ष' का है। **सहमर्ष** का अर्थ है 'प्रसन्नतासहित', इसलिए उससे विकसित **सहरोस** का भी वही अर्थ होगा। काल-मार्ग पर इतनी लम्बी यात्रा करने पर संस्कृत का **सहमर्ष** तुलसी के 'रामचरितमानस' में **सहरोस**[1] के रूप को प्राप्त कर सका।

इतना ही नहीं, 'रामचरितमानस' में एक ही शब्द विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न अर्थों में भी पाया जाता है। जैसे : **'मन्द'** शब्द का प्रयोग **मूर्ख** (बाल० २८।११), **धीमी** (अर० ४०।८) और **बुरा** (सुन्दर० १०।-) अर्थ में मिलता है।

तुलसी ने 'मानस' में उपसर्गों का बड़ा सार्थक और सटीक प्रयोग किया है। **'लोचन'** का प्रयोग तो सभी पात्रों के नेत्रों के लिए किया है, किन्तु **बिलोचन** का प्रयोग उन उत्तम पात्रों के नेत्रों के लिए ही किया है, जो राम के प्रति स्नेही अथवा दयालु हैं। **बिलोचन** का प्रयोग ३१ बार हुआ है।

(ख) ध्वनि

ख १. रामचरितमानस के अध्ययन से पता चलता है कि तुलसी किसी मूल शब्द के प्रमुख वर्णों में परिवर्त्तन कर देते हैं। **समाज** मूल शब्द है, किन्तु इस शब्द को तुलसी कहीं **समाज** और कहीं **समाजा** और कहीं **समाजू** करके प्रयुक्त करते हैं। जैसे :

---

१. ब्रजक्षेत्र में एक शब्द 'सैंरोस' भी व्यवहार में आता है, जो कुछ-कुछ 'आवेश' या 'बिना विचारी' स्थिति के अर्थ में है। जैसे : 'बु सैंरोस मैं लट्ठु मारि गयौ।' = वह आवेश में लट्ठ मार गया।

'राजत राज **समाज** महुँ कोसलराज किसोर ।
सुन्दर स्यामल गौर तन, बिस्व बिलोचन चोर ।। (बाल० २४२।)

'सो बिलगाउ बिहाइ **समाजा** ।
न त मारे जैहहिं सब राजा ।। (बाल० २७१।५)

यदि कोई सज्जन यह तर्क उपस्थित करें कि 'राजा' का प्रास (तुकान्त) मिलाने के लिए तुलसी ने प्रथम चरण के अन्त में **समाज** का **समाजा** कर दिया है, तो हमारा कथन यह है कि निम्नांकित अर्द्धाली के **तीर्थराज** को क्यों **तीरथराजू** और उससे पहले **संत समाजू** लिखा गया ? मूल शब्द तो **तीर्थराज** और **संत-समाज** हैं :

'मुद मंगलमय संत समाजू ।
जो जग जंगम तीरथराजू ।। (बाल० २।७)

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि तुलसी के 'रामचरितमानस' में शब्दों के अन्त का यह स्वर-परिवर्त्तन मनमाना है या किसी भाषा-सिद्धान्त पर आधृत व्यवस्थित रूप में ? यहाँ हम इसी स्वर-परिवर्त्तन पर विचार करेंगे ।

हमारे भाषामर्मज्ञ पाठक यह तो अच्छी तरह समझते ही हैं कि 'प्रातिपदिक' और 'पद' में अन्तर होता है । **राम** प्रातिपदिक है और **रामः** पद । वाक्य की स्थिति में शब्द, अर्थात् प्रातिपदिक पद का रूप ग्रहण कर लेता है । 'रामः पठति' में 'रामः' पद है, वैसे अकेला स्वतन्त्र **राम** शब्द है, अर्थात् प्रातिपदिक है। इसी प्रकार, तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाषा-संरचना को देखकर यह कहा जा सकता है कि तुलसी प्रायः अकारान्त पुंलिंग शब्द को प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में उकारान्त कर देते हैं। जैसे : **केवट** को **केवटु** (अयो० १००।३), **जल** को **जलु** (अयो० १०१।२) । यह उकारान्तता पद की स्थिति में हुआ करती है, वैसे मूल शब्द तो अकारान्त ही होता है । इसी सिद्धान्त के आधार पर तुलसी **समाज** प्रातिपदिक (शब्द) को जब प्रथमान्त या द्वितीयान्त एकवचन में प्रयुक्त करेंगे, तब उसे भाषा की प्रकृति के अनुसार **समाजु** लिखेंगे । यदि यह पद ('समाजु' पद) चरण के अन्त में आयगा, तो छन्दोनिर्वाह के लिए उसे दीर्घ, अर्थात् **समाजू** कर देंगे । सारांश यह है कि तुलसी स्वर को उसकी जाति के अन्दर ही दीर्घता प्रदान करते हैं, अर्थात् पद के **अकार** को **आकार**, **इकार** को **ईकार** और **उकार** को **ऊकार** करने की ही प्रवृत्ति 'मानस' में मिलेगी । ऐसा कहीं न मिलेगा कि तुलसी ने उकारान्त पद को दीर्घता प्रदान करने में आकारान्त या ईकारान्त कर दिया हो ।

इसी सिद्धान्त पर **समाज**, **समाजा** और **समाजू** पदों की परीक्षा की जानी चाहिए ।

यदि अकारान्त पुंलिंग शब्द प्रथमा या द्वितीया विभक्ति को छोड़कर किसी अन्य विभक्ति में प्रयुक्त हुआ है, तो उसमें उकार नहीं होगा । अर्थात्, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण कारक की स्थिति में मूल अकारान्त शब्द वैसा ही बना रहेगा । उपर्युक्त दोहे (बाल० २४२) का **समाज** शब्द अधिकरणकारक के एकवचन में (**समाज महुँ**)

प्रयुक्त हुआ है, इसलिए **समाज** का **समाज** ही रहा। अर्थात्, अकारान्त का अकारान्त ही बना रहा। हाँ, चौपाई के किसी चरण के अन्त में **समाज** आता, तो छन्दो-निर्वाह के लिए तुलसी **समाजा** कर देते। बालकाण्ड (२७१।५) के चौपाई-चरण 'सो बिलगाउ बिहाइ समाजा'[1] में **समाजा** इसलिए कर दिया गया है कि वह चरणान्त पद का अन्तिम स्वर है और पंचमी विभक्ति, अर्थात् अपादानकारक का एकवचन है। अर्थ है :

'वह छोड़कर **समाज से** अलग हो जाय।'

अब बालकाण्ड (२।७) के 'मुद मंगलमय सन्त **समाजू**' के **समाजू** पद पर विचार करना चाहिए। वाक्य-संरचना इस प्रकार है : 'सन्त समाजु मुद मंगलमय (अहइ)।' अर्थात्, वाक्य-रचना में पद **समाजु** है, जो कर्त्ताकारक के एकवचन में है। मूल शब्द **समाज** प्रथमा के एकवचन में उकारान्त, अर्थात् **समाजु** हो ही जाना चाहिए। यदि यह **समाजु** चरण के आदि या मध्य में पड़ता, तो तुलसी उसे **समाजु**[2] ही रखते। चूँकि **समाजु का उ** चरणान्त के पद का अन्तिम स्वर है, इसलिए छन्दोनिर्वाह के लिए उसे दीर्घत्व प्रदान किया गया है, अर्थात् उकारान्त पद को ऊकारान्त किया गया है। इसके समर्थन में निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

'येहि[3] प्रतिपालउँ सब **परिवारू**।
नहि जानौं कछु और **कबारू**॥' (अयो० १००।७)

उपर्युक्त अर्द्धाली की वाक्य-संरचना के मूल पद **परिवारु** और **कबारु है**। चरणान्त पद के अन्तिम स्वर **उ** को छन्दोनिर्वाह के लिए **ऊ** में बदल दिया गया है।

जहाँ वाक्य-रचना के मूल पद में अन्तिम स्वर **इ** होता है, वहाँ तुलसी उसे **ई** में बदल देते हैं। निम्नांकित अर्द्धाली के मूल पद **कहइ** और **अहइ** में अन्तिम स्वर 'इ' है। **चरणान्त** पद के इस अन्तिम स्वर को तुलसी ने दीर्घ कर दिया है। अर्थात्, उक्त दोनों पदों को **कहई** और **अहई** रूप में लिखा गया है :

'चरन कमल रज कहुँ सबु **कहई**।
मानुष करनि मूरि कछु **अहई**॥' (अयो० १००।४)

यही बात निम्नांकित उद्धरणों के **भाँती, निहारी, परागा** और **धरी** में भी है। ये मूल पद **भाँति, निहारि, पराग** और **धरि** हैं, किन्तु चरणान्त में आने पर **भाँती, निहारी परागा** और **धरी** किये गये हैं :

'राम प्रबोधु कीन्ह बहु **भाँती**।' (अयो० ९९।५)

---

१. यह पद्धति उस्मान आदि सूफी कवियों की भाषा में भी मिलती है। चित्रावली में **चाह** को 'चाहा' (चित्रा० ११।१२६।६) किया गया है।

२. 'मानस' में 'समाजु' (अयो० २३।७) का प्रयोग 'सामग्री' के अर्थ में भी हुआ है।

३. काशिराज-संस्करण में ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ ध्वनियों के चिह्न हैं। उसमें **येहि** (अयो० १००।७) के ये को ह्रस्व ए से और **मोहि** के मो (सुंदर० २७।१) को ह्रस्व ओ से लिखा गया है।

'सादर[1] सुन्दर बदनु **निहारी**।' (अयो० ५२।६)

× ×

'बिनु रघुपति पद पदुम **परागा**।' (अयो० ९८।६)

× ×

'मसक समान रूप कपि **धरी**।
लंकहि चलेउ सुमिरि **नरहरी**॥' (सुन्दर० ४।१)

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि तुलसी चरणान्त पद के स्वर **अ** को **आ**, **इ** को **ई** और **उ** को **ऊ** कर देते हैं। स्वर की दीर्घता में वे जाति-बिरादरी का ध्यान रखते हैं। तात्पर्य यह कि वे अकारान्त को इकारान्त या ऊकारान्त नहीं करते। उनकी दीर्घता मूल पद के **अकार**, **इकार** और **उकार** से सम्बद्ध रहती है।

यहाँ पाठकों को यह भी समझ लेना चाहिए कि 'मानस' में प्रथमा या द्वितीया के एकवचन में सभी पुंलिग अकारान्त शब्दों को उकारान्त नहीं किया गया है। हाँ, इतनी बात जरूर मिलेगी कि जो पुंलिग अकारान्त शब्द उकारान्त रूप में मिलेगा, वह प्रयोग के अनुसार वाक्य-रचना में प्रथमा या द्वितीया के एकवचन में ही प्रयुक्त हुआ होगा और परसर्ग-रहित होगा। तात्पर्य यह कि **लखन** का प्रयोग प्रथमा या द्वितीया के एकवचन में **लखनु**[2] रूप में मिल सकता है और यदि **लखन** के तुरन्त पश्चात् कोई परसर्ग **सन** आदि आयगा, तो 'लखनु सन' नहीं होगा, अपितु **लखन सन** होगा। जैसे—'बरु तीर मारहुँ **लखनु**' : (अयो० १००। छन्द)। **अर्थ** : चाहे लक्ष्मण तीर मारें।

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत **लखन सन** रामु हृदयँ गुनि॥' (बाल० २३०।१)

अर्थ : कंकण, किंकिणी और नूपुरों की ध्वनि सुनकर राम हृदय में विचार करके लक्ष्मण से कहते हैं।

अकारान्त पुंलिग 'हाथ' का प्रयोग कर्त्ता (प्रथमा) या कर्म (द्वितीया) एकवचन के अर्थ में तो **हाथु** (बाल० २८०।१) और तृतीया से सप्तमी तक एकवचन के अर्थ में **हाथ** (किष्किं० ७।२५) किया है। यदि चरणान्त में 'हाथ' आया है, तो **हाथा** (किष्किं० ७।२५) भी कर दिया गया है।

ख २. छन्दोनिर्वाह के लिए तुलसी 'मानस' में ह्रस्व को दीर्घ; और दीर्घ स्वरान्त को ह्रस्व स्वरान्त भी कर देते हैं। निम्नांकित उद्धरणों में **मिल** को **मीला** और **गई** को **गइ** एवं **भई** को **भइ** रूप में प्रयुक्त किया गया है :

---

१. यहाँ 'सादर' का अर्थ है—लालसा-सहित। दे० आप्टे द्वारा सम्पादित 'संस्कृत-इँगलिश-डिक्शनरी'।

२. पुंलिग एकवचन में ऐसी उकारान्तता विद्यापति की पदावली में भी मिलती है—**कान्हु** (विद्या० पदा० १०।१२); **कानु** (विद्या० पदा० १६४।१२)।

'खेल गरुड़ जिमि अहिगन **मीला** ।'

(काशि० एवं गुप्त-सं०, लंका० ६६।१) ।

'सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ज्ञाति ।
भोजनु कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच **गइ** राति ।।'

(काशि० बाल० ३५४।—)

× ×

'जल संकोच बिकल **भइ** मीना ।' (किष्कि०, १६।८)

ख ३. तुलसी शुद्ध स्वर या स्वर रहित-शुद्ध व्यंजन को ही वर्ण मानते हैं । 'र्' और 'म्' उनके मत से वर्ण हैं। ऐसे शुद्ध वर्ण ही तो भाषाशास्त्र में मूल ध्वनियाँ माने गये हैं। तुलसी ने उसी दृष्टि से लिखा :

'एक छत्र एकु मुकुट मनि[1], सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन बिराजत दोउ ।।' (बाल० २०।—)

ख ४. खड़ीबोली में 'लिपटना' और 'लिवाना' सामान्य क्रियाएँ हैं, जिनकी धातुएँ क्रमशः √लिपट् और √लिवा हैं । तुलसी ने इनके इकार को अकार करके लिखा है :

'जनु जीवहि माया **लपटानी**' (किष्कि० १४।६)
'अबहि मातु मैं जाउँ **लवाई**' (सुन्दर० १६।३)

(ग) रूप

ग १. संज्ञारूप :

किसी संज्ञा शब्द को यदि हम एकवचन से बहुवचन में परिवर्त्तित करना चाहें, तो उसका बहुवचन दो प्रकार बनेगा—एक ऋजु रूप बहुवचन और दूसरा तिर्यक् रूप बहुवचन ।

बालक और **लड़का** का ऋजु रूप बहुवचन **बालक** और **लड़के** है । जैसे :

एकवचन में : १. **बालक** आता है, **लड़का** आता है ।
बहुवचन में : २. **बालक** आते हैं, **लड़के** आते हैं ।

यदि **बालक** और **लड़का** का तिर्यक् रूप बहुवचन बनायेंगे, तो **बालकों** और **लड़कों** बनेगा । जैसे :

एकवचन में : १. **बालक** को यहाँ बुलाओ । **लड़के** को यहाँ बुलाओ ।
बहुवचन में : २. **बालकों** को यहाँ बुलाओ । **लड़कों** को यहाँ बुलाओ ।

उदाहरणों से स्पष्ट है कि तिर्यक् अवस्था में संज्ञा पद के साथ कोई-न-कोई परसर्ग

---

१. 'म्' व्यंजन, लिपि में 'अनुस्वार' (बिन्दु) का रूप ले लेता है, इसीलिए उसे 'मणि' कहा है । अनुस्वार (बिन्दु) वास्तव में अर्द्ध मकार है । पाणिनि के मतानुसार 'हंस' का उच्चारण **हम्स** और 'संस्कृत' का उच्चारण **सम्स्कृत** है ।

अपना स्थान अवश्य रखता है। यह बात अलग है कि वह परसर्ग कहीं पर लुप्त हो; किन्तु उसका लोप भी तिर्यक् अवस्था में परिवर्त्तन अवश्य करेगा। जैसे :

'मैंने न **आँखों** देखा, न **कानों** सुना' वाक्य में **आँखों** और **कानों** तिर्यक् अवस्था के बहुवचनीय रूप हैं, भले ही इनके पश्चात् आनेवाला परसर्ग **से** लुप्त हो। यही स्थिति हमें 'रामचरितमानस' में भी मिलती है। संज्ञाओं के वचन दो अवस्थाओं में मिलते हैं :

१. ऋजु अवस्था में एकवचन, बहुवचन।

२. तिर्यक् अवस्था में एकवचन, बहुवचन।

ऋजु अवस्था में अकारान्त पुंलिंग एकवचन शब्द प्रायः उकारान्त हो जाते हैं। जैसे : **बचन** का **बचनु**। यही **बचन** ऋजु अवस्था के बहुवचन में **बचन** रूप में ही प्रयुक्त होता है। जैसे :

१. ऋजु अवस्था में एकवचनीय प्रयोग :

'हृदयँ सराहत **बचनु**[1] न आवा।' (बाल० २३०।५)

अर्थ : हृदय में प्रशंसा करते हैं। वचन नहीं निकलता है।

२. ऋजु अवस्था में बहुवचनीय प्रयोग :

'अइसेउ **बचन** कठोर सुनि जो न हृदउ बिलगान।' (अयो० ६७।)

अर्थ : ऐसे कठोर वचन सुनकर भी यदि हृदय विदीर्ण नहीं होता है।

जब पुंलिंग अकारान्त शब्द एकवचन में तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी या सप्तमी विभक्ति के अन्तर्गत प्रयुक्त होता है, तब अकारान्त ही रहता है, चाहे उसके पश्चात् कोई परसर्ग हो और चाहे वह परसर्ग लुप्त हो। जैसे :

१. तिर्यक् अवस्था में एकवचनीय प्रयोग

'कहत **लषन** सन रामु हृदयँ[2] गुनि।' (बाल० २३०।१)

अर्थ : राम हृदय में विचार कर **लक्ष्मण** से कहते हैं।

× × ×

'सीता **चरन** चोंच हति भागा।' (अर० १।७)

अर्थ : सीता के **चरण** में चोंच मारकर भागा।

उक्त दोनों उदाहरणों में आये हुए पद **लषन** और **चरन** क्रमशः **सन** परसर्ग और **महुँ**

---

१. मिला० 'कहूँ **कबितु** मन भयो **गियानू**।' —डॉ० माताप्रसाद गुप्त-सम्पादित 'चाँदायन' (दाऊद-कृत), प्रमाणिक प्रकाशन, आगरा, सन् १९६७ ई०, २।१८।१)।
'चला **लोरु** लइ आपन साथी'—(चाँदायन, ८।११३।१)।

२. यह अँकारान्तता सप्तमी एकवचन की सूचक है। दे० सुनावँ (गीताप्रेस, अयो० २०२।८) = सुन्दर नाव पर।

परसर्ग के कारण तिर्यक् एकवचनीय है। **चरन** के पश्चात् आनेवाला परसर्ग **महुँ** लुप्त है और **लखन** के पश्चात् का परसर्ग **सन** प्रत्यक्षतः उपस्थित है।

गीताप्रेस गोरखपुरवाले संस्करण को देखा जाय, तो उसमें ईकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन शब्द जब बहुवचन में आता है, तब ईंकारान्त हो जाता है। ऋजु रूप एकवचन **गली** ऋजु, रूप बहुव० **गलीं**। जैसे—'**गलीं** सकल अरगजाँ सिंचाईं।' (गीता प्रेस, बाल० ३४४।५) **गलीं** सप्तमी का एकवचन भी है। जैसे—**गलीं** (गीताप्रेस, अयो० ११।३) = **गली** में। इसी प्रकार पुंलिंग **जोगी** से बने हुए रूप **जोगीं** का अर्थ है **योगी द्वारा**। **जोगीं** तृतीया एकवचन है। जैसे : 'जोगीं' (गीता प्रेस, बाल० ३५०।६) = योगी द्वारा।

२. तिर्यक् अवस्था में बहुवचनीय प्रयोग

'**गर्भन्ह** के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।' (बाल० २७२।)
गर्भ + न्ह = गर्भन्ह (= गर्भों)

× ×

'**चरनन्हि** लागि हरषु अति तेही।' (= उत्तर० ७।१)
चरन + न्हि = चरनन्हि (चरणों में)

अकारान्त पुंलिग शब्द का तिर्यक् बहुवचन रूप—**न्ह** या **न्हि** प्रत्यय के योग से बनता है, जैसा कि **गर्भन्ह** और **चरनन्हि** के प्रयोगों से सिद्ध है।

(विशेष : अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द ऋजु अवस्था में बहुवचनीय रूप धारण करने पर 'मानस' में खड़ी बोली हिन्दी की भाँति एँकारान्त भी प्रयुक्त हुए हैं :

'मन भावती **असीसें** पाईं।' (बाल० ३०८।६)।
'**चौकें** भाँति अनेक पुराईं।' (बाल० २८८।७)
'कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं।' (बाल० २२५।८)
एकव० असीस, चौक, बात।
बहुव० असीसें, चौकें, बातें।

ह्रस्व स्वरान्त शब्द चाहे पुंलिग हो, चाहे स्त्रीलिंग, तिर्यक् बहुवचन में **न्ह** या **न्हि** प्रत्यय ही लगता है। जैसे **कबिन्ह**[1] (बाल० १४।४), **सासुन्ह** (उत्तर० ७।१)।

यदि पुंलिग या स्त्रीलिंग शब्द दीर्घस्वरान्त हो, तो तिर्यक् बहुवचन में **न्ह** या **न्हि** के योग से पूर्व मूल शब्द का अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है। जैसे :

पुं० **भ्राता** से **भ्रातन्ह** (उत्तर० २५।३)
पुं० **भाई** से **भाइन्ह** (बाल० २५१।२)

---

१. मिला० अँगारन्ह माहाँ—गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली (पदमावत ३५४।३)।

स्त्री० **बिधवा** से **बिधवन्ह** (उत्तर० ६६।५)

स्त्री० **पनही** से **पनहिन्ह**[1] । (अयो० २६२।५)

उपर्युक्त उदाहरणों के बहुवचनीय प्रत्यय —न्ह से पूर्व का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो गया है । **भ्राता** के **भ्रात** में न्ह और **बिधवा** के **बिधव** में न्ह का योग हुआ है ।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अकारान्त शब्द का तिर्यक् बहुवचन 'मानस' में दो रूपों में मिलता है : (१) **अनि/—नि** प्रत्ययान्त (२) **अन्हि/—न्हि** प्रत्ययान्त। जैसे : **कमलनि** (अयो० ११५।८), **कमलन्हि** (लंका० दो० २२।-) । इकारान्त या ईकारान्त शब्दों का तिर्यक् बहुवचन रूप प्रायः न्ह प्रत्ययान्त ही होता है। जैसे : **कबिन्ह**[2] (बाल० १४।४), **सखिन्ह** (बाल० २२८।५) ।

विशेष : यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'रामचरितमानस' में संज्ञा पद संश्लिष्ट अवस्था में भी मिलते हैं और विश्लिष्ट अवस्था में भी । जैसे : १. संश्लिष्टावस्था—हृदयँ[3] (बाल० ११।६) = हृदय में । २. विश्लिष्टावस्था—**हृदय माँझ** (किष्कि० ८।-) = हृदय में ।)

तूँ या तैं का बहुवचन :

जिस प्रकार 'मानस' में, **'मैं'** उत्तमपुरुष की प्रथमा और तृतीया विभक्ति के एकवचन में मिलता है, उसी प्रकार 'तैं' की भी स्थिति है। मैं (किष्कि० ६।६), **मैं** (किष्कि० ८।४) । सं० **मया**>**मइँ**>**मैं** (प्रथमा, तृतीया) ।

मध्यमपुरुषीय एकवचन में पुरुषवाचक सर्वनाम **तूँ** या **तैं** के प्रयोग :

'को **तूँ** अहसि सत्य कहु मोही ।' (अयो० १६२।७)

अर्थ : तू कौन है ? मुझसे सत्य कह ।

'मन तन बचन भगत **तैं** मोरा ' (बाल० १६८।३)

अर्थ : तू मन, शरीर और वाणी से मेरा भक्त है ।

'**तैं**[4] मम प्रिय लछिमन तें दूना ।' (किष्कि० ३।७)

अर्थ : तू लक्ष्मण से मेरा दूना प्रिय है ।

तूँ या **तैं** का बहुवचन 'मानस' में **तुम्ह** मिलता है :

'को **तुम्ह** स्यामल गौर सरीरा ।' (किष्कि० १।७)

अर्थ : साँवले और गोरे शरीर के तुम कौन हो ?

एकवचन	**बहुवचन**
१. **तूँ** (अयो० १६२।७)	१. **तुम्ह** (किष्कि० १।७,
तैं (किष्कि० ३।७)	उत्तर० २।७)
अयो० **१६१।८**)	

---

१. परसर्ग अथवा पूर्वसर्ग की स्थिति में तिर्यक् रूप बहुवचन **'न्ह'** के योग से बन जाता है। जैसे : **बिनु** पनहिन्ह (अयो० २६२।५) । मिला० **घुँघचिन्ह** (गुप्त, जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत, ३५६।३) ।

२. **'न्ह'** भोजपुरी बोली में भी बहुवचनसूचक है ।

३. मिला० गियँ (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत, ३५१।७) = ग्रीवा में, गर्दन में ।

४. मिला० **तैं** (सूरसागर ना० प्र० सभा, १०।३२५) = तू। 'महरि **तैं** बड़ी कृपन है माई।' (सूर० १०।३२५)।

तैं(तइँ) का प्रयोग तृतीया के एकवचन का भी सूचक है। तैं=तेरे द्वारा, तूने। जैसे :

'जानब **तैं** सबही कर भेदा।' (उत्तर० ८५।८)

अर्थ : तेरे द्वारा सभी का भेद जाना जायगा।

'**तइँ**[1] पालउ सींचा।'(अयो० १६१।८)

अर्थ : तूने पल्लव सींचा। अर्थात्, तेरे द्वारा पल्लव सींचा गया।

सं० त्वया सर्वस्यैव भेदः ज्ञातव्यः=तैं (तइँ) सब ही कर भेद जानब। सं० त्वया= तइँ, तैं। युष्माभिः=तुम्ह।

तैं (उत्तर० ८५।८), **तुम्ह** (अयो० ६२।३)।

तैं (प्रथमा, तृतीया)।

द्वितीया विभक्ति और प्रत्यय :

'रामचरितमानस' में द्वितीया विभक्ति के एक वचन का –हि प्रत्यय सामान्यतया पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के साथ इस रूप में पाया जाता है :

पुंलिंग

जग+हि=जगहि (उत्तर० ७२।१)
मुनि+हि=मुनिहि (बाल० २१७।६)
ससी+हि=ससिहि (बाल० २३२।६)
प्रभु+हि=प्रभुहि (बाल० २१७।५)
ते+हि=तेहि (किष्कि० ४।३)

विशेष : 'मानस' में हि प्रत्यय सप्तमी विभक्ति का भी सूचक है—**मनहि**[2] (काशि०, बाल० २१८।२)=मन में। गुप्त-संस्क० में द्वितीया विभक्ति में **हिं** भी प्रत्यय मिलता है : 'पुरुष त्यागि सक नारिहिं' (उत्तर० ११५।-)।

स्त्रीलिंग

सीता+हि=सीतहि (अर० २६।१६)
जानकी+हि=जानकिहि (बाल० २५२।७)
बधू+हि=बधुहि (अयो० ६७।७)

विशेष : दीर्घस्वरान्त शब्द **हि** के योग से ह्रस्वस्वरान्त हो जाता है। **सीता** से **सीत** बना, तब **हि** लगा है। **सीता+हि=सीतहि**।

---

१. **तैं** (सूरसागर ना० प्र० सभा, १०।३२५)=तेरे द्वारा। '**तैं** बहुतै निधि पाई।' (सूर० १०।३२५)=तेरे द्वारा बहुत ही निधि प्राप्त की गई।

२. मिला० अप० **कलिहि** (हैमव्या० ८।४।३४१।३)=कलियुग में। **मनहि** (काशि०, बाल० २१८।२)= मन में।

तृतीया बिभक्ति और प्रत्यय

अकारान्त पुंलिंग शब्दों में तृतीया के एकवचन में प्रायः –एँ[1] तथा –हिं प्रत्यय लगते हैं :

०. हार + एँ = हारें (बाल० २७३।७) (= पराजय से)

१. दाह + एँ = दाहें (अयो० २०५।५) (= जलन से)

२. सुभाय + एँ = सुभायें—सुभाएँ[2] (बाल० २५४।८) (= स्वभाव से)

३. सयन + हिं[3] = सयनहिं (बाल० २५४।४) (= इशारों से)

४. ते + हिं = तेहिं[4] (बाल० २७६।४) (= उसके द्वारा)

ईकारान्त पुंलिंग शब्द तृतीया विभक्ति के एकवचन में ईंकारान्त भी हो जाता है। जैसे : तुलसीं (गीताप्रेस, बाल० ३६१। छन्द) = तुलसी द्वारा।

'रामचरितमानस' में विशेष्य के साथ आनेवाले विशेषण पदों में भी तृतीया का प्रत्यय –एँ लगा हुआ मिलता है :

१. कठोरें कुठार — विशेषण—कठोरें (बाल० २७५।८) = कठोर + एँ
सं० कठोरेण = अप० कठोरें = रामच० कठोरें।)

२. निसोतें सनेह[5] — विशेषण—'निसोतें' (बाल० २८।११) = निसोत + –एँ

३. बिसेषें सनेह — विशेषण—'बिसेषें' (बाल० २१।६) = बिसेष + –एँ

ऊपर लिखे **कठोरें कुठार** आदि विशेषण-विशेष्य पदों में विशेषण-पद तो विभक्तियुक्त है; किन्तु विशेष्यों में बिभक्तियाँ लुप्त हैं। अर्थ इस तरह होगा :

१. कठोरें कुठार = कठोर कुठार से।

२. निसोतें सनेह = शुद्ध स्नेह से।

---

१. मिला० **'बिरहें'** (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत, ३६५।२) = बिरह + -एँ।

२. धातु में –एँ प्रत्यय के योग से भी तृतीया विभक्तिसूचक रूप बन जाता है। जैसे : लाग् + एँ = **लागें** (किष्किं० ६।१) = लगने से।

३. सयन् + अहिं = सयनहिं—ऐसा विश्लेषण भी किया जा सकता है। अप० **गुणहिं** (हैमव्या० ८।४।३३५।१) = गुणों से। **गुणहिं** (हैमव्या० ८।४।३४७।१ = गुणों में।

४. **तेहिं** सर (गीता प्रेस, किष्किं० १८।५) = उस बाण से।
तेहि सरु (काशि०, किष्किं० १८।५) = उस बाण से।

तेहि (गीता प्रेस, अयो० १६४।२) = उसको।
तेहि (काशि० अयो० १६३।२) = उसको।

५. अपभ्रंश-भाषा में –एँ, –ए प्रत्यय तृतीया और सप्तमी के सूचक थे। सरह के दोहाकोश में **धूमें** (सं० धूमेन) तृतीया विभक्ति में; और **दिसें** (सं० दिशि) सप्तमी विभक्ति में आये हैं। इसी तरह अप० **कज्जे** < सं० **कार्येण**; अप० **झाणे** < **ध्याने**।

३. बिसेषें सनेह = विशेष स्नेह से[1] ।

ग. २. सर्वनाम रूप :

ग. २. १. ताहि और तेहि सर्वनाम :

सर्वनामों में एक भेद पुरुषवाचक सर्वनाम का है और दूसरा निश्चयबाचक सर्वनाम का । पुरुषसूचक **वह** एवं **उसे** को अन्यपुरुषीय पुरुषवाचक सर्वनाम कहेंगे और जो **वह** या **उसे** किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को व्यक्त करेगा, वह निश्चयवाचक सर्वनाम में गिना जायगा। परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में कर्मकारक एकवचन की स्थिति में अन्यपुरुषीय सर्वनाम और निश्चयवाचक सर्वनाम **उसे** ही होता है । किन्तु, तुलसी के 'रामचरितमानस' में ऐसी बात नहीं है । वहाँ अन्यपुरुषीय सर्वनाम **ताहि** और निश्चयवाचक सर्वनाम **तेहि** है । तुलसी जहाँ **ताहि** लिखेंगे, वहाँ उनका मन्तव्य किसी स्त्री या पुरुष से ही होगा । यदि **तेहि** का प्रयोग होगा, तो वहाँ वस्तु भी हो सकती है और व्यक्ति भी।

ग. २. १. १ 'ताहि' का प्रयोग और अर्थ :

'जौं बहोरि कोउ पूछन आवा ।
सर निन्दा करि **ताहि** बुझावा ।।' (बाल० ३९।४)

अर्थ : यदि फिर कोई पूछने आता है, तो तालाब की निन्दा करके **उसे** (उस व्यक्ति को) समझाता है ।

× × ×

'पंच कहें सिव सती बिबाही ।
पुनि अवडेरि मराएन्हि **ताही** ।।' (बाल० ७९।८)

अर्थ : पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया और फिर **उसे** (उस सती को) त्यागकर मरवा डाला ।

× × ×

'बाली **ताहि** मारि गृह आवा ।' (किष्कि० ६।१०)

अर्थ : बाली **उसे** (उस व्यक्ति को) मारकर घर आया ।

× × ×

'पिय तुम्ह **ताहि** जितब[2] संग्रामा ।' (लंका० ३६।३)

अर्थ : मन्दोदरी रावण से कहती है कि हे प्रिय ! तुम उसे (उस व्यक्ति को) संग्राम में जीतोगे ?

---

१. –एँ विभक्ति-प्रत्यय सप्तमी के एक वचन का भी सूचक है। जैसे: **कवनें अवसर**। (गीताप्रेस, अयो० २९।-) = किस अवसर पर। **माथें** (गीताप्रेस, अयो० २९।७) = माथे पर। गुप्त-संस्क० और काशिराज-संस्क० **माथे** = माथ + ए (अयो० २९।७) = माथे पर। क्रिया में भी आता है—**काढ़े** (अयो० ७०।३) = निकालने पर।

२. भविष्यत्काल के मध्यमपुरुष में **–अब** प्रत्यान्त तिङन्तीय प्रयोग सम्भवतः तुलसी के समय में होता होगा।

विशेष : '**तुम्ह** ताहि **संग्राम** जितब' का अर्थ व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से इस प्रकार भी सम्भव है : '**तुम्हारे द्वारा उससे संग्राम जीता जायगा ?**'

ऐसी दशा में **जितब** कर्मवाच्य की कृदन्त-क्रिया भी मानी जा सकती है ।

× × ×

'**ताहि** देइ गति राम उदारा ।' (अर० ३४।५)

अर्थ : उदार राम **उसे** (उस व्यक्ति को) गति देकर ।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि **ताहि** सर्वनाम किसी व्यक्ति के लिए ही प्रयुक्त हुआ है ।

(**विशेष** : यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए—**काहि** (बाल० २५२।१) = किसको । **केहि** (अयो० २२८।१) = किसको । **केहि** (अयो० १७४।५) = किससे । **काहि** का प्रयोग सजीव के ही लिए; किन्तु **केहि** का सजीव तथा निर्जीव दोनों के लिए होता है ।)

ग. २. १. २ 'तेहि' का प्रयोग और अर्थ :

'दीन जानि **तेहि** अभय करीजै ।' (किष्कि० ४।३)

अर्थ : दीन समझकर उसे (उस व्यक्ति को) अभय कर दीजिए ।

'सुरसरि जल कृत बारुनि जाना । कबहुँ न सन्त करहिं **तेहि** पाना । (बाल० ७०।१)

अर्थ : सन्त जानते हैं कि शराब गंगाजल से बनी हुई है, तो भी **उसे** (उस वस्तु को = शराब को) पीते नहीं हैं ।

'मागा राम तुरत **तेहि**[1] दीन्हा ।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ।।' (काशिराज०, किष्कि० ५।६)

अर्थ : राम ने माँगा, तो सुग्रीव ने **उसे** (उस वस्त्र को) तुरन्त दिया अथवा उसके द्वारा तुरन्त दिया गया । राम ने उस पट को हृदय से लगाकर अत्यन्त दुःख प्रकट किया ।

उक्त दोनों उदाहरणों से व्यक्त है कि **तेहि** व्यक्तिवाची भी है और वस्तुवाची भी । **तेहि** या **तेहिं** का प्रयोग तृतीया विभक्ति में भी मिलता है—**तेहि करि** (बाल० २।२) = उससे करके । **तेहि करि** (काशि०, बाल० २।२) = उससे करके । **तेहिं करि** (गीता प्रेस, बाल० २।२) = उससे करके । (**तेहि**—द्वितीया एवं तृतीया । तेहिं = तृतीया) ।

विशेष : **तेहि** विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है—**तेहि** अवसर (बाल० २६८।२) । '**तेहि** बन निकट दसानन गएऊ ।' (अर० २७।१) ।

ग. ३ विशेषण रूप :

ग. ३. १ परिवर्त्तनशील एवं अपरिवर्त्तनशील विशेषण :

'रामचरितमानस' में विशेषण पद दोनों प्रकार के मिलते हैं : १. परिवर्त्तनशील विशेषण । २. अपरिवर्त्तनशील विशेषण ।

---

१. गीताप्रेस-संस्करण में 'तेहिं' पाठ है । 'तेहिं' का अर्थ है—'उसके द्वारा' । लक्खेहिं (हैमव्या० ८।४।३३५।१ = लाखों से । अप० **गुणेंहि** (हैमव्या० ८।४।३३५।१) = गुणों से ।

ग. ३, १, १ परिवर्त्तनशील विशेषण :

ये अपने विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार अपना लिंग-वचन रखते हैं।

परिवर्त्तनशील विशेषण :

'**सीतल** सुगंध सुमंद मारुत।' (बाल० ८६।छन्द)

अर्थ : शीतल, सुगन्ध, सुमन्द वायु।

'मध्य बाग सरु सोह सुहावा।' (बाल० २२७।७)

अर्थ : सुन्दर बाग के मध्य तालाब शोभा प्राप्त करता है।

विशेषण	विशेष्य
सीतल (पुं० एकव०)	**मारुत** (पुं० एकव०)
सुहावा (पुं० एकव०)	**बाग** (पुं० एकव०)

नई कीरति (गीता प्रेस, बाल० ३२४। छन्द ४)

नई नाव (गीता प्रेस, अयो० २०२।८) नई बहुव० विशेषण।

'कुस साँथरी निहारि **सुहाई**।' (अयो० १९९।१)

अर्थ : सुन्दर कुश-साथरी देखकर

सीतलि छाती (अयो० ६९।५)

विशेषण	विशेष्य
सीतलि[1] (स्त्री० एकव०)	**छाती** (स्त्री० एकव०)
सुहाई (स्त्री० एक व०)	कुस **साँथरी** (स्त्री०, एक व०)

'जामवंत के वचन **सुहाए**। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।' (सुन्दर० १।१)

अर्थ : जामवन्त के वचन सुनकर हनुमान् के हृदय को बहुत भाये।

'पीत **चौतनीं** सिरन्हि **सुहाईं**।' (बाल० २४३।७)

अर्थ : सिरों पर सुन्दर पीली चौकोनी टोपियाँ हैं।

विशेषण	विशेष्य
१. **सुहाए** (पुं०, बहुवचन)	१. **बचन** (पुं०, बहुवचन)
२. **सुहाईं** (स्त्री०, बहुवचन)	२. **चौतनीं** (स्त्री०, बहुवचन[2])

ग. ३. १. २. अपरिवर्त्तनशील विशेषण :

अपरिवर्त्तनशील विशेषण अपने विशेष्य के लिंग-वचन का प्रभाव नहीं मानते। वे एक-से ही रहते हैं, चाहे उनका विशेष्य पुंलिंग में हो, चाहे स्त्रीलिंग में।

---

१. स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ पुंलिंग विशेषण तो 'रामचरितमानस' में मिलता है—**सीतल** सिख (अयो० ६४।२)।

२. सुहावा, सुहाई, सुहाए, सुहाईं प्रयोगों से सिद्ध है कि आकारान्त विशेषण परिवर्त्तनशील हैं।

निम्नांकित उदाहरणों में **सुभग** विशेषण अक्षुण्ण है। यह अकारान्त है (उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनान्त भी)

'**सुभग** सोन सरसीरुह लोचन।' (बाल० २१६।६)

अर्थ : लाल कमल के समान सुन्दर (सुभग) नेत्र हैं।

विशेषण	**विशेष्य**
सुभग (पुं०, बहुवचन)	**लोचन** (पुं०, बहुवचन)

'संग सखीं सब **सुभग** सयानीं।' (बाल० २२८।३)

अर्थ : साथ में सब सुन्दर (सुभग) चतुर सखियाँ हैं।

विशेषण	**विशेष्य**
सुभग (स्त्री०, बहुवचन)	**सखीं** (स्त्री०, बहुवचन)

उदाहरणों से स्पष्ट है कि **सुभग** विशेषण पर लिंग-वचन का प्रभाव नहीं। यह एकरूप ही रहा है।

ग. ४ शब्द और लिंग :

ग. ४. १ 'मनोरथ' शब्द का लिंग :

'रामचरितमानस' में 'मनोरथ' शब्द का प्रयोग पुंलिंग में भी हुआ है और स्त्रीलिंग में भी। ऐसे ही कुछ और भी शब्द हैं, जिनके लिंग-प्रयोग में वैभिन्न्य है।

ग. ४. १. १ 'मनोरथ' शब्द का पुंलिंग प्रयोग :

'मोर **मनोरथु**[१] जानहु नीकें।' (बाल० २३६।३)

अर्थ : मेरा मनोरथ तुम अच्छी तरह जानती हो।

'जो बिधि पुरब **मनोरथु** काली।' (काशि० अयो० २३।३)

अर्थ : यदि विधाता कल अभिलाषा पूर्ण करता है।

'सुफल **मनोरथ** होहुँ तुम्हारे।' (बाल० २३७।४)

अर्थ : तुम्हारे मनोरथ सुफल हों।

ग. ४. १. २ 'मनोरथ' शब्द का स्त्रीलिंग-प्रयोग :

'मातु **मनोरथ** पुरउबि मोरी।' (अयो० १०३।२)

---

१. श्रीकेलॉग ने अपनी पुस्तक 'ग्रामर ऑव हिन्दी लैंग्वेज' में 'मनोरथु' जैसे पुंलिंग उकारान्त पदों को शब्द माना है। वह लिखते हैं कि वे संज्ञा शब्द, जो उच्च हिन्दी में अकारान्त होते हैं, रामायण की भाषा में उकारान्त मिलते हैं; जैसे सिर = सिरु। सर = सरु। वास्तव में, केलॉग महोदय इस तथ्य को ठीक न समझ सके। ये उकारान्त-स्थिति में पद हैं; शब्द नहीं; और यह उकार प्रथमा और द्वितीया के एकवचन का सूचक है।

अर्थ : हे गंगा माता ! मेरी अभिलाषा आपके द्वारा पूर्ण की जाय ।

'होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु **मनोरथ** मोरि ।' (बाल० १४।-)

अर्थ : प्रसन्न होकर मेरी सम्पूर्ण मंजु अभिलाषाओं को पूर्ण करो ।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि तुलसी के 'मानस' में **मनोरथ** के लिंग-प्रयोग में एकरूपता नहीं है । यदि 'मानस' के उक्त पाठ ठीक हैं और तुलसी के ही पाठ हैं, तो निश्चित रूप से यह निर्णय किया जा सकता है कि तुलसी 'मनोरथ' को दोनों लिंगों में ठीक मानते हैं ।

पद	**लिंग**
मोर मनोरथु	एकवचन, पुंलिंग (बाल० २३६।३)
तुम्हारे मनोरथ	बहुवचन, पुंलिग (बाल० २३७।४)
मोरि मनोरथ	एकवचन, स्त्रीलिंग (बाल० १४।-)
मोरी मनोरथ	एकवचन, स्त्रीलिंग (अयो० १०३।२)

विशेष : तुलसी ने **मीन** को पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग; और **मीना** को स्त्रीलिंग ही माना है :

'**मीनु**[१] दीनु जनु जल तें काढ़े ।' (अयो० ७०।३)

'जल संकोच बिकल भइ **मीना** ।' (किष्कि० १६।८)

'माँजहि खाइ **मीन** जनु माँपी । (काशि० अयो० ५४।४)

'मानस' में **उपाय** शब्द पुंलिंग और **उपाई** स्त्रीलिंग-रूप में प्रयुक्त है ।

जैसे मोर **उपाया** (काशिराज०, उत्तर०८७।७), कीन्हि **उपाई** (काशि० लंका० ६२।२)।

ग. ५ परसर्ग :

ग. ५. १ 'कर', 'कै', और 'कैं' परसर्ग :

'रामचरितमानस' में सम्बन्धसूचक परसर्ग **कर** का प्रयोग पुंल्लिग में और **कै** का प्रयोग स्त्रीलिंग में मिलता है :

१. 'कर' का प्रयोग :

'**ताकर** नाम भरत अस होई ।' (बाल० १९७।१)

अर्थ : उसका नाम भरत होगा ।

२. 'कै' का प्रयोग :

'मेली कंठ सुमन **कै**[२] माला ।' (किष्कि० ८।७)

---

१. यहाँ तुलसी संस्कृत के लिंग (मीन—पुं०) का अनुसरण कर रहे हैं ।

२. मिला० चात्रिक **कै** भाखा (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत ३४२।७) । वास्तव में **कर, कै** आदि परसर्ग नहीं हैं । परसर्ग तो लिंग-वचन के प्रभाव से दूर रहता है । परम्परागत रूप में हमने इसका ढीला-सा प्रयोग कर दिया है । इसके लिए वास्तव में विशेषणीय प्रत्यय नाम देना अधिक वैज्ञानिक है ।

अर्थ : फूलों **की** माला गले में डाली गई ।

के का प्रयोग तिर्यक् अवस्था का सूचक है, अर्थात् इसके पश्चात् आनेवाला संज्ञा-पद तिर्यक् अवस्था में रहता है ।

'एक रचै जग गुन बस **जाकें** ।' (अर० १५।६)

अर्थ : एक माया, जिसके वश में गुण है, जग रचती है ।

ग. ६ क्रियारूप :

ग ६. १

बरषहिं (सकर्मक क्रिया), **बरषहिं** (अकर्मक क्रिया) ।

तुलसी के 'रामचरितमानस' में √बरष् धातु का प्रयोग सकर्मक तथा अकर्मक रूप में मिलता है :

१. सकर्मक रूप में :

'सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना ।
बरषहिं सुमन बजाइ निसाना ।।' (बाल० ३१४।१)

अर्थ : देवताओं ने मंगलमय अवसर जाना । वे नगाड़े बजाकर फूल बरसाते हैं ।

२. अकर्मक रूप में :

'**बरषहिं**[1] जलद भूमि नियराए :' (किष्किं० १४।३)

अर्थ : बादल पृथ्वी के पास आकर बरसते हैं ।

कर्त्ता	**कर्म**	**सभेद क्रियापद**	**अर्थ**
सुर	सुमन	सकर्मक, बरषहिं (बाल० ३१४।१)	=बरसाते हैं
जलद	—	अकर्मक, बरषहिं (किष्किं० १४।३)	=बरसते हैं

विशेष : √बरिस् धातु का प्रयोग सकर्मक क्रिया के रूप में ही मिलता है ।[2]

ग. ६. २ 'बोल्' धातु का कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य प्रयोग :

कर्तृवाच्य की क्रिया कर्त्ता के लिंग-वचन का अनुसरण करती है और कर्मवाच्य की क्रिया कर्म के लिंग-वचन के अनुसार आती है ।

१. कर्तृवाच्य में प्रयोग :

'तब **बोला तापस** बगध्यानी ।' (बाल० १६२।६)

अर्थ : तब बगलाध्यानी तापस **बोला** ।

---

१. मिला० कुररहिं (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत, ३४७।६) = कुरलते हैं, बोलते हैं । उदाहरण : 'सारस कुररहिं खँजन देखाए' = सारस कुरलते हैं, खंजन दिखाई दिये) ।

२. 'सुर सराहि तेहि **बरिसहिं** फूला' (अयोध्या १६४।२); (बरिसहिं = बरसाते हैं) ।

कर्त्ता **तापस** पुंलिंग, एकवचन में है, अतः **बोला** क्रिया भी उसके अनुसार पुंलिंग, एकवचन में है ।

'**बोली** मधुर वचन **महतारी**[1] ।' (अयो० ५२।६)

अर्थ : माता मधुर वचन **बोली** ।

यहाँ **बोली** क्रिया स्त्रीलिंग, एकवचन में इसीलिए है कि उसका कर्त्ता **महतारी** स्त्रीलिंग, एकवचन में है ।

२. कर्मवाच्य में प्रयोग

'मरम **बचन** जब सीता **बोला**[2] ।' (अर० २८।५)

अर्थ : जब सीता ने मर्म वचन **बोला** ।

यहाँ **बोला** क्रिया पुंलिंग, एकवचन में इसीलिए है कि उसका कर्म **बचन** पुंलिंग, एकवचन में है ।

विशेष : मानस में **बोला** संज्ञा शब्द भी है, जो **बोल** के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

'अति प्रिय मधुर तोतरे **बोला** ।' (बाल० १९९।९)
'चिबुक अधर सुन्दर मृदु **बोला** ।' (बाल० २४३।४)

'**बुलाने से**' के अर्थ में भी **बोलें**[3] का प्रयोग तुलसी ने किया है । (बाल० ६२।४)

ग. ६. ३ 'मारहु' और 'मारहुँ' क्रियापद :

परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में **आओ, जाओ, उठो, बैठो, मारो, पीटो** आदि वर्त्तमान काल में आज्ञादि अर्थ की मध्यमपुरुषीय बहुवचन की क्रियाएँ हैं । स्वरान्त धातुओं में—**ओ** प्रत्यय पृथक् से जुड़ा रहता है और व्यंजनान्त धातुओं में वह अन्तिम व्यंजन के साथ संश्लिष्ट हो जाता है । जैसे :

धातु		**प्रत्यय**		**आज्ञादि अर्थ की क्रिया**	
आ	+	ओ	=	आओ	(= तुम आओ)
जा	+	ओ	=	जाओ	(= तुम जाओ)
बैठ्	+	ओ	=	बैठो	(= तुम बैठो)
मार्	+	ओ	=	मारो	(= तुम मारो)

---

१. मिला० कर्त्तृवाच्य स्त्रीलिंग भूतकालीन क्रिया—'रंगभूमि जब **सिय पगुधारी** ।' (गीताप्रेस, बाल० २४८।४)

२. मिला०—कर्मवाच्य पुंलिंग भूतकालीन क्रिया-'जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह **धारा**' । (अयो० १३६।१)

३. मिला० 'आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ।' (लंका० १९।२) । यहाँ **बोलि** का अर्थ है 'बुलाकर' ।

'रामचरितमानस' की भाषा में भी ऐसी आज्ञादि अर्थ-सूचक क्रियाएँ पाई जाती हैं। वहाँ स्वरान्त धातुओं में –हु और व्यंजनान्त धातुओं में –अहु प्रत्यय का योग रहता है। जैसे :

धातु		**प्रत्यय**		**आज्ञादि अर्थसूचक क्रिया**	
जा	+	हु	=	जाहु (अर० २८।३)	= तुम जाओ।
ले	+	हु	=	लेहु[1] (अयो० २८।३)	= तुम लो।
सुन्	+	अहु	=	सुनहु (अर० २७।४)	= तुम सुनो।
आन्	+	अहु	=	आनहु (अर० २७।५)	= तुम लाओ।
मार्	+	अहु	=	मारहु (अर० १८।९)	= तुम मारो।

विशेष : रिश्ते में छोटा हो या निम्नस्तरीय जाति का व्यक्ति हो, तो आज्ञादि अर्थ में हि प्रत्यय आता है। जैसे : 'लेहि उतराई' (अयो० १०२।४) = उतराई ले।

खरदूषण की सेना के कुछ राक्षस राम-लक्ष्मण को देखकर कहते हैं :

'धरि मारहु त्रिय **लेहु** छोड़ाई ।।' (अर० १८।९)

अर्थ : पकड़कर **मारो** और स्त्री को **छुड़ा लो**।

परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में परोक्ष विधि में अन्यपुरुषीय बहुवचन की क्रियाएँ **जाएँ, सोएँ, उठें, बैठें, मारें** आदि बनती हैं। इनमें एँ प्रत्यय का योग रहता है। कुछ लोग जावें, सोवें, उठें, बैठें, मारें भी बोलते हैं और लिखते हैं। विश्लेषण :

धातु		**प्रत्यय**		**परोक्ष विधि (इच्छादि अर्थ) भविष्यत्काल**	
जा	+	एँ	=	जाएँ	(वे जाएँ)
मार्	+	एँ	=	मारें	(वे मारें)

इसी परोक्षविधि (इच्छादि अर्थ) में अन्यपुरुषीय बहुवचन की क्रियाएँ 'रामचरितमानस' में अहुँ-प्रत्ययान्त पाई जाती हैं। स्वरान्त धातुओं में 'व्' श्रुति का आगम भी हो जाता है। जैसे :

धातु		**प्रत्यय**		**परोक्ष विधि (इच्छादि अर्थ) भविष्यत्काल**	
सो	+	व्, अहुँ	=	सोवहुँ (अयो० (२३०।४)	= वे सोएँ
राख्	+	अहुँ	=	राखहुँ (अयो० ५७।१)	= वे राखें
मार्	+	अहुँ	=	मारहुँ (अयो० १००। छन्द)	= वे मारें

यदि कोई व्यक्ति आदरणीय है, तो उसके लिए बहुवचनीय क्रिया का प्रयोग होता है। 'लक्ष्मण' व्याकरण से एक वचन है, किन्तु आदर भाव में 'लक्ष्मण मारें' प्रयोग किया जायगा।

---

१. मिला० 'लेहु' (= तुम लो)—दुइ कै चारि माँगि बरु **लेहू**। (अयो० २८।३)
लेहि (= तू ले)—'कहेउ कृपाल **लेहि** उतराई।' (अयो० १०२।४)
लेहि = ले + हि = कर् + अहि (**करहि**—हैमव्या० ८।४।३८५।१) करहि = तू कर।

इसी आधार पर 'रामचरितमानस' में केवट के वचनों के माध्यम से 'लखनु मारहुँ' व्यक्त किया गया है। केवट अपनी बात श्रीरामचन्द्रजी से कहता है कि :

'बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।'

(अयो० १००।छन्द)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर **मारें**, लेकिन जबतक मैं चरण न धो लूंगा।

× × ×

यहाँ 'लखनु' अन्य पुरुष में है। **मारहुँ** क्रिया भी इच्छादि अर्थ में अन्यपुरुषीय है। अतः हम कह सकते हैं कि :

मध्यम पुरु०, बहुव० 'मारहु'[1] = तुम मारो (आज्ञादि अर्थ) वर्त्तमान काल। अन्यपुरु०, बहुव० मारहुँ'[2] = वे मारें। (इच्छादि अर्थ) भविष्यत्काल।

ग. ६. ४ 'रहेउँ[3]' और 'रहिउँ' क्रियापद :

कर्त्ता	लिंग	वचन	पुरुष	क्रियापद
मैं	पुं०	एकवचन	उत्तम	रहा[4]
मैं	स्त्री०	एकवचन	,,	रही

सामान्य भूतकाल तथा निर्देशार्थ में उत्तमपुरुषीय एकवचन में धातुओं के किस प्रकार के रूप 'रामचरितमानस' में मिलते हैं, यहाँ यह देखना चाहिए :

कर्त्ता	लिंग	वचन	पुरुष	क्रियापद
मैं	पुं०	एकवचन	उत्तम	देखेउँ (अयो० १५३।२)
मैं	,,	,,	,,	चलेउँ (किष्किं० ६।८)
मैं	,,	,,	,,	रहेउँ (किष्किं० ६।७) अकर्मक
मैं	,,	,,	,,	जानेउँ (अयो० २८।१)
मैं	स्त्री०	,,	,,	गइउँ (अयो० १६६।५) अकर्मक
मैं	,,	,,	,,	रहिउँ (अर० १७।१०) अकर्मक

(**विशेष** : लखीमपुर जिले की अवधी में उत्तमपुरुष पुंलिंग एकवचन में 'रहेउँ' और

---

१. मिला० कहेसु (किष्कि० १।४) = तू कहना। कहेसु (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, ३६१ दो०) = तू कहना। 'गाजहु' (गुप्त, जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, ३४७ दो०) = तुम गरजो।

२. 'मारहुँ' का -अहुँ प्रत्यय परोक्ष विधि में अन्यपुरुष, बहुवचन का सूचक है और **कहउ** का —अउ प्रत्यय परोक्ष विधि में अन्यपुरुष, एकवचन का सूचक है—'**लोगु कहउ** गुर साहिब द्रोही।' (अयो० २०५।१) = लोक मुझे गुरु-स्वामी का द्रोही कहे।

३. उच्चारण की दृष्टि से **रहेउँ** में 'ए' ह्रस्व है।

४. 'मानस' में **रहा** (बाल० ५९।३) का प्रयोग **था** के अर्थ में भी है। **रही** (किष्किं० ६।१) = **थी**। **रहे** (बाल० ५५।८) = थे। **रहीं** (बाल ९।६) = थीं।

उत्तमपुरुष स्त्रीलिंग एकवचन में 'रहिउँ' रूप बोले जाते हैं। पुंलिग-स्त्रीलिंग का भेद लखीमपुरी अवधी बोली अकर्मक क्रियाओं में कर लेती है।[1])

सुग्रीव रामचन्द्रजी से अपना एक घटना-प्रसंग कहता है :

'मास दिवस तहँ **रहेउँ**[2] खरारी।' (किष्कि० ६।७)

अर्थ : हे खरारि ! मैं वहाँ तीस दिन **रहा**।

× ×

शूर्पणखा रामचन्द्रजी से कहती है :

'तातें अब लगि **रहिउँ** कुमारी।' (अर० १७।१०)

अर्थ : इसी से मैं अबतक कुमारी **रही**।

अतः, सिद्ध है कि 'मानस' में अकर्मक क्रिया के उत्तमपुरुष, पुंलिग, एकवचन में –एउँ प्रत्यय के साथ क्रियापद **रहेउँ** और उत्तमपुरुष, स्त्रीलिंग, एकवचन में –इउँ **प्रत्यय** के साथ क्रियापद **रहिउँ** प्रयुक्त है। निष्कर्ष :

१. रहेउँ = मैं रहा (उत्तम पु० पुं०, एकवचन, सामान्यभूत)

२. रहिउँ = मैं रही (उत्तम पु०, स्त्री०, एकव०, सामान्यभूत)

इसी प्रकार : १. **गएउँ** (किष्कि० ६।४) = मैं गया। (उत्तम पु०, एकव०)

२. **गइउँ**[3] (अयो० १६६।५) = मैं गई। उत्तम पु०, एकव०)

ग. ६. ५ 'करब'[4] और 'करबि' क्रियापद :

परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में वाच्य की दृष्टि से क्रियाएँ तीन प्रकार की होती हैं :

१. कर्तृवाच्य की क्रिया

२. कर्मवाच्य की क्रिया

३. भाववाच्य की क्रिया

कर्तृवाच्य की क्रिया का रूप अपने कर्त्ता के लिंग-वचन के अनुसार होता है। जैसे :

१. लड़का भोजन **करेगा**।

२. लड़की भोजन **करेगी**।

प्रथम वाक्य की क्रिया **'करेगा'** पुंलिग, एकवचन में इसीलिए है कि उसका कर्त्ता **'लड़का'** पुंलिग, एकवचन में है।

---

१. दे० डॉ० बाबूराम सक्सेना : 'इवोल्यूशन ऑव अवधी', अनुच्छेद ३०४।

२. उच्चारण की दृष्टि से 'रहेउँ' ह्रस्व ए) है।

३. मिला० लागिउँ जरैं (गुप्त : जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत, ३५४।५) = जलने लगी हूँ।

४. **करब**—यह अवधी भाषा में 'करना' अर्थ में क्रिया का सामान्य **रूप** भी है।

द्वितीय वाक्य की क्रिया '**करेगी**' स्त्रीलिंग, एकवचन में इसीलिए है कि उसका कर्त्ता '**लड़की**' स्त्रीलिंग, एकवचन में है।

करेगा, करेगी क्रियाएँ कर्तृवाच्य की हैं।

कर्मवाच्य की क्रियाएँ अपना लिंग, वचन कर्म के अनुसार रखती हैं। जैसे :

१. लड़के ने अच्छा काम **किया**।

२. लड़के ने अच्छे काम **किये**।

३. लड़की ने अच्छी बुनाई **की**।

४. लड़कियों ने अच्छी बुनाई **की**।

५. लड़की ने कई तरह की बुनाइयाँ **कीं**।

उपर्युक्त वाक्यों की क्रियाओं के लिंग-वचन उनके कर्म **काम**, '**काम**', **बुनाई** और **बुनाइयाँ** के ही अनुसार हैं। अतः, ये उक्त क्रियाएँ कर्मवाच्य की हैं।

जब क्रिया का रूप लिंग-वचन में न कर्त्ता के लिंग-वचन के अनुसार हो; और न कर्म के अनुसार; तब वह क्रिया भाववाच्य की कहलाती है। जैसे :

१. लड़के ने उसी काम को **किया**।

२. लड़की ने उसी काम को **किया**।

३. लड़कों ने उन्हीं कामों को **किया**।

४. लड़कियों ने उन्हीं कामों को **किया**।

५. लड़के ने उस नौकरी को नहीं **किया**।

६. लड़की ने उस काम को नहीं **किया**।

इन उक्त वाक्यों में **किया** क्रिया एकरूप रही है। कर्त्ता या कर्म के अनुसार लिंग-वचन में बदली नहीं। अर्थात्, क्रिया सर्वत्र पुंलिंग एकवचन में रही है। अतः, भाववाच्य की है। यही बात निम्नांकित वाक्यों में भी पाई जायगी :

१. लड़के से नहीं **चला जाता**।[1]

२. लड़कों से नहीं **चला जाता**

३. लड़की से नहीं **चला जाता**।

४. लड़कियों से नहीं **चला जाता**।

यहाँ **चला जाता** भी एकरूप में है। सर्वत्र पुंलिंग एकवचन में है। अतः, यह भाववाच्य की क्रिया है।

---

१. **बैठा जाय** भाववाच्य और **किया जाय** कर्मवाच्य क्रियाएँ हैं। 'मानस' में इनके समानान्तर क्रमशः **बैठिअ** (बाल० २७८।२) और **करिअ** (बाल० २७८।३) क्रियाएँ हैं।

इसी सिद्धान्त और दृष्टिकोण से 'रामचरितमानस' में **करब** और **करबि** क्रियाओं की परीक्षा की जानी चाहिए। तुलसी 'मानस' में लिखते हैं :

'**करब**' सदा लरिकन्ह पर छोहू।' (बाल० ३६०।७)

अर्थ : राजा दशरथ विश्वामित्र जी से कहते हैं कि आपके द्वारा बालकों पर स्नेह किया जाय।

× × ×

'गालु **करब** केहि कर बलु पाई।' (अयो० १४।१)

अर्थ : मन्थरा कहती है कि किसका बल पाकर गाल किया जायगा, अर्थात् बढ़-बढ़कर बोला जायगा।

कर्त्ता	कर्म	क्रिया
विश्वामित्र (पुं०, एकव०)	**छोहु** (पुं०, एकव०)	**करब** (बाल० ३६०।७)
मन्थरा (स्त्री० एकव०)	**गालु** (पुं०, एकव०)	**करब** (अयो० १४।१)

उक्त दोनों उदाहरणों में **करब** पुंलिग, एकवचन इसीलिए हैं कि उनके कर्म क्रमशः **छोहु** और **गालु** पुंलिग, एकवचन में हैं।

लिंग-वचन में कर्मानुसार होने के कारण यहाँ **करब** क्रिया कर्मवाच्य की है।

वन के कोल-किरात रामचन्द्रजी को अपनी सेवाएँ अर्पित करने के लिए निवेदन करते हैं। वे कहते हैं :

'हम सब भाँति **करब** सेवकाई।' (अयो० १३६।५)

अर्थ : हम सब प्रकार आपकी सेवा करेंगे।

× × ×

यहाँ कर्त्ता **हम** और कर्म **सेवकाई** है।

सेवकाई स्त्रीलिंग, एकवचन संज्ञा है। फिर भी, क्रिया **करब** आई है। ऐसा क्यों ? उद्धरण बताता है कि यहाँ क्रिया कर्म के लिंगवचनानुसार नहीं आई। अतः, कर्मवाच्य प्रयोग नहीं है।

इस **करब** क्रिया का कर्त्ता **हम** है। **हम** उत्तमपुरुष, बहुवचन का पुरुषवाचक

---

१. मिला० 'दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा, सुरतिलुकाइबा कानं।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहिगया पद निरवानं॥
—(सम्पा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल : गोरखबानी, साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्क०, सबदी ७५, पृ० २७)।

सर्वनाम है। अतः, **हम करब**[1] मैं **करब** तिङन्त रूप की क्रिया है, जो **कर्त्ता** के अनुसार आई है। इसे कर्त्तृवाच्य का तिङन्त प्रयोग कहेंगे।[2]

कर्त्ता	कर्म	तिङन्त क्रिया
हम (उत्तमपु० बहुव०)	सेवकाई (स्त्री० एकव०)	करब (अयो० १३६।५)

१. मैं **होब** (बाल० १५१।—) = मैं होऊँगा।

२. मैं **होब** (अयो० १६।६) = मैं होऊँगी।

क्रियामूलक संज्ञा के रूप में भी **मिलब, भुलाब** (गीताप्रेस, बाल०, दो० १६५।-) जैसे पदों का प्रयोग मिलता है।

अब निम्नांकित उद्धरणों में आये हुये '**करब**' रूप पर विचार करना चाहिए और देखना चाहिए कि क्रिया का यह '**करब**' रूप कर्त्ता और कर्म में से किसके अनुसार है?

तुलसी लिखते हैं:

'सो तनु राखि **करब** मैं काहा।'[3] (गीताप्रेस, अयो० १५५।६)

अर्थ: दशरथजी कहते हैं कि उस शरीर को रखकर अब मेरे द्वारा क्या किया जायगा।

× × ×

'कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न **करब** हित लागि।' (अयो० २१।–)

अर्थ: कैकेयी मन्थरा से कहती है कि जब तू मेरा भारी दुःख देखकर कहती है, तब भला अपने हित के लिए मुझसे कैसे न **किया जायगा**?

कर्त्ता	कर्म	क्रिया
दसरथ	काहा (सर्वनाम)	करब (गीताप्रेस, अयो० १५५।६)
कैकेई	×	करब (अयो० २१।–)

यह पहले लिखा जा चुका है कि भाववाच्य में क्रिया एकरूप रहती है। वह न कर्त्ता का अनुसरण करती है और न कर्म का। सदा क्रिया पुंलिंग, एकवचन में रहती है। **करब** की ऐसी

१. अवधी के क्षेत्रों में पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग में—'**मइँ करब**' और '**मइँ करबि**' रूप भी प्रचलित हैं।

२. डॉ० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' (सागर) से मुझे सूचना मिली थी कि आजकल भी अवधी-क्षेत्र की बोलियों में **हम करब हम करबै** (करबइ) जैसे रूप भविष्यत्काल में प्रयुक्त होते हैं। लेखक उनका आभारी है। आधुनिक अवधी में **–अब** प्रत्ययान्त क्रियाएँ भविष्यत्काल के उत्तमपुरुष में ही प्रचलित हैं। अन्य पुरुष में—ऊ **करी,** उइ **करिहइँ**। मध्यमपुरुष में—'तुइ करिहइ, करिहसि। तुम करिहउ।

३. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में 'करबि' पाठ है। सीतापुर जिले में उत्तमपुरुष एकवचन (पुं०, स्त्री०) में—'मइँ **करब**। **करबि**' बोला जाता है। इस आधार पर मइँ **करबि** भविष्यत्काल का तिङन्त प्रयोग माना जा सकता है। पदमावत में जायसी ने लिखा है: 'कौन उतर पाउबि पैसारू।' (पद्मावत, ६४।४)

ही स्थिति है। अतः, उक्त दोनों उद्धरणों में **करब** भाववाच्य क्रिया के प्रयोग हैं। सं० **कर्त्तव्यं** = मानस में **करब**। सं० **कर्त्तव्यः** = मानस में **करब**।

'रामचरितमानस' में **करबि** क्रियाएँ निम्नांकित उद्धरणों में प्रयुक्त हुई हैं :

'भाषाबद्ध **करबि** मैं सोई।' (बाल० ३१।२)

अर्थ : तुलसी कहते हैं कि वही (वही कथा) मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी।

× × ×

'मैं कछु **करबि** ललित नर लीला।' (अर० २४।१)

अर्थ : रामचन्द्रजी सीताजी से कहते हैं कि मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जायगी।

× × ×

'जिअत न **करबि**[१] सवति सेवकाई।' (अयो० २१।१)

अर्थ : कैकेयी मन्थरा से कहती है कि जीते जी मेरे द्वारा सौत की सेवा न की जायगी।

'दिनहिं करबि जेवनार।' (गीता प्रेस बाल० १६८।-)

अर्थ : प्रतिदिन ज्योनार की जायगी।

कर्त्ता	**कर्म**	**क्रिया**
मैं, अर्थात् तुलसी (पुं०, एकवचन)	कथा (स्त्री० एकवचन)	करबि (बाल० ३१।२)
मैं, अर्थात् राम (पुं०, एकव०)	लीला (स्त्री०, एकव०)	करबि (अर० २४।१)
मैं, अर्थात् कैकेयी (स्त्री०, एकव०)	सेवकाई (स्त्री० एकव०)	करबि (अयो० २१।१)
मैं (पुं०, एकव०)	जेवनार (स्त्री०, एकवचन)	करबि (बाल० १६८।-)

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि **करबि** क्रिया वहीं है, जहाँ कर्म स्त्रीलिंग, एकवचन में है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह स्त्रीलिंग एकवचनीय कर्मवाच्य कृदन्त क्रिया है। कर्म का अनुसरण करने के कारण कर्मवाच्य की ही मानी जायगी। संस्कृत में भी कृदन्त क्रियाएँ जब कर्मवाच्य में आती हैं, तब कर्म के लिंग-वचन का ही अनुगमन करती हैं।

---

१. मिला० '**कहबि** न तात लखन लरिकाई।' (अयो० १५२।८। गीताप्रेस अयो० १५२।८। काशिराज० अयो० १५१।८)

कर्मवाच्य (संस्कृत में)	कर्मवाच्य ('मानस' के आधार पर)
१. स्नेहः **कर्त्तव्यः** ।	१. छोहु **करब** (बाल० ३६०।७)
२. सपत्नी-सेवकता न **कर्त्तव्या** ।	२. सवति सेवकाई न करबि[1] (अयो० २१।१)
३. मया किं **कर्त्तव्यम्** ।	३. मैं काहा करब (गीता प्रेस अयो० १५५।६)

कहबि (अयो० १५२।८), **छमबि** (अयो० ६४।५), **देबि** (अयो० १०४।६), **पुरउबि** (अयो० १०३।२) **बिआहबि** (बाल० २४५।-), **मारबि** (सुन्दर १०।९) आदि क्रियाएँ कर्मवाच्य स्त्रीलिंग ही हैं; क्योंकि इनके कर्म स्त्रीलिंग में हैं। **करब** और **करबि** का मूल सं० कर्त्तव्यः (पुं०) = मानस में **करब**। सं० कर्त्तव्या (स्त्री०) = मानस में **करबि**। सं० कर्त्तव्यम् (न०) = मानस में **करब**।

ग. ६. ६ पुरव, पुरउब और पुरउबि क्रियाएँ :

१. 'पुरव' का प्रयोग :

'जौं बिधि **पुरव** मनोरथ काली ।'[2] (अयो० २३।३)

अर्थ : यदि विधाता कल मनोरथ पूर्ण करता है।

'होइ प्रसन्न **पुरवहु** सकल, मंजु मनोरथ मोरि ।' (बाल० १४।-)

अर्थ : प्रसन्न होकर मेरी सम्पूर्ण मंजु अभिलाषाओं को पूर्ण करो।

क्रिया	रूप-विश्लेषण :
पुरव	= सामान्य वर्तमानकाल, निर्देशार्थ, अन्य पु० एकवचन, तिङन्त प्रयोग।
पुरवहु =	= सामान्य वर्त्तमान काल, आज्ञादि अर्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन, तिङन्त प्रयोग।

२. पुरउब का प्रयोग :

'**पुरउब** मैं अभिलाषा तुम्हारा ।' (गीताप्रेस, बाल० १५२।५)

अर्थ : मेरे द्वारा तुम्हारा अभिलाष पूर्ण किया जायगा।

---

१. सीतापुर जिले की अवधी बोली में पुरुष भी कहता है : 'मइँ **करब**, मइँ **करबि**' और स्त्री भी कहती है : 'मइँ करब, मइँ **करबि**। 'अर्थात् मैं करूँगा—मइँ **करब**। **करबि**। मैं करूँगी—मइँ **करब**। **करबि**। इस आधार पर 'करबि' भविष्यत्काल के उत्तमपुरुष एकवचन में तिङन्त कर्तृवाच्य क्रियापद भी माना जा सकता है। जायसी ने लिखा भी है : 'कौन उतर पाउबि पैसारू' —(डॉ० माता प्रसाद गुप्त; जायसी-ग्रन्थावली, सन् १९५१, पृ० १६२, ६४।४)—मैं किस उत्तर से प्रवेश पाऊँगी।

२. 'जौं बिधि पुरब मनोरथु काली ।' (गीता प्रेस, अयो० २३।३) भविष्यत् काल में **पुरउब, पुरउबि** क्रिया रूप होने चाहिए। वर्त्तमान काल में **पुरव** होना चाहिए। हमारी दृष्टि में गीता प्रेस का **पुरब** पाठ उचित नहीं है।

३. **पुरउबि का प्रयोग :**

'मातु मनोरथ[1] **पुरउबि** मोरी ।' (गीता प्रेस, अयो० १०३।२)

अर्थ : हे माता ! मेरी मनःकामना पूर्ण की जाय ।

क्रिया		**रूप-विश्लेषण**
पुरउब	=	पुंलिंग, एकवचन, कृदन्त-प्रयोग, कर्मवाच्य, भविष्यत्काल ।
पुरउबि	=	स्त्रीलिंग, एकवचन, कृदन्त-प्रयोग, कर्मवाच्य, भविष्यत्काल ।

क्रिया के रूपों की दृष्टि से **पुरव** और **पुरउब** का अन्तर बहुत महत्त्वपूर्ण है । भाषा-संरचना का मर्म और सूक्ष्म अन्तर जानने के लिए इसे दृष्टिपथ में रखना आवश्यक है ।

क्रिया		**अर्थ**
१. पुरव (अयो० २३।३)	=	वह पूर्ण करता है, वह पूर्ण करती है ।
२. पुरउब (गीता प्रेस, बाल० १५२।५)	=	पूर्ण किया जायगा ।
३. पुरउबि[2] (गीता प्रेस, अयो० १०३।२)	=	पूर्ण की जायगी अथवा पूरी की जाय ।

ग. ६. ७ धातुरूप क्रिया 'छूट' और 'टूट' :

रामचरितमानस में **छूट** (अयो० ५१।–) और **टूट** (बाल० २७८।२) का प्रयोग भूतकालिक कृदन्त से बने हुए विशेषण पद के रूप में हुआ है :

'**छूट** जानि बन गवनु सुनि, उर अनंदु अधिकान ।' (अयो० ५१।-)

अर्थ : वन-गमन सुनकर अपने को (बन्धन से) **छूटा हुआ** जानकर हृदय में आनन्द बढ़ा ।

'**टूट** चाप नहिं जुरिहि रिसाने ।' (बाल० २७८।२)

अर्थ : क्रुद्ध होने पर टूटा हुआ धनुष नहीं जुड़ेगा ।

१. छूट (अयो० ५१।-) = छूटा हुआ ।

२. टूट (बाल० २७८।२) = टूटा हुआ ।

टूटा हुआ और **टूटा** का अर्थ वास्तव में एक-सा ही है । टूटा, भूतकालीन समापिका क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त हो सकता है । तुलसी ने **बैठ** का प्रयोग **बैठा** और **टूट** का प्रयोग **टूटा** (सामान्य भूतकाल की क्रिया) के रूप भी किया है :

---

१. यहाँ **मनोरथ** का प्रयोग स्त्रीलिंग में है ।

२. मिला० **कहबि** (अयो० १६।४, १५२।८), छमबि (अयो० ६४।५), देबि (अयो० १०४।६), पुरउबि (अयो० १०३।२), बिआहबि (बाल० २४५।-), **मारबि** (सुन्दर० २०।६) । ये क्रियाएँ कर्मवाच्य में स्त्रीलिंग एकवचन हैं; क्योंकि इनके कर्म स्त्रीलिंग एकवचन में हैं ।

'पुनि सिरु नाइ **बैठ** निज आसन ।' (सुन्दर० ३८।३)

अर्थ : फिर सिर झुकाकर अपने आसन पर बैठा ।

'अंगद **बैठ** रहा ।' (उत्तर० १७।८)

अर्थ : अंगद बैठा रहा ।

'छुअत **टूट** रघुपतिहु न दोसू ।' (बाल० २७२।३)

अर्थ : छूते ही टूट गया, इसमें रघुपति का भी दोष नहीं ।

'छूट' और 'टूट' का प्रयोग सामान्य वर्त्तमान की क्रियाओं के रूप में भी मिलता है :

'हठ न **छूट**'[1] (बाल० ८०।५) = हठ नहीं छूटता है ।

टूट न द्वार' (लंका० ४३।४) = द्वार नहीं टूटता है ।

ग. ६. ८ धातु-सदृश क्रियापद 'सोह', 'सह' आदि :

क्रिया के रूप में **सोह** का प्रयोग 'रामचरितमानस' में कई स्थलों पर मिलता है । जैसे :

'ससि सम्पन्न **सोह** महि कैसी ।' (किष्किं० १५।५)

अर्थ : हरी-भरी खेती से युक्त पृथ्वी कैसी शोभा पाती है ?

× × ×

'मध्य बाग सरु **सोह** सुहावा ।[2]' (बाल० २२७।७)

अर्थ : सुन्दर बाग के मध्य तालाब शोभा पाता है ।

× ×

'**सोह**[3] कि कोकिल बिपिन करीला ।' (अयो० ६३।७)

अर्थ : क्या कोयल करील की भाड़ियों में शोभा पाती है ?

× ×

'कोउ न हमरे कटक अस, तो सन लरत जो **सोह**।' (लंका० २३।–)

अर्थ : हमारी सेना में ऐसा कोई नहीं, जो तुमसे लड़ने में शोभा पाता है ।

'सरिता सर निर्मल जल **सोहा** । सन्त हृदय जस गत मद मोहा ।'

(किष्किं० १६।४)

अर्थ : नदी-तालाबों का निर्मल जल ऐसा सोहता है, जैसे गत-मद-मोह सन्त का हृदय सोहता है ।

---

१. मिला० अपभ्रंश में 'धर **सिहर**' (सन्देशरासक ३।१४३) = धरा काँपती है ।

२. इस उद्धरण का **सुहावा** विशेषण है और **सोह** क्रिया है ।

३. 'सोह' की भाँति वर्त्तमानकालिक कृदन्त भी दोनों लिंगों में एक रूप रहता है—**जात** (सुन्दर० २।१, किष्किं० ५।४)

(सोहा = सोह = सोहता है।)

'खल के बचन सन्त **सह** जैसे।' (किष्कि० १४।४)

अर्थ : सन्त जैसे दुष्टों के वचन सहते हैं (सहता है)।

उपरिलिखित उदाहरणों से सिद्ध है कि धातु-तुल्य क्रियापद **सोह** और **सह** कर्त्तृवाच्य में हैं और तिङन्त प्रयोग हैं, जो वर्त्तमान काल के निर्देशार्थ में अन्यपुरुषीय एक-वचन और बहुवचन के सूचक हैं।

१. सोह = वह सोहता है (शोभा पाता है)।

धातु √सोह्।

२. सोह = वह सोहती है (शोभा पाती है)। √सोह्।

३. सह = वे सहते हैं (सहन करते हैं)। √सह्।

चह, **बह**, **कह**, **चल**, आदि भी ऐसी ही क्रियाएँ हैं, जो अन्य पुरुषीय एकवचन में वर्त्तमान काल का निर्देशार्थ प्रकट करती हैं। ये बहुवचन में भी प्रयुक्त हो सकती हैं।

१. 'पुरोडास **चह** रासभ खावा।' (अर० २६।५)

अर्थ : गधा यज्ञान्न खाना चाहता है।

१. चह = (वह) चाहता है। धातु √चह्।

× ×

'बोलि न सकहिं नयन **बह** नीरा।' (किष्कि० २६।७)

अर्थ : बोल नहीं सकते हैं। नेत्रों से जल बहता है।

२. बह = (वह) बहता है। धातु √बह्।

× ×

'**कह**[1] सीता सुनु जती गुसाईं।' (अर० २८।१२)

अर्थ : सीता कहती है, हे गुसाईं यती! सुन।

३. कह = (वह) कहती है। धातु √कह्।

'**चल**[2] न ब्रह्मकुल सन बरिआई।' (बाल० १६५।५)

अर्थ : ब्राह्मण-कुल से जबरदस्ती नहीं चलती।

---

१. मिला० अपभ्रंश में 'धर सिहर' (सन्देशरासक ३।१४३) = धरा काँपती है। सूझ (गुप्त : पद्मा० ६३१।२) = सूझती है। '**जान** सब कोई' (उसमान, चित्रावली, ना० प्र० स० काशी—६।१००।३) = सब कोई जानता है।

२. '**चल** न चातुरी मोरि।'—(किष्कि० ६।–)

४. चल = चलती है।

मोह न नारि नारि के रूपा।' (उत्तर० ११६।२)

अर्थ : नारी नारी के रूप पर नहीं मोहती।

क्रिया 'मोह' = मोहती है। धातु √मोह + ० = मोह।

जनाव (उत्तर० आदि दो० २) = जनाते हैं, प्रकट करते हैं।

विशेष : बजाव (विद्यापति-पदावलि) = बजाते हैं।

तुलसी के 'मानस' में जनाव = जनाते हैं।

ग. ६. ९ देखा, देखी, देखे, देखीं, दीखा और दीसा क्रियापद :

'रामचरितमानस' में देखा क्रिया का प्रयोग :

'का छति लाभु जून धनु तोरें।[1]
देखा राम नए के भोरें।।[2] (बाल० २७२।२)

अर्थ : लक्ष्मणजी परशुरामजी से कहते हैं कि पुराने धनुष के तोड़ने से क्या हानि-लाभ ? राम ने नये के भ्रम से देखा था, अर्थात् नया समझा था।

राम (धनु) देखा = राम ने धनु देखा (अथवा) राम द्वारा धनुष देखा गया।

'उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा[3] ।। (अयो० २२६।३)

अर्थ : उधर राम रात्रि शेष रहने पर जागे; और सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा अथवा सीता द्वारा ऐसा स्वप्न देखा गया।

सीय सपन देखा = सीता ने स्वप्न देखा (अथवा सीता द्वारा स्वप्न देखा गया।

कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे। (अयो० १९९।३)

अर्थ : भरतजी ने दो-चार स्वर्ण-बिन्दु (सोने के सितारे) देखे, अर्थात् भरत द्वारा दो-चार स्वर्ण-बिन्दु देखे गये। वे सिर पर रख लिये और उन्हें सीताजी के समान समझा।

१:२. तोरें और भोरें में एँ तृतीया एकवचन का प्रत्यय है—तोर् + एँ = तोरें। भोर् + एँ = भोरें।

३. सीय देखा = कौसल्या देखा (= सीता ने देखा, कौशल्या ने देखा)।

कर्त्ता	कर्म	क्रिया
राम (पुं०, एकव०)	धनु (पुं०, एकव०)	देखा (बाल० २७२।२) पुं०, एकव०
सीय (स्त्री०, एकव०)	सपन (पुं०, एकव०)	वेखा (अयो० २२६।३) पुं० एकव०
भरत (पुं०, एकव०)	कनक बिन्दु[1] (पुं० बहुव०)	देखे (अयो० १९९।५) पुं०, बहुव०

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट है कि **देखा** और **देखे** क्रियाएँ कर्मवाच्य भूतकालीन हैं; क्योंकि **देखा**, पुंलिंग, एकवचन में इसीलिए है कि उसका कर्म **धनु** और **सपन** पुंलिग एकवचन है। **देखे** पुंलिग बहुवचन में इसीलिए है कि उसका कर्म **कनकबिन्दु** पुंलिग बहुवचन में है।

अब देखना चाहिए कि तुलसी **देखी** और **देखीं** क्रियाओं का प्रयोग किस स्थिति में करते हैं :

'गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं **देखी**।' (सुंदर० ३।१०)

अर्थ : उसने पर्वत पर चढ़कर लंका देखी, अर्थात् उसके द्वारा (हनुमान् द्वारा) पर्वत पर चढ़कर लंका देखी गई।

× ×

देखी नयन दूत रखवारी।' (लंका० २२।६)

अर्थ : नयनों ने दूत की रक्षा देखी अर्थात् नयनों द्वारा दूत की रक्षा देखी गई।

× ×

देखीं सासु[2] आन अनुहारी' (अयो० २२६।५)

अर्थ : सासें अन्य वेष में देखी गईं, अर्थात् सासें विधवा-रूप में देखी गईं।

	कर्त्ता	कर्म	क्रिया
१.	तेहिं (हनुमान् से) पुं०, एकव०	लंका (स्त्री०, एकव०)	देखी (सुन्दर ०३।१०) स्त्री०, एकव०
२.	नयन (पुं०, बहुव०)	रखवारी (स्त्री०, एकव०)	देखी (लंका ०२२।६) स्त्री० एकव०
३.	सीय (स्त्री०, एकव०)	सासु (स्त्री०, बहुव०)	देखीं (अयो० २२६।५) स्त्री० बहुव०

१. यह बहुवचनीय पुंलिग शब्द हैं। जैसे : एकवचन में **बचनु** बहुवचन में **बचन**। यदि **कनकबिन्दु** मूलतः उकारान्त संस्कृत शब्द न होता, तो बहुवचन में उकार हट जाता।

२. यहाँ **सासु** 'शब्द स्त्रीलिग, बहुवचन में है और कर्मकारक में है। इसी कर्म के अनुसार **देखीं** क्रिया आई है, जो स्त्रीलिंग बहुवचन है।

१. प्रथम **देखी** क्रिया स्त्रीलिंग, एकवचन इसीलिए है कि उसका कर्म **लंका** स्त्रीलिंग एकवचन है।

२. द्वितीय **देखी** क्रिया भी इसीलिए स्त्रीलिंग एकवचन है कि उसका कर्म **रखवारी** स्त्रीलिंग, एकवचन है।

३. तृतीय **देखीं** स्त्रीलिंग, बहुवचन में है; क्योंकि उसका कर्म **सासु** भी स्त्रीलिंग, बहुवचन में है। ये क्रियाएँ कर्मवाच्य की है; क्योंकि लिंग-वचन में कर्म के अनुसार हैं।

अतः, सिद्ध है कि तुलसी **देखा, देखे, देखी, देखीं** का प्रयोग कर्मवाच्य के रूप में कर रहे हैं। इनके रूप कर्म के अनुसार हैं।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि तुलसी ने निम्नांकित अर्द्धाली में **देखा** क्रिया का प्रयोग क्यों किया है, जबकि उसका कर्म **दुइ बालक** पुंलिंग, बहुवचन में है। ऐसी स्थिति में तो तुलसी को **देखे** क्रिया का प्रयोग करना चाहिए था। जब 'बालक' कर्म पुंलिंग, बहुवचन में है, तब भाषा-रचना-पद्धति के अनुसार क्रिया भी पुंलिंग बहुवचन में, अर्थात् **देखे** रूप में आनी चाहिए थी। फिर **देखा** क्यों? उदाहरण :

'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**।' (बालकाण्ड २०१।७)

अर्थ : कौशल्याजी ने यहाँ और वहाँ दो बालक देखे।

अवधी में √देख् धातु के सामान्यभूतकालीन तिङन्त रूप अन्यपुरुष में लिंग के अनुसार इस प्रकार भी प्रचलित हैं :

पुरुष	**पुं० तथा स्त्री०**	**पुंलिंग**	**स्त्रीलिंग**
१. अन्य पुरुष	१. देखा	(क) देखी	(ख) देखेन

परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी	**अवधी**
१. लड़के ने देखा	१. लरिका देखा (तिङन्त)
२. लड़की ने देखा	२. लरिकी देखा (तिङन्त)
३. कौशल्या ने **देखा**	३. कौसल्या **देखा** (तिङन्त)
४. कौशल्या ने दो बालक **देखे**।	४. कौसल्या दुइ बालक **देखे** (कर्मवाच्य कृदन्त)
५. कौशल्या ने दो बालकों को **देखा**।	५. कौसल्या दुइ बालक देखा (कर्तृवाच्य तिङन्त)
६. दशरथ ने दो बालकों को देखा।	६. दसरथ दुइ बालक **देखा**[1] (कर्तृवाच्य तिङन्त)

१. 'मिला० सयन किए **देखा** कपि तेही।' (सुन्दर० ५।७)

अवधी के तिङन्त रूपों में देखनेवाला कर्त्ता चाहे पुंलिंग हो, चाहे स्त्रीलिंग, क्रिया **देखा** ही रहेगी। 'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**' (बाल० २०१।७) में **देखा** सामान्य भूतकाल का अन्यपुरुषीय एकवचन में तिङन्त प्रयोग है। तिङन्त की क्रिया पर कर्त्ता के लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः, देखनेवाला भले ही कोई पुरुष हो या स्त्री, और कर्म भले ही एकवचन हो या बहुवचन, क्रिया **देखा** ही रहेगी। सं० पुरुषः बालिके **अपश्यत्**। स्त्री बालकौ **अपश्यत्**।

कर्मवाच्य कृदन्त प्रयोग	**कर्त्तृवाच्य तिङन्त प्रयोग**
१. कनक बिन्दु दुइ चारिक **देखे**। (अयो० १९९।३)	१. इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**। (बाल० २०१।७)

देखा (बालकाण्ड, २०१।७) क्रिया तिङन्त की है और कर्त्तृवाच्य है, इसलिए कर्म 'दुइ बालक' का प्रभाव नहीं मानती। **देखे** (अयो० १९९।३) क्रिया कृदन्त है और कर्मवाच्य की है। कर्मवाच्य की क्रिया लिंग-वचन में कर्म का प्रभाव मानती है। 'कनकबिन्दु' कर्म पुंलिंग, बहुवचन में है। इसलिए, क्रिया **देखे** भी पुंलिंग बहुवचन में आई है।

अतः, स्पष्ट है कि 'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा** (बाल० २०१।७) में **देखा**[१] क्रिया का प्रयोग तुलसी द्वारा कर्त्तृवाच्य तिङन्त में किया गया है। तुलसी 'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखे**' भी लिख सकते थे और वह प्रयोग भी व्याकरणसम्मत ही माना जाता, किन्तु उस समय **देखे** क्रिया कर्मवाच्य कृदन्त-प्रयोग की मानी जाती।

सं० कौशल्या द्वौ बालकौ **अपश्यत्** = कौसल्या दुइ बालक **देखा** (तिङन्त क्रिया)

'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**।' (बाल० २०१।७) के **देखा** का दूसरा समाधान भी प्रस्तुत किया जा सकता है। वह इस प्रकार है :

चौपाई के चरणान्त पद के अन्तिम ह्रस्व स्वर के विषय में तुलसी की पद्धति पर प्रकाश डाला जा चुका है कि तुलसी चौपाई के चरण के अन्तिम पद[२] (शब्द-रूप) के अन्तिम ह्रस्व स्वर को छन्दोनिर्वाह के लिए दीर्घ कर देते हैं, अर्थात् अकार को आकार इकार को ईकार और उकार को ऊकार लिखते हैं।[३] प्रस्तुत अभीष्ट चरण 'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**' में मूल पद **देख** है, जो अकारान्त है। इसको छन्दोनिर्वाह के लिए आकारान्त (देखा) किया गया है। **देख** का अर्थ है **देखती है** या **देखता है**। यह क्रिया का कर्त्तृवाच्य तिङन्त प्रयोग है जो सामान्य वर्त्तमान काल के अन्यपुरुष एकवचन में है। 'रामचरितमानस' में 'कह' (अयो० १३४।३), **सोह** (किष्कि० १५।५; १६।४), **चह** (अर० २६।५) आदि प्रयोग भी इसी प्रकार के हैं।

---

१. मिला० 'जब सुग्रीव राम कहुँ **देखा**' (किष्किं० ४।६)।
अर्थात्, जब सुग्रीव ने राम को देखा। १. लरिका देखा = सुग्रीव देखा। २. लरिकी देखा = कौशल्या देखा। लरिका देखा = कपि देखा (= कपि ने देखा)।

२. 'पद' से तात्पर्य व्याकरण के 'पद' से है : 'सुप्तिङन्तं पदम्'—पाणिनि।

३. देखिए ख. १ (पृ० १७)।

रावण द्वारा अपहृत सीताजी विलाप करते हुए कहती हैं :

'बिनति मोरि को प्रभुहि[1] सुनावा।

पुरोडास **चह** रासभ खावा ॥' (अर० २९।५)

अर्थ : प्रभु को मेरी विनती कौन सुनाता है ? अर्थात्, कोई नहीं सुनाता। गधा यज्ञान्न खाना चाहता है।

अर्थ से स्पष्ट है कि **चह** क्रिया का व्याकरणिक अर्थ है **चाहता है**। उसी आधार पर **देख** का अर्थ हुआ **देखता है** या **देखती है** (नयन बिनु देखा—बाल० ११८।७ = बिना नेत्र देखता है), **देखा** = **देख**। 'ससि सम्पन्न **सोह** महि कैसी।' (किष्कि० १५।५) में और 'सरिता सर निर्मल जल **सोहा**'[2] (किष्कि० १६।४) में **सोह** क्रिया का अर्थ है **'सोहती है'**।

इसी भाषा-पद्धति के आधार पर अभीष्ट चरण के वाक्य 'इहाँ उहाँ दुइ बालक देख' का अर्थ होगा :

'कौशल्या यहाँ-वहाँ दो बालक देखती है।'

चरणान्त पद के अन्तिम अकार को छन्द-निर्वाह के लिए तुलसी प्रायः आकार कर ही देते हैं। **समाज** को उन्होंने **समाजा** (बाल० २७१।५) और **सोह** को **सोहा** (किष्कि० १६।४) कर ही दिया है। जैसे :

'सो बिलगाउ बिहाइ **समाजा**।' (बाल० २७१।५)

'सरिता सर निर्मल जल **सोहा**।' (किष्कि० १६।४)

अतः, **देख** को **देखा** करते हुए लिख दिया है कि :

'इहाँ वहाँ दुइ बालक **देखा**' (बाल० २०१।७)

(**विशेष** : मानस में **दीख** या **दीसा** क्रिया **देखा गया**, अर्थात् **दीखा** के अर्थ में प्रयुक्त हुई है :

'कतहुँ न **दीख**[3] संभु कर भागा।' (बाल० ६३।४)

अर्थ : शम्भु का भाग कहीं भी न देखा गया, अर्थात् न दीखा।

'तीरथराजु **दीख**[4] प्रभु जाई।' (अयो० १०५।२)

अर्थ : जाकर प्रभु द्वारा तीर्थराज देखा गया, अर्थात् तीर्थराज दीखा।

'बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय **दीसा**।' (बाल० २४२।१)

अर्थ : विद्वानों को प्रभु विराट रूपमय दीखा।

---

१. तुलसी ने 'प्रभु' शब्द का प्रयोग यहाँ 'स्वामी' या 'पति' के अर्थ में किया है। अन्यत्र भी, जैसे—**'प्रभु** अपमान समुझि उर दहेऊ' (बाल० ६३।५)।

२. 'सोह' का **सोहा** प्रयोग चरणान्त में। इसी प्रकार 'किय' का **किया** (बाल० ९८। छन्द) चरणान्त में।

३-४. मिला० 'मैं बन **दीखि** राम प्रभुताई' (बाल० १०९।३)।

ग. ६. १० **'पावहिगो'**, **'पाउब' क्रियाएँ :**

पावहिगो और **पाउब** क्रियापद भविष्यत्काल के सूचक है। अन्तर यह है कि **पावहिगो** ब्रजभाषा की और **पाउब** अवधी-भाषा की क्रिया है।

१. **'पावहिगो'** का प्रयोग :

'याको फलु **पावहिगो** आगें।' (लंका० ३३।७)

अर्थ : इसका फल तू आगे पायगा।

पावहिगो = भविष्यत्काल, निर्देशार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन

२. **पाउब** का प्रयोग :

'तो तुम्ह दुखु **पाउब** परिनामा।' (अयो० ६२।३)

अर्थ : तो तुम अन्त में दुःख पाओगी (अथवा) तो तुम्हारे द्वारा अन्त में दुःख प्राप्त किया जायगा।

पाउब = भविष्यत्काल, निर्देशार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन, तिङन्त प्रयोग, कर्त्तृ वाच्य। सं० प्राप्स्यथ = पाउब। अथवा पाउब = भविष्यत्काल निर्देशार्थ, पुंलिग, एकवचन, कृदन्त-प्रयोग कर्मवाच्य।

सं० प्राप्तव्यः > **पाउब**।

दुखु पुंलिग, एक वचन है, इसलिए **पाउब** क्रिया भी पुंलिग, एकवचन है। निम्नांकित उद्धरण में **जानब** पुंलिग एकवचन की क्रिया है; क्योंकि **भेद** कर्म पुंलिग, एकवचन है। ये कर्मवाच्य के प्रयोग माने जा सकते हैं :

'**जानब** तैं सब ही कर भेदा।' (उत्तर० ८५।८)

अर्थ : तेरे द्वारा सभी का भेद जाना जाएगा।

जानब = कर्मवाच्य, पुंलिग, एकवचन। सं० ज्ञातव्यः > जानब।

पाउब = पुंलिग, एकवचन में कर्मवाच्य का कृदन्त रूप है, किन्तु इसे मध्यमपुरुष, बहुवचन में सामान्य भविष्यत्काल का तिङन्त प्रयोग भी माना जा सकता है; क्योंकि तुलसी ने अन्यत्र ऐसे प्रयोग 'मानस' में किये हैं। जैसे :

'पिय तुम्ह ताहि **जितब**[१] संग्रामा।
जाके दूत केर अस कामा।' (लंका ३६।३)

अर्थ : प्रिय ! तुम उसे संग्राम में जीतोगे, जिसके दूत के ऐसे कार्य हैं।

जितब = भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन, तिङन्त-प्रयोग।

विशेष : तुम्ह ताहि संग्राम जितब = तुम्हारे द्वारा उससे संग्राम जीता जायगा—ऐसा

१. इस **जितब** में काकु से अर्थ ध्वनित है। तात्पर्य है, नहीं जीत सकोगे।

अर्थ भी सम्भव है। ऐसी दशा में **जितब** कर्मवाच्य में पुंलिंग, एकवचन की क्रिया मानी जायगी।)

ग. ६. ११ 'कहेउ', 'कहा' और 'कही'; 'भएउ', 'भा' और 'भई' क्रियापद :

'मानस में **कहइ** क्रियापद सामान्य वर्त्तमानकाल का सूचक है और तिङन्त क्रिया के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तिङन्त क्रिया-पद पर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता है, अर्थात् तिङन्त क्रिया-पद परिवर्त्तित नहीं होता, चाहे उसका कर्त्ता पुंलिंग में हो, चाहे स्त्रीलिंग में। तुलसी लिखते हैं :

'उर धरि धीर **कहइ** गिरिराऊ।' (गीता प्रेस, बाल० ६८।८)

अर्थ : पर्वतराज हृदय में धैर्य धारण करके कहता है।

कर्त्ता	**तिङन्त क्रियापद**
गिरिराऊ (पुं०)	कहइ (=कहता है)।

'**कहइ** चेरि सुधि अहइ कि नाहीं।' (गीता प्रेस, अयो० २२।४)

अर्थ : दासी (मन्थरा) कैकेयी से कहती है कि स्मरण है अथवा नहीं ?

कर्त्ता	**तिङन्त क्रियापद**
चेरि (स्त्री०)	कहइ (=कहती है)

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि **कहइ** तिङन्त क्रियापद है; क्योंकि प्रथम उदाहरण में कर्त्ता **गिरिराऊ** पुंलिंग है और द्वितीय उदाहरण में कर्त्ता **चेरि** स्त्रीलिंग है। किन्तु, दोनों उदाहरणों में क्रियापद **कहइ** ही है। कर्त्ता के लिंग-परिवर्त्तन से क्रिया के लिंग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। गीता प्रेस-संस्करण में **कहइ** और **कहै** (गीता प्रेस, बाल० ८५। छन्द) में अर्थभेद है :

१. **कहइ** = कहता है, कहती है (वर्त्तमान काल)

२. **कहै** = कहे (भविष्यत्काल)

अब **कहेउ**, **कहा** और **कही** क्रियापदों पर विचार करना चाहिए :

१. **कहेउ** भूप जिमि भएउ बिबाहू।' (बाल० ३५४।६)

अर्थ : जिस प्रकार विवाह हुआ, वह भूप द्वारा कहा गया।

कर्त्ता	**कर्म**	**क्रिया**
भूप (=भूप द्वारा)	वृत्तान्त लुप्त पुं० एकव०	कहेउ[1] (=कहा गया) पुं०, एकव०

१. मिला० 'तेहिं **मागेउ** भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।' (गीता प्रेस, बाल० १७७।-) अर्थात्, उसके द्वारा भगवान् के पदकमलों में अमल अनुराग माँगा गया। काशिराज-संस्करण में 'माँगेउ' (बाल० १७७।-) पाठ है, जिसमें 'ह्रस्व ए' है। 'कहेउ' (काशि० बाल० ३१२।-) = माँगेउ (काशि०, बाल० १७७।-)।

२. 'विप्रन्ह **कहेउ** बिदेह सन' (बाल० ३१२।–)

कर्त्ता	**कर्म**	**क्रिया**
विप्रन्ह (=विप्रों द्वारा)	(वृत्तान्त लुप्त) पुं०, एकव०	कहेउ (=कहा गया) पुं० एकव०

उपर्युक्त प्रथम और द्वितीय उद्धरणों की **कहेउ** क्रियाएँ लिंग-वचन में कर्म के अनुसार हैं। अतः, कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं। कर्त्ता से इनका सम्बन्ध नहीं है, अपितु कर्म से है। यदि कर्त्ता से सम्बन्ध होता, तो 'विप्रन्ह कहेउ बिदेह सन' (बाल० ३१२।—) की **कहेउ** क्रिया 'विप्र' के अनुसार पुंलिंग, बहुवचन में होती।

'जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई।' (बाल० ५६।३)

अर्थ : तुम्हारे द्वारा जो कहा गया, वह झूठ न होगा।

कर्त्ता	**कर्म**	**क्रियापद**
तुम्ह (=तुम्हारे द्वारा)	जो	कहा (=कहा गया) पुं०, एकव०

कहा क्रियापद भी कर्म के अनुसार है। यह क्रियापद भी कर्मवाच्य में ही है। अतः, निष्कर्ष निकला :

कहेउ[1] = (=कहा गया) = **कहा** (=कहा गया)—दोनों कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं। यदि कर्म स्त्रीलिंग, एकवचन में होगा, तो उसी के अनुसार क्रिया **कही** आयगी। जैसे :

'सीतहि चितइ **कही** प्रभु बाता।' (अर० १७।११)

कर्त्ता	**कर्म**	**क्रिया**
प्रभु (=प्रभु द्वारा)	बाता (स्त्री०, एकव०)	कही (=कही गई) स्त्री०, एकव०

पुंलिंग, एकवचन में कर्म होगा तो क्रिया **कहा** आयगी।

'आपन चरित **कहा** हम गाई।' (किष्कि० २।४)

कर्ता	**कर्म**	**क्रिया**
हम (=हमारे द्वारा)	चरित (पुं० एकवचन)	कहा (=कहा गया) पुं, एकवचन

कृदन्त क्रियाएँ लिंग का प्रभाव मानती हैं। अतः, **कहेउ, कहा** और **कही** क्रियाएँ कर्मवाच्य में कृदन्त क्रियाएँ हैं। इनके लिंग कर्म के लिंग पर आश्रित हैं।

मानस में **'कहा जाता है'** के अर्थ में **कहिअ** (गीता प्रेस, बाल० १६४।२) और **'सहा**

---

१. मिला० 'निवासु भणिउ' (रोडाकृत राउलवेल, अनु० ४२)। 'अनुरागु **माँगेउ** (काशि० बाल०, १७७।-)।

जाय' के अर्थ में **सहिअ** (गीता प्रेस, बाल० १६७।-) का प्रयोग हुआ है। यह कर्मवाच्य का प्रयोग है।

यदि कर्त्ता के लिंग के अनुसार क्रियाएँ अपना लिंग बदलती हैं, तो वे कर्त्तृवाच्य में कृदन्त क्रियाएँ कहलाती हैं। निम्नांकित **भएउ, भा** और **भई** क्रियाएं कर्त्ता के अनुसार लिंग-परिवर्त्तन करने के कारण कर्त्तृवाच्य की कृदन्त क्रियाएँ हैं :

'**भएउ** बिबाहू।' (बाल० ३५४।६)

कर्त्ता	**क्रिया**
बिबाहू (पुंलिग, एकवचन)	भएउ (=हुआ) पुंलिग एकवचन

'बिनय प्रेम बस **भई** भवानी।' (बाल० २३६।५)

कर्त्ता	**क्रिया**
भवानी (स्त्री०, एकवचन)	भई (=हुई) स्त्री०, एकवचन

'भूमि परत **भा** ढाबर पानी।' (किष्किं० १४।६)

कर्त्ता	**क्रिया**
पानी (पुंलिंग, एकवचन)	भा (=हुआ) पुं०, एकवचन

ग ६ : १२ आना और आवा क्रियापद :

'माँगी[1] नाव न केवटु **आना**।'[2] (अयो० १००।३)

अर्थ : राम ने नाव माँगी, केवट नहीं लाया।

$\sqrt{\text{आन्}}$ + — आ = आना (=लाया)

'आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।' (किष्किं० ५।२)

अर्थ : हे प्रभो ! वह हमारे गाँव में आया।

'**आवा** निकट जती के बेषा।' (अर० २८।७)

अर्थ : रावण यती के वेष में पास आया।

$\sqrt{\text{आ}}$ + व् + आ = आवा (=आया)।

आया[3] (सुन्दर ४३।६) = आया।

---

१. गीताप्रेस और काशिराजवाले संस्करणों में **मागी** पाठ है।
'**मागी** नाव न केवटु आना।' (गीताप्रेस, अयो० १००।३)
'**मागी** नाव न केवटु आना।' (काशिराज० अयो० १००।३)।

२. मिला०—श्रीरघुपति प्रताप उर **आना**।' (उत्तर० ९३।२)
'यह मुद्रिका मातु मैं आनी।' (सुन्दर० १३।१०)

३. यह खड़ीबोली का प्रयोग है।

आवा में 'व्' श्रुति का आगम हो गया है। प्रायः आकारान्त धातुओं में 'व्' श्रुति का आगम हो जाता है। जैसे :

√धा + व् + आ = धावा (अर० २९।१५) = दौड़ा।

√देखा + व् + आ = देखावा[1] (अर० २८।१३) = दिखाया।

√सुना + व् + आ = सुनावा (अर० २८।१३) = सुनाया।

सामान्य भूतकाल में अन्य पुरुष पुंलिंग एकवचन में प्रत्यय तो – आ ही है, किन्तु व्यंजनान्त और आकारान्त धातुओं के साथ उसकी प्रभाव-प्रक्रिया भिन्न-भिन्न है। व्यंजनान्त धातु के साथ 'व्' का आगम नहीं होता।

संस्कृत में 'नी' धातु में 'आ' उपसर्ग के योग से **आनयति** रूप बनता है। 'मानस' में 'लाना' अर्थ में 'आन्' धातु मानना चाहिए। इसीसे आना (= लाया), **आनहु** (लाओ, लाइए) रूप बनते हैं। तुलसी ने लिखा भी है :

आनहु चर्म कहति बैदेही।' (अर० २७।५)

धातु	प्रत्यय	क्रिया	अर्थ
√आन् +	– आ =	आना (अयो० १००।३)	= लाया
√आ + व् +	– आ =	आवा (अर० २८।७)	= आया
√आ + व् +	– आ =	आवा (किष्कि० ६।२)	= आया

ग. ६.१३ **धारा, धारी** और **धारे** क्रियापद :

'धन्य भूमि बन पंथ पहारा।
जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह **धारा**।।' (अयो० १३६।१)

अर्थ : वे भूमियाँ, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, जहाँ-जहाँ नाथ ! तुमने पाँव रखा, अर्थात् तुम्हारे द्वारा पाँव रखा गया।

'रंगभूमि जब सिय **पगुधारी**।[2]
देखि रूप मोहे नर नारी।।' (बाल० २४८।४)

अर्थ : जब रंगभूमि में सीताजी ने पाँव रखा, तब उनके रूप को देखकर नर-नारी मोहित हुए।

× × ×

प्रथम अर्द्धाली (अयो० १३६।१) में भी **पाउ** (= पद) है और द्वितीय अर्द्धाली

---

१. **देखावा** का 'ए' स्वर ह्रस्व है। इस ह्रस्व 'ए' को काशिराज संस्करण में दिखाया गया है।

२. मिला० 'जेहि लगि राम **धरी** नर देहा। (बाल० १२४।३)
अर्थ : जिसके लिए राम ने नर-देह धरी।

(बाल० २४८।४) में भी 'पगु' (=पद) है। दोनों ही पुंलिग, एकवचन हैं। फिर, प्रथम में **धारा** और द्वितीय में **धारी** क्रियापद क्यों ?

कारण स्पष्ट है—प्रथम अर्द्धाली की **धारा** क्रिया कर्मवाच्य की है। कर्मवाच्य की क्रिया लिंग-वचन में कर्म के अनुसार आती है। कर्म **पाउ** पुंलिंग, एकवचन है, अर्थात् तुम्ह **पाउ धारा**। (=तुम्हारे द्वारा पाँव रखा गया या तुमने पाँव धारा)।

द्वितीय अर्द्धाली की क्रिया **धारी** कर्तृवाच्य की है। कर्तृवाच्य की क्रिया लिंग-वचन में कर्त्ता का अनुसरण करती है। **सिय** कर्तृपद है, जो स्त्रीलिंग एकवचन है, अतः क्रिया भी **धारी** स्त्रीलिंग एकवचन है, अर्थात् 'सिय पगु **धारी**' (=सीता पगु धारी।) कर्ता पुंलिग बहुवचन में होने पर तुलसी ने 'धारे' क्रिया लिखी है—'भूपति संग द्वार पगु धारे' (बाल० ३५८।८) अन्वय—सब भ्राता भूपति संग द्वार पगु धारे।

तुलना कीजिए :

मानस	**मानस**
'मरम **बचन** जब सीता **बोला**। (अर० २८।५)	'जहँ जहँ नाथ **पाउ** तुम्ह **धारा**। (अयो० १३६।१)
अर्थ : जब सीता द्वारा मर्म वचन बोला गया।	**अर्थ**: जहाँ-जहाँ हे नाथ ! तुम्हारे द्वारा पाँव रखा गया।
'सरल सुभाउ राम महतारी। **बोली** बचन धीर **धरि** भारी॥' (अयो० ५५।६)	'रंगभूमि जब सिय पगु **धारी**।' (बाल० २४८।४)
अर्थ : राम–महतारी भारी धीर धारण कर वचन बोली।	**अर्थ** : जब सीता रंगभूमि में पगु धारी, अर्थात् जब सीता ने रंगभूमि में पाँव रखा।

ग. ६. १४ तोरे और तोरें क्रियापद :

'**तोरे**[1] धनुषु चाड़ नहि सरई।' (काशिराज, बाल० २६६।४)

अर्थ : धनुष को **तोड़ने पर** बलवत्ता (चण्डता) सिद्ध नहीं होती है।

× × ×

'**तोरें**[2] धनुषु चाड़ नहि सरई।' (गीताप्रेस० बाल० २६६।४)

अर्थ : धनुष को **तोड़ने से** बलवत्ता सिद्ध नहीं होती है।

× × ×

'**तोरें** धनुषु चाँड़ नहिं सरई॥' (माताप्रसाद गुप्त, बाल० २६६।४)

---

१. सं० त्रुटिते>तोरे।
२. सं० त्रुटितेन>तोरें।

अर्थ : धनुष को **तोड़ने से** चण्डता (बहादुरी, वीरता) सिद्ध नहीं होती है।

'का छति लाभु जून धनु तोरें।' (काशिराज, गीता प्रेस, माताप्रसाद गुप्त, बाल० २७२।२)

अर्थ : पुराने धनुष को **तोड़ने से** क्या हानि और क्या लाभ ?

(**विशेष** : गीता प्रेसवाले संस्करण में **बीतें** का प्रयोग दो अर्थों में है : १. बीतने पर २. बीतने से।)

तोरें[1] = तोड़ने पर (सं० त्रुटिते > तोरे = तोड़ने पर)—सप्तमी।

तोरें[2] = तोड़ने से (सं० त्रुटितेन > तोरें = तोड़ने से)—तृतीया।

समानता—**तोरे** (काशिराज० बाल० २६६।४) = तोड़ने पर।

बीते[3] (काशि० उत्तर० १।८) = बीतने पर।

ग. ६. १५ लगे, लागे, लागें क्रियापद :

१. मानस में **लगे** और **लागे** क्रियाएँ एक ही अर्थ में मिलती हैं :

'अस कहि **लगे जपन** हरि नामा।' (बाल० ५२।८)

अर्थ : ऐसा कहकर शिव जी हरि का नाम जपने लगे।

× × ×

'राम नाम सिव **सुमिरन लागे**।' (बाल० ६०।३)

अर्थ : शिवजी राम का नाम सुमिरने लगे।

× × ×

'रखवारे जब **बरजइ लागे**।[4] (सुन्दर० २८।८)

अर्थ : रखवाले जब रोकने लगे।

× × ×

'श्रवन नासिका **काटइँ लागे**।
राम सपथ दीन्हे हम त्यागे।' (काशिराज०, सुन्दर० ५४।४)

अर्थ : कान और नाक काटने लगे। राम-शपथ देने पर हम छोड़े।

× × ×

---

१. मिला० **बीते** = बीतने पर। **बीते** अवधि रहहिं जौं प्राना। (काशिराज० उत्तर० १।८)।

२. मिला० **कहें** = कहने से। 'पंच **कहें** सिव सती बिबाही।' (बाल० ७९।८)। अर्थात्, पंचों के कहने से शिव ने सती विवाही।

३. '**बीते** अवधि रहहिं जौं प्राना।' (काशिराज०, उत्तर १।८) = अवधि बीतने पर यदि प्राण रहते हैं।

४. तपै लाग (गुप्त : पदमावत, २५६।१) = तपने लगी।

उपर्युक्त उदाहरणों में **लगे** और **लागे** का प्रयोग संयुक्त क्रिया के रूप में हुआ है। उदाहरण :

दो क्रियाएँ				संयुक्त क्रिया	
जपन	+	लगे	=	जपन लगे	(= जपने लगे)
सुमिरन	+	लागे	=	सुमिरन लागे	(= सुमिरने लगे)
बरजइ	+	लागे	=	बरजइ लागे	(= बरजने लगे)
काटइँ	+	लागे	=	काटइँ लागे	(= काटने लगे)

उपर्युक्त उदाहरणों में **लगे** या **लागे** क्रिया सामान्य भूतकाल की सूचक है और पुंलिंग बहुवचन को प्रकट करती है।

२. **लागें का प्रयोग :**

'परा बिकल महि सर के **लागें**[१]।' (किष्कि० ९।१)

अर्थ : बाण के **लगने से** विकल बाली पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लागें = लगने से (सं० लग्नेन > लागें = लगने से)

विशेष : परसर्ग के रूप में भी तुलसी ने **लगें** का प्रयोग किया है :

'आजु **लगें** अरु जब तें भएऊँ।' (बाल० १६७।४)

अर्थ : और जब से जन्म हुआ, तब से आज तक।

× × ×

'गननायक बरदायक देवा। **आजु लगें** कीन्हिउँ तुअ सेवा[२]।' (बाल० २५७।७)

अर्थ : हे गणनायक वरदायक देव! मैंने **आज के लिए** तेरी सेवा की।

× × ×

अव्यय + परसर्ग		**अर्थ**
१. आजु **लगें** (बाल० १६७।४)	=	आज तक
२. आजु **लगें** (बाल० २५७।७)	=	आज के लिए

३. **लागे** का एकाकी क्रिया के रूप में प्रयोग :

'ताके बचन बान सम **लागे**।' (लंका० ४९।२)

अर्थ : उसके वचन बाण के समान **लगे** अर्थात् **छिदे**।

× × ×

---

१. मिलाइए : 'कहें बिनु' (गीता प्रेस, बाल० १३।१) < सं० कथनेन विना = विना कहे। **'इहिं पाएँ** बौराइ' (बिहारी दो० १९२)। पाएँ = पाने से।

२. मिला० रहिउँ (अर० १७।१०) = मैं रही। **आइउँ** (पदमावत ६४।३) = मैं आई।

'**लागे** कपि पुनि चहूँ दुआरा ।' (लंका० ४६।८)

अर्थ : वानर फिर चारों दरवाजों पर **लगे**, अर्थात् स्थित हो गये ।

× × ×

√लाग् धातु पीड़ा पहुँचाने के अर्थ में तुलसी ने अन्यत्र भी प्रयुक्त की है :

'**लागइ** अति पहार कर पानी ।' (अयो० ६३।२)

अर्थ : पहाड़ का पानी बहुत लगता है, अर्थात् पीड़ा पहुँचाता है ।

× × ×

विशेष : यहाँ **लागेउ** और **लागे** का व्याकरणिक अर्थभेद समझ लेना चाहिए ।

'मुष्टि प्रहार वज्र सम **लागा**' (किष्कि० ८।३) = प्रहार लगा ।

'काल **लागेउ**[1]' (अयो० ३५।—) = काल लगा, भाववाच्य क्रिया ।

'बिटप लागे[2]' (बाल० २२७।४) = वृक्ष लगे ।

लागा = भूतकाल, अन्यपुरुष, एकवचन (पुं०), कृदन्त क्रिया

लागे = भूतकाल, अन्यपुरुष, बहुवचन (पुं०), ,,

'भूखा **लागी**' = (सुन्दर० २२।३) = भूख लगी ।

'जातुधानीं विषाद करै **लागीं** ।' (लंका १०८।—) = राक्षसियाँ विषाद करने लगीं ।

लागी = भूतकाल, अन्य पुरुष, एकव० (स्त्री०), कृदन्त क्रिया ।

लागीं = ,, ,, बहुव० (,,), ,, ।

ग. ६. १६ कीन्हें, कीन्हे क्रियापद :

'**कीन्हें** प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।'

(गीताप्रेस, बाल० ११।७)

अर्थ : घटिया जनों का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है।

उक्त अर्द्धाली डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण में इस प्रकार है :

'**कीन्हे**[3] प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा **लगति** पछिताना ।'

(माताप्रसाद गुप्त, बाल० ११।७)

अर्थ : घटिया जनों का गुणगान करने पर सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है ।

× ×

१. मिला० **चलेउ**—(बाल० २६।८) = चला । (ब्रज० चल्यौ) ।

२. ,, **चले**—(बाल० ६१।१) कृदन्त = चले । (ब्रज० चले) ।

३. काशिराज-संस्करण में **कीन्हे** और **लगत** पाठ हैं । **कीन्हे** = सं० कृते । **कीन्हें** = सं० कृतेन । **कीन्हे** = सं० कृते, कृताः, कृतानि ।

कीन्हें=करने से (सं० कृतेन) तृतीया विभक्ति।

कीन्हे[1]=करने पर (सं० कृते) सप्तमी विभक्ति

जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे।

उचित बास हिमभूधर दीन्हे। (गीता प्रेस, बाल०, ६५।८)

अर्थ : जहाँ-तहाँ मुनियों द्वारा सुन्दर आश्रम किये गये अर्थात् मुनियों ने सुन्दर आश्रम बनाये। हिमाचल ने उन्हें उचित स्थान दिये।

× × ×

क्रिया — कीन्हे = किये (कीन्हे—क्रिया, भूतकाल, कर्मवाच्य, पुं०, बहुवचन)

१. कीन्ह (बाल० ५३।७), कीन्हा (बाल० सो० २६१।५)=कृते=किया गया।

२. कीन्हें (बाल० ११।७)=कृतेन=करने से।

३. कीन्हे (बाल० ११।७)=कृते=करने पर।

४. कीन्हे (बाल० ६५।८)=कृताः, कृतानि=किये गये।

(**विशेष** : कर्मवाच्य में भूतकालीन अन्यपुरुषीय स्त्रीलिंग एकवचन-रूप मानस में **कीन्ही** और **कीन्हिहु** मिलते हैं। जैसे :

१. 'गहि पद बिनय हिमाचल **कीन्ही**।' (बाल० ८१।५)

=चरण पकड़कर हिमाचल द्वारा विनय **की गई**।

२. 'मुनि अस कृपा न **कीन्हिहु** काऊ।' (बाल० २०७।७)

हे मुनि! ऐसी कृपा आपके द्वारा कभी नहीं **की गई**।

अतः, **कीन्ही**=**कीन्हिहु**=की गयी।)

ग. ६. १७

करब, चलब, सहब तथा **कराव, चलाव, सहाव** क्रियापद

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में **करना**[2], सामान्य क्रिया से प्रेरणार्थक क्रिया **कराना** बनती है। वह **करता है** का अर्थ है कि वह कार्य को स्वयं करता है। वह **कराता** है का अर्थ है कि वह कार्य करने के लिए किसी अन्य को प्रेरित करता है। '**करना**' क्रिया का मूल रूप है, तो **कराना** प्रेरणार्थक रूप है। इसी प्रकार **चलना, चलाना, सहना, सहाना** को **समझना चाहिए**।

---

१. मिला० : कहे (गीताप्रेस, बाल० १६६।७)=कहने पर।
कहे (गीताप्रेस, बाल० १३८।४)=कहे गये।

२. मानस में इसके समानान्तर **करब** है। यह क्रिया का सामान्य रूप भी है।

मूल क्रिया से भविष्यत् काल में ।	प्रेरणार्थक क्रिया से वर्त्तमान काल में
१. मैं करूँगा = मूल √कर्	१. मैं कराता हूँ । प्रेर० √करा
२. मैं चलूंगा = मूल √चल्	२. मैं चलाता हूँ । प्रेर० √चला
३. मैं सहूँगा = मूल √सह्	३. मैं सहाता हूँ । प्रेर० √सहा

मानस में **करब** और **कराव**—

'तदपि **करब** मैं काजु तुम्हारा ।' (बाल० ८४।१)

अर्थ : तो भी मेरे द्वारा तुम्हारा कार्य किया जायगा, अर्थात् तो भी मैं तुम्हारा कार्य करूँगा ।

× ×

'गोद राखि **कराव** पय पाना ।' (उत्तर० ८८।८)

अर्थ : गोद में बिठाकर दुग्ध पान कराती है ।

× ×

करब = √कर् + अब (= मेरे द्वारा किया जायगा, मैं करूँगा)

सं० कर्त्तव्यं, कर्त्तव्यः = करब ।

कराव[1] = √करा + व (= कराता है, कराती है)

सं० कारयति = कराव ।

करब, कराव की भाँति ही 'मानस' में **चलब, चलाव** और **सहब, सहाव** क्रियाओं के प्रयोग मिलते हैं :

'जौं न **चलब** हम कहें तुम्हारें ।' (बाल० १६६।७)

अर्थ : यदि तुम्हारे कहने से हमारे द्वारा न चला जायगा, अर्थात् यदि तुम्हारे कथनानुसार हम न चलेंगे ।

× ×

'तकि तकि तीर महीस **चलावा** ।'[2] (बाल० १५७।३)

अर्थ : राजा तक-तक कर तीर चलाता है ।

× × ×

चलावा = चलाव (अन्तिम शब्द—**चलाव** को चरणान्त की स्थिति में **चलावा** कर दिया गया है : यह तुलसी की शैली रही है कि वे चौपाई छन्द के निर्वाह के लिए चरणान्त

---

१. मिला० : **बजाव** से । —'नम्दक नन्द कदम्बक तरु तर धिरे धिरे मुरलि **बजाव** ।' (विद्यापति)

२. **चलाव** = चलाता है (सकर्मक क्रिया) । **चलब** = चला जाएगा (भाववाच्य) ।

शब्द के अन्त के अ, इ, उ को क्रमशः आ, ई,[1] ऊ कर देते हैं।)

सं० चलितव्यं = चलब। (चला जायगा)।

सं० चालयति = चलाव। (= चलाता है)।

'सो मैं **सुनब**[2] **सहब**[3] सुखु मानी।' (अयो० १८२।४)

अर्थ : वह मेरे द्वारा सुख मानकर सुना जायगा और सहा जायगा, अर्थात् उसे मैं सुख मानकर सुनूंगा और सहूँगा।

× × ×

'आजु दया दुखु दुसह **सहावा**।' (बाल० २८०।३)

अर्थ : आज दया मुझे दुःसह दुःख सहाती है।

× ×

सहावा = सहाव = सहाती है, सहाता है।

सहाव : यह तिङन्त प्रयोग है जो लिंग-प्रभाव से मुक्त है।

ठीक इसी आधार पर **जानब** और **जनाव** क्रियाओं के प्रयोग मिलते हैं :

जानब (उत्तर० ८५।८) = जाना जायगा।

जनाव (उत्तर० दो० १। दो० २) = जनाता है।

'**जानब** तैं सब ही कर भेदा।' (उत्तर० ८५।८)

अर्थ : तेरे द्वारा सभी का भेद जाना जाएगा।

'प्रभु आगवन **जनाव**[4] जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥'

(उत्तर० दो० १। दो० २)

अर्थ : नगर चारों ओर से रमणीक है, वह मानों प्रभु का आगमन जनाता है, अर्थात् प्रकट करता है।

---

१. मिलाइए : इस अधोलिखित अर्द्धाली के **धरि** को तुलसी ने **धरी** कर दिया है : 'मसक समान रूप कपि **धरी**। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी।' (सुन्दर० ४।१) अर्थ : कपि मच्छर के समान रूप रखकर नरनारायण को सुमिर कर लंका को चला।

२-३. मिलाइए : बरनब (बाल० ३७।२) (बाल० ४२।३) का प्रयोग क्रिया के सामान्य रूप या संज्ञा-रूप में भी किया गया है। अर्थ है : वर्णन करना। अतः, १. **बरनब** = वर्णन करना। २. **बरनब** = वर्णन किया जायगा।

४. जनाव = $\sqrt{\text{जना}}$ + -व = जनाता है।

बजाव = $\sqrt{\text{बजा}}$ + -व = बजाता है :

'नन्दक नन्द कदम्बक तरु तर धिरे धिरे मुरलि **बजाव**।' (विद्यापति पदावली) **बढ़ाव** (सूर०१०।७५) = बढ़ाती है।

ग. ६. १८

होइ, होइहि, होहि, होहु और होहुँ क्रियापद

'मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।'

(अयो० ७१।३)

होइ = होती है (सामान्य वर्त्तमान काल, अन्यपुरुष, एकवचन)

अर्थ : यदि मैं तुम्हें साथ लेकर बन जाता हूँ, तो सब प्रकार से अयोध्या अनाथ होती है।

× × ×

'**होइहि** सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा। (बाल० ५२।७)

होइहि = होगा (सामान्य भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, एकवचन)

अर्थ : जो राम ने रच रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा बढ़ाए।

× × ×

'तैं मैनाक **होहि** स्रमहारी।' (सुन्दर० १।६) (स्वरान्त धातु+-हि)।

होहि = हो (वर्त्तमान काल, आज्ञादि, मध्यम पुरुष, एकवचन)

अर्थ : हे मैनाक ! तू श्रमहारी हो।

× ×

होहि का बहुवचनीय रूप **होहु** है।

होहि = तू हो। **होहु** (बाल० १३२।५) = तुम होओ, आप हों। (स्वरान्त धातु+-हु)।

'करहु[१] कृपा करि **होहु** सहाई।' (बाल० १३२।५)

अर्थ : कृपा करो और कृपा करके सहायक होओ (सहायक हूजिए)। यह आदरसूचक एकवचन भी है।

विशेष : गीता प्रेस, गोरखपुर (सं० २०१६ वि०) की मानस-टीका में **होइ** का अर्थ **हो जायगी** किया है, जो व्याकरणिक रूप की दृष्टि से अशुद्ध है। उसी टीका में **होइहि** (बाल० ५२।७) का अर्थ **होगा** किया है। सारांश यह है कि **होइ** और 'होइहि' को भविष्यत् काल की क्रियाएँ लिखा गया है। वास्तव में, **होइ** वर्त्तमान काल की और **होइहि**[२] भविष्यत् काल की क्रिया है। इच्छा, आशीर्वाद, आज्ञा आदि अर्थों में **होउ क्रिया** भी आती है—यह वर्त्तमान काल की अन्यपुरुष एकवचनसूचक तिङन्त क्रिया है। जैसे :

---

१. करहु : 'तुरत **करहु** जेवनार' (सूरसागर, १०।३६५)।
२. होइहि (जायसी-ग्रन्थावली, पदमावत ३६५।३) = होगी।

'अचल **होउ**' अहिबातु तुम्हारा ।' (अयो० ६९।८)

अर्थ : तुम्हारा सुहाग अचल हो (होवे) ।

'**होउ** का बहुवचनीय रूप **होहुँ** है । जैसे :

'सुफल मनोरथ **होहुँ** तुम्हारे ।' (बाल० २३७।४)

अर्थ : तुम्हारे मनोरथ सुफल हों ।

× ×

होहुँ=हों (वर्त्तमान काल, इच्छार्थ, अन्यपुरुष, बहुवचन)

होउ=हो, होवे (,, ,, ,, एकवचन)

ग. ६. १९

करि और **कै**[2] परसर्ग तथा क्रियाएँ :

'तेहि **करि**[3] बिमल बिबेक बिलोचन ।' (बाल० २।२)

करि=तृतीया परसर्ग, करण परसर्ग ।

× ×

'जलु पान **करि**' (अयो० १०१।-)

करि=करके (पूर्वकालिक क्रिया) ।

× ×

'जीव चराचर बस **कै** राखे ।' (बाल० २००।४)

कै=करके (पूर्वकालिक क्रिया) ।

संस्कृत 'कृत्वा' के अर्थ में शौर० प्रा० करिय>अप० करि[4]>करि, कइ, कै ।

'प्रातकाल उठि **कै** रघुनाथा ।' बाल० २०५।७)

उठि कै=उठकर (उठकरके) (पूर्वकालिक क्रिया)

× × ×

---

१. मिला० रहउ :–'न त कन्या बरु **रहउ** कुआरी' । (बाल० ७१।४) नहीं तो चाहे कन्या कुमारी रहे ।
'पुनि न सोचु तनु **रहउ** कि **जाऊ** ।' (अयो० ४।५) ।
मिला० : 'द्रवउ' और 'आउ' से :
'द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ।' (गीताप्रेस, बाल० ११२।४) ।
'आँगन **आउ** बरात' (उस्मान-चित्रावली, ३८।५१५।-)।

२. 'मानस' में **कै** का प्रयोग स्त्रीलिंगसूचक सम्बन्धकारकीय परसर्ग के रूप में भी हुआ है । जैसे :
'कृपा राम **कै** जापर होई ।'
राम **कै** कृपा=राम **की** कृपा ।

३. '**तेहि** करि बिमल बिबेक बिलोचन' (गीताप्रेस, बाल० २।२) ।
'**तेहि** करि बिमल बिबेक बिलोचन' (काशि० बाल० २।२) ।

४. शौर० प्रा० ओदरिय>अप० उतरइ>उतरि (अयो० १०२।१)।

विशेष : मानस में **करत** क्रियापद एकवचन में भी प्रयुक्त हुआ है और बहुवचन में भी। १. करत (बाल० २७७।२) = करता, एकवचन करत[1] (अयो० १९५।६) = करता है : एकवचन २. **करत** (अयो० १४४।५) = करते हैं—बहुवचन।

करत (बाल० ३२६। छन्द ४) = करती हैं।

व्रजभाषा में 'करि' आज्ञार्थ में मध्यमपुरुष एकवचनीय क्रिया भी है :

सं० कुर्याः = करि।

ग. ६. २० **हरि आनिहि** और **हरि आनेहि** क्रियापद

सूने **हरि आनिहि** परनारी। (गीताप्रेस लंका० ३०।६,)

अर्थ : तू सूने में पराई स्त्री हर **लाया**।

× ×

'सठ सूनें **हरि आनेहि**[2] मोही।' (गीताप्रेस, सुन्दर० ९।९)

अर्थ : शठ ! तू सूने में मुझे **हर लाया**।

१. हरि आनिहि = (तू) हर लाया।

२. हरि आनेहि = (तू) हर लाया।

आनिहि = आन् + इहि (भूतकाल, मध्यमपुरुष, एकवचन)

आनेहि = आन् + एहि (,, ,, ,,)

उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि **इहि** और **एहि** प्रत्यय एक ही काल, पुरुष और वचन के सूचक है।

वास्तव में **आनिहि** क्रियापद का मूल प्रत्यय **एहि** है जिसमें 'ह्रस्व ए' है और इसे लिपिकारों ने इहि के साथ **आनिहि** लिखा है; क्योंकि ह्रस्व ए के लिए नागरी-वर्णमाला में कोई चिह्न था ही नहीं।

इसी प्रकार, **आनेहि** क्रियापद का भी मूल प्रत्यय **एहि** है, जिसमें 'ह्रस्व ए' है। लिपिकारों ने 'दीर्घ ए' से **एहि** के साथ **आनेहि** लिखा है। वस्तुतः, ध्वनि के आधार पर **आनिहि** और **आनेहि** एक ही क्रियापद है।

अर्थात्, १. हरि आनिहि = हरि आनेहि = हर लाया।

२. हरि आनेहि = हरि आनेहि = हर लाया।

यदि नागरी-वर्णमाला में 'ह्रस्व ए' के लिए पृथक् से कोई चिह्न होता, तो मानस के प्रतिलिपिकार **आनिहि** और **आनेहि** क्रियापदों को एक ही प्रकार लिखते। वास्तव में उक्त

---

१. स्त्रीलिंग क्रिया **करती है** के लिए 'मानस' में **करति** (बाल० २६५।८) प्रयोग मिलता है : 'करति न चरन परस' (गीताप्रेस बाल० २६५।८); **चहत** (बाल० ७८।५ एकवचन) **चहत** (किष्किं० २४।४ बहुवचन);

२. यह संयुक्त क्रिया है। ऐसी क्रियाओं में प्रथम क्रिया इकारान्त होती है, अर्थात् पूर्वकालिक क्रिया का रूप लिखा जाता है। जैसे : **उठि गई** (बाल० ७२।५); **समुझि परी** (बाल० ३१।१)।

क्रियापदों में अलग-अलग **इहि** और **एहि** प्रत्यय न होकर एक ही प्रत्यय **एऽहि** है, जो तिङन्त-क्रिया के भूतकालीन मध्यमपुरुष, एकवचन का सूचक है।

विशेष : यदि **आनिहि** क्रिया में वास्तव में **—इहि** प्रत्यय होता, तो व्याकरणिक अर्थ होता **लायेगा** या **लायेगी**; क्योंकि**—इहि** प्रत्यय भविष्यत्काल का सूचक है। तुलसी के 'मानस' में अनेक स्थलों पर मिलता है। जैसे :

'सोइ **करिहि** कल्यान।' (बाल०७१।—) = कर् + —इहि = **करिहि** = करेगा (तिङन्त सामान्य भविष्य, अन्यपुरुष, एक व०)।

'सो सब बिधि तुम्ह सन भल **मानिहि**' (अयो० १७५।७) = मान् + —इहि = मानिहि = मानेगा (तिङन्त, सामान्य भविष्य, अन्यपुरुष, एक व०)।

'मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी' (किष्कि० ५।२) = मिल् + —इहि = मिलिहि = मिलेगी (तिङन्त, सामान्य भविष्य, अन्यपुरुष, एक व०)।

ग. ६. २१. हरषी और रहसी :

'मानस' में **हरषी** क्रिया छह बार और **रहसी** दो बार आई है। निष्कपट सच्चरित्र, भले एवं रामस्नेही व्यक्ति की प्रसन्नता पर तुलसी **हरषी** क्रिया का और कपटी, स्वार्थी तथा रामविरोधी की प्रसन्नता पर **रहसी** क्रिया का प्रयोग करते हैं—हरषी (अयो० १०१।५); रहसी (अयो० १७।२; ४३।१)।

घ. ७ *अव्यय*

घ. ७. १. कि और की अव्यय :

'रामचरितमानस में **कि** और **की** अव्यय **क्या** के अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं और ये **अथवा** के अर्थ में भी मिलते हैं :

(१) **क्या** के अर्थ में

'काटें सीस **कि** होइअ सूरा।' (लंका० २९।९)

अर्थ : सिर काटने से **क्या** कोई शूर हो जाता है।

'**की** तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ।' (किष्कि० १।१०)

अर्थ : **क्या** तुम तीन देवों में कोई हो ?

(२) **अथवा** के अर्थ में :

की तनु प्रान **कि**' केवल प्राना।' (अयो० ५८।४)

अर्थ : **या** तो शरीर और प्राण **या** केवल प्राण।

---

१. सूर के सूरसागर में भी अथवा के अर्थ में **कि** (सूरसागर १०।१३५); **की** (सूरसागर १०।३५१६) और **कै** (सूरसागर १।७) का प्रयोग हुआ है।

घ. ७. २. जहाँ, तहाँ[1] और जहवाँ, तहवाँ, अव्यय

घ. ७. २. १.

१. **जहाँ** क्रियाविशेषण अव्यय का प्रयोग :

'जाब **जहाँ** लगि तहँ पहुँचाई ।' (अयो० ११२।८)

अर्थ : जहाँतक आप जायेंगे, वहाँतक पहुँचाकर ।

घ. ७. २.२.

२. **तहाँ** क्रियाविशेषण अव्यय का प्रयोग :

'अवध तहाँ जहँ राम निबासू ।' (अयो० ७४।३)

अर्थ : जहाँ राम का निवास है, वहीं अयोध्या है ।

घ. ७ २. ३.

जहवाँ, तहवाँ क्रियाविशेषण अव्यय का प्रयोग :

'चला अकेल जान चढ़ि **तहवाँ** ।
बस मारीच सिंधु तट **जहवाँ** ।।'

अर्थ : वह (रावण) यान पर चढ़कर अकेला वहाँ को चला, जहाँ समुद्र के किनारे मारीच रहता था ।

जहाँ, तहाँ अवधी-भाषा के अव्यय हैं और जहवाँ, तहवाँ भोजपुरी के ।

ङ. ८. शब्द और उनके भिन्नार्थ :

ङ. ८. १. पास, मृग, मन्दिर सादर और आना :

इन शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुसार 'मानस' में भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है ।

शब्द	अर्थ	प्रयोग
१. पास	= निकट (आधुनिक अर्थ)	'गए हिमाचल **पास**' (बाल० ९०।—)
पास	= तरफ, ओर (सं०पार्श्व) (प्राचीन अर्थ)	'सोहत पुर चहुँ **पास** ।' (बाल० २१२।—)
२. मृग	= पशु (प्राचीन अर्थ)	'खग **मृग** सुर नर असुर समेते ।' (बाल० १८।३)
मृग	= हिरन (आधुनिक अर्थ)	तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं **मृग** जिमि जीव दुखारी ।। (बाल० ४३।८)
३. मन्दिर	= देवालय (आधुनिक अर्थ)	= 'पुनि **मन्दिर** नभ बानी भइ' (उत्तर० १०८।)

१. जहँ-तहँ का प्रयोग : 'जहँ-तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा ।' (अयो० १९८।१)

मन्दिर = महल (प्राचीन अर्थ) = 'हाट बाट **मन्दिर** सुरबासा।' (बाल० २८७।४)

४. सादर = आदर-सहित (आधुनिक अर्थ) = 'सेवत **सादर** समन कलेसा।'
(बाल० २।१२)

सादर = उत्सुकता-सहित (प्राचीन अर्थ) = 'जननिन्ह **सादर** बदन निहारे।'
(बाल० ३१८।८)

'**सादर** सकल कुअँरि समुझाई।' (बाल० ३३४।७)

५. आना = लाया = 'माँगी नाव न केवटु **आना**।'[1] (अयो० १००।३)
'श्री रघुपति प्रताप उर **आना**।' (उत्तर० ९३।२)
आना = अन्य 'अस पन तुम्ह बिनु करै को **आना**।' (बाल० ५७।५)
'जेहिं जय होइ सो स्यन्दन **आना**।' (लंका० ८०।४)
आना = दुहाई = 'तेहि कोसलाधीस कै **आना**।' (सुन्दर० ५२।६)
आन = 'मोहि राम राउरि **आन** दसरथ सपथ सब साँची कहौं।'
(अयो० १००।छन्द)

(**विशेष** : 'रामचरितमानस' में ईकारान्त पुंलिंग एकवचन शब्द के रूप प्रथमा और तृतीया के एकवचन में भिन्न-भिन्न मिलते हैं :)

१. **तुलसी** प्रथमा, एकवचन : 'रामचरितमानस कबि **तुलसी**।'
(गीताप्रेस, बाल० ३६।१)

अर्थ : तुलसी रामचरितमानस का कवि है।

२. **तुलसीं**[2] तृतीया, एकवचन : 'राम जसु **तुलसीं** कह्यो' (गीताप्रेस, बाल० ३६१।छन्द)

अर्थ : तुलसी द्वारा राम-यश कहा गया।

ङ ८. २. **निहोर निहोरा, असंका, पूर, बिहान** और **धारी** :

शब्द	अर्थ	प्रयोग

१. निहोर = मनोहार, खुशामद = 'करहु कृपा हरि जस कहउँ
पुनि पुनि करउँ **निहोर**।' (गीताप्रेस, बाल० १४।ख)
निहोर = एहसान, उपकार = 'राखा राम **निहोर** न ओही।' (किष्कि० २६।५)

२. निहोरा[3] = प्रार्थना, मनोहार = 'मैं अपनी दिसि कीन्ह **निहोरा**' (बाल० ५।१)

---

१. मिला०—'आनहु चर्म कहति बैदेही।'—(अर० २७।५)
आनहु = लाइए।

'**आवा** सो प्रभु हमरे गाऊँ।'—(किष्किं० ६।२)
आवा = आया।

२. मिला० '**जोगीं**' (गीता प्रेस, बाल० ३५०।६); **रोगीं** (गीता प्रेस; बाल० ३५०।६)।

३. यह संज्ञा के रूप में है। इसी अर्थ में ब्रज-क्षेत्र में भी प्रचलित है।

निहोरा[1] = मनोहार किया = 'सोइ कृपालु केवटहिं **निहोरा**।' (अयो० १०१।४)

३. असंका = आशंका, सन्देह, भय = 'तदपि **असंका** कीन्हिहु सोई।' (बाल० ११३।१)
असंका = शंकारहित, निःशंक = 'तहँ रह रावन सहज **असंका**।' (किष्कि० २८।११)

४. पूर = पूर्ण (विशेषण) = 'देखि **पूर** बिधु बाढ़इ जोई।' (गीता प्रेस, बाल० ८।१४)
पूर देहि = पूर्णता (संज्ञा) दे = 'सुनि मतिमंद देहि अब **पूरा**।'
(गीताप्रेस, लंका० २९।९)

५. बिहान = सं० विभान = बिहान = सबेरा = 'होत **बिहान**।' (बाल० १५६।-)
बिहान = सं० विहान = वि[2] + हा + अन = दूरीभवन = 'बिपति बिहान।'
(अयो० ९।६)

६. धारी = रेखा, पंक्ति = 'चलि रघुबीर सिलीमुख **धारी**।' (लंका० ९२।७)

७. धारी = धारण करनेवाला = 'कामरूप सुन्दर तनु **धारी**।' (बाल० ६४।५)
धारी = रखा, धरा = 'रंगभूमि जब सिय पगु **धारी**।' (गीताप्रेस, बाल० २४८।४)
धारी = धारण करके = 'राम भगत हित नर तनु **धारी**[3]।' (बाल० २४।१)
विशेष : धारी = **धरी** = धारि = धरि = धारण करके।
'मसक समान रूप कपि **धरी**। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥' (सुन्दर० ४।१)
अर्थ : कपि (हनुमान्) मच्छर के समान रूप धारण करके नर-नारायण का स्मरण करके लंका को चले।

ङ. ८. ३. **गएउँ** और **बोलि** :

शब्द	अर्थ	प्रयोग

१. गएउँ[4] = मैं गया = 'मैं जेहि समय गएउँ खग पासा।' (उत्तर० ५८।१)
अर्थ : मैं जिस समय खग (काकभुशुण्डि) के पास गया।
गएउँ = मैं नष्ट हुआ = 'कवने अवसर का भएउ, **गएउँ** नारि बिस्वास।'
(अयो० २६।—)

---

१. यह भूतकालीन क्रिया के रूप में है।

२. इसी धातु से 'ल्यप्' के योग से '**विहाय**' है।

३. 'धारी' क्रिया भूतकाल में स्त्रीलिंग, एकवचन है; क्योंकि इसका कर्त्ता 'सिय' स्त्रीलिंग है। इसका पुंलिंग, एकवचन रूप 'धारेउ'। 'कछुक काज विधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपतिपुर पगु **धारेउ**'।
(अयो० १६०।२)

४. यदि '**गइउँ**' होता, तो अर्थ होता 'मैं गई।' जैसे :
'रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। **गइउँ** न संग न प्रान पठाए।' (अयो० १६६।५)
अर्थ : कौशल्याजी कहती हैं कि राम, लक्ष्मण और सीता वन को गये। मैं न साथ गई और न प्राण भेजे।

समाप्त हुआ = **अर्थ** : किस अवसर पर क्या हुआ ? मैं नारी के विश्वास में नष्ट हो गया। अर्थात्, नारी के विश्वास में समाप्त हो गया। (मारा गया।)।

२. बोलि = बोलकर, जानकर = 'बालकु **बोलि** बधौं नहि तोही।' (बाल० २७२।५)
बोलि[१] = बुलाकर = 'सुता **बोलि** मेली मुनि चरना।' (बाल० ६६।८)

ङ. ८. ४. **भेंटेउ, भेंटा, भेंटी, भेंटे** और **भेंटीं** क्रियापद :

शब्द	अर्थ		प्रयोग
१. भेंटेउ =	भेंटा गया (समान या कुछ उच्चस्तरीय व्यक्ति के प्रति प्रयोग) (कर्मवाच्य क्रिया) पुं०, एकव०	=	'भेंटेउ तनय[२] सुमित्राँ राम चरन रति जानि'। (गीता प्रेस, उत्तर० ६ (क)।—) **अर्थ** : राम के चरणों में प्रेम जानकर सुमित्रा द्वारा उसका पुत्र (लक्ष्मण) भेंटा गया।

२. भेंटा = भेंटा गया (निम्नस्तरीय व्यक्ति के प्रति प्रयोग) (कर्मवाच्य क्रिया) पुं०, एकव० = 'रामसखा[३] रिषँ बरबस **भेंटा**।' (काशिराज०, अयो० २४२।३) **अर्थ** : ऋषि द्वारा राम-सखा जबरदस्ती भेंटा गया।

भेंटा = भेंट, मिलन = 'कतहुँ होइ निसिचर सैं **भेंटा**'। (काशिराज०, किष्कि० २४।१) (संज्ञा) **अर्थ** : कहीं राक्षस से भेंट होती है।

३. भेंटी = भेंटी गई = 'प्रथम राम **भेंटी** कैकेई[४]।' (अयो० २४४।७) (कर्मवाच्य क्रिया) (स्त्री०, एकव०) **अर्थ** : पहले राम द्वारा कैकेयी भेंटी गई।

४. भेंटे = भेंटे गये = 'प्रीति सहित सब **भेंटे**[५] रघुपति करुनापुंज।' (सुन्दर० २९।—)

---

१. **बरषहिं** (बाल० ३६।४) = सकर्मक, (= बरसाते हैं)। **बरषहिं** = (किष्किं० १४।३) = अक०(= बरसते हैं)। **बरिसहिं** (बा० २५५।३) = सकर्मक (= बरसाते हैं)।

२. 'तनय' 'कर्म कारक' पुंलिंग, एकवचन।

३. रामसखा, कर्मकारक, पुंलिंग, एकवचन।

४. 'कैकेई 'कर्मकारक, स्त्रीलिंग, एकवचन।' पंच कहें सिवँ सती **बिबाही**।' (बाल० ७९।८) = पंचों के कहने से शिव द्वारा सती ब्याही गई।

५. 'सब' कर्मकारक, पुंलिंग, बहुवचन।

(कर्मवाच्य क्रिया) **अर्थ** : करुणापुंज रघुनाथ द्वारा प्रीतिपूर्वक सब भेंटे गये। (पुं०, बहुव०)

५. भेंटीं = भेंटी गईं = **'भेंटीं रघुबर मातु' सब'** (गीता प्रेस, २४४।—) (कर्मवाच्य क्रिया, अर्थ : रामचन्द्रजी द्वारा सब माताएँ भेंटी गईं। स्त्री० बहुवचन)

क्रियापद		काल		लिंग-वचन		कर्म	लिंग-वचन
भेंटेउ, भेंटा[2]	=	सामान्यभूत	=	पुं०, एकव०	=	**तनय, रामसखा**	(पुं०, एकव०)
भेंटे	=	,,		पुं०, बहुव०	=	**सब**	(पुं०, बहुव०)
भेंटी	=	,,		पुं०, एकव०	=	**कैकेई**	(स्त्री०, एकव०)
भेंटीं	=	,,		पुं०, बहुव०	=	**सब मातु**	(स्त्री०, बहुव०)

उपर्युक्त क्रियाएँ कर्मवाच्य की है। ये लिंग-वचन में कर्म का अनुसरण करती हैं। इसलिए 'प्रथम राम **भेंटी** कैकेई' में समझ लेना चाहिए कि **'राम'** कर्त्ता है, जो तृतीया विभक्ति में है (यद्यपि यहाँ विभक्ति-प्रत्यय लुप्त है) और कर्म **'कैकेई'** है। कर्मवाच्य क्रिया **'भेंटी'** अपने **'कैकेई'** कर्म के अनुसार स्त्रीलिंग, एकवचन में प्रयुक्त हुई है। क्रिया का करनेवाला तो कर्त्ता ही होता है। अतः, भेंट करने की क्रिया 'राम' ने ही की है। क्रियापद **कर्मवाच्य** में है, इसीलिए कर्म (कैकेई) के अनुसार प्रयुक्त हुआ है।

'भेंटेउ' का कर्त्ता **'सुमित्राँ'** और **'भेंटा'** का कर्त्ता **'रिषँ'** है। ये दोनों तृतीया विभक्ति में हैं। **'सुमित्राँ' 'रिषँ'** आदि की अन्तिम अनुनासिकता तृतीया विभक्ति-प्रत्यय को सूचित करती है। अर्थात्, सुमित्राँ[3] = सुमित्रा द्वारा। रिषँ = ऋषि द्वारा। **देवँ** (अयो० २६९।३) = देव द्वारा। **जोगीं** (गीता प्रेस, बाल० ३५०।६) = योगी द्वारा। **बानीं** (गीता प्रेस, बाल० २२८।३) = वाणी से, वाणी में।

निम्नांकित पदों में अन्तिम अनुनासिकता, अर्थात् चन्द्रबिन्दु सप्तमी विभक्ति-प्रत्यय का भी सूचक है।

पद	विभक्ति	प्रयोग
सुनावँ (= सुन्दर नाव पर)	—सप्तमी	'गुरहि **सुनावँ** चढ़ाइ सुहाई '(गीता प्रेस, २०२।८)
हृदयँ (= हृदय में)	,,	'कबि कोबिद अस **हृदयँ** बिचारी' (गीता प्रेस, बाल० ११।६)

---

१. 'सब मातु' कर्मकारक, स्त्रीलिंग, बहुवचन।

२. पारबती निरमएउ जेहिं '(गुप्त-संस्क०, बाल० ७१।-) का **'निरमएउ'** क्रियापद यह सिद्ध करता है कि यह पाठ सन्दिग्ध है। व्याकरणानुसार 'पारबती' और 'निरमएउ' में संगति नहीं।

३. मिलाइए 'सतीं (बाल० ६३।४) = सती द्वारा (तृतीया)।

राजसभाँ (=राजसभा में) ,, 'राजसभाँ रघुबीर बखाने।' (गीता प्रेस, बाल० २६१८)

कोसलपुरी[1] (=अयोध्यापुरी में) ,, 'कोसलपुरी' प्रगट नर भूपा।' (गीता प्रेस, बाल० १८७।४)

ङ. ८. ५. **उठा, उठेउ, चला, चलेउ, मिला, मिलेउ** और **मिले** क्रियापद :

ये क्रियाएँ भूतकाल की हैं और कृदन्त-प्रयोग की है। व्याकरण की दृष्टि से इन्हें सामान्य भूतकाल की पुंलिग, एकवचन की क्रियाएँ कह सकते हैं। सामान्यतः, **आ** प्रत्ययान्त क्रियाएँ कुछ-कुछ अनादर या हीनभाव की सूचक है और—**एउ** प्रत्ययान्त क्रियाओं में आदर या उच्चता का भाव समाविष्ट है। निम्नांकित उदाहरण प्रमाण के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

१. आ प्रत्ययान्त क्रियाएँ अर्थात् **उठा, चला, मिला** :

उठा (=उठा)—'दसमुख बोलि **उठा** अकुलाना।' (लंका० ५।१०)

तुलसी का रावण के प्रति उच्चता या आदर का भाव नहीं है, इसीलिए '**उठा**' क्रिया का प्रयोग किया गया है। यही बात निम्नांकित क्रियाओं में है :

चला (=चला)—'अस कहि **चला** महा अभिमानी।' (किष्कि० ८।१)

'चला' क्रिया का कर्त्ता 'बाली' है, जो यहाँ लुप्त है।

मिला (=मिला)—'**मिला** असुर बिराध मग जाता।' (अर० ७।६)

'**मिला**' का कर्त्ता 'बिराध' राक्षस है, जो आदरणीय नहीं है।

उठेउ (=उठे)—'सुनत **उठेउ** ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु।' (अयो० १४८।-)

राजा दशरथ आदरणीय व्यक्ति है। अतः, उसके लिए तुलसी ने '**उठेउ**' क्रिया का प्रयोग किया है, **उठा**[2] का नहीं। यही बात '**चलेउ**', **मिलेउ** और **मिले** के सम्बन्ध में कही जा सकती है :

चलेउ (=चले) 'अस कहि **चलेउ** मनोज नसावन।' (बाल० ५०।३)

अर्थ : ऐसा कहकर शिवजी कामदेव का नाश करने चले।

चले (=चले) '**चले** भवन सँग दच्छकुमारी।' (बाल० ४८।६)

---

१. पदान्त की यह अनुनासिकता सप्तमी एकवचन की सूचक है।

२. 'सुनत दसानन **उठा** रिसाई।' (सुन्दर० ४१।२)

'सहित सभा संभ्रम **उठेउ**, रविकुल कमल दिनेसु।' (अयो० २७४।-)

'**उठा**' क्रिया से प्रकट है कि रावण के प्रति तुलसी का हेठा भाव है और '**उठेउ**' से प्रकट है कि रामचन्द्रजी के प्रति पूज्य भाव है।

अर्थ : शिवजी दक्षकुमारी के साथ कैलास को चले।

मिलेउ (=मिले) '**मिलेउ** बहोरि भरत लघु भाई।' (अयो० १९६।३)

अर्थ : फिर भरत के छोटे भाई शत्रुघ्न जी मिले।

मिले (=मिले) '**मिले** आजु मोहि राम पिरीते।' (गीता प्रेस, उत्तर० २ (क)।११)

अर्थ : मुझे आज राम के प्रिय मिले।

विशेष : साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में **चल, चलो** और **चलिए**—ये तीन क्रियाएँ तीन प्रकार का भाव प्रकट करती है। **'चल'** से हीनता या अनादर या छोटेपन का भाव व्यक्त होता है। **'चलो'** में कुछ उच्चता का भाव है। **'चलिए'** में उससे भी अधिक उच्च आदर का भाव है। इसी प्रकार तुलसी के **मिला**, **मिलेउ** और **मिले** में अन्तर समझना चाहिए।

१. **मिला**[1]– निम्नस्तरीय, छोटे या अनादरणीय के लिए।

२. **मिलेउ**[2] = समान, उच्चस्तरीय, बड़े आदरणीय के लिए।

३. **मिले** = परम आदरणीय के लिए।

विशेष : बोलेउ और **बोले** में भी आदर की कोटियाँ व्यक्त हैं। **बोलेउ** से अधिक '**बोले** में अधिक आदर है—'पुनि तापस **बोलेउ** मृदु बानी।' (बाल० १५९।२)।

'बोले अति पुनीत मृदुबानी' (बाल० ४५।६)।

ङ. ८. ५. उतारहि, करहि, धरहि, लेहि, करु, धरु, करहु, धरहु, लेहु, क्रियापद :

'मानस' में –अहि, –उ और –अहु या –हु प्रत्ययान्त क्रियापद मध्यमपुरुष के सूचक है। किन्तु, ये प्रत्यय सामाजिक स्तर के साथ वक्ता के मनोभावों को भी सूचित करते हैं। अत्यन्त प्रिय या निम्न स्तर के व्यक्ति के लिए **–अहि** प्रत्यय के योगसहित क्रिया प्रयुक्त होती है। समानता में प्रायः **–उ** प्रत्यय और आदरणीय तथा उच्च स्तर के व्यक्ति के लिए प्रायः **–अहु** या **–हु** प्रत्यय का प्रयोग होता है।

क्रियापद	**अर्थ**
१. उतारहि, करहि, धरहि, लेहि	=उतार, कर, रख, ले (निम्नस्तरीय या छोटा एवं परमप्रिय)
२. करु[3] (अयो० १०१।१) **धरु**	=कर (करो), पकड़ो (समान या उच्चस्तरीय)

---

१. '**मिला** असुर बिराध मग जाता।'—(अर० ७।६)
'**मिला** हमहि कपि गुर बड़ ज्ञानी।'—(सुन्दर० २४।२)

२. '**मिलउ** सबन्हि अति प्रेम कपीसा'—(सुन्दर० २९।३)

३. '**करु**' का प्रयोग '**करहि**' की भाँति निम्नस्तरीय व्यक्ति के लिए भी हुआ है।

३. करहु,[1] धरहु, लेहु =करिए, पकड़िए, लीजिए
(अधिक उच्चस्तरीय)

१. उतारहि = 'होत बिलंबु **उतारहि** पारू।' (अयो० १०१।२)

अर्थ : रामचन्द्रजी केवट से कहते हैं—विलम्ब होता है, पार उतार।

विश्लेषण : केवट का सामाजिक स्तर निम्न कोटि का है : रामचन्द्रजी उसके लिए '**उतारहि**' क्रियापद का प्रयोग करते हैं। केवट परमप्रिय भी है, इसलिए भी **उतारहि** का प्रयोग ठीक माना जा सकता है।

२. **करहि**[2] ='देहि अगिनि तन **करहि** निदाना।' (सुन्दर० १२।११)

अर्थ : सीताजी अशोकवृक्ष से कहती हैं—'तू अग्नि दे और शरीर का 'अन्त' कर।

विश्लेषण : सीताजी अशोकवृक्ष के लिए '**करहि**' क्रिया का प्रयोग कर रही हैं।

३. **धरहि** 'धरनि **धरहि** मन धीर।' (बाल० १८३।—)

अर्थ : ब्रह्माजी पृथ्वी से कहते हैं—तू मन में धैर्य रख।

४. **लेहि**[3] ='कहेउ कृपाल **लेहि** उतराई।' (अयो० १०२।४)

अर्थ : रामचन्द्रजी द्वारा कहा गया है कि हे केवट तू उतराई ले।

विश्लेषण : अधिक प्रिय पात्र के लिए भी **–अहि** प्रत्यय का योग धातु में किया जाता है। ब्रह्मा के लिए पृथ्वी और राम के लिए केवट अत्यन्त प्रिय है। इसीलिए '**धरहि**' और '**लेहि**' क्रियाएँ प्रयुक्त हैं।

आदरणीय एवं उच्च स्तर के व्यक्तियों के प्रति तुलसी प्रायः –हु या –अहु प्रत्ययान्त क्रियापदों का प्रयोग करते हैं।

१. लेहु—'कबहुँ न देहु न लेहु।' (अयो० २७।—)

अर्थ : कैकेयी राजा दशरथ से कहती है—'आप कभी न दें, न लें।'

विश्लेषण : कैकेयी के लिए दशरथ आदरणीय हैं।

२. **करहु**—'पुनि पुनि तात **करहु**[4] गुन गानहिं।' (उत्तर० ४२।६)

---

१. मिला० रामचरितमानस, गीताप्रेस—**करउँ** (बाल० २।४) =मैं करता हूँ। **करौं** (बाल० ५२।४) = मैं करूँ। **करउ** (उत्तर० १२८।) =वह करे। करहुँ (अयो०२७३।७) =वे करें।

२. **करसि** (गीताप्रेस, ष्किकि० ९।६) =तू करता है। **करेसि** (गीताप्रेस, लंका० ५१।५) = उसने किया। **करसि** =सामान्य वर्त्तमान, मध्यम पुरुष। **करेसि** =सामान्यभूत, अन्य पुरुष।

३. **लेहि** (अयो० १०२।४) =तू ले।
अप० **करहि** (हैम० व्या० ८।४।३८५।१) =तू कर।

४. **करहु** =तुम करो, आप करिए। **करेहु** (बाल०५२।३) =तुम करना। **करहु** वर्त्तमानकाल को और '**करेहु**' भविष्यत्काल को सूचित करती है।

अर्थ : ब्रह्माजी नारदजी से कहते हैं कि हे तात ! रामचन्द्रजी का गुणगान बार-बार कीजिए ।

विश्लेषण : नारदजी आदरणीय हैं, सम्माननीय हैं । इसीलिए ब्रह्माजी ने '**करहु**' क्रिया का प्रयोग किया है ।)

३. **धरहु**—'अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी ।' (बाल० ७५।२)

अर्थ : आकाशवाणी हुई कि हे भवानी ! आप ब्रह्मा की श्रेष्ठ वाणी को हृदय में धारण करें या धारण कीजिए ।

विश्लेषण : पार्वती उच्च हैं, आदरणीय भी हैं । अतः, उनके लिए '**धरहु**' क्रिया प्रयुक्त हुई है ।

विशेष : गीताप्रेस और काशिराज-संस्करणवाली प्रतियों में '**करइ**' और '**करै**' क्रियाओं को व्याकरणिक अर्थभेद के साथ लिखा गया है : १. **करइ**= करता है (वर्त्तमान काल, अन्यपुरुष, एकवचन) २. **करै**—करे (भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, एकवचन)। डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण में ऐसा नहीं है । जैसे : 'करइ[1] मनोहर मति अनुहारी ।' (गीताप्रेस, काशि०, बाल० ३६।२); 'को गुन दूषन करै[2] बिचारा ।' (गीताप्रेस, काशि०, बाल० ८१।२) ।

च. १. भाव-भावना विशेष के प्रसंग में कवि के नामसूचक शब्द :

१. तुलसी २. तुलसीदास ३. दास तुलसी

१. तुलसी.

'मंगल करनि कलि मल हरनि **तुलसी** कथा रघुनाथ की ।' (बाल० १०। छन्द)

'रामचरितमानस कवि **तुलसी** ।' (बाल० ३६।१)

'भरत चरित करि नेमु **तुलसी** जो सादर सुनहिं ।' (अयो० ३२६।—)

उपर्युक्त उद्धरण भगवान् राम के चरित्रों की कथा से सम्बद्ध हैं । इनमें '**तुलसी**' शब्द का प्रयोग हुआ है । रामकथा में भगवद्भक्तों की चरित-कथा भी सम्मिलित समझनी चाहिए । इन उद्धरणों में भगवान् राम अप्रत्यक्ष हैं । भगवान् की लीला और कथा की विशालता तथा विस्तार के आगे लघुतम तुलसीदास अपने को लघु नाम से, अर्थात् 'तुलसी' नाम से ही व्यक्त करना ठीक समझते हैं ।

२. तुलसीदास :

'जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी **तुलसीदास** ।' (बाल० २६।—)

'साहिब सीतानाथ से सेवक तुलसीदास। ' (बाल० २८।—)

---

१. मिला० '**छाड़इ** स्वास कारि जनु साँपिनि ।' गीताप्रेस, अयो० १३।८), छाड़इ=छोड़ती है ।
२. मिला० 'सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ।' (गीताप्रेस, अयो० २३२।२), छाड़ै=छोड़े ।

बरनै **तुलसीदास** किमि अति मतिमंद गँवारु ।' (बाल० १०३।–)

'तिमि अवध **तुलसीदास** प्रभु बिनु समुझि धौं जिअँ भामिनी ।'

(अयो० ५० । छन्द)

'ते धन्य **तुलसीदास** आस बिहाइ जे हरि रँग रए ।' (अर०४६। छन्द)

'ताकै गुन गन कछु कहे जड़मति **तुलसीदास** ।' (लंका० १०१।–)

'मतिमन्द **तुलसीदास** सो प्रभु मोह बस बिसराइयो ।' (लंका० १२१। छन्द)

ये उद्धरण भगवान् राम के नाम-गुण-गणों से सम्बद्ध हैं । इनमें **तुलसीदास** शब्द आया है । ये उद्धरण ऐसे हैं, जिनमें भगवान् अप्रत्यक्ष रूप में हैं । नाम-गुण-गणों के स्मृति पथ में आते ही तुलसी तुरन्त अपने को दास अनुभव करने लगते हैं । पहले अपने को तुलसी मान रहे थे, फिर, 'दास' । इसीलिए, वहाँ **तुलसीदास** लिख देते हैं । राम को अप्रत्यक्ष स्थिति में कथा सुनते-सुनाते 'दास' समझने की भावना बाद में ही जगती है । पहले **तुलसी**, फिर **दास**, अतः लिख दिया 'तुलसीदास' ।

३. दास तुलसी

'उपमा न कोउ कह **दास तुलसी** कतहुँ कबि कोबिद कहें ।' (बाल० ३११। छन्द)
'रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु **दास तुलसी** गावई ।' (अर० ६। छन्द)
'बिस्वास करि कह **दास तुलसी** राम पद अनुरागहू ।' (अर० ३६। छन्द)
'रघुबीर पद पाथोज मधुकर **दास तुलसी** गावई ।' (किष्किं० ३०। छन्द)
'यह चरित कलिमलहर जथामति **दास तुलसी** गाएऊ ।' (सुन्दर० ६०। छन्द)
'कह **दास तुलसी** कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने ।' (लंका० ७१। छन्द)
'कह **दास तुलसी** जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे ।' (लंका० ८६। छन्द)

उक्त उद्धरण जिन-जिन छन्दों से लिये गये हैं, वे छन्द भगवान् राम के रूप-दर्शन एवं रूप-वर्णन से सम्बद्ध हैं । वहाँ राम प्रत्यक्ष हैं । उस प्रत्यक्ष रूप-दर्शन के समय आलम्बन राम ही होते हैं, किन्तु आश्रय कोई भगवद्भक्त होता है या स्वयं तुलसी । भगवान् राम का प्रेमी या भक्त जब भावनानुकूलता के साथ राम-रूप-दर्शन में लीन होता है, तब कवि तुलसी भी उस मानसिक भाव-भूमि में उस प्रेमी या भक्त से पूर्णतः तादात्म्य करते हैं और उन क्षणों में तुलसी की भी दास्य-भाव-भक्ति पूरी तरह जाग्रत् हो जाती है । हृदय के आँगन में अपने स्वामी असीम शक्ति और रूपवाले भगवान् राम के दर्शन करते हुए तुलसी तब अपने को मुख्यतः 'दास' मानते हुए ही निवेदन करते हैं । अतः, वे तब प्रायः **दास तुलसी** ही लिखते हैं । तब वे 'दास' पहले हैं, 'तुलसी' बाद में ।

च. २ भाव-भावना के सन्दर्भ में 'इहाँ' और 'उहाँ' अव्यय :

'रामचरितमानस' में मुख्य रूप से कथा के प्रसंग में तीन ही पक्ष हैं—१. राम-पक्ष २. रावण-पक्ष ३. रामभक्त-पक्ष । रामभक्तों में भरत और हनुमान् उत्तम कोटि के भक्त हैं । जब कथा में ऐसे स्थल आते हैं कि एक ओर भरत-चरित्र और दूसरी ओर

राम-चरित्र रहता है, तब तुलसी अपनी भावना-भूमि में भरत के साथ रहते हैं, अर्थात् राम-भक्त भरत के पक्ष के लिए प्रायः **इहाँ** और राम-पक्ष के लिए **उहाँ** का प्रयोग करते हैं :

भरत-पक्ष (रामभक्त-पक्ष)	**राम-पक्ष**
'इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ । मन्दाकिनीं पुनीत नहाएँ ।' (अयो० २३३।४)	'उहाँ रामु रजनी अवसेषा । जागे सीय सपन अस देखा ।' (अयो० २२६।३)
'इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर ।। (उत्तर० ४।१)	'उहाँ रामु लछिमनहि निहारी । बोले बचन मनुज अनुसारी ।।' (लंका० ६१।१)
'अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ।।' (उत्तर० ४।७)	
हनुमत्-पक्ष (रामभक्त-पक्ष)	**इतर पक्ष**
'इहाँ न सुधि सीता कै पाई ।' (किष्कि० २६।४)	उहाँ गए मारिहि कपिराई ।' (किष्कि० २६।४)

जब राम-पक्ष और रावण-पक्ष के प्रसंग में वृत्तान्त चलता है, तब राम-पक्ष के लिए **इहाँ** और रावण-पक्ष के लिए **उहाँ** का प्रयोग मिलता है :

राम-पक्ष	**रावण-पक्ष**
'इहाँ राम अंगदहि बोलावा । आइ चरन पंकज सिरु नावा ।' (लंका० ३८।३)	'उहाँ निसाचर रहहि ससंका । जब ते जारि गएउ कपि लंका ।।' (सुन्दर० ३६।१)
'इहाँ देवरिषि गरुड़ पठावा । राम समीप सपदि सो आवा ।' (लंका० ७४।१०)	'उहाँ दसानन सचिव हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ।।' (लंका० ४८।३)
'इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई । सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ।।' (लंका० ८५।१)	'उहाँ दसानन जागि करि, करै लाग कछु जज्ञ ।' (लंका० ८४।)

उक्त स्थलों से सिद्ध है कि तुलसी 'रामचरितमानस' में भाव-विचारों की भूमि पर प्रायः भरत, हनुमान् और राम के साथ ही अधिक पाये जाते हैं ।

[**विशेष** : विशेषरूपेण द्रष्टव्य यह है कि ग्रन्थ-लेखन के समय अपनी वस्तु-विश्लेषण-प्रक्रिया में मैंने कुछ स्थलों पर व्याकरणिक रूपों को स्पष्ट करते हुए ऐसा लिखा है कि

"तुलसीदास के 'मानस' में अमुक प्रत्यय अमुक व्याकरणिक कोटि का सूचक है, किन्तु कहीं-कहीं अमुक कोटि को भी प्रकट करता है।"]

पाठ ५. ७ (परिशिष्ट) में एक स्थल पर लिखा गया है कि '**उतरहिं** नर भवसिंधु अपारा' (अयो० १०१।३) में **उतरहिं** का-**अहिं** प्रत्यय सामान्य वर्त्तमान काल के अन्यपुरुष, बहुवचन को सूचित करता है। यह क्रिया का तिङन्त प्रयोग है। तुलसी ने कुछ स्थलों पर -अहिं प्रत्ययान्त क्रियापदों का प्रयोग सामान्य भविष्यत्काल में भी किया है। जैसे :

'**फिरहिं** रामु सीता मैं हारी। (गुप्त, गीताप्रेस, काशिराज० लंका० ३४।९)

फिरहिं = √फिर् + अहिं (= फिरेंगे)

ऐसे कथनों का तात्पर्य यह है कि—**अहिं** प्रत्यय व्याकरणिक रूप की दृष्टि से तो सामान्य वर्त्तमान काल को ही प्रकट करता है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से तुलसी ने उसे कहीं-कहीं भविष्यसूचक समय के लिए भी प्रयुक्त कर दिया है।

यह छोटे पैमाने पर संक्षिप्त रूप में एक दिग्दर्शन-मात्र है। ग्रन्थ के मूल भाग में इसी प्रकार के ध्वनि, रूप और अर्थ से सम्बद्ध प्रकरणों का विस्तृत विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो भाषाशास्त्र के आधार पर है।

१. ध्वनि-विचार

१. ध्वनि-विचार

१. १ रामचरितमानस की मूल ध्वनियाँ

१. १. १. स्वर

	आदि	मध्य	अन्त
अ	अवधि (उत्तर० १।१)	जिअन (अयो० १५६।१)	पिअ (अयो० ६४।१)
आ	आजु (अयो० २३०।३)	अधारा (उत्तर० १।१)	अधारा (उत्तर० १।१)
	आन (अयो० १००। छन्द)	सिआरा (अयो० ६७।७)	आवा (किष्कि० ६।२)
	आस (अयो० १६।१)	× ×	मुखिया (अयो० ३१५।—)
इ	इहाँ (अयो० २३३।४)	चकइहि (अयो० ६४।२)	आइ (अयो० २४६।१)
	× ×	देइअ (अयो० २४४।—)	चितइ (अर० १७।११)
ई	ईति (अयो० २३५।३)	पुनीत (अयो० २३२।४)	भई (आर० ३०।—)
			लो) भाई[1] (बाल० २२७।३)
उ	उदारा (अयो० ६६।१)	आउब (बाल० २३४।६)	रहेउ (उत्तर० १।१)
	उजिआरे (बाल० २९२।१)	× ×	संसउ (अयो० २५२।८)
			करउ (गीता प्रेस, बाल० सोरठा १)
ऊ, ऊँ	ऊना (किष्कि० ३।७)	प्रसून (अयो० २४९।७)	सुभाऊ (अयो० २०।८)
			कोऊ (अयो० २३१।३)
ऋ	× ×	भृकुटी (बाल० २६७।—)	× ×
ॠ	× ×	गृह्व (बाल० २२८।४)	× ×
ए) (ह्रस्व ए)	ए) तना[2] (अयो० २२९।५)	भए) उ (अयो० २४९।२)	× ×
=ए)	ए) हि (गीता प्रेस, अयो० ४७।२)	पहिले) हिं (बाल० २२६।—)	× ×

---

१. लो) भाई 'में' ल् का 'ओ' ह्रस्व है। इसे ग्रन्थ में 'लो भाई' भी लिखा गया है।

२. ह्रस्वतासूचक ऐसा ')' चिह्न हमने अपनी ओर से लगाया है, रामचरितमानस की प्रतियों में (काशिराज संस्करण को छोड़कर) नहीं मिलता। काशिराज-संस्करण में 'ए)तना' 'देखेउ' की ह्रस्वता ए के नीचे चन्द्र और व्यंजन के ऊपर वक्र मात्रा से व्यक्त की गई है। जैसे—एतना।

	आदि	मध्य	अन्त
	× ×	देखे)उ̆ (बाल० २२७।३)	× ×
	× ×	डे)राहीं (उत्तर० ७१'८)	× ×
ए	एक (उत्तर० १।१)	लेन (बाल० २२७।२)	आए (उत्तर० ६५।७) नाए (बाल० २२७।१)
ऐ	०	०	०
(सन्ध्यक्षर)	ऐसे)उ (अइसे)उ) (अयो० ६७।-) ऐन (गीता प्रेस, अयो० सो० १००।-) अैसेउ (काशिराज०, अयो० ६७।·)	कैकेई (अयो० २४४।७) मैआ (बाल० २९१।४)	सकै (बाल० २९२।७) चितै (बाल० २२८।१)
ओ)[1] (ह्रस्व ओ)	× ×	मो) हि (अयो० १००। छन्द) लो) भाई (बाल० २२७।३) दो)हाई (अयो० १०४।६)	× ×
ओ[2]	ओट (किष्किं० ८।८) ओऊ (उत्तर ४७।४)	मोह (अयो० १०१।५)	कर्‌यो (अर० २०। छन्द) करैगो (लंका० २०।-)
औ)	× ×	× ×	× ×
औ (सन्ध्यक्षर)	औरु (अयो० २५७।४) औषध (अयो० ६।२)	सौध (अयो० ६६।३) ननिऔरें (अयो० १८।२)	करौ (बाल० सो० १,३) × ×

अनुनासिक स्वर

	आदि	मध्य	अन्त
अं	अंड (अयो० १५६।१);	पंथु (अयो० १०४।४);	दयालं (उत्तर० १०८।)
अँ	अँचवत (अयो० २३१।७)	भँडारू (अयो० १०५।४)	जिअँ (अयो० २०६। उत्तर० १०९।१५)
आँ	आँखिन्ह (अयो० १२१।५)	माँगा (अयो० २३०।१)	× ×
इं	इंद्र (लंका० १०१।छन्द)	सिंघासन (अयो० १०५।७)	भूपतिं (अर० ४।श्लोक)
इँ	× ×	करहिंगे (किष्कि० १२दो०)	देहिँ (अयो० २४५।२)
ईं	ईंधनु (अयो० २५१।२)	नींद (अयो० २५२।-)	भाईं (अयो० २४५।१)

१-२. "मातु **मोहि** दीजै किछु चीन्हा। जैसें रघुनायक **मोहि** दीन्हा॥" (सुन्दर २७।१)
प्रथम **'मोहि'** में **'ओ'** दीर्घ है और द्वितीय **'मो̆हि'** में **ओ** ह्रस्व है।

	आदि		मध्य		अन्त
उँ	×	×	पहुँचाई (अयो० १४४।१)		दुहुँ (अयो० २४५।१)
ऊँ	ऊँच (बाल० ६।६)		पूँछब (अयो० २०६।७)		लेऊँ (अयो० २३०।३)
एँ			भेँटी (अयो० २४५।३)		पाएँ (अयो० २०३।४)
ऐं					बावैं (अयो० १२२।४)
ओँ	×	×	×	×	करिहौँ (अयो० १०४।६)[1]
औँ	×	×	×	×	मारौँ (अयो० २३०।८)[2]

१. १. २. व्यंजन :

	आदि	मध्य	अन्त
क्	करि (बाल० २२७।१)	कोकिल (बाल० ३२७।६)	चातक (बाल० २२७।६)
ख्	खाँगें (अर० ३१।७)	सखिन्ह (बाल० २३४।५)	सुख (बाल० २३५।३)
ग्	ग्याति (अयो० १०४।८)	जगत (बाल० २३५।६)	बिहग (बाल० २३४।-)
	ग्याता (गीता प्रेस अयो० १४३।२) ग्यान (गीता प्रेस, (बाल० १७।-)	× ×	धिग (लंका १००।८)
घ्	घन (किष्किं० १४।१)	सिंघासन (अयो० ११।५)	बाघ (बाल० ३८।७)
च्	चहुं (बाल० २२८।१)	नाचा (लंका० ९४।७)	गच (उत्तर० २७।३)
छ्	छाड़े (लंका० ६२।६)	पूँछि (बाल० २२८।१)	पूंछ (सुन्दर० २४।-)
	छत्री (किष्किं० १।७)	× ×	× ×
ज्	जाइ (बाल० २२७।१)[3]	सुजान (बाल २२६।-)[4]	काज (सुन्दर० २।-)
	जसु (अयो० १७१।-)[3]	अपजसु (अयो० १७१।-)[4]	आचरज (बाल० ३।२)
झ्	झटिति (लंका० ९२।१२)	बुझाई (किष्किं० १।४)	माँझ (लंका० ९४।छन्द)
ट्	टूट (बाल० २८३।८)	कोटिन्ह (बाल० २८३।४)	टूट (बाल० २८३।८)
	× ×	× ×	भट (लंका० ८८।८)
ठ्	ठाहरु (अयो० २५।छन्द)	कुठारु (बाल० २८२।१) मुठिका (लंका ८४।२)	जरठ (अर० २६।१४)
ड्	डोलति (लंका० १०२।छन्द)	अपडरे (लंका० ८९।छंद) खण्ड (बाल० २६२।१)	खाँड (बाल० २७५।-)

१-२ गीता प्रेस संस्करण में करिहउँ (अयो० १०४।६) और मारउँ (अयो० २३०।८) पाठ हैं।

३-४ संस्कृत शब्द की 'य्' ध्वनि मानस की जनपदीय भाषा में 'ज्' हो गई है।

	डगइ (बाल०२५१।१)	चामुंडा (लंका० ८८।८)	×
ड़्	× ० ×	बड़ि (बाल० २८३।७)	खाँड़ (गीताप्रेस,बाल० २७५।-) बड़ (बाल०२८३।६) बौंड़ (अयो०५१।८)
ढ्	ढोटा (बाल०२६९।७)	× ×	मूढ (अयो० २२८।१)
ढ़्	× ० ×	ठाढ़ा (बाल० २८३।६) पढ़ाइ (अयो० २०।४)	मूढ़ (बाल०२७०।४) मूढ़(गीता प्रेस, अयो० २२८।१) गूढ़ (अयो० १६।-)
त्	तात (बाल० २३१।१)	सुतीय (बाल० २३५।)	बिगत (बाल० २२६।—)
थ्	थाती (अयो० २२।५)	अथाई (अयो० ११।३)	साथ (अयो० २२६।८)
द्	दिनु (उत्तर० १।१) दैअँ (अयो० ६६।४)	पदुम (बाल० १।१) ०	पद (बाल० १।१) ०
ध्	धुनि (बाल० २२६।-)	अवधि (उत्तर० १।१)	बध (बाल० २७५।३)
न्	नाए (बाल० २२७।१) नाथ (किष्कि० ३।२)	दिनु (उत्तर० १।१) प्राननाथ (अयो०६४।-) ऊँना (किष्कि० ३।७) }	भवन (अयो० ६१।४) तृन (सुन्दर० ६।६) कान (बाल० २२६।-) }
प्	पूँछि (बाल० २२८।१)	अपनउ (बाल० २३४।८)	समीप (बाल० २२८।४)
फ्	फंद (अयो० २६।-)	सुफल (बाल० २३७।४)	सराफ (उत्तर० २८। छन्द)
ब्	बिगत[1] (बाल० २२६।-) बस (बाल० ३।१०) }	बिबेक[1] (बाल० ६।-) सुबास (बाल १।१) }	नेब (अयो० १६।-)
भ्	भैआ (बाल० २६१।४)	प्रभु (बाल० २२७।-)	बृषभ (बाल० २६८।७)
म्	मुनिहि (बाल०२२७।१)	रामु (बाल० २२६।-)	काम (बाल० ८५।४)
य्	ये) हु (बाल० २२७।—) ये) (लंका० १११।छन्द)	लियो (उत्तर० २०।१) नयी (लंका० १०६। छन्द)	सिय (अयो० १०२।३) ०
र्	रहा (उत्तर० दो० १) रितु (बाल० २२७।३)	श्रुति (अर० ३१।६) करि (बाल० २२७।१)	पीर (अर० ३०।—) मीर (बाल० २६६।—)
ल्	लषनु (बाल० २६९।७)	दुर्लभ (अर० ३१।९)	खल (अर० ३१।२)

१. संस्कृत-शब्द की प्रायः आदि मध्य 'व' ध्वनि 'मानस' में 'ब' हो गई है। संस्कृत-शब्द की अन्तिम ब' ध्वनि अक्षुण्ण रही है।

व्[1]	वन्दे[1] (श्लोक, बाल० १)	अवधि (उत्तर० १।१)	नव (बाल० २२७।५)
	वन (सुन्दर०, श्लोक ३)	× ×	भव (किष्कि० १।—)
	वश (बाल०, श्लोक ६)	× ×	दव (अयो० ७३।६)
		तलावा (किष्कि० १४।७)	जिव (किष्कि० १४।६)
श्[2]	श्रीराम (अर० २९।—)	आश्रम (उत्तर० ११३।)[1]	०
	श्रुति (उत्तर० १२९।२)	०	०
ष्[3]	षडानन (बाल० २३५।६)	बैषु (बाल० २६८।–) भाषा (अयो० १८६।७) सेषु (अयो० २२५।–) अभीष्ट (उत्तर० ३५।–)	आसिष (बाल० २६९।५)
	षट (बाल० १७७।८)		निमेष (उत्तर० ३३।४)
स्	समाचार (बाल० २७०।१)	आसिष (बाल० २६९।५)	असीस (बाल० २६९।७)
	स्रम (उत्तर० ११४।३)	आस्रम (उत्तर० ११४।६)	इतिहास (उत्तर० ११४।२)
	स्रुति (लंका० १०९। छन्द)	× ×	× ×
ह्	होइहि (बाल० २७१।१)	महि (बाल० २७०।२)	कह (अर० ३३।१)
	हरषेउ (उत्तर० २।१)	परछाहीं (सुन्दर० ३।२)	अहह (उत्तर० १।३) चह (बाल० २६७।२)
(क्ष्) (क्+ष् का गुच्छ)	०	भक्षक (उत्तर० ३५।८) रक्षक (उत्तर० ३५।८)	
	× ×	भच्छक (गीता प्रेस, उत्तर० ३५।८) रच्छक (गीता प्रेस, उत्तर० ३५।८)	× ×
(त्र्) त्+र् का गुच्छ)	त्रिभुवन (उत्तर० ३५।६)	मंत्रिन्ह (किष्कि० ५।३)	× ×

१,३. आदि में 'व' ध्वनि प्रायः संस्कृत के श्लोकों में मिलती है। तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष्' ध्वनियाँ केवल लिपि में परम्परा-प्रभाव से मिलती हैं, उच्चारण में जीवित नहीं हैं। अभीष्ट आदि कुछ शब्दों को छोड़कर शेष शब्दों में 'ष्' को 'ख्' का स्थानापन्न समझना चाहिए। प्राचीन काल में प्रायः लोग 'ख्' के स्थान पर 'ष' लिखा करते थे—षडानन = खड़ानन।

२. स्वतंत्र एकाकी 'श्' ध्वनि नहीं मिलती। व्यंजन-गुच्छ में मिलती है।

त्रास (उत्तर० ३५।५)	छत्र (बाल० २०।—)	×	×
(ज्ञ्) ज्ञान (उत्तर० ३४।५) (ज्+ञ् का गुच्छ था)	अज्ञता (उत्तर० ३४।६)	×	×
ग्यान (गीता प्रेस, उत्तर० ३४।५)	जज्ञ (बाल० २३१।१) अग्यता (गीता प्रेस, उत्तर० ३४।६)	×	×
अब ज्ञ (ज्+ञ्) ध्वनि नहीं मिलती है) इसका उच्चारण 'ग्य' है। मानस की कुछ प्रतियों में 'ज्ञाति', 'ज्ञान' के स्थान पर 'ग्याति', 'ग्यान' पाठ मिलते भी हैं।	जग्य (गीता प्रेस, बाल० २३१।१)	×	×

विशेष :

ए) या (ए͝), ओ) या (ओ͝), अर्थात् 'ह्रस्व ए' और 'ह्रस्व ओ' ध्वनियाँ मानस में मिलती हैं। यह प्राकृत की परम्परा की सूचक हैं। प्राकृत में ये ध्वनियाँ पाई जाती थीं[1]। भाष्यकार पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भी कहा है कि सामवेद के गायकों की एक शाखा में ह्रस्व 'ए', (ए͝, ए) और ह्रस्व 'ओ', (ओ͝, ओ) का व्यवहार होता था[2]।

क् से ह् तक के अन्त्य व्यंजन केवल वर्त्तमान अवधी बोली के उच्चारण के आधार पर लिखे गये हैं। हम नहीं कह सकते कि तुलसीदास के अपने उच्चारण में ये शब्द व्यंजनान्त बोले जाते थे अथवा अकारान्त रूप में अथवा किसी भिन्न प्रकार से।

निष्कर्ष :

मानस की कई प्रतियों के देखने से विदित होता है कि 'ऋ' स्वर शब्द के आदि में 'रि' बोला जाता होगा। लिपि में ऐसी लिखावट मिलती है। ऐ), अर्थात् अग्र ह्रस्व सन्ध्यक्षर 'मानस' में नहीं है। उसी प्रकार औ), अर्थात् पश्च ह्रस्व सन्ध्यक्षर भी नहीं है।

मुद्रित लिपियों में अनुनासिक स्पर्शों में 'ङ्', ञ् और 'ण्' नहीं मिलते। 'ण्' श्लोकों के संस्कृत-शब्दों में मिलता है। ड़् और ढ़् ध्वनियाँ भी आदि में नहीं मिलतीं।

मानस की प्रकाशित प्रतियों की लिपि में शब्द के अन्त में 'श्' और आदि में व् और क्ष् (क्+ष् का गुच्छ) नहीं मिलता है। संस्कृत के श्लोकों में तो ये ध्वनियाँ पाई जाती हैं।

---

१. 'एदोतोः क्वचित्स्वरूपेणैव ह्रस्वः' 'सं० प्रेम < प्रा० पे)म्म । सं० ओष्ठ < प्रा० ओ)ट्ठ —त्रिविक्रमकृत, प्राकृतानुशासन, सूत्र ४०।

२. 'अर्धमेकारं अर्धमोकारं चाधीयते।'—पतंजलि, महाभाष्य, निर्णयसागर प्रेस, १।२२, पंक्ति २१-२४।

'भाषा' (अयो० १८६।७) आदि में 'ष्' की लिखावट से सिद्ध है कि 'ख्' ध्वनि के स्थान पर बोलियों में इसका प्रयोग होता था। बहुत सम्भव है कि प्रतिलिपिकारों ने 'ख' को कोई 'र व' न पढ़ ले, इसलिए 'ष्' को लिख दिया जाता होगा। इसके साथ-साथ प्राचीन वैदिक परम्परा ने भी उसमें योग दिया होगा, जिसमें 'सहस्रशीर्षा' को 'सहस्रशीर्खा' बोला जाता था।

१. १. ३. स्वर-संयोग :

जब दो स्वर पास-पास आते हैं और दोनों ही क्रम से स्वतन्त्र रूप में बोले जाते हैं, तब वे दोनों स्वर स्वर-संयोग की स्थिति में माने जाते हैं। 'जिअन' (अयो० १५६।१) में इ और अ साथ-साथ आये हैं। अतः, इस शब्द में इ और अ स्वरों का संयोग है। 'मस्त' में में 'स्' और 'त्' का संयोग है। इसे व्यंजन-संयोग कहेंगे।

'रामचरितमानस' में ऐसे स्वर-संयोग के उदाहरण पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। दो स्वरों का साथ-साथ आना प्राकृत-काल में प्रारम्भ हो गया था, सं० 'हृदय' या 'हित' का विकास प्राकृत में 'हिअ' हुआ। 'हिअ' में इ और अ पास-पास हैं। इन्हें उद्वृत्त स्वर भी कहते हैं।

१. १. ३. १. द्विस्वर-संयोग :

अ+अन्य स्वर

अ+इ	अइहहिं (सुन्द० १६।४)
	चकइहि (अयो० ६४।२); चितइ (अर० १७।११)
अ+इँ	चौकइँ (अयो० ८।३)
अ+ई	मई (अर० ३०।–)
अ+उ	अउर (गीता प्रेस, १००।७)
	संसउ (अयो० २५२।८)
अ+उँ	करउँ (गीता प्रेस, अयो० ५५।४)
अ+ऊँ	करऊँ (बाल० २५२।५)
अ+ए	पठए (किष्कि० १।५)
आ+इ	चढ़ाइ (अयो० २०२।८)

आ+अन्य स्वर :

आ+इ	= सुहाई (अयो० २०२।८)
आ+ई	= भाई (अयो० २४५।१) आई, (अयो० २४५।१)
आ+उ	= आउब (बाल० २३४।६), सुभाउ (अयो० १६।७)

आ+उँ	= जाउँ (अयो० ५३।१)
आ+ऊ	= तीरथराऊ (बाल० २।१३); चाऊ (अयो० ५१।८)
आ+ऊँ	= गाऊँ (किष्किं० ६।२), नाऊँ (किष्किं० ६।२)
आ+ए	= आए (उत्तर० ६५।७)

इ+अन्य स्वर :

इ+अ[1]	= पिअ (अयो० ६४।१), देखिअ (बाल० २४०।१)
इ+आ[2]	= सिआरा (अयो० ६७।७), मुखिआ (अयो० ३१५।-)
	= पिआरा (किष्किं० ८।६), बिआहा (अयो० १०।६)
इ+ए	= आनिए (अयो० सो० २०१।छन्द)
इ+औ	= ननिऔरें (अयो० १८।२)

उ+अन्य स्वर :

उ+अ	= उअहिं (उत्तर० ७८।-)
उ+आ	= दुआरें (अयो० ३८।४)
उ+इ	= छुइ (अयो० २७।४)
उ+एँ	= उएँ (अयो० २७।४)
उँ+अ[3]	= कुँअरि (बाल० २५२।५)
उँ+आ	= कुँआरि (बाल० २५२।५)

ए)+अन्य स्वर :

ए)+उ	= कहे)उ (उाल० २७६।१)
ए)+उँ	= होते)उँ (बाल० २७५।८), चले)उँ (किष्किं० ६।८)

ए+अन्य स्वर :

ए+इ	= लेइ (अयो० १३।६)
ए+इँ	= केइँ (अयो० २६।१)
ए+उँ	= देउँ (अयो० २७।३)
ए+ऊ	= तेऊ (अयो० २२८।३)

ऐ+अन्य स्वर :

ऐ+आ	= भैआ (बाल० २९१।४)

ओ+अन्य स्वर :

१, २, ३. ये उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि 'मानस' की भाषा में 'इ' और 'उ' से परे भिन्न स्वर आने पर सन्धि नहीं होती, अर्थात् विवृति (सन्धिराहित्य) पाई जाती है। ब्रजभाषा में ऐसी अवस्था में सन्धि हो जाती है। 'य्' और 'व्' श्रुति का आगम भी हो जाता है।

ओ+इ	= कोइ (बाल० ४८। दोहा)
ओ+ई	= कोई (अयो० २३।७)
ओ+उ	= होउ (अयो० १६।६), जोउ (बाल० २०।-)
ओ+ऊ	= कोऊ (किष्कि० १।१०), सोऊ (अयो० १८२।२)

१. १. ३. २. त्रिस्वर–संयोग :

अ+इ+अ	= पठइअ (अयो० ६।६)
अ+इ+उँ	= भइउँ (लंका० ५८।१)
अ+ए)+उ	= भए)उ (अयो० ६।७)
अ+ए)+ऊ[१]	= गए)ऊ (अयो० ८७।७)
आ+इ+अ	= खाइअ (अयो० १६।४), लाइअ (अयो० ५।७)
आ+ए)+उ	= नाए) उ[२] (अयो० ९।२)
इ+आ+एँ	= डोरिआएँ (अयो० २०३।४)
इ+ए)उ[२]	= किए) उ (अयो० २०३।१)
उ+आ+ईं	= अगुआईं (अयो० २०३।१)
ए+इ+अ	= सेइअ (किष्कि० सो० १)

१. १. ४. व्यंजन-संयोग :

जब दो व्यंजन साथ-साथ मिले हुए आते हैं, तब व्यंजन-संयोग की स्थिति कहलाती है। व्यंजन-संयोग के दोनों व्यंजन पृथक्-पृथक् ध्वनि-अस्तित्व के साथ बोले जाते हैं। मुख्य बात यह है कि उन व्यंजन-संयोग वाले व्यंजनों के बीच में कोई स्वर नहीं रहता। 'कल्प' के उच्चारण में 'ल्' और 'प्' व्यंजनों का संयोग है।

च्+छ्	= दच्छिन (लंका १२।-)
ट्+ट्	= ठट्टा (लंका० ४१।४)
न्+द्	= सुंदर (बाल० ३०४।१) मध्य व्यंजन संयोग
र्+ब्	= खर्ब (बाल० २१२।-)
स्+त्	= अगस्ति (किष्कि० १६।२)

'मानस' में प्रायः मध्य व्यंजन-संयोग के ही उदाहरण मिलते हैं।

१. १. ५. व्यंजन-गुच्छ :

किसी उच्चार में जब दो व्यंजन-ध्वनियाँ एक बार एक प्रयास में साथ-साथ मुख से

---

१. २. में दिये हुए प्रमाणों से सिद्ध है कि 'मानस' में दो स्वरों के मध्य की 'ए' ध्वनि ह्रस्व होकर आती है। ह्रस्वता को प्रकट करने के लिए ही उसे 'ए)' लिखा गया है।

निःसृत होती हैं, तब उनकी स्थिति व्यंजन-गुच्छ की स्थिति कही जाती है। 'प्रन' में 'प्+र्' का गुच्छ है।

व्यंजन-गुच्छ :

शब्द	ध्वनि	स्थिति
त्यागहु (किष्किं० ७।१०)	= त्+य्	(आदि गुच्छ)
हन्यो (लंका ९५।छंद	= न्+य्	(अनादि गुच्छ)
ब्याल (उत्तर० १०९।-)	= ब्+य्	(आदि गुच्छ)
ल्यायो (लंका० ८४।५)	= ल्+य्	(आदि गुच्छ)
स्यामल (किष्किं० १।७)	= स्+य्	(आदि गुच्छ)
हँस्यो (लंका ९६।-)	= स्+य्	(अनादि गुच्छ)
सूद्र (उत्तर० १०९।८)	= द्+र्	(अनादि गुच्छ)
प्रयास (उत्तर० १०९।-)	= प्+र्	(आदि गुच्छ)
ब्रत (उत्तर० १०९।११)	= ब्+र्	,,
ब्रह्मांड (उत्तर० ८०।-)	= ब्+र्	,,
भ्रमत (उत्तर० ४४।४)	= भ्+र्	,,
भ्रातन्ह (उत्तर० ३६।१)	= भ्+र्	,,
अदभ्र (उत्तर० ७२।५)	= भ्+र्	(अनादि गुच्छ)
स्रापा (उत्तर० १०९।३)	= स्+र्	(आदि गुच्छ)
आस्रम (उत्तर० ११०।१०)	= स्+र्	(अनादि गुच्छ)
कपिन्ह (उत्तर० ६७।२)	= न् + ह्	(अनादि गुच्छ)
तिन्ह (उत्तर०४२।-)	= न् + ह्	,,
पे) न्हाई (उत्तर० ११८।११)	= न् + ह्	,,
दीन्ह (लंका ३१।-)	= न् + ह्	,,

विशेष : 'रामचरितमानस' में 'न्+ह्' के व्यंजन-गुच्छ सबसे अधिक हैं; क्योंकि ये बहुवचनीय संज्ञा पदों में और भूतकालिक क्रियापदों में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे :

विप्रन्ह (बाल० ३१२।-) (=अनेक ब्राह्मणों), सासुन्ह (उत्तर० ७।१) (=सासुओं)।

दीन्ह (अयो० ५३।६) (=दिया), दीन्हीं (बाल० २८५।-) (=दीं) तुम्हें (उत्तर० ४७।५)=म्+ह् (अनादि गुच्छ)।

१. २. ध्वनि-परिवर्त्तन के प्रकार :

१. २. १. वर्णलोप :

स्वरलोप—(आदि) हसि (अयो० १३।५, १६२।८) <अहसि (=तू है)

,, हहु[1] (अयो० १४।५) <अहहु (=तुम हो)

,, चार (उत्तर० ९८।-) <आचार (=आचरण)

(मध्य) हरद (बाल० २९६।८) <सं० हरिद्रा (=हल्दी)

(अन्त) पताक (बाल० २९६।७) <सं० पताका (=झण्डी)

दयाल (अयो० १०२।७) <सं० दयालु (=दया करने वाला)

व्यंजनलोप—(आदि) मसान (बाल० दो० १०।छन्द) <सं० श्मशान (=मुरदा जलाने का स्थान)

(मध्य)[2] त्रिपुंड (बाल० २६८।४) <सं० त्रिपुण्ड्र (=शैव तिलक)

,, सुरसाईं (बाल० ८९।६) <सं० सुरस्वामी (=देवस्वामी)

,, तिभुवन (अयो० १६४।६) <सं० त्रिभुवन (=तीनों लोक)

,, भदेस (बाल० १०।१०)

[=भद्दा] <सं० भद्रेश।

विशेष : आदि स्वरलोप की प्रवृत्ति संस्कृत और पालि-भाषा में भी व्यवहृत थी। सं० **अपिधान** के स्थान पर सं० **पिधान** भी प्रचलित था। पालि-भाषा में सं० **अलंकार**, **अनुमति** और **उपवन** के लिए '**लंकार**', '**नुमति**' और '**पवन**' शब्द प्रचलित थे।

१. २. २. वर्णागम :

स्वरागम :

(आदि) अस्नान (बाल० २०१।२) <सं० स्नान (=नहाना)

,, अस्तुति (बाल० २०२।७) <सं० स्तुति (=प्रार्थना)

,, उपरोहित (बाल० १७२।८) <सं० पुरोहित (=पुरोहित)

(मध्य) कलपना (अयो० १५७।६) <सं० कल्पना (=कल्पना)

,, पिरीत (अयो० १५५।७) <सं० प्रीत (=प्रसन्न)

,, लागे (बाल० २६९।२) <सं० लग्ने (=लगे)

(अन्त) सुन्दरताई (अर० १९।४) <सं० सुन्दरता (=खूबसूरती)

---

१. मिलाइए—'जैसें बूँद माँह **दधि** होई। गुरु लखाव तौ जानै कोई।।'—उस्मान-चित्रावली, १३।१६७।५।

२. सिधारे (अयो० १८६।८) में मध्य अक्षरलोप है। सिरधारे>सिधारे। पदधारे>पधारे।

व्यंजनागम :

(आदि) इरिषा (बाल० ६९।-) <सं० ईर्ष्या (=डाह, जलन)

१. २. ३. वर्ण-विपर्यय :

(स्वर-विपर्यय)

(अक्षर-विपर्यय) रहसी[1] (अयो० १७।२) <हरसी (=प्रसन्न हुई)

विशेष : 'हरसी' शब्द के 'ह' 'र' अक्षर हैं। इन दोनों में पृथक्-पृथक् रूप से 'अ' स्वर समाविष्ट है। अर्थात्, ह=ह्+अ। र=र्+अ। अतः 'ह्' और 'र्' तो व्यंजन हैं, लेकिन 'ह' और 'र' अक्षर हैं। **'हरसी'** के परिवर्त्तन **'रहसी'** में इसीलिए अक्षर-विपर्यय माना गया है।

१. २. ४. वर्ण-परिवर्त्तन :

(आदि स्वर-परिवर्त्तन) ए) तना (अयो० २२६।५) <इतना (=इतना)

(मध्य स्वर-परिवर्त्तन) कुलह (अयो० २८।८) <फा० कुलाह (=टोपी)

,, नेब (अयो० १९।-) <अ० नाइब (=सहायक)

(आदि व्यंजन-परिवर्त्तन) सिरमनि (बाल० ३५८।४) <सं० शिरोमणि (=सिर की मणि)

(मध्य व्यंजन-परिवर्त्तन) उपबरहन (बाल० ३५६।३) <सं० उपवर्हण (=तकिया)

,, अउर (अयो० १००।७ गीता प्रेस) <सं० अपर (=दूसरा)

,, कागद (बाल० ९।११) <फा० काग़ज़ (=कागज़)

(अन्त व्यंजन-परिवर्त्तन) रोस (बाल० २८१।-) <सं० रोष (=क्रोध)

,, फराक (उत्तर० २६।१) <फा० फ़राख़ (=विशाल)

१. २. ४. १. समीकरण :

(क) पुरोगामी समीकरण

चक्क (अयो० १३७।-) <सं० चक्र

(ख) पश्चगामी समीकरण

खप्पर (लंका० ८८।७) <सं० कर्पर

१. २. ४. २. विषमीकरण :

(क) पुरोगामी विषमीकरण (पूर्व व्यंजन अक्षुण, उत्तर परिवर्त्तित)

---

१. मिला० 'चित रहसा जानहुँ निधि पाई।' (उस्मान, चित्रावली, नागरी प्र०, १९१२,२।१४६।२)।

प्रगट (बाल० २।१३) <सं० प्रकट

(ख) पश्चगामी विषमीकरण (प्रथम व्यंजन या स्वर में विकार)

जुत (बाल० ७७।५) <सं० युत

जुवराज (अयो० १) <सं युवराज

डर (बाल० १६६।८ <सं० दर

१. २. ४. ३. घोषीकरण (अघोष ध्वनि का घोष ध्वनि में परिवर्त्तन) :

काग (बाल० ४१।-) <सं० काक

बग (बाल० ४१।-) <सं० वक

भगति (बाल० ९।७) <सं० भक्ति

बहूता, बहूत (किष्किं० १९।६) <सं० प्रभूत

१. २. ४. ४. अघोषीकरण (घोष ध्वनि का अघोष ध्वनि में परिवर्त्तन) :

१. २. ४. ५. अल्पप्राणीकरण :

बकसीस (बाल० ३०६।३) <फा० बख़शिश

१. २. ४. ६. महाप्राणीकरण :

फरसा (अयो० १९१।५) <सं० परशु

थन (अयो० १६९।५) <सं० स्तन

१. २. ४. ७. ऊष्मीकरण (सबल महाप्राणीकरण) :

मुह (अयो० १७।-) <सं० मुख

नाह (अयो० १४०।३) <सं० नाथ

केहरी (लंका० ३६।४) <सं० केसरी

कोहबर (बाल० ३२६। छंद) <सं० कोष्ठवर

१. २. ४. ८. अनुनासिकीकरण :

आँख (बाल० १९३।५) <सं० अक्षि

ऊँट (बाल० ३००।६) <सं० उष्ट्र

ऊँच (बाल० ६।६) <सं० उच्च

१. २. ४. ९. मात्राभेद :

अघात (किष्किं० १४।४) <सं० आघात

अधार (बाल० ७३।५) <सं० आधार

अभार (अयो० २६९।३) <सं० आभार

अहार (बाल० १४३।१) < सं० आहार

असंका (बाल० १२।८) < सं० आशंका

आधीन (बाल० १६७।३) < सं० अधीन

इरिषा (बाल० १३६।७) < सं० ईर्ष्या

कुलह (अयो० २८।८) < फा० कुलाह

परिधन (बाल० १०६।६) < सं० परिधान

भूपत (अयो० ३६।१) < सं० भूपता (भूपताहि = भूपतहि—अयो० ३६।१)

रजधानी (अयो० १८३।८) < सं० राजधानी

सहस (अयो० १८५।—) < सं० सहास (सं० सहर्ष)

१. २. ४. १० समाक्षरलोप :

खभार (लंका० ४७।—) < सं० क्षोभभार

१. २. ४. ११ संधीकरण :

नेब (अयो० १६।—) < अ० नाइब

नेम (बाल० सो० १७।३) < सं० नियम

१. ३ रसानुकूल ध्वनियों का प्रयोग :

१. ३. १ कठोर ध्वनियाँ :

ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्; द्वित्वाक्षर तथा संयुक्ताक्षर[1]।

१. ३. २ कोमल ध्वनियाँ :

ख्, घ्, छ्, झ्, थ्, ध्, न्ह्, फ्, भ्, म्ह्, र् और ह्।

१. ३. ३ कोमलतम ध्वनियाँ :

स्वर,, क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, न्, प्, ब्, म्, य्, ल् व् और स्।

१. ३. ४ कठोर रस :

वीर, भयानक, रौद्र और बीभत्स।

१. ३. ५ कोमल रस :

अद्भुत, वात्सल्य, शृंगार, करुण, हास्य और शान्त :

विशेष : रसोद्रेक की प्रक्रिया में शब्दों की ध्वनियाँ भी प्रमुख तत्त्व हैं। यहाँ रसों के उदाहरणों के साथ उनसे सम्बद्ध शब्दों की ध्वनियाँ दिखाई गई हैं। ध्वनियों के साथ

---

१. संस्कृत-काव्यशास्त्रियों के मतानुसार ये ध्वनियाँ कठोर मानी गई हैं। भाषाविज्ञानी घोष ध्वनियों को कोमल और अघोष ध्वनियों को कठोर कहते हैं।

लिखी हुई संख्याएँ उनकी आवृत्ति की सूचक हैं।

१ ३. ६ **रस और ध्वनियाँ :**

रस	उदाहरण	ध्वनियाँ
वीर रस	"धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट	१ १ ३ ३ १
(कठोर)	भालु गढ़ पर डारहीं।	ख, भ, ट, ड, ढ़,
	झपटहिं चरन गहि पटकि महि	२ २ ३ ६
	भजि चलत बहुरि पचारहीं।।"	ध, भ, क, ह।
	—(लंका० ४१। छन्द)	
	"कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर	२ १ १ १ १
		ट, ठ, ड, ढ़, ध,
	जटजूटु बाँधत सोह क्यों।"	१
	—(अर० १८। छन्द)	ह।
भयानक रस	"धाए निसिचर निकर बरूथा।	१ १ २ १
(कठोर)	जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा।"	च्छ, ज्ज, थ, ध,
	× ×	
	"लै जानकिहि जाहु गिरि कन्दर।	१ १ २
	आवा निसिचर कटकु भयंकर।।"	ट, भ, ह
	—(अर० १८।४, ११)	
रौद्र रस	"जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बन्दर।	
(कठोर)	राम प्रताप सुमिरि उर-अंतर।।"	१ ३ २ १ २
	"रावन भवन चढ़े तब धाई।	ढ़, द्ध, ध, भ, ह,
	करहिं कोसलाधीस दोहाई।।"	
	—(लंका० ४४।१,२)	
बीभत्स रस	"बिष्ठा पूय रुधिर कच हाड़ा।	१ १ २ १ ३
(कठोर)	बरषइ[1] कबहुँ उपल बहु छाड़ा।।"	छ ष्ठ ड़ ध ह
	—(लंका० ५२।३)	

१. 'बरषइ' क्रिया के इस प्रयोग को इस अर्द्धाली में यति-भंग दोष कह सकते हैं।

अद्भुत रस	"भए प्रगट कृपाला परम दयाला	३ १ १ १ ९
(कोमल)	कौसल्या हितकारी ।	क, ग, च, ट, त,
		२ ३ ६ २ २
		द, न, प, ब, भ,
	हरषित महतारी मुनिमनहारी	६ २ ९ ५ २ ५
	अद्भुत रूप बिचारी ।।"	म, य, र, ल, स, ह
	"माता पुनि बोली सो मति डोली	१ ३
	तजहु तात येह रूपा ।।"	ड, न,
	—(बाल० १९२। छन्द)	
वात्सल्य रस	"स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी।	१ ९ १ ५ १
(कोमल)	निरखहिं छबि जननी तृन तोरी ।।	य, र, ल, स, ह।
		१ २ ३ १ १२
		क, ख, ग, च, छ, ज,
		३ ३, २ ५ २
	चारिउ सीलरूप गुन धामा।	त, द, ध, न, प,
	तदपि अधिक सुख सागर रामा ।।"	१ ३
	—(बाल० १९८।५,६)	ब, म,
		१ १ १ १
	"कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली ।	क, च, ज, ध,
	सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ।।"	७ ३ २
	—(अयो० ५९।३)	ल, स, ह।
शृंगार रस		३ १ १ ८
(कोमल)	"अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा ।	क, ख, ग, च,
	सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।।	१ ३ १ ५
		ज, त, द, न,
		१ १ २ ३
	भए बिलोचन चारु अचंचल ।	फ, ब, भ, म,
	मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ।।"	१ ४ ३ ५ ३
	—(बाल० २३०।३,४)	य, र, ल, स, ह

करुण रस	"नव रसाल बन बिहरन सीला ।	४ ४ १ ३ ३ ४
(कोमल)		क, न, प, ब, र, ल,
	सोह कि कोकिल बिपिन करीला ।।"	१ ३ २
	—(अयो० ६३।७)	व, स, ह ।
	"निज जननी के एक कुमारा ।	३ १ १
	तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ।।	क, ख, ग,
		३ ६ १ २
	सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी ।	ज, त, द, ध,
		६ ४ २ ५
	सब बिधि सुखद परम हित जानी ।।"	न प ब स
		४ ६
	—(लंका० ६१।१४,१५)	र, ह ।
हास्य रस	"पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं ।	३ १ १ २ ४
(कोमल)	देखि दसा हरगन मुसुकाहीं ।।"	क, ख, ग, द, न,
		२ २ १ ३ ४
	—(बाल० १३५।२)	प, म, र, स, ह ।
		१ १ २ ३
शान्त रस	"मम लोचन गोचर सोइ आवा ।	क, ग, च, न,
(कोमल)		१ ३ १ २
	बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ।"	प, ब, भ, म
		३ १ २ २
	(किष्कि० १०।५)	र, ल, स, ह ।
	"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।	१ २ १
	जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ।।	क, ग, घ,
		६ ७ १
		ज, त, द,
	तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन ।	६ ३ १ ११
	जानहिं भगत भगत उर चंदन ।।"	न, र, स, ह ।
	—(अयो० १२७।३,४)	

१. ४. सन्धिगत ध्वनियाँ (शब्द-सन्धि-विचार) :

१. ४. १ स्वर-सन्धि

सजातीय योग :

ह्रस्व स्वर + ह्रस्व स्वर	अ + अ = आ	सुर + अनीक = सुरानीक (बाल० ४ । १०)
ह्रस्व स्वर + दीर्घ स्वर	अ + आ = आ	पुलक + आवलि = पुलकावलि (बाल० २६२।३)
ह्रस्व स्वर + दीर्घ स्वर (अनुनासिक)	अ + आँ = आँ	सहस + आँखी = सहसाँखी (बाल० ४।४)
दीर्घ स्वर + दीर्घ स्वर	ई + ई = ई	मही + ईस = महीस (बाल० १५७।३)

विजातीय योग

ह्रस्व स्वर + दीर्घ स्वर	अ + ई = ए	धन + ईसा = धनेसा (बाल० ४।५)
दीर्घ स्वर + दीर्घ स्वर	आ + ई = ए	महा + ईस = महेस (बाल० ५५।–)

१. ४. २ व्यंजन-सन्धि

व्यंजन + स्वर	ट् + आ = डा	षट् + आनन = षडानन (बाल० २३५।६)
व्यंजन + स्वर	त् + ए = दे	जगत् + एक = जगदेक (अर० २१।१)

१. ४. १ विसर्ग-सन्धि

विसर्ग + व्यंजन	: + न्	पयः + निधि = पयोनिधि (बाल० २६२।२)
,, + ,,	: + धि	पयः + धि = पयोधि (अयो० २३२।८)

१. ५ व्युत्पादक प्रत्यय-सन्धि विचार :

जब किसी मूल शब्द से किसी व्युत्पादक प्रत्यय की सन्धि होती है, तब कहीं-कहीं 'मानस' में ध्वनिविकार उत्पन्न हो जाता है। जैसे :

मूल शब्द	+	व्युत्पादक प्रत्यय	=	सन्धि-शब्द
मीत		+ आई		= मिताई (सुंदर० ५।२)
सीतल		+ आई		= सितलाई (सुंदर० ५।२)

उपर्युक्त उदाहरणों के प्रथम शब्द में दीर्घ स्वर सन्धि की स्थिति में ह्रस्व हो गया है।

१. ६. विभक्ति प्रत्यय-सन्धि विचार :

जब किसी मूल शब्द अर्थात् प्रातिपदिक में किसी विभक्ति-प्रत्यय की सन्धि होती है, तब मानस में कहीं-कहीं ध्वनिविकार उत्पन्न हो जाता है। जैसे :

प्रातिपदिक	विभक्ति-प्रत्यय	सन्धि-शब्द
सीता	+ हि = सीतहि	(अर० १७।११)
सखी	+ न्ह = सखिन्ह	(बाल० २६४।१)

उपर्युक्त उदाहरण में प्रातिपदिक का अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो गया है।

$\sqrt{\text{गा}}$ + अहिं = गावहिं (बाल० २६४।८)

$\sqrt{\text{धा}}$ + आ = धावा (अर० २६।१५)

उक्त उदाहरणों में सन्धि की अवस्था में 'व्' का मध्यागम हो गया है। इन्हें रूप-ध्वनिग्राम-परिवर्तन के उदाहरण भी मान सकते हैं।

२. शब्द-विचार

२. शब्द-विचार

२. १. रामचरितमानस में शौरसेनी प्राकृत और अर्धमागधी प्राकृत के शब्द :

मानस के शब्द	शौरसेनी प्राकृत के शब्द
करि[1] (अयो० दो ० ५३।-)	<करिय (सं०कृत्वा[2]) हैम० अप० करि (हैम० व्या० ८।४।३५७।३) शौर० प्रा० करिय < सं० संकृत्य
काजू (अयो० ५३।६)	<कज्जं (सं० कार्यं)
कादर (सुन्दर० ५१।४)	<कादर (सं० कातर)
गाहा (बाल० ८।५)	<गाहा (सं० गाथा)
नाह (अयो० ६१।१)	<नाह (सं० नाथ)
राय (अयो० २६६।८)	<रायं (सं० राजन्)
सरिस (उत्तर० २।१३)	<सरिसं (सं० सदृशम्)
होब (बाल० सो० १५१।-)	<होदव्वं (सं० भवितव्यम्)

मानस के शब्द	अर्धमागधी प्राकृत के शब्द
अवगाहा (बाल० ८।५)	<अवगाह (सं० अवगाध[3])
कायर (बाल० २७४।-)	<कायर (सं० कातर)
जती (अर० २८।१२)	<जती (सं० यती)
ठाँव (अयो० ६०।३) ठाउँ (गीता प्रेस, अयो० १३६।७) ठाऊँ (गुप्त-संस्क० अयो० १३६।७) ठाऊँ (गुप्त-संस्क० बाल० २६।५)	<ठाँव (सं० स्थान)
पिय (अयो० ३५।३)	<पिय (सं० प्रिय)
बयन (अयो० सो० १००।-)	<बयण (सं० वचन)

---

१. व्याकरण के अनुसार 'करि' पद है, शब्द नहीं।

२. कोष्ठक के अन्दरवाले शब्द संस्कृत के हैं।

३. कोष्ठक के अन्दरवाले शब्द संस्कृत के हैं।

लोग (बाल० ९९।२)	<लोग (सं० लोक)
लोयन (अयो० १०८।७)	<लोयन (सं० लोचन)
सोचू (अयो० ४०।८)	<सोच[1] (सं० शोच)

२. २. रामचरित मानस में शब्द-भाण्डार :

'रामचरितमानस' में ऐसे शब्द पर्याप्त मिल जाते हैं, जो सीधे संस्कृत से आकर तुलसी के 'मानस' में विराज गये हैं। उन्हें हम 'तदेव' शब्द कह सकते हैं। इन्हें भाषाविदों ने प्राय: 'तत्सम शब्द' कहा है। संस्कृत से चलकर प्राकृत के माध्यम से आये हुए शब्द 'तद्भव' हैं। इनकी संख्या 'रामचरितमानस' में सर्वोपरि है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों के ठेठ शब्द, जिनकी व्युत्पत्ति अज्ञात है, देशज, नाम से कहे जायेंगे। इनकी संख्या भी पर्याप्त मिल जाती है। इनके अतिरिक्त तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' में ऐसे विदेशी शब्द भी ग्रहण किये हैं, जिनका स्रोत अरबी-फारसी से है। यह बात अवश्य है कि उन्हें तुलसी ने अपने 'मानस' की भाषा की प्रकृति में ढालकर ही प्रयुक्त किया है। **ईषना** (उत्तर० ७१।६) जैसे अर्धतत्सम शब्द भी हैं—सं० एषणा>ईषना।

नमूने के लिए हम यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त चारों प्रकार के शब्दों से उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

२. २. १. तदेव शब्द (तत्सम शब्द) :

निम्नांकित तालिका में संस्कृत भाषा से सीधे आये हुए शब्द हैं :

अकल (बाल० ५०।-)	= अंशरहित, अखण्ड
अधिकारी (बाल० १८२।१०, अयो० ७१।६)	= अफसर, पात्र
अनपायनी (किष्कि० २५।८)	= न+अपायनी (= नैकट्यदायिनी)
अनुग्रह (बाल० १।सोरठा)	= अनु+ग्रह (= कृपा)
अवधि (उत्तर० १।८)	= अव+धि (=काल-सीमा)
अस्थि (किष्कि० ७।१२)	= अस्थि (= हड्डी)
आतप (लंका० ६१।४)	= आ+तप (=धूप)
ऊन (ऊना, सुंदर ०१४।१०)	= ऊन (= कम)
कदंब (अयो० ८२।६)	= कदंब (= समूह)
करिवर[2] (बाल० १। सोरठा)	= करि+वर (=श्रेष्ठ हाथी)

---

१. अर्द्धमागधी और शौरसेनी प्राकृत के शब्दों के लिए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री-कृत 'अभिनव प्राकृत-व्याकरण' से सहायता ली गई है।

२. काशि० संस्क० में 'करिबर' पाठ है।

कानन (अयो० ५३।६) = कानन (= वन)
कोलसनाथ (उत्तर०५।छन्द) = कोसल+नाथ (= अयोध्या के राजा)
चतुरसम (बाल० २९६।-) = चन्दन, केसर, कस्तूरी और कपूर से बना हुआ द्रव विशेष
चरित (किष्कि० २।४) = इतिहास, जीवन-परिचय, जीवन-गाथा।
चरित्र (उत्तर० ८५।७) = लीला (अँग० कैरेक्टर)
तामरस (अयो० ७१।८) = तामर+स (= जो जल में सोता है अर्थात् कमल)
तीर (किष्कि० २५।६) = नदी या समुद्र के किनारे का वह स्थलीय भाग, जो पानी से दूर होता है।
धावन (अयो० १५७।४) = धावन[1] (= हरकारा)
नयन (बाल० १। सोरठा) = नयन (= नेत्र, आँख)
नर (अयो० ११४।२) = नर (= मनुष्य)
निदान[2] (सुन्दर० ४०।६, अयो० ५४।८) = अन्त में; कारण।
निषंग (अयो० २४०।८) = नि+संग (=तर्कश)
निस्तार (उत्तर० १।५) = निस्+तार (= उद्धार)
पट (किष्कि० ५।५) = पट (= वस्त्र)
पल्लव (किष्कि० १५।२) = पल्लव (= पत्ता)
पुलकित (किष्कि० २।६) = पुलक+इत (= रोमांचित)
पुंगव (बाल० १४।२) = पुं+गव (=पुरुषों में वृषभ अर्थात् पुरुषों में श्रेष्ठ)
बिहान (अयो० ९६।–) अर्द्धतत्सम = छुटकारा, समाप्ति (सं० विहान)
भवन (अयो० ३८।५) = भवन (=घर)
भूति (बाल० १४।६) = भूति (=सम्पत्ति)
मारुत सुत (उत्तर० २।८) = मारुत+सुत (=हनुमान्)
मुकुट (उत्तर १। दोहा) = मुकुट (=ताज)
मुनि-पद-कमल (अर० ७।१) = मुनि+पद+कमल (=कमल के समान मुनि के चरण)
मुष्टि (किष्कि० ८।३) = मुष्टि (=मुट्ठी)

---

१. धावनः = √धाव्+ल्यु।

२. 'निदाना' (सुन्दर ४०।६) कालवाची क्रियाविशेषण है। 'निदानू' (अयो० ५४।८) भाववाचक संज्ञा है।

मंगल (द्रव्य) (उत्तर० ३।५) = मांगलिक वस्तुएँ—दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल, तुलसीदल आदि ।
लव (सुन्दर० ४। दोहा) = लव (=समय का परिमाण)
लोचन (किष्कि० १०।५) = लोचन (=आँख)
संभावित (अयो० ९५।७) = सम्भावित (=प्रतिष्ठित पुरुष)
सदन (बाल० १। सोरठा) = सदन (=घर)
समर (लंका० १२१। दोहा) = समर (=युद्ध)
सिद्ध (बाल० ३३३।३) = सिद्ध>सीधा (=सूखा आटा, दाल, नमक आदि)
सुनासीर (लंका १०। दोहा) = सु+नासीर (=जिसकी अग्रसेना अच्छी है, इन्द्र)
सुमंगल (बाल० ३०२।६) = मंगलकारी गीत जो जन्म, विवाह आदि में गाये जाते हैं।
सुराग (अयो० २४१।६) = सु+राग (=सुन्दर राग)

२. २. २. तद्भव शब्द :

अनख (अर० ३०।१५) = सं० अनक्षि>अनक्ख>अनख (=बुरी आँख, ईर्ष्या)
अमी (बाल० १९।८) = सं० अमृत>प्रा० अमय>अमइ>अमीइ>अमी ।
अवगाहा (बाल० २४५।६) = सं० अवगाध>अवगाह, अवगाहा (=कठिन)
असवारा (अयो० २०३।५) = सं० अश्ववार>असवार (=सवार)
अहिबातु[1] (अयो० ६९।८) = सं० अविधवात्वं>अहिबातु ।
अँधियार (अंधियारा, (बाल० १५९।८) = सं० अंधकार>प्रा० अंधियार>अँधियार (=अँधेरा)
अँवराई (बाल० २१४।५) = सं० आम्रराजि>अँवराई (=आमों के वृक्षों का जमघट)
आयेसु (अयो० ७७।३) = सं० आदेशः>प्रा० आएसो>आएसु>आयेसु (=आज्ञा)
आरो (बाल० १५६।८) = सं० आरव>आरउ>आरो (शब्द)
उपबरहन (बाल० ३५६।३) = सं० उपबर्हण>उपबरहन (= तकिया)
ओस (अयो० २०४।२) = सं० अवश्याय>ओस
कपारू (अयो० १६३।५) = सं० कपाल>कपार (=खोपड़ी)
कबित (बाल० ८।११) = सं० कवित्व>प्रा०>कबित्त
करब (बाल० ३६०।४) = सं० कर्त्तव्यः>प्रा० करिअव्व>करब (=किया जायेगा)

---

१. स्टाइनगास की 'परशियन इंगलिश डिक्शनरी' में 'हबीब' का बहुबचन 'अहिब्बत' लिखा है, जिसका अर्थ 'प्रेमी' है। इस शब्द की ओर मेरा ध्यान डॉ० रामसुरेश त्रिपाठी ने दिलाया था।

कुम्हड़बतिआ (बाल० २७३।३) = सं० कूष्माण्डर्वात्तिका>कुम्हड़बतिआ (=कुम्हड़े कीजई)

कुरी (उत्तर० १५।८) = सं० कुल, कुली>कुरी

कोहबर (बाल० ३२६। छंद) = सं० कोष्ठवर>कोहबर (=वह स्थान जहाँ विवाह के कुलदेवता स्थापित किये जाते हैं।)

कोहाव (अयो० २८।१) = सं० क्रोधभाव>कोहाव

खगहा (अयो० २३६।३) = सं० खड्गहा>खग्गहा[1]>खगहा (=जो खाँग से मारता है अर्थात् गैंडा)

खीसा (उत्तर० ३३।७) = सं० किष्क्>खीस (=नष्ट होना), खीस (=नष्ट)

खुनिस (अयो० २६०।६) = सं० खिन्नमनस्>खुनिस (=वैमनस्य)

खोट (बाल० २७८।५) = सं० क्षुद्र>खोट (=खोटा)

खोरी (बाल० १२।७) = सं० खोर से खोरी (=दोष)

गर्ब (लंका० २६।४) = सं० गर्व

गुन (बाल० १। सोरठा) = सं० गुण>प्रा० गुण>गुन

गोला (लंका० ४९। छन्द) < = सं० गोल से गोला

चपरि (बाल० १५६। —) = सं० चापले>चपरि (=शीघ्रता में)

चरित (उत्तर० ४२।३) = सं० चरित्र>चरित (=लीला)

चाँड़ (बाल० २६६।४) = सं० चाण्ड>चाँड़ (=प्रचंडता, बलवत्ता)

चिन्हारी (बाल० ५०।२) = सं० √चिह्न् से चिन्हारी (=पहचान, परिचय)

चूरनु (बाल० १।२) = सं० चुर्णः>चूरनु

चौकइँ (काशि०, अयो० ९।३) = सं० चतुष्कारिण>चउक्कइँ>चौकइँ>चौकें।

छूछी (अयो० ३८।८) = सं० तुच्छ से स्त्रीलिंग छूछी

छोट (बाल २७८।५) = सं० क्षुद्र>छोट (=छोटा)

जठेरी (अयो० ४९।३) = सं० जरठ>जठर—स्त्री जठेरी (=बुड्ढी)

जनकौरा (अयो० २७१।१) = सं० जनक+पौर>जनकौरा (=जनकपुरवासी)

जनवास (बाल० ३०६।—) = वै०[2] जन्यवास>जनवास (=वह स्थान जहाँ बरात ठहरती है)

जनेत (बाल० २४३।—) = सं० जन्येत (जन्य+इत)>जनेत (=बरात)

---

१. इस प्रकार की ध्वनि-द्वित्व-प्रवृत्ति पालि-भाषा में हो गई थी। सं० भूमि, स्यूत और जानु के लिए पालि में **भुम्मि, सुत्त,** और **जन्नु** शब्द प्रचलित थे।

२. मोनियर विलियम्स के संस्कृत-कोश में वैदिक शब्द 'जन्य' का अर्थ लिखा है—'दूल्हे के साथी'।

जामिक (अयो० ३१६।५)	= सं० यामिक>जामिक (=पहरेदार)
टाप (बाल० २६६।७)	= सं० स्थाप>टाप
ठवनि (बाल०२५४।०)	= सं० स्थापन>ठवनि (=खड़े होने की स्थिति)
डाबर (अयो० ६०।५, अयो० १३६।७)	= सं० दभ्र[1]>डाबर (=छोटी पोखर)
डासन (उत्तर० ४०।१)	= सं० दर्भासन>डासन (=बिछोना)
तन (बाल० १।३)	= सं० तनु>प्रा० तणु>तन (=शरीर)
तीछें दुख (अयो० १४३।६)	= सं० तीक्ष्णेन दुःखेन (=तीक्ष्ण दुःख से)
तीरथराउ (तीरथाऊ, बाल० २१३)	= सं० तीर्थराज>तीरथराव>तीरथराउ
तुराई (अयो० १४।६)	= सं० तूलाकीय>तुराई (=गद्दा)
दरिद्र (उत्तर० ११२।१)	= सं० दारिद्र्य>दरिद्र (= निर्धनता)
धोरी (बाल० १२।४)	= सं० धौरेय>धोरी (= प्रधान, धुरा उठाने वाला, धारण करने वाला)।
निअर (किष्किं० १४।३)	= सं निकट>प्रा० णिअड>निअर (= पास, नज़दीक)
निसोतें (बाल० २८।११)	= सं० निःस्रोतसा>निसोतें (सं० निस्रोत (= निसोत = स्रोत से निकला हुआ अर्थात् शुद्ध)।
नेई (अयो० २९।६)	= सं० नेमि>प्रा० नेइ>नेई (= नींव)
नैहर (अयो० २१।१, १५६।६)	= सं० ज्ञातिगृह>प्रा० णाइहर>नैहर (= पिता-माता का घर)।
पतोहू (अयो० १५।७)	= सं० पुत्र बधू>प्रा० पुत्रवहू>पुतउहू>पतोहू
पनव (बाल० २६९।२)	= सं० पणव>पनव (= एक प्रकार का ढोल)
पदुम (बाल० १।१)	= सं० पद्म>पदुम (= कमल)
परहेलें (बाल० १५६।३)	= सं० प्रहेल>परहेल (= अवहेलना)
परिछन (बाल० ३१६।१)	= सं० परीक्षण, परिअर्चन,>परछन (= एक विवाह-रसम)
पहिचान (बाल० ३२१। छंद)	= सं० प्रत्यभिज्ञान>पच्चहिआन>पहिचान।
पासू (बाल० १७।४)	= सं० पार्श्व :>पासो>पासु>पासू (= पास)
पेन्हाई (उत्तर० ११७।११)	= सं० पयः स्रवण>पेन्हान से पेन्हाई (= पँसुरना)

१. 'दभ्र' शब्द के अर्थ थे—(क) छोटा और (ख) समुद्र। दभ्र से विकसित 'डाबर' का अर्थ हुआ—छोटा जलाशय।'

प्रगट (बाल० १०।७) = सं० प्रकट>प्रगट।

फन्द (बाल० २८९।१) = सं० पाश+बन्ध>फन्द

बंगा (लंका० २६।५) = सं० वंक>बंग (= टेढ़ा)

बचन (किष्किं० २।१) = सं० वचन

बच्छ (बाल० ३३७।८) = सं० वत्स>प्रा० वच्छ>बच्छ (= बछड़ा)

बनज (अयो० ६०।५) = सं० वनज>बनज (= कमल) (सं० वन= सं० जल+सं० ज=जन्म लेने वाला)

बपुरे (अयो० २६।३) = सं० बर्बर>बापुर>बपुर

बरात (बाल० ३०४।४) = सं० वरयात्रा >बरात (अ० बरात से भी संभव है।)

बरेषी (बाल० ८१।३) = सं० वर+ईक्षा>बरेखी (= सगाई)

बसन (बाल० १०।४) = सं० वसन>बसन (= पति)

बागुर (अयो० ७५।-) = सं० वागुर>बागुर (= पशु फाँसने का जाल)

बादि (अयो० ७५।२) = सं० वादि (= व्यर्थ)

बान (अयो० २०५।५) = सं० वर्ण>बान (= रंग, आब)

बारिज[1] (बाल० १। सोरठा) = सं० वारिज (= कमल)

बिलखि (अयो० १७१।-) = सं० विलक्ष्य (=दुखी होकर)

बिलोचन (सुंदर० ७।-) = सं० द्विलोचन (=दोनों नेत्र), सं० विलोचन (सुंदर+नेत्र)

बिहान (बाल० १५९।-) = सं० विभान>बिहान (=सबेरा)

बिहान (अयो० ९६।-) = सं० विहान (=छुटकारा)

बौंड़ (अयो० ५।८) = सं० वृन्त>वोण्ट>बौंड (=बेल, डंठल)

भाँड़ (बाल० १२।२) = सं० भाण्डक>भाण्डअ>भाँड़ा।

भिनुसार (अयो० ३७।५) = सं० विनिशार>भिनुसार (=प्रातः)

मझारि (सुन्दर २६।८) = सं० मध्य+धारा>मज्झधार>मझारि

मलान (अयो० ५३।-) = सं० म्लान>मलान (=मैला, मलिन)

माख (लंका० २४।-) = सं० मक्ष>माख (=क्रोध)

माँझ (किष्किं० ८।-) = सं० मध्य>मज्झ>माँझ

---

१. तत्सम शब्दों के आदि 'व' को तुलसी ने 'ब' के रूप में लिखकर प्रायः उन्हें तद्भव शब्द बना दिया है।

मानिक (बाल० १।८) = सं० माणिक्य>मानिक

माहुर (अयो० ५३।३) = सं० मधुर>माहुर (=विष)

रजायेसु (अयो० २३०।१) = सं० राज्यादेश: >प्रा० राजाएसो>राजाएसु>रजायेसु।

रस-रस (किष्किं० १६।५) = सं० रहस्-रहस्>रस-रस (=गोपनीय ढंग से, चुपके-चुपके, धीरे-धीरे)

राचा (बाल० सो० २३६।८) = सं० रक्तः >रच्चअ>राचा (=अनुरक्त हुआ)

रूरे (बाल० ३२४।५) = सं० रूढ>रूर (सुन्दर)

रोसा (बाल० २०८।६) = सं० मर्ष>मरस>रमस>रवँस>रउँस>रोंस>रोस>रोस>रोसा (=शान्ति, धैर्य, प्रसन्नता)।

रौताई (अयो० ३५।६) = सं० राजपुत्र>रावउत्त>रौत+आई= रौताई (=रजपूती)।

लहकौरि (बाल० ३२७।छंद) = सं० लघु कवलिका>लहुकौरि (=विवाह की एक रस्म, घीया-माती)

लागू (अयो० १९७।२) = हाथ का लगाव, हाथ का सहारा। सं० लग्न>लागू।

लिलारू (सुंदर० ३८।६) = सं० ललाट:>लिलारू

संबुक (अयो० २६१।४) = सं० शाम्बुक>संबुक (=घोंघी)

समन (बाल० १।२, अर० २।६) = सं० शमन>समन (=नाश, यमराज)

सरपि (बाल० ३२८।-) = सं० सर्पिस्>सरपि (=घी)

सरिस (उत्तर० २।१३) = सं० सदृश>सरिस (=समान)

सहाई (बाल० ८३।१, बाल० १२७।२) = सं० साहाय्य>सहाई। सं० सहाय>सहाई(=सहायता, सहायक)

साथरी (अयो० १४०।७)
साँथरी[1] (गीता प्रेस, अयो० ८९।७) } = सं० स्रस्तर>प्रा० सत्थर>साथर, स्त्री० साथरी (=बिछौना)

सिअरें (अयो० ७१।८) = सं० शीतलेन>सिअरे (सिअरें बचन=शीतल वचन से)

सियनाहू (अयो० २४।६) = सं० सीतानाथ: >सियनाहु (=रामचन्द्र)

सुआर (बाल० ३२८।-) = सं० सूपकार>सुआर (=रसोइया)

सुआसिनि (बाल० ३४५।५) = सं० सुवासिनी (सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली, सौभाग्यवती)>सुआसिनी।

---

१. ब्रजभाषा-क्षेत्र में 'साँतरौ' नलई के उस बिछौने को कहते हैं, जिसपर मुर्दे को स्नान कराया जाता है।

सुकृती (अयो० ५८।३) = सं० सुकृत्य>सुकृती (=सुकर्म)

सुटुकि (बाल० १५६।-) = सं० सुयष्टिका>सुटुकी से नाम धातु-क्रिया सुटुकि (डंडी मार कर)

सुबास (बाल० १।१) = सं० सुवास ।

सुसारा (बाल० ३३३।५) = सं० सुशाल>सुसार (=शाल लड़की की चारपाई)

सूत (बाल० २०१।५) = सं० सुप्त>सुत्त>सूत (=सोया हुआ)

हरुअ (बाल० २५८।७) = सं० लघुक>लहुक>हलुअ>हरुअ (हलका)

हिसिषा (बाल० ६९।-) = अ० हिर्स+सं० ईर्ष्या (अथवा) सं० ईर्ष्या>हिसिषा (=होड़)

ही (बाल० १।७) = सं० हृदय>प्रा० हियअ>हियग्र>हिअ>ही (=हृदय, दिल) ।

२. २. ३. देशज शब्द :

किसी क्षेत्र विशेष की जन-बोली के ठेठ शब्द जिनकी मूल-स्रोत परम्परा अज्ञात है, 'देशज' कहाते हैं। ध्वन्यात्मकता के आधार पर भी बहुत से देशज शब्दों का निर्माण होता है । मोटर साइकिल चलने में 'फटफट' ध्वनि करती है । अतः, लोक-जीवन में लोग उसे 'फट-फटिया' भी कह दिया करते हैं । 'फटफटिया' शब्द को हमें 'देशज' मानना चाहिए ।

यहाँ 'रामचरितमानस' के कुछ देशज शब्दों की तालिका दी जा रही है :

अचगरि (बाल० २७७।३) = अचगरि (=शरारत)

अढ़ुकि परहिं (अयो० १४३।६) = अढ़ुकि परहिं (=रुक जाते हैं)

अरगानी (अयो० १४।७) = अरगानी (=चुप, खामोश)

अवचट (बाल० २४८।६) = अवचट (=अचानक)

आरेसू (अयो० ४६।७) = आरेस (=डाह, जलन)

ओड़न (अयो० १९१।६) = ढाल जिसपर तलवार का वार रोका जाता है ।

ओहार (बाल० ३४८।८) = परदा; ढक्कन

करबरें (बाल० ३५७।१) = करबरें (=मुसीबतें)

कोपर (बाल० ३२४।५) = कोपर (=परात, बहुत बड़ी थाली)

खटाहिं (बाल० ७६।—) = खटाहिं (=अधिक दिन टिकती हैं) ।

गवँ (अयो० १३।४, दोहा १५८।—) = गवँ[1] (मौका, ग़रज़)

गाला (अयो० ३५।५) = गाल (=कपोल)

---

१. मतलब, गरज़ आदि के अर्थ में ब्रजभाषा में 'गौं' शब्द प्रचलित है ।

चपेट (लंका० ३३।८) = चपेट (=धक्का)
चाऊ (अयो० ५१।८) = चाव>चाउ, चाऊ (=चाह, इच्छा, शौक)
चाहि (बाल० ३४६।५) = देखकर
चाहि (अयो० २१।२) = अपेक्षा
जेवनार (बाल० ३२८।१) = जेवनार (=बहुत-से मनुष्यों का एक साथ भोजन करना)
झई (अयो० १६४।१) = झाइँ>झइँ (=चक्कर)
ठट्टा (लंका० ७६।११) = ठट्टा (=समूह)
डगइ (बाल० २५१।१) = डगइ (=डिगता है, हटता है)
डेरा (अयो० १६८।१) = डेरा (=पड़ाव, तम्बू)
डोरि (बाल० २८८।—) = देशज ० दवर (देशी नाममाला ५।३५) दवरिया, डोरा, (=रस्सी)
ढाबर (किष्कि० १४।६) = ढाबर (=मटमैला)
दुराउ (अर०४२।३) = दुराव, दुराउ, दुराऊ (=छिपाव)
धंधक (बाल० १२।४) = झगड़ा करने वाला।
धंध्रक (काशि०, बाल०१२।४) = ढोंग रचने वाला, ढुँगरच।
धींग (बाल० १३।४) = (=बलवान्, ज़बरदस्त)
नहारू (अयो० ३६।८) = (=ताँत)
नाईं (अयो० ५७।१) = (=तरह)अप० णाइ (हैम-व्या०, ८।४।३३०।१) >नाईं।)
निधरक (अयो० ४१।१) = निधड़क (=डर रहित)
निहोरा (अयो० १५२।७) = निहोर किया, अनुनय-विनय की
निहोरा[1] (बाल० २७८।७) = अहसान
निहोरा (बाल० ५।१) = अनुनय-विनय
पाँछि (अयो० १६०।७) = चीरा लगाकर
पूज् (बाल० २३६।७) = पूरा होना
फुर (अयो० १७४।३) = सत्य
बनावा (बाल २२७।७) = बनाव (=बनावट, रचना)

१. 'जौ कासी तन तजै कबीरा तौ रामहि कौन निहोरा।'—'कबीर'।

बहोरी (अयो० ३६।७) = बहोरी, बहुरि (=फिर)

बिकलाई (लंका० ६१।५) = बिकलाई=बे+कल+आई (=बेचैनी)

बुताई[1] (गीता प्रेस, बाल० २४६।१) = बुझाती है।

भाँति (बाल० सो० २३६। छन्द) = भाँति (=तरह, रीति)

भिरे (किष्किं० ८।२) = भिरे (भिड़े, लड़े)।

मचलाई (सुन्दर० ५६।५) = मचलने की क्रिया

मनाव (अयो० ३७।२) = मना (=मनोती)

माँजा (अयो० १५३।६) = पहली वर्षा का फेन।

लंका (सुन्दर० ४।५) = लंका (=कुलटा स्त्री)

लवाई (अयो० १४६।३) = हालब्याई>अलवाई>लवाई (=सद्यः प्रसूता धेनु, हालब्याई गाय)

लाटी (अयो० १४५।४) = लाटी (=थकान, चिन्ता, बीमारी आदि से मुँह का थूक सूख जाना)

लात (लंका ८१। छन्द) = लात (=पाँव)

सरवरि (बाल० २८२।५)
सरिबरि (गीता प्रेस, बाल० २८२।५) } = सरबरि, सरिबरि (=बराबरी)

हिंकरि-हिंकरि (अयो० १४३।७) = हिंकरि-हिंकरि[2] (=प्सासी भावना में भरकर)

२. २. ४. विदेशी शब्द :

निम्नांकित तालिका के शब्द मूलतः अरबी-फ़ारसी के हैं। अरबी = अ०। फ़ारसी = फा०।

अँबारी (बाल० २१३।२) = अ० अमारी>अँबारी (=छज्जा)

अवसेरी (अयो० ७।६) = अव+फा० सेरी=अवसेरी (=अतृप्ति,इच्छा)।

कबुली (अयो० २२।१) = अ० कबूल[3]=स्वीकृति, कबूली (=मंजूरी)

कमान (अयो० ४१।२) = फा० कमान (=धनुष)

कागद (बाल० ६।११) = अ० काग़ज़>काग़द। फा० कागद>कागद

---

१. गुप्त-संस्करण में 'बताई' पाठ है।

२. ब्रजभाषा में 'टुकुर-टुकुर'।

३. तुलसी से बहुत पहले, आदि की कविताओं में भी अनेक अरबी शब्द मिलते हैं, जो फ़ारसी के माध्यम से आधुनिक भारतीय आर्य भाषा 'हिन्दी' में सहज बन गये थे; जैसे 'बालम'। अ० बाल (=पति) फा० बाल-ए-मन्, बालम (=मेरा पति)>हिन्दी-बालम)।

कुलह (अयो० २८।८)	= फा० कुलाह>कुलह (=टोपी)
गुदरत (अयो० २४०।५)	= फा० गुज़रद>गुदरत (=अलग होता है; छोड़ता है)
गुदारा (अयो० २०२।७)	= फा० गुज़ारह>गुदारा (=नाव से नदी पार करना, खेना)
गुमानी (अयो० १७२।६)	= फा० गुमान से गुमानी>गुमानी (कुधारणावाला)
जहाना (बाल० ३।४)	= फा० जहान > जहाना (=संसार)
आयँ (अयो० १७८।५)	= अ० ज़ाये > (=व्यर्थ
जिनस (बाल० १७६।७)	= अ० जिंस>जिनस (=जाति)
नफीरि (लंका० ४१।३)	= अ० नफ़ीरी>नफीरि (=तुरही)
निसाना (बाल० २९९।२)	= फा० निशान>निसान, निसान (=नगाड़ा झंडा)
नीक (अयो० ३६।६)	= फा० नेक>नीक (=अच्छा)
नेब (अयो० १९।–)	= अ० नाइब>नइब>नेब (=सहायक)
नेवाजा (अयो० २५०।८)	= फा० नवाज़>नेवाज (=दयालु)
पिरोजा (बाल० २८८।४)	= फा० फ़ीरोज़ा>पिरोजा (=हल्के नीले रंग का रत्न)
पोची (अयो० १२।५)	= फा० पूच से पोच, इसका स्त्रीलिंग 'पोची' (=ओछी, तुच्छ)
फराक (उत्तर० २९।१)	= फा० फ़राख़>फराक (=विस्तृत)
बकसीस (बाल० ३०६।३)	= फा० बख़शिश>बकसीस (=दान)
बजाज (उत्तर० २८। छंद)	= अ० बज़्ज़ाज>बजाज (=कपड़े का व्यापारी)
बजारू (बाल० २९६।७)	= फा० बाज़ार>बजार>बजारु, बजारू (बाजार ।—उ= बजारु>बजारू[1]) ।
बिदा (सुन्दर० २।२१)	= अ० वदाअ, फा० विदाअ>बिदा ।
बिहाला (लंका० ५१।१)	= फा० बेहाल>बिहाल, बिहाल, बिहाला (=अचेत, बेख़बर)
रजाइ (अयो० १९१।१)	= अ० रज़ा>रजाइ (=अनुमति, आज्ञा)
रुख (अयो० २।३)	= फा० रुख़>रुख (आकृति, शक्ल)

१. 'बजारू'~'बाजारू' शब्द नहीं, अपितु पद है, जो कर्त्ताकारक में पुंलिंग, एकवचन को प्रकट करता है ।

लायक़ (अर० १९।५)	= अ० लाइक़् > लायक (योग्य, पात्र)
सराफ (उत्तर० २८।छंद)	= अ० सर्राफ़् > सराफ (= सोना-चाँदी खरीदने-बेचनेवाला)
सहनाई (बाल० २६३।१)	= फा० शहनाई > सहनाई (= बड़ी नफीरी)
साहनी (बाल० २९८।३)	= अ० 'सहन' (= हाँकना) से साहनी (= घोड़ों आदि को हाँकने वाला।)
साहिब (अयो० २४०।४)	= अ० साहिब (= मालिक, स्वामी)
सुपेती, सुपेतीं (गीता प्रेस, बाल० ३५६।२)	= फा० सुफ़ेदी से सुपेती (सफेद चादर)। (सुपेती का बहु व० रूप 'सुपेतीं')
सोरू (अयो० ८६।१)	= फा० शोर (= कोलाहल) > सोर
हराँसू (अयो० १४९।७)	= फा० हिरास > हराँसू (= विषाद)
हुनर (उत्तर० ३१।६)	= फा० हुनर (= कला, दस्तकारी)

२. ३. रामचरितमानस के कुछ शब्द और उनके लिंग :

रामचरितमानस के शब्द	मानस में उनका लिंग	साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में उनका लिंग
२. ३. १. तत्सम शब्द :		
इतिहास (बाल० ६५।४; १५२।–)	स्त्रीलिंग	पुंलिग
उपहास (बाल० १३६।३)	स्त्रीलिंग	पुंलिग
औषधु (अयो० २१२।२)	पुंलिग	स्त्रीलिंग
जटा (उत्तर० ११।४)[1]	पुंलिग	स्त्रीलिंग
मनोरथ (अयो० १०३।२)	स्त्रीलिंग	पुंलिग
मनोरथ (बाल० २३६।३)	पुंलिग	पुंलिग
मीनु (अयो० ७०।३)	पुंलिग	पुंलिग
मीना (किष्कि० १६।८)	स्त्रीलिंग	पुंलिग
मीन (अयो० ५४।४)	स्त्रीलिंग	पुंलिग
२. ३. २. तद्भव शब्द :		
असीस (अयो० ५२।२, अयो० १०३।८)	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग

१. 'निरुआरे' को तिङन्त क्रिया-प्रयोग माना जाय, तो लिंग-शंका नहीं उठती।

आसिष (बाल० २६९।५)	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग
आसिष (उत्तर० ८)	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
उपाइ (सुन्दर० ५१।१, लंका० ६२।२)	स्त्रीलिंग	+
खोज (किष्कि० ४।४)	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
चौक (गीता प्रेस, उत्तर० ९ क।३)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
छाला (अर० २७।४)	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
धीर (बाल० सो० ८५।–)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
प्रस्न (गीता प्रेस, उत्तर० ९५क। २-३, उत्तर० ११४ क।१६, बाल० १११।६)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
बिलाप (अर० २९।६)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
बिलापु (बाल० ९६।–)	पुंलिंग	पुंलिंग
सयन (बाल० २२६।३)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
साप (गीता प्रेस, उत्तर० १०९क।३)	स्त्रीलिंग	पुंलिंग
श्राप[1] (गीता प्रेस बाल० १२३।--)	पुंलिंग	पुंलिंग

२. ३. ३. **देशज शब्द :**

लात (अयो० १६३।४, लंका० ६४।५, ८५।८)[2]	पुंलिंग[3]	स्त्रीलिंग
लात (लंका० १८।५)	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग

२. ३. ४. **विदेशी शब्द :**

बिदा (सुन्दर २।११)	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
बिदा (उत्तर० १८।-)	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग
रुख (अयो० २४४।२)	,,	पुंलिंग

२. ४. **रामचरितमानस में सामासिक शब्द :**

जब विभक्ति, परसर्ग या अव्यय को हटाकर दो या दो से अधिक पद मिलते हैं और उनका अर्थ एक ही होता है, तब उसे समस्त पद कहते हैं। विभक्ति का योग समस्त पद के

---

१. गुप्त संस्करण में 'स्राप' पाठ है और काशिराज संस्क०, में 'श्राप'।

२. यदि इनसे सम्बद्ध क्रियाओं को तिङन्त क्रिया-प्रयोग माना जाय, तो लिंग की शंका उत्पन्न नहीं होती।

३. श्रीसमीर द्वारा सम्पादित अवधी कोष में 'लात' को पुंलिंग ही लिखा गया है।

अन्तिम पद में ही रहता है। 'दुःख-सुख' और 'गुरु-पुत्र' समस्त पद हैं। यदि इनमें विभक्ति का योग करेंगे, तो ये 'दुख-सुखों' और गुरु-पुत्रों हो जायेंगे। अतः, विभक्ति-प्रत्यय अन्तिम पद में रहेगा।

अर्थ के दृष्टिकोण से समास के भेद इस प्रकार हैं :

(१) उभयपद प्रधानवाला समास; अर्थात् द्वन्द्व (२) उत्तरपदप्रधानवाला समास अर्थात् तत्पुरुष, द्विगु और कर्मधारय (३) पूर्वपदप्रधानवाला समास अर्थात् अव्ययीभाव (४) अन्य पद प्रधान वाला समास, अर्थात् बहुव्रीहि।

१. द्वन्द्व :

दुख सुख[1] (बाल० ६।५)	=	दुःख और सुख
अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू (बाल० ६।६)	=	अमृत जीवन और विष मृत्यु।
खग मृग (अर० ३०।९)	=	खग और मृग
लखन राम सिय (अयो० १८०।३)	=	लक्ष्मण, राम और सीता

२. द्विगु[2] :

तिभुवन (अयो० १६४।६)	=	तीनों भुवनों का समाहार
पंचबटी (अर० १७।४)	=	पाँच प्रकार के वृक्षों का समाहार

३. कर्मधारय[3] :

कुसमउ (अयो० १६५।५)	=	बुरा समय
पद पदुम (बाल० १।१)	=	कमल के समान चरण
अदिनु (अयो० १८१।७)	=	बुरा दिन

४. तत्पुरुष :

पितु मरन हेतु[4] (अयो० १६०।६)	=	पिता के मरण का हेतु
उपाय कदम्बा (अयो० ८२।६)	=	उपायों का कदम्ब (समूह)
सुरसरि रेता (अयो० १०२।१)	=	सुरसरी का रेत
अकारण (अयो० १७३।२)	=	न + कारण

---

१. इस सामाजिक पद में अव्यय लुप्त हैं।

२-३. द्विगु में पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण होता है और कर्मधारय में पूर्व पद संख्यावाचक को छोड़कर अन्य प्रकार का विशेषण होता है।

४. यहाँ सम्बन्धी परसर्ग लुप्त हैं। उत्तरपद प्रधान है।

मनिमुँदरी (अयो० १०२।३)	=	मणि जटित मुद्रिका (मध्यमपद लोपी तत्पुरुष)
दसरथ तनय (अयो० १८१।२)	=	दशरथ का पुत्र
चित्र अवरेखी (बाल० २६४।४)	=	चित्र में लिखी हुई

५. अव्ययीभाव :

निधरक (अयो० ४१।१)	=	बिना डर के
भरि जन्म (अर० १९।४)	=	जन्म भर
सिर भर (अयो० २०३।७)	=	सिर के बल

६. बहुव्रीहि :

दसानन (अर० २७।१)	=	दस हैं आनन जिसके।
मृगनयनी (अर० ३०।९)	=	मृग के-से नेत्र हैं जिसके।
हंसगवनि (अयो० ६३।५)	=	हंस के समान है गमन जिसका।

२. ५. रामचरितमानस में विशिष्ट उपसर्ग (पूर्वप्रत्यय) :

अन	अनइस (अयो० १६३।६)	= अन + इस	= अनिष्ट (निषेधार्थ में)
अनु	अनुरागी (उत्तर० १।३)	= अनु + रागी	= प्रेम करने वाला (तदर्थ में)
"	अनुज (उत्तर० १।३)	= अनु + ज	= बाद में जन्मा हुआ (पीछे या बाद के अर्थ में)
अप	अपजसु (अयो० ३०।५)	= अप + जसु	= अपयश (हीनार्थ में)
अव	अवगाहु (बाल० २६२।२)	= अव + गाहु	= अथाह (निषेधार्थ में)
"	अवरेखी (बाल० २६४।४)	= अव + रेखी	= अवलेखी, लिखी हुई (तदर्थ में)
"	अवरेब (बाल० ३७।८)	= अव + रेब	= अवरेब, तिरछी गति, वक्रोक्ति (विशेष अर्थ में)
"	अवमान (अयो० २०१।५)	= अव[1] + मान	= अपमान (हीनार्थ में)
"	अवगुन (उत्तर० १।६)	= अव + गुन	= बुरा गुण (कुत्सित अर्थ में)
कु	कुरूप (अयो० १६।५)	= कु + रूप	= बुरा रूप (कुत्सित अर्थ में)
"	कुचाली (अयो० २६१।३)	= कु + चाली	= बुरी चाल वाला (कुत्सित अर्थ में)

---

१. अवगुण आदि में 'अव' उपसर्ग हीनार्थ में ही है। यहाँ 'अव' का प्रयोग परम्परागत भाव का ही सूचक है।

दुर्	दुर्गम (बाल० ८६।४)	=दुर् + गम	=गमन के लिए कष्टप्रद (कष्टकारी अर्थ में)
	दुर्बचन (बाल० १३८।-)	=दुर् + बचन	=बुरे वचन (कुत्सित अर्थ में)
	दुर्बलता (उत्तर० १२२।—)	=दुर्+बलता	=कमजोरी (न्यूनतार्थ में)
नि			
	निसोतें (बाल० २८।११)	=नि+सोतें	=सोत से निकला हुआ (परिवर्त्तित अर्थ में)
	निगूढ़ा (बाल० १३३।३)	=नि+गूढ़ा	=विशेष गूढ (आधिक्यार्थ में)
	निधरक (अयो०४१।१)	=नि+धरक	=निधड़क (निषेधार्थ में)
	निमज्जनु (अयो० २१६।१)	=नि+मज्जनु	=मज्जन, स्नान (तदर्थ में)
	निवसे (बाल० १५२।७)	=नि+वसे	=बसे (तदर्थ में)
निर् (निर)			
	निरलेप (अयो० ३१७।८)	=निर+लेप	=लेप रहित (निषेधार्थ में)
निस्			
	निस्तारा (लंका० ७७।४)	=निस्+तारा	=तारा (तदर्थ में)
पर			
	परहेलें (बाल० १५६।३)	=पर+हेलें	=प्रहेलें, अवहेलना करके (विशिष्ट अर्थ में)
	परपंचु (अयो० २३२। ५)	=पर+पंचु	=प्रपंच, संसार, झमेला (परिवर्त्तित अर्थ में)
	परबस (अयो० १६।५)	=पर+बस	=दूसरे के वश, पराधीन (पराये अर्थ में)
परा			
	पराभव (बाल० २३५।८)	=परा+भव	=नाश (निषेधार्थ में)
परि			
	परिछन (बाल० ९६।३)	=परि+छन	=परिअर्चन, परीक्षण (विशेष अर्थ में)
	परितोषू (अयो० ७१।५)	=परि+तोषू	=परितोष (आधिक्य अर्थ में)
प्र			
	प्रघोर (लंका ८३।—)	=प्र+घोर	=बहुत घोर (आधिक्यार्थ में)
	प्रहार (लंका० ८३।—)	=प्र+हार	=चोट (परिवर्त्तित अर्थ में)
वि (वि)			
	बिभव (बाल० २३५।८)	=बि+भव	=पालन (विशिष्ट अर्थ में)

बिडरि (बाल० ९५।४)	=बि+डरि	=बहुत डरकर (आधिक्यार्थ में)
बिरव (बाल० ३४४।२)	=बि+रव	=अधिक रव (शब्द), रववाली (आधिक्यार्थ में)
बिकार (अयो० १२७।५)	=बि+कार	=विकृति (हीनार्थ में)
बिदेहु (बाल० २१५।८)	=बि+देहु	=देह रहित (निषेधार्थ में)
बिदेस (बाल० १४।५)	=बि+देस	=परदेस (पराये अर्थ में)
बिरोधु (अयो० १८।–)	=बि+रोधु	=विरोध, वैर (परिवर्त्तित अर्थ में)
बिरची (अयो० २३७।५)	=बि+रची	=रची, बनाई (तदर्थ में)

सम्

संमत (अयो० १७५।३)	=सम्+मत	=मत (तदर्थ में)
समाधान (अयो० २२७।५)	=सम्+आधान	=निराकरण (परिवर्त्तित अर्थ में)

सु

सुकुमार (अयो० ८१।—)	=सु+कुमार	=कोमल (परिवर्त्तित अर्थ में)
सुचाली (अयो० २६१।३)	=सु+चाली	=अच्छी चालवाला (सुष्ठु अर्थ में)

२. ६. **मानस में रचनाधृत शब्द :**

(१) रूढ (२) यौगिक (३) योगरूढ

रूढ शब्द :

निम्नांकित शब्द रुढ हैं; क्योंकि ये सार्थक शब्दों या सार्थक शब्दांशों के योग से नहीं बने हैं :

सुभ (बाल० दो० १ । सो० १), गुन (बाल० दो० १ सो० १),
काक (बाल० ३।१), पिक (बाल० ३।१) ।

यौगिक शब्द :

निम्नांकित शब्द यौगिक हैं, क्योंकि ये रूढ शब्दों के साथ उपसर्ग, प्रत्यय या अन्य शब्द जोड़कर बनाये गये हैं :

सतसंग (बाल० ३।६) =सत+संग=अच्छा संग ।

सुलभ (बाल० ३।७) =सु+लभ=सुगमता से प्राप्त

फनिमनि (बाल० ३।१०) =फनि+मनि=साँप की मणि ।

योगरूढ :

निम्नांकित शब्द योगरूढ हैं; क्योंकि ये रचना की दृष्टि से यौगिक हैं, किन्तु अर्थ की दृष्टि से संकुचित होकर एक विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति का ही बोध कराते हैं ।

निम्नांकित सोरठों में आये हुए **'गननायक'** और **सरोरुह** शब्द योगरूढ हैं। यद्यपि **'गननायक'** का अर्थ है—'गण का स्वामी' और **'सरोरुह'** का अर्थ है—तालाब में उगने-वाला। किन्तु, उक्त शब्द केवल 'गणेश' और 'कमल' के अर्थ में ही रूढ हो गये हैं। अतः, **'गननायक'** और **'सरोरुह'** शब्द योगरूढ है :

'जो सुमरित सिधि होइ, **गननायक** करिबर बदन।'
—(बाल० दो १। सो० १)

'नील **सरोरुह** स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन ॥
—(बाल० दो० १। सो० ३)

२. ७. 'मानस' में शब्दशक्ति पर आधृत शब्द :

१. वाचक २. लक्षक ३. व्यंजक

वाचक शब्द :

अभिधा शक्ति पर आधृत वाच्यार्थ प्रकट करनेवाला शब्द 'वाचक' कहलाता है। निम्नांकित अर्धाली में 'जनकपुर' वाचक शब्द है।

'लषन हृदयँ लालसा बिसेखी।
जाइ **जनकपुर** आइअ देखी ॥' (बाल० २१८।१)

अर्थ : लक्ष्मण के हृदय में विशेष इच्छा है कि जाकर जनकपुर देख आवें।

यहाँ 'जनकपुर' का अर्थ जनकपुर नामक नगर से ही है। यह वाच्यार्थ पर आधृत है।

जनकपुर (वाचक शब्द) = वाच्यार्थ है—राजा जनक का नगर।

लक्षक शब्द :

लक्षणा-शक्ति पर आधृत लक्ष्यार्थ प्रकट करनेवाला शब्द 'लक्षक' कहलाता है। निम्नांकित दोहा-चरणों में 'अवध' का अर्थ अवधपुरी नहीं, अपितु अवधपुरी में रहने वाले स्त्री-पुरुषों से तात्पर्य है। क्योंकि, नगरी, अर्थात् अवध के भवन आदि तो उमड़ नहीं सकते। इसलिए यहाँ आधार-आधेय सम्बन्ध से अवध-निवासियों से प्रयोजन है। इसे प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा कह सकते हैं :

'उमगी अवध अनन्द भरि, अधिक अधिक अधिकाति।' (—बाल० ३५६।—)

अर्थ : अयोध्यावासी आनन्द से भरकर उमड़ पड़े। आनन्द की अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती जाती है।

अवध (लक्षक शब्द) = लक्ष्यार्थ है—अयोध्यावासी।

व्यंजक शब्द :

शब्द जब व्यंग्यार्थ प्रधान होकर आता है, तब 'व्यंजक' कहलाता है।

आगे की अर्द्धाली में 'सुकुमारि' का व्यंग्यार्थ 'कठोर, 'सक्षम' या 'वनवास-योग्य' है, जो काकु के आधार पर है :

'मैं सुकुमारि नाथु **बन** **जोगू** ।

तुम्हहिं उचित तपु मो कहुँ भोगू ।' '(अयो० ६७।८)

अर्थ : मैं तो सुकुमारी हूँ, और नाथ वन के योग्य हैं। व्यंग्यार्थ यह है कि यदि नाथ वन के योग्य हैं, तो मैं (सीता) भी वनवास-योग्य हूँ, अर्थात् मैं सुकुमारी नहीं हूँ ।

'पिय तुम्ह ताहि **जितब** संग्रामा ।

जाके दूत केर अस कामा ।।' (लंका० ३६।३)

अर्थ : मन्दोदरी रावण से कहती है कि जिसके दूत के ऐसे काम हैं, हे प्रियतम ! उससे तुम संग्राम जीतोगे ? अर्थात्, नहीं जीत सकते ।

काकु के आधार पर **जितब** का व्यंग्यार्थ है—'हारोगे' । इसमें व्यंजना-शक्ति प्रधान है ।

जितब (व्यंजक शब्द) = व्यंग्यार्थ है—हारोगे ।

३. रूप-विचार एवं वाक्य-विचार

३. रूप-विचार एवं वाक्य-विचार

३. १. रामचरितमानस में संज्ञा और वचन :

विचार की अभिव्यक्ति 'वाक्य' के माध्यम से होती है और वाक्य सार्थक पदों का एक ऐसा व्यवस्थित क्रम है, जो अर्थ रखता है। मानक हिन्दी में 'लड़के पुस्तकें पढ़ते हैं' एक वाक्य है। यह सार्थक है और उसका प्रत्येक पद, अर्थात् **लड़के**, **पुस्तकें**, **पढ़ते** और **हैं** भी सार्थक है। उक्त वाक्य में ये पद एक व्यवस्थित क्रम से आने पर एक अर्थ भी व्यक्त कर रहे हैं। 'पद' का निर्माण प्रकृति और प्रत्यय के योग से होता है। प्रकृति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. प्रातिपादिक और २. धातु। प्रातिपदिक अथवा धातु में प्रत्यय के योग से 'पद' का निर्माण होता है। प्रातिपदिक में जब व्युत्पादक प्रत्यय लगते हैं, तब वे पद न बनाकर एक दूसरा शब्द, अर्थात् प्रातिपदिक बना देते हैं। **सभ्य** में **ओं** प्रत्यय के योग से **सभ्यों** पद बना है, किन्तु 'सभ्य' में—**ता**' के योग से सभ्यता एक पृथक् शब्द बना है। इसमें जब कारक-वचन-सूचक प्रत्यय लगेंगे, तब पद का निर्माण होगा जैसे **सभ्यताओं**[1]। यह 'सभ्यताओं' पद है। **पढ़** धातु में **–आ** प्रत्यय के योग से बना हुआ **पढ़ा** भी पद है। अतः हम कह सकते हैं कि एक मूल प्रातिपदिक से 'शब्द' भी बन सकते हैं और 'पद' भी बन सकते हैं। 'मनुष्य' प्रातिपदिक से बना हुआ **मनुष्यता** शब्द है और **मनुष्यों** पद है।

प्रातिपदिक में प्रत्यय के योग से नामिक पद बनते हैं। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण पदों को हम 'नामिक पद' कह सकते हैं। धातुओं में प्रत्यय लगने पर जो पद बनता है, उसे 'क्रियापद' कहा जाता है। सारांश यह है कि क्रियापद का बीज-तत्त्व प्रातिपदिक नहीं, अपितु 'धातु' कहलाता है। किसी क्रिया के जितने भी रूप हों, धातु तो प्रत्येक रूप में समाविष्ट होगी। उसी प्रकार नामिक पद के प्रत्येक रूप में 'प्रातिपदिक' समाविष्ट होगा। प्रतिपद में रहने के कारण ही उसे प्रातिपदिक' कहा गया।

उदाहरण देते हुए हम यों कह सकते हैं कि 'बालकाः पुस्तकानि पठन्ति' में **बालकाः** और **पुस्तकानि** नामिक पद हैं और **पठन्ति** क्रियापद है।

बालकाः में **बालक** और **पुस्तकानि** में **पुस्तक** प्रातिपदिक हैं। दोनों का शेष अन्तिम अंश 'विभक्ति-प्रत्यय कहलाता है। इसी प्रकार 'पठन्ति' में 'पठ्' धातु है और शेष अंश क्रिया-प्रत्यय, अर्थात् प्रत्यय कहलाता है। विश्लेषण इसी प्रकार किया जा सकता है :

	पद		विश्लेषण	पद-नाम
(१)	बालकाः	=	बालक् + आः	नामिक पद
(२)	पुस्तकानि	=	पुस्तक् + आनि	नामिक पद
(३)	पठन्ति	=	पठ् + अन्ति	क्रिया पद

१. एशिया महाद्वीप में अनेक **सभ्यताओं** का जन्म हुआ है।

इसी प्रकार 'लड़के पुस्तकें पढ़ते हैं' के प्रत्येक पद का विश्लेषण किया जा सकता। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि मानक हिन्दी में 'लड़क्' मूल प्रातिपदिक और '**लड़का**' व्युत्पन्न प्रातिपदिक माना जा सकता है। इसी प्रकार **लड़की** व्युत्पन्न प्रातिपदिक और 'लड़क् मूल प्रातिपदिक है। किन्तु **तीर** मूल एवं व्युत्पन्न प्रातिपदिक है, जो पुंलिंग है और **कमान** भी मूल एवं व्युत्पन्न प्रातिपदिक है, जो स्त्रीलिंग है। 'तीर' और 'कमान' जब पद की स्थिति में प्रयुक्त होंगे तब इसमें व्याकरणिक विश्लेषण की सुविधा के लिए शून्य प्रत्यय माना जा सकता है। जैसे : तीर + —० = तीर (पुंलिंग) कमान + —० = कमान (स्त्रीलिंग)।

उक्त वाक्य के प्रत्येक पद का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है :

पद		विशेषण	पद-नाम
१. लड़के	=	लड़क् + — ए	नामिक पद
२. पुस्तकें	=	पुस्तक् + — एँ	नामिक पद
३. पढ़ते	=	पढ़् + — त् + — ए	क्रियापद
४. हैं	=	ह् + — ऐं	क्रियापद

संज्ञापदों में स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग प्रातिपदिकों का प्रश्न पहले आता है। '**लड़का**' पुंलिंग व्युत्पन्न प्रातिपदिक है, तो **लड़की** स्त्रीलिंग व्युत्पन्न प्रातिपदिक है। दोनों प्रकार के प्रातिपदिक एकवचन में हैं। इनके बहुवचन अलग-अलग हैं। जैसे—१. लड़का पढ़ता है। २. लड़के पढ़ते हैं। ३. लड़के को पढ़ाओ। ४. लड़कों को पढ़ाओ।

१. लड़की पढ़ती है। २. लड़कियाँ पढ़ती हैं। ३. लड़की को पढ़ाओ। ४. लड़कियों को पढ़ाओ।

'लड़का' व्युत्पन्न प्रातिपदिक के बहुवचनीय रूप मानक हिन्दी में दो मिलते हैं :

१. लड़के : जैसे लड़के पढ़ते हैं।

२. लड़कों : जैसे—लड़कों को पढ़ाओ।

'लड़के पढ़ते हैं' वाक्य का 'लड़के' पद ऐसा बहुवचन है, जिसके पीछे कोई परसर्ग नहीं है, लेकिन लड़कों को पढ़ाओ' वाक्य का 'लड़कों' पद ऐसा बहुवचन है, जिसके पीछे 'को' परसर्ग[१] है। अतः, हम कह सकते हैं कि **लड़के** ऋजु अवस्था का बहुवचनीय रूप है और **लड़कों** तिर्यक् अवस्था का बहुवचनीय रूप है।

इसी प्रकार स्त्रीलिंग रूपों में भी देखा जा सकता है—१. लड़कियाँ पढ़ती हैं। २. लड़कियों को पढ़ाओ। प्रथम वाक्य का 'लड़कियाँ' पद ऋजु अवस्था का बहुवचनीय रूप है और 'लड़कियों' तिर्यक् अवस्था का बहुवचनीय रूप है।

पुंलिंग 'लड़का' और स्त्रीलिंग 'लड़की' प्रातिपदिक निम्नांकित रूप में विश्लेषण

---

१. वे शब्द, जो किसी संज्ञा या सर्वनाम पद के पीछे लगते हैं, परसर्ग कहलाते हैं। परसर्ग का स्वतन्त्र रूप से अपना कोई अर्थ नहीं होता। पद के साथ आने पर अर्थमय बन जाते हैं। **को** का कोई अर्थ नहीं, किन्तु 'लड़कों को' के **को** का कुछ व्याकरणिक अर्थ है।

सहित प्रस्तुत किये जा सकते हैं। पुं० 'लड़का' का विश्लेषण।

पद	प्रातिपदिक + प्रत्यय	अवस्था	वचन
१. लड़का	लड़क् + आ	ऋजु	एकवचन
२. लड़के	लड़क् + ए[1]	ऋजु	बहुवचन
३. लड़के	लड़क् + ए	तिर्यक्	बहुवचन
४. लड़कों	लड़क् + ओं[2]	तिर्यक्	बहुवचन

ऋजु अवस्था के वाक्य:

१. **लड़का** पढ़ता है। (एकवचन में)।

२. **लड़के** पढ़ते हैं। (बहुवचन में)।

तिर्यक् अवस्था के वाक्य :

(१) **लड़के** को पुस्तक पढ़ाओ। (एक यचन में)।

(२) **लड़कों** को पुस्तक पढ़ाओ। (बहुवचन में)।

स्त्री० 'लड़की' का विश्लेषण :

पद	प्रातिपदिक + प्रत्यय	अवस्था	वचन
१. लड़की	लड़क् + ई	ऋजु	एकवचन
२. लड़कियाँ	लड़क् + इयाँ[3]	ऋजु	बहुवचन
३. लड़की	लड़क् + ई	तिर्यक्	एकवचस
४. लड़कियों	लड़क् + इयों	तिर्यक्	बहुवचन

ऋजु अवस्था के वाक्य :

१. **लड़की** पढ़ती है। (एकवचन)

२. **लड़कियाँ**[3] पढ़ती हैं। (बहुवचन)

तिर्यक् अवस्था के वाक्य :

१. **लड़की** को पढ़ाओ। (एकवचन)

२. **लड़कियों** को पढ़ाओ। (बहुवचन)

इसी पद्धति पर तुलसी के 'रामचरितमानस' के संज्ञापदों के वचनों पर विचार करना हमारा अभीष्ट है। पुंलिग शब्द (प्रातिपदिक), अर्थात् पुंलिग संज्ञा शब्द 'रामचरितमानस' में कई प्रकार के मिलते हे। उनकी ऋजु अवस्था में एकवचन और बहुवचन और तिर्यक् अवस्था में एकवचन और बहुवचन पर विचार करना है।

'मानस' की नामिक पदावली में विभक्तियों के साथ परसर्ग भी मिल जाते हैं। परसर्ग के साथ जब कोई संज्ञापद आता है, तब उसे हम 'तिर्यक् अवस्था का पद' कहते हैं। यदि

---

१. सं० एभिः>ए, सं० सर्वे = -ए>ए। २. सं० आनाम्>ओं। ३. फां० आँ>आँ।

कोई शब्द अकारान्त पुंलिग है, तो तुलसी 'मानस' में कर्त्ता और कर्म की एकवचनीय स्थिति में प्रायः उकारान्त कर देते हैं। अर्थात्, 'वचन' शब्द को प्रायः 'वचनु' पद बनाकर लिखते हैं। तुलसी ने 'मानस' में यदि कहीं पर 'सिर' को 'सिरु' (किष्कि० २३।८) और 'सर' को 'सरु' (बाल० २२७।७) लिखा है, तो उन्हें शब्द नहीं; पद समझना चाहिए। वे प्रथमा या द्वितीया के एकवचनीय रूप हैं। श्रीकेलॉग इसपर विचार नहीं कर सके थे।

३. १. १ पुंलिग संज्ञा शब्दों के वचन :

१. अकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में :

एक वचन

प्रातिपदिक—बचन, लखन, अँधियार

बचनु[1]—(ऋजु, पुं०, एकवचन)

'हृदयँ सराहत बचनु न आवा।'

(बाल० २३०।५)

अर्थ : हृदय में सराहते हैं। **वचन** नहीं आता है।

लखनु—(ऋजु, पुं०, एक व०)

'बरु नीर मारहुँ लखनु'

(अयो० १००।छंद)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर मारें।

अँधियार (ऋजु, पुं० एक व०)

'कह मुनि तात भएउ अँधियारा'

(बाल० १५९।८)

अर्थ : मुनि ने कहा—हे तात! अँधेरा हो गया।

बहुवचन

प्रातिपदिक—बचन, नात

बचन—(ऋजु, पुं०, बहु व०)

'अइसेउ बचन कठोर सुनि।'

(अयो० ६७।–)

अर्थ : ऐसे भी कठोर बचन सुनकर।

नाते—(ऋजु०, पुं० बहु वचन)

'जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।'

(अयो० ६५।३)

अर्थ : हे नाथ जहाँ तक ये स्नेह और नाते हैं।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—'चरन', लखन, तात

एकवचन

चरन (तिर्यक्, पुं०, एकवचन)

सीता चरन चोंच हति भागा।

(अर० १।७)

प्रातिपदिक—गर्भ, चरन, सिर, लोग

बहुवचन

गर्भन्ह—(तिर्यक्, पुं०, बहुवचन)

गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। (बाल० २७२।–)

---

१. 'वचनु' जैसी विभक्ति-प्रत्ययमूलक उकारान्तता निम्नांकित ग्रन्थों की अपभ्रंश में भी मिलती है—(१) कालिदासकृत विक्रमोर्वशीय (२) स्वयंभूकृत पउमचरिउ (३) दामोदरकृत उक्तिव्यक्तिप्रकरण (४) अब्दुर्रहमानकृत सन्देशरासक।

अर्थ : काक सीता के चरण में चोंच मारकर भागा ।

'लखन–(तिर्यक्, पुं० एकवचन)

'लखन कहा हँसि हमरें जाना ।'

(बाल० २७२।१)

अर्थ : लक्ष्मण ने कहा अथवा लक्ष्मण द्वारा कहा गया कि हमारे जाने तो— ।

तात (बाल० ३५८।–)

'प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ ।'–(बाल० ३५८।–)

अर्थ : प्रातः क्रिया करके चारों भाई पिता के पास आये ।

अर्थ : मेरा अति घोर परशु गर्भों के बच्चों का नाशक है ।

चरनन्हि[1] (तिर्यक्, पुं०, बहु०)

'चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ।'

(उत्तर० ७।१)

अर्थ : वैदेही चरणों में लगकर सासुओं से मिली । उसे अत्यन्त हर्ष था ।

सिरन्हि –(तिर्यक्, पुं०, बहुवचन)

'गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं ।'

(बाल० १६७।७)

अर्थ : पर्वत अपने सिरों पर सदा तिनका धरते हैं ।

लोगन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहु०)

'तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू ।'

(बाल० २४०।८)

अर्थ : तुरन्त सब लोगों के पास जाओ ।

२. आकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में

प्रातिपदिक—**डेरा, अँधियारा** ।

एकवचन

डेरा (ऋजु, पुं०, एकवचन)

'जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा ।'

(अयो० १९८।१)

अर्थ : जहाँ-तहाँ लोगों ने **डेरा** डाला ।

अँधियारा (ऋजु, पुं०, एकवचन)

'कह मुनि तात भएउ अँधियारा ।'

(बाल० १५९।८)

प्रातिपदिक—**लरिका, राजा** ।

बहुवचन

लरिका (ऋजु, पुं०, **बहुवचन**)

'जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।'

(बाल० २७७।३)

अर्थ : यदि **लड़के** कुछ शैतानी (चपलता) करते हैं ।

राजा (ऋजु, पुं०, (बहुवचन)

'न त मारे जैहहिं सब राजा ।'

(बाल० २७१।५)

१. अकारान्त पुंलिंग शब्द तिर्यक् अवस्था के बहुवचन में—नि, –न्ह, –न्हि प्रत्ययों-सहित 'मानस' में मिलते हैं । जैसे : नयन+नि=नयननि (अयो० ११७।७) । नयन+न्ह=नयनन्ह (बाल०३४३।२) । नयन+न्हि=नयनन्हि (बाल० १०४।२) ।

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे तात ! अँधेरा हो गया ।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—पिता

एकवचन

'मानहिं मातु पिता नहिं देवा ।'
(बाल० १८४।२)

अर्थ : जो माता, पिता और देव को नहीं मानते हैं ।

'सीता हरन तात जनि,
कहेहु पिता सन जाइ ।'
(अर० ३१।--)

अर्थ : हे तात ! सीता-हरण को पिता से जाकर मत कहना ।

अर्थ : नहीं तो सब राजा मारे जायेंगे ।

प्रातिपदिक—भ्राता, लरिका

बहुवचन

भ्रातन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुवचन)

'भ्रातन्ह[1] राम चरन सिरु नाये ।'
(उत्तर० ३६।१)

अर्थ : भ्राताओं ने राम के चरणों में सिर नवाये ।

'राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।।'
(उत्तर० २५।३)

अर्थ : राम भ्राताओं पर प्रीति करते हैं ।

लरिकन्ह (तिर्यक्, पुं०, ब० वचन)

'करब सदा लरिकन्ह पर छोहू ।'
(बाल० ३६०।७)

अर्थ : सदा बालकों पर स्नेह किया जाय ।

३. इकारान्त संज्ञाशब्द :

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपादिक—कबि

एकवचन

कबि (ऋजु, पुं०, एकव०)

'कबि न होउँ नहिं चतुर कहावौं ।'
(बाल० १२।६)

अर्थ : मैं कवि नहीं हूँ और न चतुर कहलाता हूँ ।

प्रातिपदिक—कबि

बहुवचन

कबि (ऋजु, पुं०, बहुव०)

कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी ।
गावहिं हरि जस कलिमलहारी ।
(बाल० ११।६)

अर्थ : विद्वान् कवि हृदय में ऐसा विचार कर कलिमलहारी हरियश गाते हैं ।

---

१. परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी में 'मानस' के 'भ्रातन्ह कर' के समानान्तर **भ्राताओं का** होता है । यह **भ्राताओं** तिर्यक् बहुवचन है । इसका विभक्ति-प्रत्यय—ओँ अपभ्रंश के – हुँ का विकास प्रतीत होता है । अप० हुँ > उँ > ओँ ।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—कलि

एकवचन

कलि (तिर्यक्, पुं०, एकव०)

'कलि के कबिन्ह करौं परनामा।'

(बाल० १४।४)

अर्थ : मैं **कलि** के कवियों को प्रणाम करता हूँ।

प्रातिपदिक—कबि, कपि

बहुवचन

कबिन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)

'कलि के कबिन्ह करौं परनामा।'

(बाल० १४।४)

अर्थ : कलि के **कवियों** को प्रणाम करता हूँ।

कपिन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)

'कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।'

(सुन्दर० १६।४)

अर्थ : रघुवीर **कपियों**-सहित आयेंगे।

४. ईकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपदिक—पानी, रघुराई

एकवचन

पानी (ऋजु, पुं०, एकव०)

'जिमि जवास परें पावस **पानी**।'

(अयो० ५४।२)

अर्थ : जैसे वर्षा ऋतु में **पानी** पड़ने से जवास सूख जाता है।

रघुराई (ऋजु पुं०, एकव०)

'बिटप ओट देखहिं रघुराई।'

(किष्किं० ८।८)

अर्थ : रघुराई वृक्ष की आड़ में से देखते हैं।

प्रातिपदिक—भाई, नाती, रघुबंसी

बहुवचन

भाई (ऋजु, पुं०, बहुव०)

'राम मातु पहिं गे दोउ **भाई**।'

(अयो० १९८।२)

अर्थ : दोनों **भाई** राम की माता के पास गये।

नाती (ऋजु, पुं०, बहुव०)

'सुत समूह जन परिजन नाती।'

(बाल० १८१।३)

अर्थ : सुत, नाती और परिजन जन-समूह रूप में थे।

रघुबंसी (ऋजु, पुं०, बहुवचन)

'कालहु डरहिं न रन **रघुबंसी**।'

अर्थ : रण में रघुवंशी काल से भी नहीं डरते।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—जोगी

एकवचन

जोगी (तिर्यक्, पुं०, एकव०)

'पावा परम तत्व जनु **जोगी**'[1]।

(बाल० ३५०।६)

अर्थ : मानों योगी द्वारा परम तत्त्व प्राप्त किया गया।

रोगी (ऋजु, पुं० एकव०)

'अमृत लहेउ जनु सन्तत **रोगी**'[2]।

(बाल० ३५०।६)

अर्थ : मानो सन्तत रोगी ने अमृत पाया।

सिय-पी

'सेवक स्वामि सखा **सिय पी के**।'

(बाल० १५।४)

अर्थ : जो सीतापति के सेवक, स्वामी और सखा हैं।

प्रातिपदिक—रघुबंसी, भाई

बहुवचन

'**रघुबंसिन्ह** (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)

'**रघुबंसिन्ह** महँ जहँ कोउ होई।'

(बाल० २५३।१)

अर्थ : जहाँ **रघुवंशियों** में कोई होगा।

भाइन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)

'**भाइन्ह** सहित राम कल्याना।'

(बाल० ३५१।२)

अर्थ : भाइयों सहित राम का कल्याण।

५. उकारान्त शब्द :

ऋजु रूप में :

प्रातिपदिक—न्याउ

एकवचन

न्याउ (ऋजु, पुं०, एकव०)

'मोर **न्याउ** मैं पूछा साईं।'

(किष्कि० २।८)

अर्थ : हे स्वामी ! मैंने पूछा। यह मेरा न्याय था, अर्थात् उचित था।

प्रातिपदिक—भालु

बहुवचन

भालु (ऋजु, पुं० बहुव०)

'निसिचर भट महि गाड़हिं **भालू**।'

(लंका० ८१।७)

अर्थ : भालु (भालू) राक्षस योद्धाओं को धरती में गाड़ते हैं।

१-२. गीता प्रेस-संस्करण में **जोगीं** और **रोगीं** पाठ हैं। इनमें तृतीया विभक्ति है—जोगीं (गीताप्रेस, बाल० ३५०।६) = योगी द्वारा।

तिर्यक् रूप में :

बन्धु (तिर्यक्, पुं०, एकव०)
'मैं पुनि गएउँ बन्धु सँग लागा ।'
(किष्कि० ६।४)

अर्थ : फिर मैं भाई के साथ लगा गया ।

गेरु (तिर्यक्, पुं०, एकव०)
'जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ।'
(अर० १८।१)

अर्थ : मानों पर्वत से गेरु की धारा बहती है ।

(विशेष : 'मानस' में कर्त्ता और कर्म की एकवचनीय स्थिति में 'ठाउँ' और अन्य कारकों की एकवचनीय स्थिति में 'ठावँ' पद का प्रयोग हुआ है । यह पुंलिग शब्द है ।
(१) ठाउँ (बाल० २६।५; अयो० १३६।७)
(२) **ठावँ** (अयो० ९०।३)

साधुन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)
'साधुन्ह सन करवावहि सेवा ।'
(बाल० १८४।२)

अर्थ : **साधुओं** से सेवा करवाते हैं ।

लघुन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)
'बड़े सनेह **लघुन्ह** पर करहीं ।'
(बाल० १६७।७)

अर्थ : बड़े **छोटों** पर स्नेह करते हैं ।

३. ऊकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपदिक—आँसू, जनेऊ

एकवचन

आँसू (ऋजु, पुं०, एकव०)
'नारि चरित करि डारइ आँसू ।'
(अयो० १३।६)

अर्थ : स्त्री-चरित्र करके **आँसू** बहाती है ।

जनेऊ (ऋजु, पुं०, एकव०)
'केहरि कंधर चारु **जनेऊ** ।'
(बाल० १४७।७)

अर्थ : सिंह की-सी गरदन और सुन्दर जनेऊ था ।

प्रातिपदिक—भालू

बहुवचन

भालू (ऋजु० पुं०, बहुव०)
'निसिचर भट महि गाड़हिं भालू ।'
(लंका० ८१।७)

अर्थ : भालू (रीछ) योद्धा राक्षसों को पृथ्वी में गाड़ते हैं ।

(विशेष : मूल शब्द 'भालु' और 'भालू' दोनों ही हैं । अतः, इसे उकारान्त और ऊकारान्त माना जा सकता है ।)

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—भालू

एकवचन

भालू (तिर्यक्, पुं०, एकव०)

'रे खल का मारसि कपि **भालू**।'

(लंका० ८३।१)

अर्थ : अरे दुष्ट ! बन्दर-रीछ को क्या मारता है ?

प्रातिपदिक—भालू

बहुवचन

भालुन्ह (तिर्यक्, पुं०, बहुव०)

(विशेष : भाषा की प्रकृति के अनुसार 'भालू' शब्द का तिर्यक् बहुवचन में रूप 'भालुन्ह' होना चाहिए। हमें 'मानस' में इसका उदाहरण नहीं मिला है।)

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' की भाषा में प्राय: पुंलिग शब्दों की तिर्यक् अवस्था के बहुवचन में ही परिवर्त्तन होता है, अर्थात् प्रातिपादिक में **'न्ह'** या **'न्हि'** प्रत्यय के योग से पुंलिग शब्द का तिर्यक् बहुवचन रूप बनता है। प्रातिपदिक जब दीर्घ स्वरान्त होता है, तब **न्ह** प्रत्यय के योग से पहले उसका परिवर्त्तन ह्रस्व स्वर में हो जाता है। जैसे—रघुबंसी—रघुबंसि + न्ह = रघुबंसिन्ह। 'रघुबंसिन्ह' पद पुंलिग, तिर्यक् बहुवचन है, अर्थात् 'रघुबंसिन्ह' पद के पीछे कोई परसर्ग अवश्य प्रयुक्त होगा, भले ही वह कहीं पर लुप्त स्थिति में हो। निम्नांकित उद्धरण में 'कर' परसर्ग के कारण ही 'रघुबंसी' प्रातिपदिक का तिर्यक् बहुवचन 'रघुबंसिन्ह' है—'रघुबंसिन्ह कर सहजसुभाऊ।' (बाल० २३१।५) अर्थात्, रघुवंशियों का सहज स्वभाव है।

३. १. २. पुंलिग संज्ञा शब्द और विभक्ति-प्रत्यय :

अन्तिम स्वर	**एकवचन**	**बहुवचन**
–अ	प्र० वचनु (बाल० २३०।५), काननु (अयो० ६२।४), धामु (अयो० ६२।४)	प्र० वचन (बाल० २५२।-) हय (बाल० ३०२।५), बिप्रन्ह (बाल० ३१२।-), नारे (अयो० ६२।७)
	द्वि० सीसु (बाल० २१७।६), जगहि (उत्तर० ७२।१), मनहिं (उत्तर०२२।),[1]	द्वि० सीस (बाल० २४२।१), लोग (बाल० २५४।२), सेवकन्ह (उत्तर० ११।२)

१. गोपालहिं (सूरसा० २।६)।

	तृ० सुभाएँ[1] (बाल० २५४।८),	तृ० देवन्ह (बाल० ३१५।४)
	भोरें (अयो० ३६।१),	द्विजन्ह (उत्तर० १२।४),
	दाहें (अयो० २०५।५)	मुखनि (बाल० ३।३)
	देवँ (अयो० २६६।३)	देव (अयो० २६४।६)[4]
	सिवँ (गीताप्रेस, बाल० ७६।८)	
	ष०—	ष० सुतन्ह (बाल० ३६१।३)
	स० सयनहिं (बाल० २५४।४)[2]	स० बिमानन्हि (बाल० ३१४।२)
	हृदयँ (बाल० ११।६)[3]	
	मनहिं[4] (बाल० २१८।२)	
	सेवकहि (बाल० २१८।-)	चरनन्हि (उत्तर० २।छंद)
	मेघहि (अयो० २३२।१)	
	भोरें (बाल० २७२।२)	
–आ	प्र० राजा (बाल० ३१३।८)	प्र० भ्राता (बाल० २१७।२)
	लरिका (बाल० ३५५)	राजा (बाल० २५१।५),
		सखा (उत्तर० ८।५),
		लरिका (बाल० २७७।३)
	द्वि० जनवासे (बाल० ३०६।४)	स० लरिकन्ह (बाल० ३६०।७)
	स० जनवासहि (बाल० ३२६।७)	
	बसेरें (बाल० ४।२)।	
–इ	प्र० कबि (बाल० ६।८)	प्र० कबि (बाल० २३०।८)
	करि (अयो० ५६।-)	
	केहरि (अयो० ५६।-)	
	द्वि० मुनिहिं (बाल० २१७।६)	द्वि० कबिन्ह (बाल० १४।४)
	ससिहि (लंका० १००।३)	कपिन्ह (उत्तर० ४।१)
	पं० मुनिहिं बाल० २१८।२)	ष० गिरिन्ह (किष्कि० ३०।८)

१. –एँ प्रत्यय धातुओं में भी पाया जाता है। जैसे—तोर् + एँ- = तोरें (बाल० २६६।४) = तोड़ने से। **हुकारें** (विद्यापति, कीर्त्ति ४।१७१) = हुँकारने से। **गाएँ** (सूरसा० २।६) = गाने से।

२. मिला० अन्नहिं (हैम० ८।४।३५७) = अन्य में। अप० **करहिं** = सं० करे, करैः।

३. गुणहिं (हैमव्या० ८।४।३४७) = गुणों से। सयनहिं = इशारों से।
सयनहिं = इशारे में। **कलशहिं** (विद्यापति, कीर्त्ति० २।८६) = कलशों से।

३-४. गीताप्रेस-संस्क० में 'देवँ' पाठ है, जो व्याकरण से असंगत है। –अँ प्रत्यय तृतीया एकवचन और सप्तमी एकवचन का सूचक है।

–ई	प्र० स्वामी (बाल० २५५।५)	प्र० भाई (बाल० २२७।२)
	प्र० जोगी (बाल० ६७।-)	प्र० बराती (बाल० ३०७।१)
		प्र० जोगी (बाल० २२।१)
	द्वि० ससिहि (बाल० २३२।६)	
	तृ० जोगीं[1] (गीताप्रेस, बाल० ३५०।६)	तृ० सारथिन्ह (बाल० २९९।३)
	तृ० जोगीं (अयो० २३९।३)	बरातिन्ह (बाल० ३०४।८)
		मंत्रिन्ह (किष्किं० ६।९)
	ष० जती (अर० २८।७)	ष० बासिन्ह (उत्तर० ८।४)
–उ	प्र० प्रभु (उत्तर० ५। छन्द, पं० ३)	प्र० श्रमबिन्दु (बाल० २३३।३)
		जन्तु (अयो० ५९।-)
	द्वि० प्रभुहि (बाल० २१७।५)	
	सिसुहि (बाल० ३०३।५)	
		तृ० साधुन्ह (बाल० १८४।२)
	स० प्रभुहि[2] (बाल० २८१।५)	स० लघुन्ह (बाल० १६७।७)
–ऊ	प्र० जनेऊ (बाल० १४७।७)	प्र० भालू (लंका० ८१।७)

पुंलिग संज्ञा प्रातिपदिकों के पदों पर विचार करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि व्यंजनान्त अथवा अकारान्त प्रातिपदिक के साथ प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में –उ विभक्ति-प्रत्यय आता है। द्वितीया के एक वचन में –हि प्रत्यय भी मिलता है। तृतीया के एकवचन में –एँ, बहुवचन में –हिं प्रत्यय और सप्तमी के एक वचन में –ँ अनुनासिकता और-हिं प्रत्यय मिलता है।

(१) प्रथमा, एकवचन में 'बचन' से '**बचनु**' (=वचन) (बाल० २३०।५) सं० शंकरः=अप० संकरु (हैम० ८।४।३३१)=संकर्+उ=रामच० **बचनु** (बाल० २३०।५) =बचन्+–उ।

(२) द्वितीया, एक वचन में 'सीस' से '**सीसु**' (=शीर्ष को) (बाल० २१७।६)। सं० चतुर्मुखं=अप० चउमुहु (हैम० ८।४।३३१)=चउमुह्+–उ=रामच० **सीसु** (बाल० २१७।६)=सीस्+उ। द्वितीया एकवचन में, 'जग' से '**जगहि**' (=जग को)—उत्तर० ७२।१। मनहिं (=मन को) (उत्तर० २२।-)

(३) तृतीया, एकवचन में 'सुभाव' से 'सुभाएँ' (=स्वभाव से)—बाल० २५४।८। सुभाअ+–एँ। विशेषण-पदों में भी तृतीया विभक्ति-प्रत्यय –एँ का योग 'मानस' में मिलता है। जैसे : सिअरें बचन (अयो० ७१।८)। कठोरें कुठार (बाल० २७५।८)।

---

१. 'जोगीं' के अन्तिम ईकार का चन्द्रबिन्दु (अनुनासिकता) ही तृतीया का विभक्ति-प्रत्यय है। **जोगी** = योगी। **जोगीं** = योगी द्वारा।

२. –हि, –हिं प्रत्ययद्वितीया, तृतीया और सप्तमी में मिलते हैं।

सं० शीतलेन = प्रा० सीअलेन = सिअरें। (सं० एन>एन>एँ)

सं० कठोरेण = प्रा० कठोरेण = कठोरें।

तृतीया, बहुवचन में 'सयन' से 'सयनहिं' (= इशारों से) (बाल० २५४।४)
(सं० एभिः>एहिं>अहिं>हिं)।

सं० करैः = अप० करहिं (हेम० ८।४।३४९) = कर + हिं (रामच०)
सयनहिं[1] (बाल० २५४।४) = सयन + हिं (बहुवचन)

(४) सप्तमी, एकवचन में 'हिअ' से **हिअँ** (हृदय में) (बाल० २१८।३)
सप्तमी एकवचन में 'बसेरा' से '**बसेरे**' (= बसेरे में) (गीता प्रेस, बाल० ४।२)।
सप्तमी एकवचन में 'जनवासा' या 'जनवास' से 'जनवासेहिं' (= जनवासे में) (बाल० ३२६।७)
" " 'मन' से मनहिं' (= मन में) — (बाल० २१८।२)
सं० जन्मनि = अप० जन्महिं (हैम० ८।४।३८३।३) = जन्म + -हिं = रामच०
मनहिं (बाल० २१८।२) = मन + हिं।

विभक्ति-प्रत्ययों की तुलना :

संस्कृत	अपभ्रंश	रामचरितमानस
(१) -अ: (प्रथमा)	-उ	-उ
(२) -अम् (द्वितीया)	-उ	-उ
(३) -एन, एँ : (तृतीया)	-एँ, हिं	-एँ, -हिं, (-हिं, -हिं- द्वितीया, तृतीया और सप्तमी के सूचक हैं)
(४) -स्मिन् (सप्तमी)	-हिं	-हिं

रामचरितमानस की भाषा-प्रकृति के आधार पर '**मनहिं**'[2] के दो अर्थ हो सकते हैं :

१. मनों से

२. मन में

---

१. मिला०, अप० **करहिं** (हैमव्या० ८।४।३४९।१) = किरणों से।
" " **गुणहिं; गुणेहिं** (हैम० ८।४।३३५) = गुणों से।
" " अङ्गहिं (हैम० ८।४।३५७।२) = अंगों में।

२. अप० अन्नहिं (हैमव्या० ८।४।३५७।२) = अंगों में।

३. १. ३ स्त्रीलिंग संज्ञा-शब्दों के वचन :

(१) अकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपदिक—बात, नाव, बिनय

एकवचन

बात[1] : (ऋजु, स्त्री, एकवचन)

'जौं बालक कह तोतरि **बाता** ।'

(बाल० ८।६)

अर्थ : यदि बालक तोतली बात कहता है।

नाव : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'राम सखाँ तब **नाव** मँगाई ।'

(अयो० १५१।३)

अर्थ : राम के सखा ने तब नाव मँगायी ।

बिनय : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'करबि पाय परि **बिनय** बहोरी ।'

(अयो० १५१।७

अर्थ : पाँवों पड़कर फिर विनय की जाय ।

प्रातिपदिक—चौक

बहुवचन

चौकें : (ऋजु, स्त्री, बहुवचन)

'**चौकें** भाँति अनेक पुराईं ।'

(बाल० २८८।७)

अर्थ : अनेक प्रकार की **चौकें** पुराई गईं ।

चौक : (ऋजु, स्त्री० बहुवचन)

'गजमनि रचि बहु चौक पुराईं ।'

(उत्तर० ७।३)

अर्थ : गजमुक्ताओं से रची बहुत **चौकें** पुराई गईं ।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—रज

एकवचन

रज (तिर्यक्, स्त्री, एकवचन)

'चरन कमल **रज** कहुँ सबु कहई ।'

(अयो० १००।४)

अर्थ : चरण-कमलों की रज को सब कहते हैं कि—।

प्रातिपदिक—चोंच

बहुवचन

चोंचन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुवचन)

'**चोंचन्ह** मारि बिदारेसि देही ।,

(अर० २६।२०)

अर्थ : गीध ने चोंचों से मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला ।

---

१. 'लात' शब्द मानस में पुंलिंग है—'हुमगि लात तकि कूबर मारा ।' (अयो० १६३।४)

(२) आकारान्त संज्ञा शब्द

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपदिक—बिधवा

एकवचन

बिधवा[1] : (ऋजु, स्त्री, एकवचन)

'बिधवा होइ पाइ तरुनाई ।'

(अर० ५।१९)

अर्थ : जवानी पाकर विधवा हो जाती है ।

प्रातिपदिक—भुजा

बहुवचन

भुजा : (ऋजु, स्त्री०, बहुवचन)

'फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला ।'

(किष्कि० ६।१४)

अर्थ : दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं ।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—सोभा, सिला

एकवचन

सोभा (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'भई सकल **सोभा** कै खानी ।'

(उत्तर० ३।६)

अर्थ : सम्पूर्ण **शोभा** की खान हुई ।

सिला : (तिर्यक्, स्त्री, एकवचन)

'बैठे फटिक **सिला** पर सुन्दर ।

(अर० १।४)

अर्थ : सुन्दर स्फटिक **शिला** पर बैठे ।

प्रातिपदिक—बिधवा

बहुवचन

बिधवन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुवचन)

बिधवन्ह के सिंगार नवीना ।'

(उत्तर० ९९।५)

अथ : विधवाओं के नवीन श्रृंगार हैं ।

(इ) इकारान्त संज्ञा शब्द

ऋजु अवस्था में

प्रातिपदिक—साँपिनि, कीरति

एकवचन

साँपिनि : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'छाड़इ स्वास कारि जनु **साँपिनि** ।'

(अयो० १३।८)

प्रातिपदिक—जोगिनि

बहुवचन

जोगिनि : (ऋजु, स्त्री०, बहुवचन)

जोगिनि नंचहीं । (अर० २०। छन्द)

अर्थ : योगिनियाँ नाचती हैं ।

---

१. 'बाटिकाँ' (गीताप्रेस, अयो० ५९१-) जैसे आँकारान्त स्त्रीलिंग पद सप्तमी विभक्ति के भी सूचक हैं । 'बाटिकाँ' = बाटिका में ।

अर्थ : मानो काली सर्पिणी साँसें छोड़ रही है।

कीरति : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।'

(बाल० १४।६)

अर्थ : कीर्त्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी है।

आलि : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'धरि धीरज एक **आलि** सयानी।'

(बाल० २३४।१)

अर्थ : एक चतुर सखी धैर्य धारण करके।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक--राति

आगि, जाति, नीति

एकवचन

राति (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'नींद परइ नहिं **राति** : (अर० २२।)।'

अर्थ : रात्रि में निद्रा नहीं आती है।

आगि (तिर्यक्, स्त्री, एकवचन)

'पावकमय ससि स्रवत न आगी।'

(सुन्दर० १२।६)

अर्थ : अग्निमय चन्द्रमा आग नहीं गिराता है।

रहनि : (तिर्यक्, स्त्री०, एकव०)

'सुनहु पवनसुत **रहनि** हमारी।'

(सुंदर० ७।१)

अर्थ : हे पवनपुत्र! हमारी रहन (रहना) सुनो।

प्रातिपदिक—जननि, आँखि

बहुवचन

जननिन्ह (तिर्यक्: स्त्री०, बहुव०)

'**जननिन्ह** सादर बदन निहारे।'

(बाल० ३५८।८)

अर्थ : माताओं द्वारा पुत्रों के मुखलालसा सहित देखे गये।

आँखिन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुब०)

'बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा।'

(बाल० २८०।७)

अर्थ : इसे जल्दी से आँखों की ओट क्यों नहीं करते हो ?

'येहु सब भाइन **आँखिन्ह** आगें।'

(अयो० १६६।६)

अर्थ : यह सब इन आँखों के आगे हुआ।

जाति : (तिर्यक्, स्त्री, एकव०)

'बिष्नु बिरंचि देब सब **जाती** ।'

(बाल० ९९।६)

अर्थ : ब्रह्मा, विष्णु आदि सब जातियों के देवता ।

नीति (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'राजु नीति बिनु ।' (अर० २१।८)

अर्थ : राज्य नीति के विना ।

४. **ईकारान्त संज्ञा शब्द :**

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपदिक—सखी

एकवचन

सखी (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'एक सखी सिय संगु बिहाई ।'

(बाल० २२८।७)

अर्थ : एक **सखी** सीता का संग छोड़कर ।

प्रातिपदिक—सखी, अली

बहुवचन

सखीं[1] (ऋजु, स्त्री०, बहुवचन)

'संग सखीं सब सुभग सयानीं ।'

(गीता प्रेस, बाल० २२८।३)

अर्थ : संग की **सखियाँ** सब सुन्दर और सयानी हैं ।

विशेष : सखीं, विशेष्य बहुवचन है, अत: इसका विशेषण 'सयानीं' भी बहुवचन है ।

अलीं (ऋजु, स्त्री०, बहुवचन)

'येहि भाँति गौरि असीस सुनि,
सिय सहित हिय्रँ हरषीं अलीं ।।'

(गीता प्रेस, बाल० २३६।छन्द)

अर्थ : इस प्रकार गौरी की असीस सुनकर सीता-सहित सखियाँ प्रसन्न हुईं ।

(विशेष : कर्ता 'अलीं' बहुवचन है, अत: इसकी क्रिया 'हरषीं' भी बहुवचन है ।)

---

१. '**गलीं**' जैसे स्त्रीलिंग शब्द सप्तमी एकवचन के भी सूचक हैं । गलीं, अथाईं (गीता प्रेस, अयो० ११।३) = गली में, अथाई पर ।

लरिकनीं : (ऋजु, स्त्री०, बहुव०)

'बधूं **लरिकनीं** पर घर आईं ।'

(बाल० ३५५।८)

अर्थ : बहुएँ बच्चियाँ हैं । पराये घर आई हैं ।

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—कृषी, घरी

एकवचन

कृषी (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'का बरषा तब **कृषी** सुखानें
समय चुकें पुनि का पछितानें ।।'

(बाल० २६१।३)

अथ : सब खेती सूखने पर वर्षा क्या ? समय पर चूक जाने पर फिर पछताने से क्या ?

घरी : (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'उभय **घरी** महँ मैं सब देखा ।'

(उत्तर० ८२।८)

अर्थ : दो घड़ी में मेरे द्वारा सब देखा गया ।

प्रातिपदिक—सखी, पानही, बधूटी

बहुवचन

सखिन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुवचन)

'लागि बिलोचन **सखिन्ह** तन ।'

(बाल० २४८।)

अर्थ : सखियों की ओर देखने लगी ।

'**सखिन्ह** मध्य सिय सोहति कैसी ।'

(बाल० २६४।१)

अथ : सखियों के बीच सीता कैसी शोभा पाती हैं ।

पानहिन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुवचन)

'बिनु **पानहिन्ह** पयादेहि पाएँ ।'

(अयो० २६२।५)

अर्थ : पैदल पावों से, बिना पनहियों के ।

बधूटिन्ह (तिर्यक्, स्त्री० बहुवचन)

'सहित बधूटिन्ह कुअँर सब ।'

(बाल० ३२७।-)

अर्थ : बधुओं-सहित सब कुमार ।

५. उकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था में :

प्रातिपादिक—सासु

एकवचन

सासु : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'**सासु** ससुर गुर सजन सहाई ।'

(अयो० ६५।२)

प्रातिपादिक—सासु

बहुवचन

सासु : (ऋजु, स्त्री, बहुवचन)

'देखीं **सासु** आन अनुहारीं ।'

(अयो० २२६।५)

अर्थ : सास, ससुर, गुरु, स्वजन और सहायक।

अर्थ : सासुएँ अन्य रूपवाली, अर्थात् विधवा-वेश में देखी गईं।

(विशेष : 'सासु' प्रातिपदिक से ऋजु अवस्था में एकवचन और बहुवचन रूप 'सासु' ही होता है। यहाँ 'सासु' पद का विशेषण 'अनुहारीं' और क्रिया 'देखीं' बहुवचनीय है। विशेषण और क्रियाएँ भी वचन बताने में सहायक सिद्ध होती हैं।)

तिर्यक् अवस्था में :

प्रातिपदिक—सासु

एकवचन

सासु (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)
'दीन्हि असीस **सासु** मृदुबानी।'
(अयो० ५८।१)

अय : **सास** द्वारा मृदुवाणी में असीस दी गई।
(अथवा) सास ने मृदुवाणी में असीस दी।

प्रातिपदिक—सासु

बहुवचन

सासुन्ह (तिर्यक्, स्त्री०, बहुवचन)
'**सासुन्ह** सबनि मिली बैदेही।'
(उत्तर० ७।१)

अर्थ : सीता सब **सासुओं** से मिली।

६. उकारान्त संज्ञा शब्द :

ऋजु अवस्था :

प्रातिपदिक—रिषिबधू, पुत्रबधू, पतोहू

एकवचन

रिषिबधू (ऋजु, स्त्री०, एकव०)
'कह **रिषिबधू** सरस मृदुबानी।'
(अर० ५।४)

अर्थ : सरस मृदुवाणी से ऋषिपत्नी कहती है।

पुत्रबधू (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)
'मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई।'
(अयो० ५६।१)

प्रातिपदिक—बिप्रबधू, बधू

बहुवचन

बिप्रबधू[1] (ऋजु, स्त्री०, बहुव०)
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी।'
(अयो० ४६।३)

अर्थ : कुलमान्य, बड़ी-बूढ़ी विप्रवधुएँ (ब्राह्मण-स्त्रियाँ)।

बधूँ[2] (ऋजु, स्त्री०, बहुव०)
'बधूँ लरिकनीं पर घर आईं।'
(बाल० ३५५।८)

१-२. बहुवचनीय ऋजु अवस्था में 'बधू' और 'बधूँ' रूप पाये जाते हैं।

अर्थ : मैंने फिर प्रिय पुत्रवधू पाई।

अर्थ : बहुएँ बच्चियाँ हैं, पराये घर आई हैं।

पतोहू : (ऋजु, स्त्री०, एकवचन)

'होहुँ राम सिय पूत पतोहू।'

(अयो० १५।७)

अर्थ : राम-सीता पुत्र और पूत्रवधू हों।

तिर्यक् अवस्था :

प्रातिपदिक—बालू

एकवचन

बालू (तिर्यक्, स्त्री०, एकवचन)

'ऊपर डारि देहिं बहु बालू।

(लंका० ८१।७)

अर्थ : ऊपर बहुत सी बालू डाल देते हैं।

प्रातिपदिक—बधू

बहुवचन

बधुन्ह (तिर्यक्, स्त्री० बहुव०)

'सुन्दरि बधुन्ह सासु लै सोईं।'

—डॉ० गुप्त के संस्करण की पाद-टिप्पणीवाले पाठ के आधार पर,

(बाल० ३५८।४)

'सुन्दर बधुन्ह सासु लै सोईं।'

(गीता प्रेस, बाल० ३५८।४)

अर्थ : सासें (सासुएँ) सुन्दर बहुओं को लेकर सोईं।

प्राय: ऋजु अवस्था में स्त्रीलिंग शब्द अपने बहुवचन में वैसे ही रहते हैं। केवल ईकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन शब्द ऋजु अवस्था के बहुवचन में ईंकारान्त हो जाते हैं, जैसे 'सखी' का बहुवचन 'सखीं' होता है।

स्त्रीलिंग शब्द तिर्यक् अवस्था के बहुवचन में पुंलिग शब्दों की भाँति 'न्ह' प्रत्यय को ही स्वीकार करते हैं। इस प्रत्यय के योग से पूर्व यदि वह स्त्रीलिंग दीर्घस्वरान्त हो, तो ह्रस्व स्वरान्त हो जाता है। जैसे : 'सखी' सखि+न्ह='सखिन्ह'— 'सखिन्ह मध्य' (बाल० २६४।१)।

तिर्यक् अवस्था के बहुवचनीय पुंलिग पदों में तो 'न्ह' और जहाँ-तहाँ 'न्हि' प्रत्यय पाया जाता है। तिर्यक् अवस्था के बहुवचनीय स्त्रीलिंग पदों में भी 'न्ह'[1] प्रत्यय अधिक मिलता है। जैसे :

---

१. सप्तमी के बहुवचन में स्त्रीलिंग शब्द 'न्हि' प्रत्यय के साथ भी मिल जाते हैं; जैसे सरितन्हि (बाल० ३०४।५) = नदियों पर। अकारान्त तथा आकारान्त को छोड़कर शेष स्वरान्तों के स्त्रीलिंग शब्दों में –न्ह प्रत्यय पाया जाता है।

पुंलिंग		स्त्रीलिंग	
एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०
(१) गर्भ	गर्भन्ह (बाल० २७२।)	(१) बिधवा	बिधवन्ह (उत्तर९९।५)
(२) चरन	चरनन्हि (उत्तर०७।१)	(२) सासु	सासुन्ह (उत्तर०७।१)

३. १. ४ स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द और विभक्ति-प्रत्यय :

अन्त्य स्वर	एकवचन	बहुवचन
–अ	प्र० बात (बाल० २७०।७), (अर० ३१।५)	प्र० असीसें (बाल० ३०८।६), चौक (उत्तर० ६।३)
	द्वि० बात (अयो० २६।७) (अयो० २८।८), गोद (अयो० ५६।५)	द्वि० बातें (बाल० २२५।८), अयो० १२२।४), चौकें (बाल० २९६।)
	तृ० बरात (बाल० ३०४।४)	तृ० चौचन्ह (अर० २९।२०)
	स० सुनावँ (गीता प्रेस, अयो० २०२।८)	स० नाव (गीताप्रेस, अयो० २०२।८)
	स० चपरि (बाल० १५६।—	
–आ	प्र० सिखा (बाल० २३०।७), बरषा (किष्कि० १६।१)	प्र० अपछरा (उत्तर० १२।छन्द)
	द्वि० सीतहि (अर० २६।१६)[1] अजहि (अयो० १५२।४)	द्वि० मातन्ह (उत्तर ६।-)
	तृ० कौसिलइ (अयो० १६।-) कौसिलाँ (गीताप्रेस, अयो० १९।)	
	च० कौसिलहि (अयो० १४।३)	
		ष० बिधवन्ह (उत्तर० ९९।५)
	स० ससुरें, मइकें (अयो० ९६।-)	स० सरितन्हि (बाल० ३०४।५)
	स० राजसभाँ (बाल० २६।८)	
–इ	प्र० छबि (बाल० २६४।१) रीति (बाल० ३०९।१) बिपति (अयो० ६३।२)	प्र० जोगिनि (अर० २०।छन्द)

---

१. सीता+हि=सीतहि (=सीता को—अर० २६।१६)।

	द्वि० बोलनि (उत्तर० १६।४), पुतरि (अयो० ५६।२), बालि (अयो० ५६।६), निसहि (लंका० १००।३)।	
		तृ० जननिन्ह (बाल० ३५८।८)
		प० आँखिन्ह (अयो० १६६।६)
	स० रातिहिं[1] (अयो० २२१।२)	
–ई	प्र० सखी (बाल० २२८।७) हंसकुमारी (अयो० ६०।५)	प्र० सखीं (बाल० २२८।३), रानीं (बाल० १६०।७)
	द्वि० जानकिहि (बाल० २५२।७)	द्वि० मृगिन्ह (अयो० ५१।१)
	तृ० वैदेही (बाल० २३६।४) कुबरीं (काशी, अयो० २०।२ २२।१)	तृ० सखिन्ह (बाल० २३३।–)
	स० भीतीं (बाल० २३५।३), कोसलपुरीं (बाल० १८७।४) थारीं (बाल० ३०१।४) (उत्तर० ११४।१२)	स० अटारिन्ह (बाल० ३०१।४)
–उ		प्र० सासु (अयो० २२६।५)
		द्वि० सासुन्ह (उत्तर० ७।१)
	तृ० सासु (अयो० ५८।१)	तृ० सासुन्ह (उत्तर० ११।–)
–ऊ	प्र० बधू (अयो० ५६।१)	प्र० बिप्रबधू (अयो० ४६।३), बधूँ (बाल० ३५५।८)
	द्वि० बधुहि (अयो० ६७।७)	द्वि० बधुन्ह (गुप्त-संस्क० टिप्पणी, बाल० ३५८।४)

स्त्रीलिंग संज्ञा प्रातिपदिकों के पदों पर विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि द्वितीया विभक्ति के एकवचन में मूल प्रातिपदिक के साथ –हि विभक्ति–

१. अप० अक्खिहिं (हैमव्या० ८।४।३५७।२) = आँख में।—(—हिं)।
,, अन्नहिं (,, ,, ,, ,,) = अन्य में।—(—हिं)।
,, अङ्गिहिं (,, ,, ,, ,,) = अंगों में।—(—इहिं)।
,, हत्थिहिं (,, ८।४।३५८।१) = हाथों से।—(—इहिं)।

प्रत्यय आता है। यदि मूल प्रातिपदिक दीर्घ स्वरान्त होता है, तो –हि के योग से पूर्व वह दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर में बदल जाता है। जैसे : 'सीता' + –हि = सीतहि (=सीता को) जानकी + –हि = जानकिहि (= जानकी को) बाल० २५२।७। उसी प्रकार 'बधू' से 'बधुहि' (अयो० ६७।७) (= वधू को)।

अनुनासिक विभक्ति-प्रत्यय बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह तीनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है :

(१) तृतीया एकवचन में— जैसे : 'वैदेही' से 'वैदेहीं' (= वैदेही से, वैदेही द्वारा) (बाल० २३६।४) 'कृपा' से 'कृपाँ' (= कृपा से) — (किष्कि० १८।६)।

(२) सप्तमी एकवचन में – जैसे : 'अवधपुरी' से 'अवधपुरीं' (= अवधपुरी में) – (उत्तर० ११४।१२) 'थारी' से 'थारीं' (=थाली में)–(बाल० ३०१।४)।

(३) प्रथमा बहुवचन में – जैसे : 'सखी' से 'सखीं' (= सखियाँ)–(बाल० २२८।३)।

३. १. ५ संज्ञा विभक्ति-प्रत्ययों का मूल और विकास :

३. १. ५. १ पुंलिंग संज्ञापद :

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
केवटु (अयो० १००।३)	एकवचन	प्रातिपदिक + –उ (प्रथमा)
लखनु (अयो० १००। छन्द)	एकवचन	प्रातिपदिक + –उ (प्रथमा)

मूल और विकास :

सं० सु[1]—पालि० –ओ, अप० –उ — रामच० –उ

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० कैवर्त्तः	पालि० केवट्टो = अप० केवट्टु	रामच० केवट्टु (पुं० प्रथमा, एकवचन)
	अप० केवट्टु = दहमुहु (हैम-व्या० ८।४।३३१)	
सं० लक्ष्मणः	पालि० लक्खणो = अप० लक्खणु	रामच० लखनु (पुं० प्रथमा, एकवचन)
	सं० दशमुखः = अप० दहमुहु	

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
बचन (बाल० २५२।-)	बहुवचन	प्रातिपदिक + — (प्रथमा)

मूल और विकास :

---

१. 'सु' से तात्पर्य प्रथमा एकवचनीय पदान्त के विसर्ग का है।

सं० जस्>पालि० -आ>अप० -अ>रामच०—०।

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० वचनानि>पालि० वचनानि>अप० वयणइँ, वयण।	अप० वयणइँ = फलइँ (हैमव्या० ८।४।३३६।१) विशेष : हिन्दी के बातें, खाटें आदि अन्तिम -एँ अपभ्रंश के नपुंसकलिंग बहुवचन विभक्ति-प्रत्यय -अइँ का विकास है। अप० वयण = खग्ग (हैमव्या० ८।४।३३०।४ सं० खड्गः>अप० खग्ग।	रामच० बचन, बैन (पुं०, प्रथमा, बहुवचन)।

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
दुखु (बाल० २८०।३)[1]	एकवचन	प्रातिपदिक + -उ (द्वितीया)
फलु (अर० २९।३)	,,	,, + -उ (,,)

मूल और विकास :

सं० सु—पालि० -अम्—अप० -उ—रामच० -उ।

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
दुःखं	पालि० दुक्खं—अप० दुक्खु = चउमुहु (हैमव्या० ८।४।३३१) सं० चतुर्मुखम्—अप० चउमुहु।	रामच० दुखु (पुं० द्वितीया, एकव०)
फलं	पालि० फलं—अप० फलु	रामच० फलु (पुं०, द्वितीया, एकवचन)

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
बालक (बाल० २०१।७)	बहुवचन	प्रातिपदिक + - ० (द्वितीया)
वचन (बाल० २८०।४)	,,	,, + - ० ,,

मूल और विकास :

सं० शस्—पालि० -ए—अप० - ० — रामच० - ०

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० बालकान्	पालि० बालके, अप० बालक अप० बालक = सर (हैमव्या० ८।४।३४४)	रामच० बालक (पुं०, द्वितीया, बहुवचन)

---

१. मिला० काजु (उक्तिव्यक्तिप्रकरण, पृ० ५२, पंक्ति ७) = सं० कार्यम्।
दानु (,, ,, ११।११) = सं० दानम्।

सं० शरान् = अप० सर ।

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
सुभाएँ[1] (बाल० २५४।८)	एकवचन	प्रातिपदिक + -एँ (तृतीया)
सयनहिं (बाल० २५४।४)	बहुवचन	,, + -अहिं या -हिं (तृतीया)

मूल और विकास :

सं०-टा—पालि० एन > अप० एँ > रामच० एँ

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० स्वभावेन	पालि० सुभाएन, अप० सुभाएँ	रामच० सुभाएँ (पु०, तृतीया, एकवचन)
	अप० सुभाएँ = दइएँ (हैमव्या० ८।४।३३३)	
सं० संज्ञपनेन	पालि० संणपेन, सयनें	
सं० संज्ञपनैः	पालि० संणपनेहि, अप० सयनहिं अप० सयनहिं = गुणहिं (हैम-व्या० ८।४।३४७) सं० गुणैः > अप० गुणहिं ।	रामच० सयनहिं (पु० तृतीया, एकवचन, बहुवचन) (विशेष : अपभ्रंश में -अहिं या -हिं[2] विभक्ति—प्रत्यय तृतीया बहु-वचन का सूचक है ।)

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
मनहिं (बाल० २१८।१)	एकवचन	प्रातिपादिक + -अहिं या—हिं (सप्तमी)
घरहिं (बाल० २७६।७)	,,	प्रातिपदिक + — अहिं या —हिं (सप्तमी)

मूल और विकास :

सं० ङि० > पालि०—स्मिं > —म्हि > अप०-हिं, -अहिं > रामच० -हिं या -अहिं ।

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० अन्यस्मिन्	पा० अण्णामिन्ह > अप० अन्नहिं (= अन्य में)	रामच० मनहिं (पुं०, सप्तमी, एकव०)

---

१. मिला० 'रोडें राउलवेल वखा [णी]' ।

{ राजें (गुप्त, पदमावत, २३६।२) } रोडाकृत राउलवेल, सं० माताप्रसाद गुप्त, धीरेन्द्र वर्मा-विशेषांक हिन्दी-अनुशीलन, वर्ष १३ (जनवरी-जून), भारतीय हिन्दी-परिषद्, प्रयाग, पृ० ३१) अप० अहरें (हैमव्या० ८।४।३३२।२) > अधरेण ।

२. मिला० सं० करैः = करहिं (हैमव्या० ८।४।३४६।१) = किरणों से ।

मनहिं = अन्नहिं (हैम० व्या० ८।४।३५७)	रामच०-घरहिं[1] (पुं०, सप्तमी, एकवचन)

३. १. ५. २. स्त्रीलिंग संज्ञापद :

संज्ञापद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
चौकें (बाल० २८८।७) चौकइँ (अयो० ८।३)	बहुवचन	प्रातिपदिक + —एँ, —अइँ (प्रथमा)

मूल और विकास :

सं० जस् > पालि० आइँ, अप० अइँ > रामच० ऐं (अथवा) —अइँ। (अप०–अइँ > खड़ी बोली–एँ)।

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० चतुष्कानि	पालि० चउक्काइँ > अप०	रामच० चौकें (स्त्री०, प्रथमा, बहुवचन)
	चउक्कई = अप० फलइँ (हैम० व्या० ८।४।३३६)	चौकइँ (अयो० ८।३) पाठ भी है।
	(विशेष : अपभ्रंश में 'चउक्कइँ' नपुंसकलिंग बहुवचन है। किन्तु, मानस में 'चौकइँ, स्त्रीलिंग बहुवचन है।)	विशेष : खड़ी बोली के 'बातें' खाटें, आदि का–एँ अप० के –अइँ का विकास है।

३. २. रामचरितमानस में सर्वनाम और वचन :

३. २. १. पुरुषवाचक सर्वनाम :

उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम—प्रातिपदिक 'म्'।

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	मैं	हम
	'मैं पुनि गएउँ बंधु सँग लागा।' (किष्कि० ६।४)	हम[2] छत्री मृगया बन करहीं। (अर० १९।१०)
	अर्थ : फिर मैं बन्धु के साथ लगा गया।	अर्थ : हम क्षत्रिय हैं और वन में शिकार करते हैं।

---

१. मिला० अप० देसहिं (हैमव्या० ८।४।३८६।१) = देश में।

२. अस्मे > अम्हे > हमें, हम।

'जिन्ह मोहि मारा ते **मैं** मारे[1] ।
तेहि पर **बाँधेउँ** तनयँ तुम्हारे ॥ (गीता प्रेस, सुन्दर० २२।५)

अर्थ : जिन्होंने मुझे मारा वे मैंने मारे,
अर्थात् वे मेरे द्वारा मारे गये।
उसपर तुम्हारे तनय द्वारा मैं बाँधा गया।

विशेष : **बाँधेउँ** का कर्म 'मैं' पुंलिग एकवचन है; क्योंकि हनुमान् के लिए प्रयुक्त है। यदि कर्म स्त्रीलिंग होता, तो तुलसी **बाँधिउँ** लिखते। कर्त्ता में भी निम्नांकित उदाहरण प्रमाण है :

(१) मैं पुनि **गएउँ** बंधु सँग लागा (किष्कि० ६।४) (गएउँ—पुं०)।
(२) **गइउँ**[2] न संग न प्रान पठाए ॥ (अयो० १६६।५) (गइउँ—स्त्री०)।

द्वितीया **मोहिं**

'भामिनि राम सपथ सत **मोहीं**[3] ।
(अयो० २६।६)

अर्थ : हे भामिनि ! **मुझे** राम की सौगन्ध है।

मोहि[4]

'समदरसी **मोहि** कह सब कोऊ।'
(किष्कि० ३।८)

अर्थ : सब कोई **मुझे** समदर्शी कहते हैं।

हमहि

'**हमहि** देखि दीन्हेउ पट डारी।'
(किष्कि० ५।५)

अर्थ : **हमको** देखकर पट डाल दिया।

मोहि कहँ

'सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा।'
(अर० १६।१०)

अर्थ : सब कुछ **मुझको** माने और सेवा में दृढ हो।

'**हमहि** देखि मृग निकर पराहीं।'
(अर० ३७।५)

अर्थ : हमें देखकर मृग-समूह भागते हैं।

---

१. प्राकृत में दो सर्वनाम हैं-(१) अम्मि (= मैं) -प्रथमा विभक्ति। (२) मइँ (= मैं) -तृतीया विभक्ति। तुलसी की इस अर्द्धाली में **मैं** का प्रयोग ऐसा हुआ है कि प्रथम चरण का **मैं** प्रा० मइँ से विकसित है और द्वितीय चरण के प्रसंग में वही **मैं** प्रा० **अम्मि** से विकसित है।

२. लखीमपुर की अवधी बोली में भी 'गइउँ' स्त्रीलिंग और 'गएउँ' पुंलिंग है।

३. गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण (सं० २०१६ वि०) में 'मोही' और 'तोही' पाठ है।

४. मोहि (अयो० ६७।७) = मुझे।

तृतीया	**मैं (मेरे द्वारा)**	**हम सन**
	'गगन पंथ देखी मैं जाता ।' (किष्कि० ५।४)	'ब्रह्म सभाँ **हम सन** दुख माना ।' (बाल० ६२।३)
	अर्थ : आकाश मार्ग से जाती हुई **मेरे द्वारा** देखी गई ।	अर्थ : ब्रह्मा की सभा में हमसे उन्होंने दुःख माना था ।
	'बीर बिहीन मही मैं जानी ।' (बाल० २५२।३)	
	अर्थ : **मेरे द्वारा** पृथ्वी वीर-विहीन जानी गई । (अथवा) **मैंने** पृथ्वी वीर-विहीन जानी ।	
	'तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना । ।' (सुन्दर० १०।९)	
	अर्थ : तो **मेरे द्वारा** (सीता) कृपाण निकालकर मारी जायगी ।	
चतुर्थी	**मोहि लागि**[1]	**हमहि**
	'बार बार **मोहि लागि** बोलावा ।' (बाल० २७५।१)	**हमहि** तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ।' (अयो० ३१५।२)
	अर्थ : उसे बार-बार **मेरे लिए** बुलाते हो ।	अर्थ : हमारे लिए और तुम्हारे लिए स्वप्न में भी क्लेश नहीं ।
	मोहि कहँ	
	'**मोहि महँ** होइ बहुत अवलंबा ।' (अयो० ६०।७)	'बिधि सबु कीन्ह **हमहि** जो दाहिन ।' (अयो० २२३।५)
	अर्थ : **मेरे लिए** बहुत सहारा हो जाय ।	अर्थ : जो हमारे लिए अनुकूल है, वह सब विधाता ने किया ।
षष्ठी	**मोर**	**हमार**
	'**मोर** न्याउ मैं पूछा साईं ।' (किष्कि० २।८)	'कहि प्रतापु बलु रोषु **हमारा** ।' (बाल० २७४।४)
	अर्थ : हे स्वामी । मैंने पूछा, यह मेरा न्याय था ।	अर्थ : हमारा प्रताप, बल और क्रोध कहकर ।

---

१. यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि 'मोहि लागि' में 'हि' विभक्ति-प्रत्यय है और लागि परसर्ग है। 'मानस' में ऐसे प्रयोग अनेक हैं ।

मोरें-	**हमारें**
'दीन्हि लखन सिख अस मन **मोरें** ।' (अयो० १३।७)	'**भाग हमारें** आगमनु ।'[1] (अयो० १३५।-)
अर्थ : लक्ष्मण द्वारा तुझे दण्ड दिया गया है, ऐसा मेरे मन में है ।	**अर्थ : हमारे भाग्य** से आगमन हुआ ।
	'सोचु अति हृदय हमारें ।' (अयो० ११२।४)
	अर्थ : हमारे हृदय में अत्यन्त सोच है ।

विशेष : मोरें (अयो० १३।७; अयो० २०५।२)
सप्तमी एक वचन में विशेषण रूप भी है ।

सप्तमी	**मोहि** (यह द्वितीया भी है ।)	**हमहि, हमहिं**
	'**मोहि** मग चलत न होइहि हारी ।' (अयो० ६७।१)	'**हमहि** तुमहि सरिवरि कसि नाथा ।' (गीता प्रेस, बाल० २८२।५) '**हमहिं** तुमहिं सरवरि कस नाथा ।' (बाल० २८२।५)
	अर्थ : मार्ग में चलते हुए मुझमें (मुझे) थकान न होगी ।	**अर्थ** : हे नाथ ! हममें और तुममें कैसी बराबरी ?
	विशेष : अर्थ की दृष्टि से यहाँ **मोहि** में अधिकरणकारक, अर्थात् सप्तमी विभक्ति है ।	**हमरें** 'सखि **हमरें** आरति ।' बाल० २२२।८ **अर्थ** : सखि ! हमारे में दुःख है ।

मो पहिं (उत्तर० ५। छन्द) = मुझपर

मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम-प्रातिपदिक 'त्' :

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	तूँ, तैं 'को तूँ अहसि सत्य कहु[2] मोही ।' (अयो० १६२।७)	तुम्ह- 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा ।' (किष्कि० १।७)

---

१. मिलाइए : 'अनुग्रह तोरें' (गीताप्रेस, अयो० ५३।८) = तेरे अनुग्रह से । हमारें भाग = तोरें अनुग्रह । यहाँ 'भाग' और 'अनुग्रह' में तृतीया विभक्ति है, जो लुप्त है ।

२. कहु = √कह् + -उ (तू कह) —अयो० १६२।७ ।
करु = √कर् + -उ (तू कर) —हैम व्या० ८।४ ३३०।४ ।
सुणि = √सुण् + -इ (तू सुन) —सन्देशरासक ३।२०७ ।
सुनि = √सुन् + -इ (तू सुन) —ब्रजभाषा में जनपदीय रूप ।

अर्थ : तू कौन है ? मुझसे सत्य कह ।

तैं-

'तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना ।

(किष्किं० ३।७)

अर्थ : तू लक्ष्मण से दूना मेरा प्रिय है ।

'जैहसि तैं समेत परिवारा ।'

(बाल० १७४।२)

अर्थ : तू परिवार-सहित जाएगा ।

अर्थ : श्यामल और गौर शरीर वाले तुम कौन हो ?

'राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह ।'

(उत्तर० २१-)

अर्थ : हे नाथ ! तुम राम के प्राण-प्रिय हो ।

द्वितीया तोहि (बाल० २३६।१)

तोही 'भे अति अहित रामु तेउ तोही

(अयो० १६२।७)

अर्थ : वे राम भी तुझे वैरी हुए ।

'मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।'

(किष्किं० ६।६)

अर्थ : मूढ़ ! तुझे अधिक घमण्ड है ।

तोहिं

'जौं कछु कहौं कपटु करि तोहीं ।'

(अयो० २६।६)

अर्थ : यदि तुझसे कपट करके कुछ कहूँ ।

तुम्हहि-

'कहेहु दन्डवत प्रभु से तुम्हहि कहौं कर जोरि ।

(उत्तर० १९।-)

अर्थ : तुम्हें हाथ जोड़कर कहता हूँ कि तुम प्रभु से मेरा दण्डवत् (प्रणाम) कहना ।

तृतीया तैं[1]

'सीता तैं मम कृत अपमाना ।'

(सुन्दर० १०।१)

अर्थ : हे सीता ! तेरे द्वारा मेरा अपमान किया गया ।

'रिपु कर रूप सकल तैं गावा ।'

(लंका० १६।३)

तुम्ह सन

'सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।'

(बाल० २८२।८)

अर्थ : हम सब प्रकार से तुमसे हारे हुए हैं ।

---

१. रामचरितमानस में 'तैं' (किष्किं० ३।७, सुन्दर० १०।१) पद प्रथमा विभक्ति और तृतीया विभक्ति में मिलते हैं । किष्किं० ३।७ का 'तैं' प्रथमा में और सुन्दर० १०।१ का 'तैं' तृतीया में प्रयुक्त हुआ है ।

सं० त्वया > तइँ > तैं । वैदिक भाषा युष्मे = तुष्मे > तुम्हें ।

सं० तुष्मेभिः > तुम्हेहिं । तुष्माभिः > तुम्हहिं > तुम्हइँ > तुम्हें ।

अर्थ : तेरे द्वारा वैरी का समग्र रूप गाया गया।

चतुर्थी

तोहि

'मोरें नहिं अदेय कछु **तोही**।'
(बाल० १४९।८)

अर्थ : मेरे पास तेरे लिए कुछ अदेय नहीं।

तुम्हहि लागि

'**तुम्हहि लागि** धरिहौं नर बेसा।'
(बाल० १८७।१)

अर्थ : तुम्हारे लिए नर-वेष धरूँगा।

तुम्ह कहँ

'दीन्हि राम **तुम्ह कहँ** सहिदानी।'
(सुन्दर० १३।१०)

अर्थ : राम ने तुमको निशानी दी।

तुम्ह सन

'**तुम्ह सन** सहज सनेहु।'
(अयोध्या० १३१।-)

अर्थ : तुम्हारे प्रति सहज प्रेम है।

पंचमी

तोहि

'नाहिन तात उरिन मैं **तोही**।'
(उत्तर० २।१४)

अर्थ : हे तात! मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।

विशेष: अपभ्रंश में पंचमी का बहुवचनीय प्रत्यय—हुँ था। हेमचन्द्र ने शृंगों से गिरी हुई, के अर्थ में 'सिगहुँ पडिअ' (हैमव्या० ८।४।३३७) लिखा है।

तुम्हहि

'अभय होइ जो **तुम्हहि** डराई।'
(बाल० २८४।५)

अर्थ : जो तुमसे डरता है, वह अभय हो जाता है।

षष्ठी

तोर

'मैं अरु मोर **तोर** तैं माया।'
(अर० १५।२)

अर्थ : मैं और मेरा, तू और तेरा, यही माया है।

तुम्हार

'हा लछिमन **तुम्हार** नहिं दोसा।
(अर० २९।३)

अर्थ : हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है।

तोरि

'अन्तकाल गति **तोरि**।'
(किष्किं० ९।-)

तुम्हारि

'हमरे कुसल **तुम्हारिहि** दाया।'
(उत्तर० ५।४)

अर्थ : अन्त समय में तेरी गति है।

तुअ

'परौं कूप तुअ[1] बचन पर।'
(अयो० २१।-)

अर्थ : तेरे वचन पर कूप में पड़ सकती हूँ।

तोरें

'अनुदिन बढ़उ अनुग्रह **तोरें**।'
(अयो० २०५।२)

अर्थः तेरे अनुग्रह से अनुदिन बढ़े।

विशेषः 'तोरें' तृतीया एकवचन-सूचक विशेषण भी है।

अर्थ : तुम्हारी ही दया से हमारा कुशल है।

तुम्हारें

'राज लखन अब अंग **तुम्हारें**।'
(अयो० ११२।४)

अर्थ : तुम्हारे सब अंगों में राज-लक्षण हैं।

तुम्हारें (विशेषण, तृतीया)

'केवल कौसिक सील **तुम्हारें**।'
(बाल० २७५।७)

अर्थ : हे कौशिक! केवल तुम्हारे शील से।

'विशेषः' तुम्हारें की अनुनासिकता तृतीया और सप्तमी की सूचक है।)

सप्तमी

तुम्हहिं, तुम्हहि

'हमहिं **तुम्हहिं** सरवरि कस नाथा।'
(बाल० २८२।५)

अर्थ : हे नाथ! हममें और **तुममें** बराबरी कैसी?

'हमहिं **तुम्हहिं** सरिवरि कसि नाथा।'
(गीता प्रेस, बाल० २८२।५)

अर्थ : हे नाथ! हममें और तुममें बराबरी कैसी?

अथवा

हे नाथ! हमको और तुमको बराबरी कैसी?

अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम : प्रातिपदिक स्, त्

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	**सो** 'सो सुतंत्र अवलम्ब न आना।' (अर० १६।३)	**ते** 'करहि ते सहहिं महा भव भीरा।' (उदर० ४१।३)

---

१. सं० तव > तुअ। सं० तस्य > तस्सु > तासु।

अर्थ : वह (भक्ति) स्वतन्त्र है। अन्य सहारा उसे नहीं चाहिए।

'सो सीता कर खोज कराइहि।'
(किष्कि० ४।४)

अर्थ : वह सीता की खोज कराएगा।

अर्थ : वे संसार का महान् संकट सहते हैं।

द्वितीया : ताहि (उत्तर० १०।२)
(केवल व्यक्तिसूचक)

ताहि

'बाली ताहि मारि गृह आवा।'
(किष्कि० ६।१०)

अर्थ : बाली उसे मारकर घर आया।

'ताहि देइ गति राम उदारा।'
(अर० ३४।५)

अर्थ : उदार राम उसे गति देकर

'पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा।'
(लंका० ३६।३)

अर्थ : प्रिय ! तुम उसे संग्राम में जीतोगे ?

तेहि (उत्तर० ७।१)

दीन जानि तेहि अभय करीजै।
(किष्कि० ४।३)

अर्थ : दीन मानकर उसे निडर कीजिए।

ओहि—(=उससे, उसको)

'काहूँ बैठन कहा न ओही।'[1]
(अर० २।३)

अर्थ : किसी ने भी उससे बैठने को नहीं कहा।

तिन्हहि (किष्कि० ७।१),
तिन्हहिं (उत्तर० ३२।६)

'तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।'
(किष्कि० ७।१)

अर्थ : उन्हें देखते हुए भारी पाप है।

तिन्हहि (बाल० ३१३।६)
तिन्हहि (किष्कि० २८।१०)

'तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता।'

अर्थ : तू उन्हें सीता दिखा देना।

तिन्हहिं

'तिन्हहिं देखि सुखु पावहिं नारी।'
(बाल० ३२२।६)

अर्थ : नारियाँ उन्हें देखकर सुख पाती हैं।

विशेष : स्मरण रखना चाहिए कि तुलसी 'मानस' में 'ताहि' का प्रयोग सजीव के लिए ही करते हैं, लेकिन 'तेहि' का प्रयोग सजीव तथा निर्जीव—दोनों के लिए करते हैं।

---

१. बघेली में दूरवर्ती अन्यपुरुष, कर्मकारकीय, विकारी एकवचनीय रूप—**ओही, ओका, ओखा** (=उसको) प्रचलित है। इनके बहुवचनीय रूप उन्ही, उन्का, उन्खा होते हैं।

तृतीया : तेहिं (किष्कि०२५।२)

तेहिं—'तेहि नाहीं कछु काज बिगारा।' (बाल० २७६।४)

अर्थ : उसके द्वारा कुछ कार्य नहीं बिगाड़ा गया।

तेहिं (अर० ३१।५)

तेहिं (अयो० २७।५)

'मुख मुसकाइ कही तेहिं बाता।' (अर० ३१।५)

अर्थ : मुख से मुसकाकर उसके द्वारा बात कही गई अथवा उसने बात कही।

तेहिं (किष्कि० २५।४)

तेहिं-'माँगा राम तुरत तेहिं' दीन्हा।' (किष्कि० ५।६)

अर्थ : राम ने माँगा, तो तुरन्त उसके द्वारा (वह पट) दिया गया।

तेहिं

'तेहिं दोउ बन्धु बिलोके जाई।' (बाल० २२८।८)

अर्थ : उसके द्वारा जाकर दोनों भाई देखे गये।

तिन्ह

'नृपहिं सराहि सुमन तिन्ह बरषे।' (बाल० ३१५।८)

अर्थ : राजा की प्रशंसा करके उन्होंने फूल बरसाये।

'तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।' (उत्तर० ६। छन्द)

अर्थ : उनके द्वारा अगणित हर्ष और सुख प्राप्त किये गये।

'रावन चरन सीस तिन्ह नाए।' (सुन्दर० ५३।२)

अर्थ : रावण के चरण में उनके द्वारा सिर झुकाये गये।

चतुर्थी :

तिन्ह कहुँ

'तिन्ह कहुँ सदा उछाहु।' (बाल० ३६१।-)

अर्थ : उनके लिए सदा उत्साह है।

षष्ठी : ताहि

'ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता।' (लंका० ४३।७)

तिन्ह के

'कहइ बिभीषनु तिन्हके नामा।' (लंका० ४५।२)

---

१. तेहिं को द्वितीया विभक्ति का रूप नहीं माना जा सकता, क्योंकि 'दीन्हा' क्रिया कर्मवाच्य में भूतकालीन है। इसका कर्त्ता तृतीया में 'तेहिं' है, और कर्म 'पट' है जो पहले आ चुका है। येहिं (लंका० ८६।५) = इसके द्वारा।

अर्थ : उसके हृदय में लात मारी।

तासु[1]

उमा तासु गुन नर किमि कहहीं। (उत्तर० ६।६)

अर्थ : हे पार्वती ! उसके गुण मनुष्य कैसे कह सकते हैं?

तेहिकर

'तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
(अर० १५।४)

अर्थ : वह भी तुम उसका भेद सुनो।

ताकर (बाल० १९७।७)
तेहि के (बाल० १७०।५) = उसके

ताकर नाम भरत अस होई।
(बाल० १९७।७)

अर्थ : उसका ऐसा नाम 'भरत' होगा।

ताके

'तात निरंतर बस मैं ताके।
(अर० १६।१२)

अर्थ : तात ! मैं निरन्तर उसके वश में हूँ।

ताकें (अर० १५।६)
तेहि कें उर (अयो० १३१।८)
(उसके हृदय में)

'प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।'
(अर० १५।६)

अर्थ : प्रभु प्रेरित है, उसके अपना बल नहीं है।

अर्थ : विभीषण उनके नाम कहता है।

तिन्हकर

परम प्रेम तिन्हकर प्रभु देखा।
(उत्तर० १७।३)

अर्थ : प्रभु ने उनका परम प्रेम देखा।

---

१. सं. तस्य > तस्सु > तासु।

तेहि

'तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ।'
(अर० १६।३)

अर्थ : उसके अधीन ज्ञान-विज्ञान है ।

ओहि

'राखा राम निहोर न ओही ।'
(किष्कि० २६।५)

अर्थ : राम ने रक्षा की, उसका अहसान नहीं ।

सप्तमी **तेहिं काल**

'चित्रकूट आए तेहिं काला ।'
(अयो० १३४।१)

अर्थ : उस समय में चित्रकूट पर आये ।

तिन्ह महँ

'तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी ।'
(बाल० १२।४)

अर्थ : जगत् में मेरी रेखा उनमें प्रथम है ।

विभक्ति **एकवचन**

प्रथमा **येहु**[1]

'अब येहु मरनिहार भा साँचा ।'
(बाल० २७५।४)

अर्थ : अब वास्तव में यह भी मरने योग्य हुआ ।

द्वितीया **एहि**

'न त एहि काटि कुठार कठोरें ।'
(बाल० २७५।८)

अर्थ : नहीं तो इसे कठोर कुठार से काटकर ।

बहुवचन

ये

'ये[2] कन्या सम चारी ।'
(किष्कि० ९।७)

अर्थ : चारों ये समान हैं ।

इन्हहि

'इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई ।'
(किष्कि० ९।८)

अर्थ : इन्हें बुरी दृष्टि से जो देखता है ।

इन्ह कहँ

'सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं ।'
(बाल० २२३।४)

---

१. सं० एषः > एसो > एहो > एहु, येहु । सं० एषा > एसा > एहा > एह, येह ।

२. सं० एते > अप० एइ > ए > ये । 'इए ति घोड़ा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग ।'—(हैमव्या० ८।४।३३)

अर्थ : सखि ! इनको कोई-कोई ऐसा कहते हैं ।

तृतीया येंहिं, एंहिं

'दारुन बिपति हमहि येंहिं दीन्ही ।' (लंका० ८६।५)

अर्थ : इसके द्वारा हमें दारुण विपत्ति दी गई ।

'दारुन बिपत्ति हमहि एंहिं दीन्हीं ।' (गीता प्रेस, लंका० ८६।५)

इन्ह

'मम हित लागि जन्म इन्ह हारे ।' (उत्तर० ८।८)

अर्थ : मेरे कल्याण के लिए इनके द्वारा जन्म हारे गये ।

षष्ठी

इन्ह की

'इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे ।' (उत्तर० ८।६)

अर्थ : इनकी कृपा से रण में राक्षस मारे गये ।

३. २. २ सम्बन्धवाचक सर्वनाम-प्रातिपदिक 'ज्' :

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	जो,[1] सो	जे[2] (किष्कि० ७।१), जे (बाल० २४५।५), जे (उत्तर० ३।७)

'जो न तरइ भव सागर,
नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदगति,
आतमहन गति जाइ ।। (उत्तर० ४४।-)

अर्थ : जो ऐसा नर-समाज पाकर भवसागर से नहीं तरता है, वह कृतघ्न, मन्दबुद्धि और आत्मघाती की गति को पाता है ।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । (किष्कि० ७।१)

अर्थ : जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते हैं ।

जे : (लंका ७८।२)

'जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।' (लंका० ७८।२)

अर्थ : जो आचरण कहते हैं, वे बहुत नहीं हैं ।

द्वितीया जाहि

'खोजहि जाहि' (किष्कि० २७।-)

अर्थ : जिसे खोजते हो ।

जिन्हहि, जिन्हहिं (गीता० उत्तर० १५।६)

'सबकें जिन्हहि नमत सिव मुनि अज ।' (उत्तर० १५।६)

१. सं० यः>जो ।
२. सं० ये>जे ।

'नारि नयन सर जाहि न लागा।'
(किष्कि० २१।४)

अर्थ : नारी का नेत्र-बाण जिसे लगा नहीं।

अर्थ : जिन्हें शिव, मुनि और ब्रह्मा नमस्कार करते हैं।

जेहि :

संतत सुरानीक हित **जेही**।
(बाल० ४।१०)

अर्थ : जिन्हें सुरा सदा हितकारी है (अथवा) जिन्हें देव-सेना हितकारी है।

तृतीया जेंहि (सुंदर० २७।७)

जेंहि—'लोभ पास **जेंहि** गर न बँधाया।'
(किष्कि० २१।५)

अर्थ : लोभ-पाश से जिसका गला न बँधवाया गया।

जेहि

'**जेहि** बस कीन्ह जीव निकाया।'
(अर० १५।२)

अर्थ : जिसके द्वारा समस्त जीव वश में किये गये।

जेंहि,[1]

'**जेंहि** देखौं अब नयन भरि।'
(अयो० ३२।-)

अर्थ : जिससे मैं नेत्र भरकर देखूं।

जेंहि

'सुनहु राम **जेंहि** शिव धनु तोरा।'
(बाल० २७१।४)

अर्थ : राम ! सुनो, जिसके द्वारा शिव-धनु तोड़ा गया है।

जिन्ह

'**जिन्ह** जानकी राम छबि देखी।'
(बाल० ३१०।५)

अर्थ : जिन्होंने राम-सीता की छबि देखी।

जेहि

'बिषम गरल **जेहि** पान किअ।'
(किष्कि० १, सोरठा)

अर्थ : जिनके द्वारा विषम गरल-पान किया गया।

विशेष : वास्तव में व्याकरण के अनुसार यह एकवचनीय प्रयोग है। आदर-भाव में इसे बहुवचन मान लिया गया है।

चतुर्थी **जाहि**

'सो बर मिलिहि **जाहि**[2] मन राचा।'
(माताप्रसाद गुप्त, बाल० २३६।८)

---

१. '**जेंहि** माया बिरंचि सिव मोहें।'—(सूरसागर, १०।४) = जिस माया से ब्रह्मा और शिव मोहित होते हैं।

२. मिला०-**कलहि** (हैमव्या० ८।४।३४१।३) = कलियुग में। **जाहि** (बाल० २३६।८) = जिसमें।

अर्थ : वह वर मिलेगा, जिसके लिए मन अनुरक्त है।

षष्ठी जाहि

'एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ।'
(बाल० २४२।८)

अर्थ : इस प्रकार से जिसका जैसा भाव था।

जासु

'जासु कृपां छूटहिं मद मोहा।'
(किष्कि० १८।६)

अर्थ : जिसकी कृपा से मद-मोह छूटते हैं।

जाके (अर० २८।८)

जाके—काम आदि मद दंभ न जाके।
(अर० १६।१२)

अर्थ : जिसके काम, मद, दम्भ आदि नहीं हैं।

जाके

'एक रचै जग गुन बस जाके।'
(अर० १५।६)

अर्थ : एक माया जिसके वश में गुण हैं, जग रचती है।

जाकें (बाल० १८५।३) = जिसके

विशेष : सम्बन्धकारकीय परसर्ग 'कें' के उपरान्त आनेवाला संज्ञा-पद तिर्यक् अवस्था का होता है।

सप्तमी जाहि

'सो बरु मिलिहि जाहिं[1] मनु राचा।'
(गीता प्रेस, बाल० २३६।८)

जिन्ह के

'जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी।'
(बाल० २३१।-)

अर्थ : रण में वैरी जिनकी पीठ नहीं पाते हैं।

जिन्ह के

'पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।'
(बाल० ४।४)

अर्थ : दूसरे के हित-रूपी घृत के लिए जिनके मन मक्खी हैं।

विशेष : रामचरितमानस में 'कै' या 'कइ' परसर्ग स्त्रीलिंग का सूचक है। अर्थात् 'कै' या 'कइ' के उपरान्त आनेवाला संज्ञापद स्त्रीलिंग होता है।

जिन्ह कइ

'नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका।'
(गीता प्रेस, अयो० १३१।२)

अर्थ : जगत् में जिनकी मर्यादा नीति-निपुणता में है।

जिन्ह

'सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।'
(अर० ३०।१८)

१. 'जाहि मन राचा'—(गुप्त-संस्क०, बाल० २३६।८)। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में सप्तमी एकवचन में—हि और हिं का उल्लेख किया है। जैसे, कलिहि (हैम० ८।४।३४१।३) = कलियुग में। अन्नहिं (८।४।३५७।२) = अन्य में।

अर्थ : वह वर मिलेगा, **जिसमें** मन अनुरक्त है।

अर्थ : जिनमें रेखाएँ हैं, उन राम-चरणों को स्मरण करता हुआ।

विशेष : 'रामचरितमानस, में प्रायः 'हिं' विभक्ति-प्रत्यय द्वितीया और सप्तमी का सूचक है।

३. २. ३. अनिश्चयवाचक सर्वनाम प्रातिपदिक 'क्' :

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
	केउ (=कोई)	
प्रथमा	'होइहि **केउ** एक दास तुम्हारा।' (बाल० २७१।१) अर्थ : तुम्हारा कोई एक दास होगा। कोई (बाल० २२१।१) कोउ—'रघुबंसिन्ह महुँ जहँ **कोउ** होई।' (बाल० २५३।१) अर्थ : रघुवंशियों में जहाँ कोई होता है। 'मरम न जानैं **कोइ**।' (बाल० १६५।-) अर्थ : कोई मर्म नहीं जानता है।	कोउ-कोउ 'सखि इन्ह कहँ **कोउ कोउ** अस कहहीं।' अर्थ : सखि ! इनको कोई-कोई ऐसा कहते हैं। 'समदरसी मोहि कह सब **कोऊ**।' (किष्कि० ३।८) अर्थ : सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं।
द्वितीया	**काहु** 'बन दिसि देब सौंपि सब **काहू**। (अर० २८।६) अर्थ : वन और दिशाओं के देवता आदि सब **किसी को** सीताजी सौंपकर।	

अनिश्चयवाचक सर्वनाम प्रातिपदिक 'सब्' :

प्रथमा	**सबु** 'मैं **सबु** कीन्ह तोहि बिनु पूछें।' (अयो० ३२।२) अर्थ : तुझसे पूछे विना मेरे द्वारा सब किया गया।	**सब** (उत्तर० ८।७)

तृतीया — सबन्हि (उत्तर० ६।२)

षष्ठी — सब ही का[1] (अयो० ३९।४, १७५।३)

३. २. ४. प्रश्नवाचक सर्वनाम प्रातिपादिक 'क्':

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	को 'बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा।' (अर० २९।५) अर्थ : मेरी विपत्ति प्रभु को कौन सुनाता है ? 'को तुम्ह तात कहाँ तें आये।' (उत्तर० २।७) अर्थ : हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये ?	को 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।' (किष्किं० १।७) अर्थ : श्यामल और गौर शरीरवाले तुम कौन हो ?
द्वितीया	काहि 'ईस काहि धौं देइ बड़ाई।' (बाल० २४०।१) अर्थ : देखें, ईश्वर किसे बड़ाई देता है ? काहि 'कहहु काहि यह लाभ न भावा।' (बाल० २५२।१) अर्थ : कहो, किसे यह लाभ न भाया ? का 'कुअँरि कुआरि रहउ का[1] करऊँ।' (गीता प्रेस, २५२।५) अर्थ : कन्या कुमारी रहे, मैं क्या करूँ ? केहि 'केहि जमु चह लीन्हा।' (अयो० २६।१) अर्थ : किसे यम लेना चाहता है।	

---

१. यह 'का' खड़ी बोली का परसर्ग नहीं है। अवधी का 'क' है, जो चरणान्त में दीर्घता ग्रहण करके 'का' होगया है। 'धरमक टीका' (अयो० ५५।८) में वह 'क' ज्यों-का-त्यों है। 'मानस' में 'का' के अर्थ में 'को' (बाल० १६।१) भी प्रयुक्त है।

१. 'का' यहाँ प्रश्नवाचक अव्यय भी माना जा सकता है।

तृतीया **केइँ**[1]

'अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा ।'

(अयो० २६।१)

अर्थ : प्रिया ! तेरा अहित किसके द्वारा किया गया ?

चतुर्थी **केहि लगि**

'जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ।'

(किष्किं० ११।५)

अर्थ : जीव नित्य है, तुम **किसके लिए** रोती हो ?

३. २. ५. सर्वनाम विभक्ति-प्रत्ययों का मूल और विकास :

सर्वनामपद	**वचन**	**विभक्ति-प्रत्यय**
हम (अर० १९।१०)	बहुवचन	प्रातिपदिक + – ० (प्रथमा)

मूल तथा विकास

पालि० अम्हे>अप० अम्हे (हैमव्या० ८।४।३७६)>रामच० हम, हमहि (अर० ३७।५)

बहुवचन, प्रातिपदिक+ – हि,—अहि (द्वतीया)

मूल तथा विकास

पालि० अम्हे>अप० अम्हइँ (हैमव्या० ८।४।३७६)>हिं० हमें

अप० अम्हेहिं (हैमव्या० ८।४।३७८)>रामच० हमहि ।

विशेष : 'हमहि' का —अहि प्रायः द्वितीया को और 'हमहिं' का —अहिं सप्तमी को प्रकट करता है, जैसे—हमहिं, तुम्हहिं (बाल० २८२।५)

सर्वनामपद	**वचन**	**विभक्ति-प्रत्यय**
मैं (किष्किं० ५।४)	एकवचन	प्रातिपदिक+ – एँ (तृतीया)

मूल तथा विकास

सं० मया>पालि० मया>अप० मइँ (हैमव्या० ८।४।३७७)>रामच० मैं ।

सर्वनामपद	**वचन**	**विभक्ति-प्रत्यय**
तूं (अयो० १६२।७)	एकवचन	प्रातिपदिक+ – ऊँ (प्रथमा)
तुम्ह (किष्किं० १।७)	बहुवचन	,, + – उम्ह

---

१. केइँ—किसके द्वारा (तृतीया एकवचन)। 'मानस' में 'कैं' प्रयोग भी तृतीया एकवचन में मिलता है—'कहु जड़ जनक धनुष कैं तोरा।'—(बाल० २७०।३)। सं० केन>कैं। सं० केन त्रोटितः>किन तोरा।

मूल तथा विकास

सं० त्वं > पालि० त्वं > अप० तुहुँ (हैमव्या० ८।४।३६८) > तुउँ > रामच० तूं
पालि० तुम्हे > अप० तुम्हे, तुम्हइँ (हैमव्या० ८।४।३६९) > रामच० तुम्ह ।

सर्वनामपद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
तुम्हहि (उत्तर० १९।-)	बहुवचन	प्रातिपदिक + — उम्हहिं (द्वितीया)

मूल तथा विकास

पालि० तुम्हे > अप० तुम्हइँ (हैमव्या० ८।४।३६९) > हिं० तुम्हें ।
अप० तुम्हेंहिं (हैमव्या० ८।४।३७८) > रामच० तुम्हहि ।

विशेष : हिन्दी के 'तुम्हें' का विकास अप० 'तुम्हइँ' से हुआ है । 'हमें' का विकास अप० 'अम्हइँ' से है ।

तैं (सुन्दर० १०।१)	एकवचन	प्रातिपदिक + —ऐं (तृतीया)

मूल तथा विकास

सं० त्वया > पालि० तया > अप० तइँ (हैमव्या० ८।४।३७०) > रामच० तैं ।

सर्वनामपद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
तासु (उत्तर० ९।९)	एकवचन	प्रातिपदिक + - आसु (षष्ठी)
जासु (अयो० १०१।३)	,,	,, + - आसु (,,)

मूल तथा विकास

सं० तस्य > अप० तासु (हैमव्या० ८।४।३५८) > रामच० तासु ।
सं० यस्य > अप० जासु (हैमव्या० ८।४।३५८) > रामच० जासु ।

विशेष : खड़ी बोली के सर्वनाम पद 'जिसका' का विकास इस प्रकार है—सं० यस्य > अप० जासु > जिस + का = जिसका । तात्पर्य यह है कि 'जिस' में पृथक् से का परसर्ग का योग है । 'जिसको' में भी परसर्ग 'को' पृथक् से जुड़ा हुआ है, किन्तु 'जिसे' 'में' — ए कर्मकारक सूचक एकवचनीय विभक्ति-प्रत्यय है ।

सर्वनामपद	वचन	विभक्ति-प्रत्यय
येहु (बाल० २७५।४)	एकवचन	प्रातिपदिक + — एहु (प्रथमा)
ये (अर० ३७।६), ए (गीता प्रेस, अर० ३७।६)	बहुवचन	,, + — ए (प्रथमा)
ओहू – ओहु[1] (लंका० ६१।६)	एकवचन	,, + — ओहु (प्रथमा)
सो (बाल० २७१।५)	,,	,, + — ओ (,,)
जो (किष्कि० ८।४)	,,	,, + — ,, (,,)

१. ओहु + उ = ओहू (= वह भी) —ऐसा विश्लेषण भी सम्भव है ।
सं० असौ > अप० ओहु > ओहु (= वह) । अप० ओइ = वे ।

मूल तथा विकास

सं० एषः>एहो (हैमव्या० ८।४।३६२)>एहु, येहु>रामच० येहु ।

सं० अदस्>ओहु (कीर्त्तिलता, पृ० ५०)>ओहु>रामच० ओहु ।

सं० एंते>अप० एइ (हैमव्या० ८।४।३३०)>ए, ये>रामच० ये ।

सं० अमूनि, अप० ओइ (हैमव्या० ८।४।३६४)>वे ।

सं० सः>प्रा० सो, अप० सु (हैमव्या० ८।४।४२२ ।१५)>सो >रामच० सो ।

सं० यः>अप० जु (हैमव्या० ८।४।४१७)>जो>रामच० जो ।

३. ३. रामचरितमानस में लुप्त विभक्ति-प्रत्यय :

परिनिष्ठित खड़ीबोली में ऐसे प्रयोग पाये जाते है, जिनमें संज्ञा पदों के साथ कारकीय परसर्ग लुप्त रहते हैं । जैसे : १. मैंने न **आँखों** देखा और न **कानों** सुना । इसका अर्थ है—मैंने न **आँखों** से देखा और न **कानों** से सुना ।

२. वह हरदम घर में ही-घुसा रहता है । इसका अर्थ है—वह हरदम **घर में** ही घुसा रहता है ।

उक्त उदाहरणों से प्रकट है कि करण कारकीय तथा अधिकरणकारकीय परसर्गों के विना भी कुछ प्रयोग परिनिष्ठित हिन्दी में ठीक माने जाते हैं ।

कारकीय अवस्थाओं को प्रकट करनेवाले विभक्ति-प्रत्ययों के विना भी संज्ञापद 'रामचरितमानस' में मिलते हैं । वाक्य के अन्तर्गत 'महि' का अर्थ 'महि में' भी लिया जाता है ।

पद	लुप्त विभक्ति-प्रत्यय	अर्थ
बधू[1] (बाल० ३५८।४)	द्वितीया लुप्त	= बधुओं को
कबिन्ह (बाल० १४।४)	,,	= कवियों को
अवगुनन्हि (किष्कि० ७।४)	,,	= अवगुणों को

'सुन्दरि बधू सासु ले सोईं ।' (बाल० ३५८।४)

अर्थ : सासुएँ सुन्दर बहुओं को लेकर सोईं ।

'कलि के कबिन्ह करौं परनामा । (बाल० १४।४)

अर्थ : कलि के कवियों को प्रणाम करता हूँ ।

'गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा ।' (किष्कि० ७।४)

अर्थ : मित्र गुण प्रकट करता है, अवगुणों को छिपाता है ।

पद	लुप्त विभक्ति-प्रत्यय	अर्थ
फनिकन्ह (बाल० ३५८।४)	तृतीया लुप्त	= साँपों द्वारा (से)
देव (काशि०, अयो० २६३।६)	,,	= देवताओं द्वारा

१. डॉ० गुप्त के संस्करण के आधार पर कहा जा सकता है कि एक प्रति में 'बधुन्ह' पाठ भी है ।

'**फनिकन्ह**' जनु सिरमनि उर गोई।' (बाल० ३५८।४)

अर्थ : मानों साँपों द्वारा शिर की मणियाँ छाती में छिपाई गईं।

सिय (अयो० १४०।-) चतुर्थी लुप्त = सीता के लिए

'राम प्रिया जग जननि **सिय**।' (अयो० १४०।-)

अर्थ : राम प्रिया जगज्जननी सीता के लिए।

सैल (अर० १८।१) पंचमी लुप्त = पर्वत से

'जनु स्रव सैल गेरु कै धारा।' (अर० १८।१)

अर्थ : मानों गेरू की धारा **पर्वत** से बहती है।

राम मातु (अयो० ३३।७) षष्ठी लुप्त = राम की माता

'राम मातु मलि सब पहिचाने'। (अयो० ३३।७)

अर्थ : राम की माता भी भली है। मैंने सब पहिचान लिये।

चरन (अर० १।७) सप्तमी लुप्त = चरण में

'सीता चरन चोंच हति भागा।' (अर० १।७)

अर्थ : (काक) सीता के चरण में चोंच मारकर भागा।

पद	लुप्त विभक्ति-प्रत्यय	अर्थ
महि (लंका० ८१।७)	सप्तमी लुप्त	पृथ्वी में

'निसिचर भट महि गाड़हिं[1] भालू।'—(लंका० ८१।७)

अर्थ : रीछ राक्षस योद्धाओं को **पृथ्वी** में गाड़ते हैं।

सिरन्हि (बाल० १६७।७)	सप्तमी लुप्त	= सिरों पर
नाव (अयो०. २०८।२)	,,	= नावों पर

'गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं[2]। (बाल० १६७।७)

अर्थ : पर्वत अपने **सिरों** पर सदा तिनके धरते हैं।

विभक्ति-प्रत्ययों के लोप के उदाहरण हमें हेमचन्द्र के शब्दानुशासन तथा अब्दुर्रहमान के सन्देशरासक में भी मिलते हैं।

हेमचन्द्र के शब्दानुशासन की अपभ्रंश-भाषा में निम्नांकित उद्धरणों में द्वितीया या सप्तमी के प्रत्ययों का लोप है :

'गङ्ग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिव-तित्थ गमेप्पि।'

(हैमव्या० ८।४।४४२।२)

---

१. अपभ्रंश की परम्परा के अनुसार हम में – हि या – हि विभक्तिप्रत्यय होना चाहिए, किन्तु वह लुप्त है। अप० महिहि (हैमव्या० ८।४।३५२) = पृथ्वी पर।

२. मिला०—'सायरु उप्परि तिण धरइ।' —(हैमव्या० ८।४।३३४।१) = सागर ऊपर तृण धरता है।

अर्थात् : **गंगा को** (पर) और **शिव-तीर्थ** को (पर) जाकर।

'गङ्ग' और 'सिवतित्थ' में विभक्ति का लोप है।

इसी प्रकार, 'सन्देशरासक' के निम्नांकित उदाहरण के 'मायन्दसाह' में सप्तमी विभक्ति का लोप है—

'सिहि चडिउ पिक्खि मायंदसाह।'

(सन्देशरासक, सम्पा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, ३।२१२)

अर्थात्, शिखी को **माकन्द-शाखा पर** चढ़ा देखकर।

अपभ्रंश से आई हुई भाषा-परम्परा हमें रामचरितमानस में भी मिलती है। परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में भी वैसे ही उदाहरण मिल जाते हैं।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तुलसी ने 'रामचरितमानस' में एकवचन के संज्ञापदों का प्रयोग अर्थ की दृष्टि से बहुवचन में किया है, अर्थात् 'तृन' और 'सुमन' शब्द व्याकरण से एकवचनीय हैं, किन्तु तुलसी ने जाति के भाव से बहुवचन के अर्थ में प्रयुक्त किये हैं। उदाहरण:

'**गिरि** निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं।' (बाल० १६७।७)

अर्थ : पर्वत सदा अपने सिरों पर तिनके रखते हैं।

× ×

'मेली कंठ **सुमन** कै माला।' (किष्कि० ८।७)

अर्थ : कण्ठ में सुमनों की माला डाली।

× ×

३. ४. रामचरितमानस में नामिक पद और परसर्ग :

३. ४. १. संज्ञापद और परसर्ग :

(क) कारकीय परसर्ग :

१. कर्ताकारक में परसर्ग :

(**विशेष** : तृतीया विभक्ति के साथ आनेवाले पद भी कर्त्ताकारक में होते हैं। प्रथमा विभक्ति के कर्तृपद के पीछे कोई परसर्ग 'मानस' में नहीं मिलता।)

२. कर्मकारक में परसर्ग

प्रभु से (= प्रभु से) — 'कहेहु दंडवत **प्रभु सैं**' (उत्तर० १६। पंक्ति १)

अर्थ : प्रभु से मेरी दण्डवत् कहना।

कोसलराय सों (=दशरथ से) — 'जनक...कोसलराय सों बोले।' (बाल० ३२६।छन्द ५)

अर्थ : जनकजी दशरथजी से बोले।

प्रभु सन(= प्रभु से) — 'तासु प्रीति **प्रभु सन** कही।'
(उत्तर० १९। पंक्ति ४)
अर्थ : उसकी प्रीति **प्रभु से** कही।

असुर कहँ (= असुर को) — 'निज पद दीन्ह **असुर कहँ**।'
(अर० २७।)
'निज पद दीन्ह **असुर कहुँ**।'
(गीता प्रेस, अर० २७।-)
अर्थ : असुर को निज पद दिया।

अंगद सन (= अंगद से) — 'अंगद सन कह कृपा निधाना।'
(लंका० १७।५)
अर्थ : कृपानिधान राम अंगद से कहते हैं।

अनुज सन (= छोटे भाई से) — 'करत बतकही अनुज सन।'
(बाल० २३१।)
अर्थ : राम छोटे भाई से बातें करते हैं।

३. करणकारक में परसर्ग

मज्जन तें (= स्नान से) — जा **मज्जन तें** बिनहिं प्रयासा।'
(उत्तर० ४।६)
अर्थ : जिसमें स्नान से विना प्रयास ही।

सुभाव तें (=स्वभाव से) — 'कपि **सुभाव तें** तोरेउँ रूखा।'
(सुन्दर० २२।३)
अर्थ : **कपि स्वभाव** से वृक्ष तोड़े।

कर्म तें (=कर्म से) — 'तात **कर्म** निज तें[1] गति पाई।'
(अर० ३१।८)
अर्थ : हे तात ! तुमने अपने **कर्म से** गति प्राप्त की।

४. सम्प्रदानकारक में परसर्ग

स्वारथ लागि (=स्वार्थ के लिए) — **स्वारथ लागि** करहिं सब प्रीती।
(किष्कि० १२।२)
अर्थ : स्वार्थ के लिए सब प्रीति करते हैं।

हित लागि (=कल्याण के लिए) — 'जाइअ अवध देव **हित लागी**।'
(अयो० १२।४)
अर्थ : देवों की **भलाई के लिए** तुम्हारे द्वारा अवध जाया जाए (आप अयोध्या जाइए)।

कौतुक कहँ (=कौतुक के लिए) — '**कौतुक कहँ** आए पुरवासी।'
(सुन्दर० २५।६)

---

१. तें (अर० ३१।८)=से। तैं (गीताप्रेस, अयो० १६१।८)=तेरे द्वारा।

अर्थ : पुरवासी कौतुक के लिए आये।

पर्वत कहुँ (=पहाड़ के लिए) 'छूटे पबि **पर्वत कहुँ** जैसे।'
(अर० २९।१०)

अर्थ : जैसे वज्र पर्वत के लिए छूटता है।

धर्म हेतु (= धर्म के लिए) '**धर्म हेतु** अवतरेहु गोसाईं।'
(किष्कि० ९।५)

अर्थ : हे गोस्वामी! तुमने धर्म के लिए अवतार लिया है।

५. अपादानकारक में परसर्ग

प्रभु सन (= प्रभु से) 'अस बिचारि सुनु प्रानपति,
प्रभु सन बयरु, बिहाइ।[1]'
(लंका० १५।-)

अर्थ : हे प्राणपति! सुन, ऐसा विचार करके और प्रभु से वैर छोड़कर।

लता भवन तें (= लता-भवन से) '**लता भवन तें** प्रकट भे।'
(बाल० २३२।-)

अर्थ : लता-भवन से प्रकट हुए।

कण्ठ तें (= कण्ठ से) 'सुमन माल जिमि कण्ठ तें
गिरत न न जानइ नाग।'
(किष्कि० १०।-)

अर्थ : जैसे हाथी पुष्पमाला को **कण्ठ** से गिरते हुए नहीं जानता है।

६. सम्बन्धकारक में परसर्ग

राम की ओरा (=राम की तरफ) 'बोला चितइ **राम की ओरा**।'
(किष्कि० ९।४)

अर्थ : **राम की ओर** देखकर बोला।

राम करि करनी[2] (=राम की करनी) 'सुमिरि **राम करि** अदभुत **करनी**।'
(अर० २९।२२)

अर्थ : **राम** की अद्‌भुत करनी को याद करके।

---

१. 'बिहाइ' वस्तुतः सं० 'विहाय' (वि+ √हा + ल्यप्) से ही विकसित है।

२. 'करि और 'कै' परसर्ग स्त्रीलिंग सूचक हैं। सम्बन्ध कारकीय परसर्ग परिवर्त्तनशील हैं।

सोभा कै खानि (शोभा की खान) — 'भाई सकल **सोभा कै खानी** ।' (उत्तर० ३।९)
अर्थ : सकल **शोभा की खान** हुई ।

नगरवासिन्ह कै रीती (=नगरवासियों की रीति) — 'देखि **नगरवासिन्ह कै रीती** ।' (उत्तर० ८।५)
अर्थ : नगरवासियों की रीति देखकर ।

स्राप कै बात (=शाप की बात) — 'तेहिं सब कही **स्राप कै** बाता ।' (अर० ३३।६)
अर्थ : उसके द्वारा शाप की सारी बात कही गई ।

दम्भिन्ह कर समाज[1] (=दम्भियों का समाज) — 'जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ।' (किष्कि० १५।६)
अर्थ : मानों दम्भियों का समाज मिला ।

नभ के खग (=आकाश के पक्षी) — 'करि माया **नभ के खग** गहई ।' (सुन्दर० ३।१)
अर्थ : (वह) माया करके **आकाश के पक्षी** पकड़ता है ।

कपि के मारें (=कपि के मारने से) — 'विकल होसि तैं **कपि के मारें** ।' (सुन्दर ४।७)
अर्थ : (जब) कपि के मारने से तू विकल हो ।

७. अधिकरणकारक में परसर्ग :

छन महँ (=क्षण में) — '**छन महँ** सबहि मिले भगवाना ।' (उत्तर० ६।७)
अर्थ : भगवान् क्षण में सबसे मिले ।

मन महँ (=मन में) — '**मन महँ** बहुत भाँति सुख मानी ।'
अर्थ : मन में बहुत प्रकार से,सुख मानकर ।

सखिन्ह मध्य (=सखियों में) — '**सखिन्ह मध्य** सिय सोहति कैसी ।' (बाल० २६४।१)

---

१. 'कर' पुंसूचक है । '**कै**' स्त्रीलिंगसूचक है; जैसे 'सोभा कै खानि' (उत्तर० ३।९); 'कृपान **कै** धारा' (उत्तर० ११९।१); 'सुमन **कै** माला' (किष्कि० ८।७); 'बेष **कै** रचना' (किष्कि० २।६) ।

अर्थ : सखियों के बीच सीता कैसी शोभा पाती है ?

घन माँहि (=बादल में) 'दामिनि दमक रह न **घन माहीं**।' (किष्कि० १४।२)

अर्थ : बिजली की चमक बादल में नहीं रहती है।

कुबेर पहिं (=कुबेर पर) 'तुम **कुबेर पहिं** जाहु।' (उत्तर० ४१-)

अर्थ : तुम कुबेर पर (कुबेर के पास) जाओ।

सीता पहिं (=सीता पर) 'प्रेम बिबस **सीता पहिं** आई।' (बाल० २२८।८)

अर्थ : प्रेम के वश में हुई वह सीता के पास आयी।

गिरि पर (=पर्वत पर) '**गिरि पर** चढ़ि लंका तेहिं देखी।' (सुन्दर० ३।१०)

अर्थ : पर्वत पर चढ़कर उसके द्वारा लंका देखी गई।

सून बीच (=शून्य मध्य) '**सून बीच** दसकंधर देखा।' (अर० २८।७)

अर्थ : शून्य के मध्य रावण देखा गया।

(ख) विशेष अर्थ के परसर्ग :

सीता अनुज सहित (=सीता और अनुज-सहित) '**सीता अनुज सहित**, प्रभु आवत।' (गीता प्रेस, उत्तर० २।५)

अर्थ : सीता और अनुज-सहित प्रभु आते हैं।

पादप तर (=वृक्ष के तले) 'तब असोक **पादप तर**।' (अर० २९।—)

अर्थ : तब अशोक वृक्ष के तले।

कुरंग सँग (=हिरण के साथ) 'जेहि बिधि कपट **कुरंग सँग**।' (अर० २६।—)

अर्थ : जिस प्रकार कपट के हिरन के साथ।

लखन तन (=लक्ष्मण की ओर) 'चितइ जानकी **लखन तन**।' (अयो० १००।—)

अर्थ : जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर।

कारन बिनु (=कारण विना)
'**कारन बिनु** रघुनाथ कृपाला।'
(अर० ३३।१)

अर्थ : रघुनाथ कारण के विना कृपालु हैं।

दूरि तें (=दूरी से)
'**दूरि तें** ताहि सबन्हि सिरु नावा।'
(किष्कि० २५।१)

अर्थ : उसे दूर से सबने सिर झुकाया।

लछिमन तें (=लक्ष्मण से)
'तैं मम प्रिय **लछिमन तें** दूना।'
(किष्कि० ३।७)

अर्थ : तू लक्ष्मण से दूना प्रिय है।

लखन समेत (=लक्ष्मण-सहित)
'सीय रामु गुह **लखन समेता**।'
(अयो० १०२।१)

अर्थ : सीता और राम, गुह तथा लक्ष्मण-सहित।

कर बिनु (=हाथ के विना)
'कर बिनु करम करै बिधि नाना।'
(बाल० ११८।५)

अर्थ : बिना हाथ से अनेक प्रकार के कर्म करते हैं।

संदेस सरिस (=सन्देश के समान)
'यह **संदेश सरिस** जग माहीं।'
(उत्तर० २।१३)

अर्थ : जग में इस सन्देश के समान।

मो सम (=मेरे समान)
'तुम सम पुरुष न **मो सम** नारी।'
(अर० १७।८)

अर्थ : तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान नारी नहीं।

३. ३. २. सर्वनाम पद और परसर्ग :

मो सन (=मुझसे, मेरे साथ)
'करिहहिं बिधि **मो सन** ये प्रीती।'
(किष्कि० ४।८)

अर्थ : हे विधि ! ये **मुझसे** प्रीति करेंगे ?

मो तें (=मुझसे)
'**मो तें** संत अधिक करि लेखा।'
(अर० ३६।३)

अर्थ : मुझसे अधिक करके सन्त को मानता है।

मो पहिं (=मुझपर)
'**मो पहिं** जाति नहिं उपमा कही।'
(उत्तर० ५। छन्द)

अर्थ : मुझ पर उपमा नहीं कही जाती।

मोहि पाहिं (=मुझपर) 'मख छबि कहि न जाइ **मोहि पाहीं**।' (बाल० २३३।६)

अर्थ : मुख-छबि मुझ पर कही नहीं जाती।

मोहि कहँ (=मेरे लिए) '**मोहि कहँ** होइ बहुत अवलंबा।' (अयो० ९०।७)

अर्थ : मेरे लिए बहुत सहारा हो जाय।

मोहि लागि (=मेरे लिए) 'बार बार **मोहि लागि** बोलावा।' (बाल० २७५।१)

अर्थ : बार बार **मेरे लिए** बुलाते हो।

तोहि बिनु (=तेरे विना) 'सुनु जानकी **तोहि बिनु** आजू।' (अर० ३०।१४)

अर्थ : जानकी ! तू सुन। आज तेरे बिना।

तोहि पाहि (=तुझ पर) 'किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं।' (अर० ३०।१५)

अर्थ : तुझपर (तुझसे) यह स्पर्द्धा (अनक्ष) कैसे सहा जाता है।

तो कहुँ (=तुझको) 'तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता।' (उत्तर० २।१२)

अर्थ : भ्राता, सुन। तुझको क्या दूँ ?

तुम्ह कहँ (=तुमको) 'मृगीं कहहिं **तुम्ह कहँ** भय नाहीं।' (अर० ३७।५)

अर्थ : हिरनियाँ कहती हैं **तुमको** डर नहीं।

तुम्ह कहुँ (=तुमको) 'सुखु सुहागु **तुम्ह कहुँ** दिन दूना।' (अयो० २१।४)

अर्थ : **तुमको** सुख, सुहाग दिन दूना है।

तुम्हहि समान (=तुम्हारे समान) 'सब मम प्रिय नहि **तुम्हहि समाना**।' (उत्तर० १६।७)

अर्थ : सब **तुम्हारे समान** मेरे प्रिय नहीं।

येहि तें (=इससे) '**येहि तें** अधिकु धरमु नहिं दूजा।' (अयो० ६१।५)

अर्थ : इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं।

ता कर (=उसका) '**ताकर** नाम भरत अस होई।' (बाल० १९७।७)

अर्थ : उसका भरत ऐसा नाम होगा।

ता ऊपर (=उसके ऊपर)	'कौतुक कूदि चढ़ेउ **ता ऊपर**।' (सुन्दर० १।५) अर्थ : अनायास कूदकर **उसके ऊपर** चढ़े।
ता कहुँ (=उसको)	'**ता कहुँ** संत कहइ सब कोई।' (उत्तर० ९८।४) अर्थ : उसको सब कोई सन्त कहता है।
ता सन (=अर० १।—), **तेहि सन**	'**तेहि सन** नाथ मइत्री कीजै।' (किष्कि० ४।३) अर्थ : नाथ! उससे मित्रता कीजिए।
ता पर (=उसपर)	'**ता पर** मैं रघुबीर दुहाई।' (किष्कि० ३।३) अर्थ : उस पर मैं रघुवीर की शपथ...।
तासों (=उससे)	'**तासों** बयरु कबहुँ नहिं कीजै।' (सुन्दर० २२।१०) अर्थ : उससे कभी वैर नहीं करना चाहिए।
तेहि कर (=उसका)	'**तेहि कर** भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।' (अर० १५।४) अर्थ : उनका भेद तुम सुनो।
तेहि ओर (=उस ओर)	'अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।' (बाल० २३०।३) अर्थ : ऐसा कह कर उस ओर देखने लगे।
तेहि तें (=उससे)	'**तेहि तें** परेउ मनोरथ छूछें।' (अयो० ३२।२) अर्थ : उससे मेरा मनोरथ खाली गया।
सबकें (=सबके)	'सुर नर मुनि **सबकें** यह रीती।' (किष्कि० १२।२) अर्थ : सुर, नर और मुनि सबके यह रीति है।
तिन्ह कहँ (=उनको)	'**तिन्ह कहँ** जग दुर्लभ कछु नाहीं।' (अर० ३१।६) अर्थ : उनके लिए संसार में कुछ दुर्लभ नहीं है।
इन्ह कहँ (=इनको)	सखि **इन्ह कहँ** कोउ-कोउ अस कहहीं। (बाल० २२३।४) अर्थ : सखी! इनको कोई-कोई ऐसा कहते हैं।

तिन्ह कहुँ (उनको, उनके लिए) — '**तिन्ह कहुँ** सदा उछाहु।' (बाल० ३६१।—)

अर्थ : उनके लिए सदा उत्साह है।

इन्ह पर (=इनपर) — 'हमरें कुल **इन्ह पर** न सुराई।' (बाल० २७३।६)

अर्थ : हमारे कुल में इनपर शूरता नहीं दिखाई जाती।

तिन्ह महँ (=उनमें) — '**तिन्ह महँ** प्रथम रेख जग मोरी।' (बाल० १३।४)

अर्थ : संसार में मेरी रेखा उनमें प्रथम है।

सबन्हि कहुँ (=सबको) — 'अस कहि नाइ **सबन्हि कहुँ** माथा।' (सुन्दर० १।४)

अर्थ : ऐसा कहकर और सबोंको माथा झुकाकर।

जेहि सन (=जिससे, जिसके साथ) — 'सपने **जेहि सन** होइ लराई।' (किष्किं० ७।२०)

अर्थ : सपने में जिससे लड़ाई होती है।

जातें (जिससे) — '**जातें** बेगि द्रवउँ मैं भाई।' (अर० १६।२)

अर्थ : भाई ! जिससे मैं जल्दी द्रवित होता हूँ।

जापर (=जिस पर) — 'नाथ कृपा तव **जापर** होई।' (बाल० २४०।२)

अर्थ : नाथ ! जिसपर तुम्हारी कृपा होती है।

जा कहुँ (=जिसको) — 'करहु जाइ **जा कहुँ** जोइ भावा।' (बाल० २४६।६)

अर्थ : जिसको जो अच्छा लगता है, उसे जाकर करो।

जाकें (=जिसके) — 'एक रचै जग गुन बस **जाकें**।' (अर० १५।६)

अर्थ : एक माया, जिसके वश में गुण हैं, जग रचती है।

जिन्हके (=जिनके) — 'पर हित घृत **जिन्ह के** मन माखी।' (बाल० ४।४)

अर्थ : परहित घृत के लिए जिनके मन मक्खी हैं।

जिन्ह कें (=जिनके)

'**जिन्ह कें** असि मति सहज न आई।' (किष्कि० ७।३)

अर्थ : जिनके ऐसी मति सहज रूप में नहीं आती है।

जिन्ह कै (=जिनकी)

'मंगन लहहिं न **जिन्ह कै** नाहीं।' (बाल० २३१।८)

अर्थ : याचक जिनकी 'नहीं' नहीं पाते हैं।

जिन्ह कें (=जिनके)

'**जिन्ह कें** रही भावना जैसी।' (बाल० २४१।४)

अर्थ : जिनके जैसी भावना रही।

जिन्ह कर नामु (=जिसका नाम)

'**जिन्ह कर नामु** लेत जग माहीं।' (बाल०३१५।)

अर्थ : जिनका नाम लेते ही संसार में...।

कवन हेतु (=किस कारण)

'**कवन हेतु** बन बिचरहु स्वामी।' (किष्कि० १।८)

अर्थ : हे स्वामी! किस कारण तुम वन में विचरण करते हो?

विशेष : क्रियाविशेषण अव्ययों के साथ भी परसर्ग मिलते हैं। जैसे : **जब तें, तब तें** (अयो० २३७।५)

३. ४. ३. अपभ्रंश-भाषा और रामचरितमानस की भाषा के परसर्गों की तुलना :

अपभ्रंश	रामचरितमानस
केहिं (हैमव्या० ८।४।४२५)	**कहँ, कहुँ** (अर० २७।—)
'हउँ झिज्जउँ तउ केहिं।' (हैमव्या० ८।४।४२५)	'निज पद दीन्ह असुर कहँ' (असुर कहुँ, गीता प्रेस) (अर० २७।—)
अर्थ : मैं तेरे लिए क्षीण होती हूँ।	अर्थ : असुर के लिए अपना पद दिया।
तणि (सन्देशरासक २।९४)	**तन** (अयो० ११७।६)
'मइ **तणि** णिंद णहु।' (सन्देश० २।९४)	'पिय **तन** चितइ।' (अयो० ११७।६)
अर्थ : मुझको नींद नहीं।	अर्थ : प्रिय को देखती है।
तणइ (सन्देश० २, क्षेपक ९९वें छन्द के बाद)	**तें** (बाल० २३२)

'पाणी तणइ विओइ।'
(संदेश० २। क्षेपक के—)

अर्थ : पानी से वियोग होने पर।

उप्परि (हैमव्या० ८।४।३३४।१)
'सागरु **उप्परि** तणु धरइ।'
(हैमव्या० ८।४।३३४)

अर्थ : सागर ऊपर तिनका रखता है।

बिणु (हैमव्या० ८।४।३८६)
'जुज्झें बिणु' (हैमव्या० ८।४।३८६)

अर्थ : युद्ध के विना।

×

मज्झ+ए=मज्झे
(हैमव्या० ८।४।४०६।३)
'जीवहँ मज्झे' (हैम०व्या० ८।४।४०६)

अर्थ : जीवों के मध्य में।

लग्गि (सन्देशरासक २।१२२)
'कइय लग्गि विरहग्गि धूमि'
(सन्देश० २।१२२)

अर्थ : कब से विरहाग्नि के धुएँ में ?

×

'लता भवन **तें** प्रकट भे'
(बाल०२३२।—)

अर्थ : लता भवन से प्रकट हुए।

(अप० तणइ>तग्रँइ>ताँइ>तई>तइँ>तें—विकास सम्भव है।)

पर (सुन्दर० ३।१०)
'गिरि **पर** चढ़ि लंका तेहिं देखी।'
(सुन्दर० ३।१०)

अर्थ : पर्वत पर चढ़कर उसके द्वारा लंका देखी गई (उसने लंका देखी)।

बिनु (बाल० ११८।५)
'कर **बिनु**' (बाल० ११८।५)

अर्थ : हाथ के बिना।

×

मझ+आरी (सुन्दर० २६।८)

'सिन्धु मझारी।' (सुन्दर० २६।८)

अर्थ : सिंधु के माध्य में (समुद्र की मध्य धारा में)।

मझ+धारि[1] = मझ + आरि = मझारि।

लगि (सुन्दर० १।२)
'तब लगि मोहि परिखहु।'
(सुन्दर० १।२)

अर्थ : तबतक मेरी प्रतीक्षा करना।

×

माँझ (उत्तर० १०७।१)
'मंदिर माँझ' (उत्तर० १०७।१)
=मन्दिर में।

सं० मध्य>प्रा० मज्झ>माँझ।

---

१. अपभ्रंश धारि=धारा में। अपभ्रंश भाषा में— इ सप्तमी का विभक्ति-प्रत्यय है।

सहुँ (हैमव्या० ८।४।४१९।३)
"जउ पवसन्तें सहुँ न गय ।'
(हैमव्या० ८।४।४१९)

अर्थ : यदि प्रवासी के साथ न गई ।

× ×

सम (संदेशरासक २।४७)
'कोण सम'
(सन्देशरासक २।४७)

अर्थ : किसी से ।

सउ[1] (सन्देशरासक २।७६)
'बिरह सउ'
(सन्देशरासक २।७६)

अर्थ : विरह से ।

× ×

सरिस (सन्देशरासक ३।१७६)
'णव ससिरेह सरिस ।'
(सन्देशरासक ३।१७६)

अर्थ : नव शशि रेखा सदृश ।

केरउ (हैम० व्या० ८।४।३५९)

केरा (कीर्त्तिलता)
'लोचन केरा वल्लहा ।'
('हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', सन् १९५४ ई०, पृ० १०९)

(सम, सहुँ > सउँ > सौं—यह विकास क्रम सम्भव प्रतीत होता है । सैं, सन, आदि भी सौं के ही भाई-बन्द हैं ।)

सौं[1] (सुन्दर० २२।१०)
'तासौं बयरु कबहुँ नाहि कीजै ।'
(सुंदर० २२।१०)

अर्थ : उससे कभी बैर न कीजिए ।

सें (उत्तर० १६।-)
'कहेहु दंडवत प्रभु सें'
(उत्तर० १६।-)

अर्थ : तुम प्रभु से दण्डवत् करना ।

सन (बाल० २३०।-)
'अनुज सन' (बाल० २३०।-)

अर्थ : छोटे भाई से ।

सरिस (अयो० ६५।५)
'जम जातना सरिस ।'
(अयो० ६५।५)

अर्थ : यमयातना-सदृश ।

× ×

केरि (बाल० २५५।१)
'नृपन्ह केरि आसा निसि'
(बाल० २५५।१)

अर्थ : राजाओं की आशा-रूपी रात्रि ।

केरे (बाल० १४।३)
'चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे ।'
(बाल० १४।३)

अर्थ : उनके चरण-कमलों को प्रणाम करता हूँ ।

---

१. सं० सम > प्रा० सम > सवँ > सउँ, सउ > सौं । अप० सवँ (हैम व्या० ८।४।३९७) सूत्र—'मोऽ नुनासिको वो वा' । अप० जिवँ, तिवँ = जिम, तिम । सं० किम् > अप० केम > किवँ > क्यों ।

(**विशेष** : अपभ्रंश की भाँति 'रामचरितमानस' की भाषा मैं भी इस सम्बन्धसूचक परसर्ग में लिंग, वचन के तत्त्व समाविष्ट हैं। 'मानस' में 'केरि' एवं 'कै' स्त्रीलिंग के और 'कर' पुंलिंग के प्रयोग हैं। 'की' परसर्ग भी मानस में स्त्रीलिंग का सूचक है।)

कै (किष्कि० ८।७)

'मैली कंठ सुमन कै माला।'
(किष्कि० ८।७)

अर्थ : कण्ठ में पुष्पों की माला डाली।

कर (अर० २७।४)
'येहि मृग कर अति सुन्दर छाला।'
(अर० २७।४)
'एहि मृग कर अति सुंदर छाला।'
(गीता प्रेस०, अर० २७।४)

अर्थ : इस मृग का चर्म अति सुन्दर है।

(**क**) (अयो० ५५।७)
'पितु आग्रेसु सब धरमक टीका।'
(अयो० ५५।७)

अर्थ : पिता का आदेश सब धर्मों का टीका है। अर्थात् सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

(केर>करि>कइ, कै; करि>कर> क यह विकास सम्भव है।)

विशेष : सम्बन्धसूचक परसर्ग '**कर**' का प्रयोग रामचरितमानस में एक दृष्टिकोण से बड़े मार्के का है। साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में बलात्मक क्रियाविशेषण अव्यय (अवधारण) बोधक क्रियाविशेषण अव्यय) '**भी**' का प्रयोग '**का**' '**के**' के उपरान्त ही वाक्य में होता है। जैसे :

(१) धीरज **का भी**[1] फल मीठा होता है।

यदि साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में कोई उक्त वाक्य को लिखे कि 'धीरज **भी का** फल मीठा होता है।' तो यह वाक्य अशुद्ध माना जायगा।

किन्तु रामचरितमानस में '**हू कर**' प्रयोग मिलते हैं। जैसे : 'धीरज हू कर धीरजु भागा।' (अयो० १५३।८)

अर्थ : धैर्य का भी धैर्य समाप्त हुआ।

---

१. इसे 'निपात' भी कहा जा सकता है।

३. ५. रामचरितमानस में विशेषण और विशेष्य :

विशेष्य में संज्ञा या सर्वनाम आते हैं। संज्ञा की विशेषता बतानेवाले पद शुद्ध विशेषण सार्वनामिक विशेषण, कृदन्त विशेषण और क्रियाविशेषणी विशेषण हो सकते हैं। 'रामचरितमानस' में चारों प्रकार के विशेषण पदों के उदाहरण मिल जाते हैं।

३. ५. १. विशेषणों के रूप :

(१) शुद्ध विशेषण पद और संज्ञापद

विशेष :

संज्ञा-शब्दों से बननेवाले विशेषणों को भी हमने शुद्ध विशेषण माना है। वैसे इन्हें **'संज्ञीय विशेषण'** भी कहा जा सकता है।

शुद्ध विशेषण पद	संज्ञापद	उदाहरण
जुझाऊ	ढोल	जुझाऊ ढोलू (अयो० १९२।३), (=युद्ध की प्रेरणा देनेवाला ढोल)
सारदी[1]	बृष्टि	सारदी बृष्टि (किष्किं० १६।१०) (=शरद् ऋतु की वर्षा)
नव	पल्लव	नव पल्लव (बाल० २२७।५), (=नये पत्ते)
दुइ	कुँअर	दुइ कुँअर (बाल० २२९।१) (=दो कुमार)
दुखित	परिवारू	दुखित परिवारू (अयो० १५९।४) (=दुखी कुटुम्ब)
कठोरें	कुठार	कुठार[2] कठोरें (बाल० २७५।८) (= कठोर कुठार द्वारा)

२. सार्वनामिक विशेषण पद और संज्ञापद :

सार्वनामिक विशेषण[3]	संज्ञापद	उदाहरण
येह	सैल	'येह सैला' (किष्किं० १।५) (= यह पर्वत)
ओहु	बचन	'बचन मनतेउँ नहिं ओहू' (लंका० ६१।६) (वह वचन)

---

१. 'सारद' विशेषण शब्द है। इसमें – ई प्रत्येक के योग से 'सारदी' स्त्रीलिंग बन गया है। **सारद+ –ई=**सारदी। सं० शारदी >सारदी।

२. यहाँ विशेष्य **'कुठार'** में तृतीया का विभक्ति-प्रत्यय लुप्त है।

३. ये विशेषण सर्वनाम शब्दों से बनते हैं, इसीलिए सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं।

सो	सुख	'सो सुख' (किष्कि० २।५) (= वह सुख)
हमारी	रहनि	(हमारी रहनि (सुन्दर० ७।१) (= हमारा रहना)
जो	भनिति	'जो भनिति[1] (बाल० १०।३)' (जो कविता)
जे	दोष	'जे[2] दोष (बाल० ६९।३)' (= जो दोष)
केहिं	पण्डित	'पंडित[3] केहीं (अयो० १७५।५)' (= किसी पण्डित द्वारा)'
सबुइ (सबु + इ)	समाजू~समाजु	'सबुइ समाजू (अयो० ८४।६) (= सब ही समाज)

३. **कृदन्त विशेषण पद और संज्ञापद :**

कृदन्त विशेषण[4] पद	संज्ञापद	उदाहरण
जिअत	दसरथ	'जिअत दसरथ' (अयो० १५६।२) (= जीता हुआ दशरथ)
निघटत	नीर	'निघटत नीर' (अयो० १४७।८) (= घटता हुआ पानी)
टूट	चाप	'टूट चाप' (बाल० २७८।८) (= टूटा हुआ धनुष)
उदित	अगस्ति	'उदित अगस्ति' (किष्कि० १६।३) (= उदय हुआ अगस्त्य)
हांके	हय	'हांके हय' (अयो० १५८।१) (= हाँके हुए घोड़े)।
बिलगाना[5]	समुझब	'बिलगाना समुझब' (बाल० ६८।२) (=पृथग्भूत समझने की क्रिया)

१. **'जो'** एकवचनीय रूप है। खड़ी बोली हिन्दी में भी यही रूप प्रचलित है।

२. **'जे'** बहुवचनीय रूप है। इसका खड़ी बोली हिन्दी में 'जो' अर्थ होता है।

३. 'यहाँ विशेष्य' **'पंडित'** में तृतीया का विभक्ति-प्रत्यय लुप्त है।

४. ये विशेषण क्रियापद की धातु में प्रत्यय के योग से बनते हैं। जैसे: नि + घट् : + निघटत = घटता हुआ

५. 'बिलगान' (अयो० ६७।-) का अर्थ है 'अलग' अलग होता हैं, अर्थात् फटता है। 'बिलगाना' भूतकालीन रूप है। जैसे √ जान् से जाना, आन् से आना।

४. क्रिया-विशेषणी विशेषण पद और संज्ञापद :

क्रियाविशेषणी विशेषण[1] पद	**संज्ञापद**	**उदाहरण**
आगिल	चरित	'आगिल चरित' (बाल० ७१।१) (= अगला चरित)
पाछिल	दुखु	'पाछिल दुखु (बाल० ६३।६)' (= पिछला दुःख)

३. ५. २. विशेषण पद और वचन :

पुंलिंग विशेषण और वचन		**स्त्रीलिंग विशेषण और वचन**	
एकवचन	**बहुवचन**	**एकवचन**	**बहुवचन**
(०) '**अस** नाम' (=ऐसा नाम) (बाल० १९७।७)		(०) '**असि**[2] बानी' (=ऐसी वाणी) बाल० २५३।२	
'**येह** जटायू' (=यह जटायू) (अर० २९।१४)	'**सकल** गुन गाथ' (उत्तर० २।१५)	**यह** गति (=यह गति) (अर० ३१।२)	'**सकल** जननीं' (उत्तर० ३।३)
'**सब** भोगु' (=सब भोग) अयो० ६०।३	'**सब** देव' (=सब देवता) अर० १६।७		
'**मोर** ज्ञान' (=मेरा ज्ञान) (किष्कि० १९।३)		(**मोरि** मनोरथ[3] (=मेरी इच्छा) (बाल० १४)	
'**बड़** काजु' (=बड़ा कार्य) अयो० ५३।६		'**बड़ि** विजय' (=बड़ी विजय) बाल० २५१—	
'**सुहाव** सरु' (=सुन्दर तालाब)	(**सुहाए** बाजने (=सुन्दर बाजे)	'**सुहाई** जयमाल' (=सुन्दर जय-माला)	'**सुहाई** चोतनीं' (=सुन्दर चौतनियाँ)

---

१. ये विशेषण क्रियाविशेषण अव्यय शब्दों से बनते हैं, इसलिए क्रियाविशेषणी विशेषण कहलाते हैं। जैसे : आगे√ आगि + ल = आगिल।

२. मिला० 'जइसि चिकनाई' (दाऊदकृत चाँदायन, पृ० २२)।

३. तुलसी ने 'मनोरथ' को पुंलिग भी माना है। जैसे : 'मोर मनोरथु' (बाल० २३६।३)।

बाल ६२।७	बाल २६१।२	बाल० २६४।२ 'सुहाई वेदिका' (सुन्दर वेदी) अयो० २३७।८ सुहाई कथा (बाल० १४।१)	बाल० २४३।७
'**साँवरो** बरु' (=साँवला वर) बाल० २३६।४ छन्द	'**रतनारे** लोचन' (=लाल नेत्र) बाल० २३३।४		'**सयानीं** सखीं' (=चतुर सखियाँ) गीता प्रेस, बाल० २२८।३ आन अनुहारीं सासु (=अन्य रूप में सासुएँ) अयो० २२६।५ रुचिर रेखें (=सुन्दर रेखें) बाल० २४३।८
'**साँवर** कुँअर' (=साँवला कुमार) बाल० २३३।८	'**सयाने** हरि भगत' (=चतुर हरिभक्त) बाल २४५।८		
'**थोर** हरषु' (=थोड़ा हर्ष) बाल० २४६।८		'**थोरि** वृष्टि' (=थोड़ी वर्षा) किष्कि० १६।१० 'थोरी प्रीति' (=थोड़ी प्रीति) बाल० २३४।— 'कारि साँपिनि' (=काली सर्पिणी) अयो० १३।८	'**बहु** चौक' (=बहुत चौकें) उत्तर० ६।३
'**सीतल** मारुत' (बाल० ८६।छन्द)		'**सीतलि** छाती' (अयो० ६६।५)	

जिस प्रकार परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी में विशेषण दो प्रकार के हैं—१. परिवर्त्तनशील २. अपरिवर्त्तनशील। ठीक उसी प्रकार 'रामचरितमानस' की भाषा में भी विशेषण दो प्रकार के मिलते हैं। परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में १. **काला, काली, काले,** २. **लाल, लाल, लाल।**

(क) **परिवर्त्तनशील विशेषण**

पुंलिग एकवचन	**स्त्रीलिंग एकवचन**
'**पिआर** सेवकु' (अयो० २१९।१)	'**पिआरि** ससुरारि' (उत्तर १०१।५)
'**बड़** काजु' (अयो० ५३।६)	'**बड़ि** बिजय' (बाल० २५१।—)
'**सुहाव** सरु[1]' (बाल० २२७।७)	'**सुहाई** जयमाल' (बाल० २६४।२)
'**मोर** परसु' (बाल० २७२।—)	'**मोरि** भनिति' (बाल० ६।१)
पुंलिग बहुवचन	**स्त्रीलिंग बहुवचन**
'**सुहाए** बाजने' (बाल० २६१।२)	'**सुहाईं** चौतनीं' (बाल० २४३।७)
'**सुहाये** चरण' (अयो० ७६।२)	
'**सयाने** हरि भगत' (बाल २४५।८)	'सयानीं सखीं' (बाल० २२८।३)

(ख) **अपरिवर्त्तनशील विशेषण** :

पुंलिग एकवचन	**स्त्रीलिंग एकवचन**
'**यह**[2] जटायू' (अर० २६।१४)	'**यह**[2] गति' (अर० ३१।२)
पुंलिग बहुवचन	**स्त्रीलिंग बहुवचन**
'**सकल** गुन-गाथा' (उत्तर० २।१५)	'**सकल** जननीं' (उत्तर० ३।३)

संस्कृत-भाषा में व्यस्त पदों में जब विशेषण-विशेष्य साथ-साथ आते हैं, तब विशेष्य के लिंग, वचन और विभक्ति के अनुसार ही उसके विशेषण में भी लिंग, वचन और विभक्ति रहती है। जैसे :

विशेषण	**विशेष्य**	**व्यस्त पद**
तेन	बाणेन	तेन बाणेन (=उस बाण से)

परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी में तृतीया विभक्तिसूचक परसर्ग 'से' केवल विशेष्य के साथ आता है। जैसे 'उस बाण से'। यहाँ 'उस' विशेषण में करणकारकत्व या तृतीया विभक्ति-प्रत्यय का कोई चिह्न नहीं है। अर्थात्, संस्कृत के 'तेन बाणेन' की भाँति परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी में '**उससे बाण से**' जैसे प्रयोग नहीं हैं।

'रामचरितमानस' में विशेषण-विशेष्य के प्रयोग दो प्रकार से मिलते हैं—१. विशेष्यानुगामी विशेषण पद, जैसे 'सयानीं सखीं' (बाल० २२८।३) = सयानी सखियाँ।

---

१. विशेष— तुलसी ने '**सोह**' का प्रयोग क्रिया के रूप में और '**सुहावा**' का प्रयोग विशेषण केरूप में किया है—'मध्य बाग सरु **सोह सुहावा**।' (बाल० २२७।७)
'सर समीप गिरिजागृह **सोहा**।' (बाल० २२८।४)
सोहा = सोह = सोहता है।
'सोह कि कोकिल बिपिन करीला।' (अयो० ६३।७)

२. अपभ्रंश-काल में पुंलिग '**एहु**' और स्त्रीलिंग '**एह**' था।

२. विलोम—विशेषण पद (जिन व्यस्त पदों के विशेषणों में विभक्ति-प्रत्यय तो रहता है, किन्तु उनके विशेष्यों में वह प्रत्यय नहीं रहता। उन व्यस्त पदों को हमने विलोम-विशेषण पद नाम दिया है)। जैसे : **बिसेषें सनेह** (बाल० २१।६) = विशेष स्नेह से। **निसोतें सनेह** (बाल० २८।११) = शुद्ध स्नेह से। **कठोरें कुठार** (बाल० २७५।८) = कठोर कुठार से। इन उदाहरणों के विशेषण पदों में ही तृतीया विभक्ति का प्रत्यय है, विशेष्य में नहीं।

विशेष्यानुगामी विशेषण पद :

विशेषण	विशेष्य	विशेषण-विशेष्य पद
१. सयानीं	सखीं	सयानीं सखीं (गीता प्रेस, बाल० २२८।३)
२ सुहाईं	चौतनीं	सुहाईं चौतनीं (गीता प्रेस, बाल० २४३।७)
३. केहि	रंकहि	केहि रंकहि (अयो० २६।२)

उपर्युक्त उदाहरण में विशेष्य 'सखीं पद स्त्रीलिंग है और प्रथमा विभक्ति का बहुवचन है। यही बात 'चौतनीं' और 'सुहाईं' में है। 'रंकहि' में द्वितीया का एकवचनीयत्व है, उसी तरह उसके विशेषण 'केहि' में द्वितीया का एकवचनीयत्व है।

विलोम विशेषणपद :

विशेषण	विशेष्य	विशेषण-विशेष्य पद
सिअरें (—एँ, तृतीया)	बचन	सिअरें बचन (अयो० ७१।८)
कठोरें (,, ,,)	कुठार	कठोरें कुठार (बाल० २७५।८)
थोरें (,, ,,)	श्रम	थोरें श्रम (बाल० २७५।८)
निसोतें (,, ,,)	सनेह	निसोतें सनेह (बाल० २८।११)
तेहि (—हि, तृतीया)	कारन	तेहि कारन (सुन्दर० २६।७)
जेहिं (—हिं ,,)	सायक	**जेहिं सायक** (किष्किं० १८।५)
तेहिं[1] (,, ,,)	सर	**तेहिं सर** (किष्किं० १८।५)
जेहिं[2] (—हिं, सप्तमी)	जोनि	**जेहिं जोनि** (किष्कि० १०।छन्द)
कोरें (—एँ, ,,)	कागद	कोरें कागद (गीता प्रेस, बाल० ९।११)
गौरि (—इ, ,,)	सरीर	गौरि सरीर (गीताप्रेस, बाल० २६८।४)

उपर्युक्त उदाहरणों में विशेष्य पदों में विभक्ति-प्रत्यय का लोप है, किन्तु उनके विशेषण पदों में विभक्ति-प्रत्यय लगा है। अर्थात्, 'सिअरें' **कठोरें**, **थोरें** और **निसोतें** में—एँ और 'जेहिं, 'तेहिं' में ' – एहिं' का योग है। ये तृतीया के सूचक हैं।' **जेहिं जोनि**' के जेहिं 'पद का अंतिम—'एहिं' और '**कोरें कागद**' के' कोरें' का अन्तिम—'एँ' सप्तमी का सूचक है, क्रमशः अर्थ है 'जिस योनि में', 'कोरे कागज पर'। जेहिं सायक (किष्कि० १८५) = जिस बाण से।

---

१. तेहिं – ते + हिं। हिं < अर्द्धमा० तेहिं। जेहिं = जे + हिं। हिं < अप० ताहिं। पिशल, प्रा० व्या०)

२. मिलाइए—जेहिं माया (सूरसागर १०१०) = जिस माया से। जेहिं जोनि (किष्किं० १०। छन्द) = एक्कहिं अक्खिहिं (हैमव्या० ।४।३५७:२)

३. ५. ३. सार्वनामिक विशेषण और विशेष्य :

प्रथमा विभक्ति[१]

'**येह जटायू**' (=यह जटायु — 'जाना जरठ **जटायू येहा** ।' (अर० २९।१४)
अर्थ : रावण ने जाना कि **यह जटायु** तो बुड्ढा है ।

'**येह गति**' (=यह गति) — 'नाथ दसानन येह गति कीन्ही ।' (अर० ३१।२)
अर्थ : नाथ : रावण ने यह गति की ।

सो तनु (=वह शरीर) — 'प्रगट **सो तनु** तव आगे सोवा ।' (किष्कि० ११।५)
अर्थ : **वह शरीर** प्रत्यक्ष में तेरे आगे सोता है।

आपनि करनी (=अपनी करनी) — 'अपने मुख तुम्ह **आपनि करनी**' (बाल० २७४।६)
अर्थ : अपने मुख से तुमने **अपनी करनी** ।

जे लोग (=जो लोग) — 'रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं **जे लोग** ।' (अर० ४६।—)
अर्थ : **जो लोग** रावणारि के पावन यश को गाते और सुनते हैं ।

ते लोग (=वे लोग) — 'सुनहु उमा **ते लोग** अभागी ।' (अर० ३३।३)
अर्थ : हे उमा ! सुनो, वे लोग अभागी हैं ।

कवन सठ (=कौन शठ) — 'अस **कवन सठ** हठि काठि ।' (किष्कि० १०।छन्द)
अर्थ : ऐसा कौन मूर्ख है, जो हठपूर्वक ।

द्वितीया विभक्ति

ओहू बचन (=वह वचन भी) — 'पिता **बचन** मनतेउँ नाहिं ओहू[२] ।' (लंका० ६१।६)
अर्थ : पिता का वह वचन भी न मानता ।

---

१. यहाँ विशेष्य पद की विभक्ति को दृष्टिपथ में रखा गया है ।

२. बघेली में बलवाची अन्य पुरुष विकारी एकवचनीय रूप 'ओहूँ' प्रचलित है । बहुवचन में 'उनहुँ' ।

मोरि निंदा[1] (=मेरी निंदा) — '**मानहु मोरि** करत हहिं निन्दा ।' (अर० ३७।४)

अर्थ : मानो वे **मेरी निन्दा** कर रहे हैं ।

जो बरु[2] (=जो बर, जिस बर को) — 'देहु **जो बरु** माँगऊँ ।' (किष्कि० १०।छन्द)

अर्थ : दो, **जो बर** (जिस बर को) मैं माँगता हूँ ।

आपन दास (=अपना दास) — '**आपन दास** अंगद कीजिए ।' (किष्कि० १०।छन्द)

अर्थ : अंगद को **अपना दास** कीजिए ।

तुम्हारि अनुसासन (=तुम्हारी आज्ञा) — 'जो **तुम्हारि अनुसासन** पावों ।' (बाल० २५३।४)

अर्थ : यदि **तुम्हारी आज्ञा** पाता हूँ ।

केहि रंकहि[3] (=किस रंक को) — '**केहि रंकहि** करौं नरेसू ।' (अयो० २६।२)

अर्थ : **किस रंक को** नरेश करूँ ?

ओहू बचन (=उस बचन को भी) — 'पिता **बचन** मनतेउँ नहिं ओहू ।'

अर्थ : पिता के उस वचन को भी मैं न मानता ।

(ओह+उ=उसका भी)

तेहि राम बिमुख (=उस राम विमुख को) — 'राम विमुख राखा तेहि नाहीं ।' (अर० २।२)

अर्थ : उस राम विमुख को नहीं रखा ?

तृतीया विभक्ति (विशेष्य में विभक्ति-प्रत्यय लुप्त हैं)

जेहि सायक (=जिस बाण से) — '**जेहि सायक** मारा मैं बाली ।' (गीता प्रेस, किष्कि० १८।५)

अर्थ : जिस बाण से मैंने बाली मारा ।

---

१. इन उदाहरणों से प्रकट है कि 'मानस' के विशेषण पद लिंग, वचन और कारक में विशेष्य के अनुसार भी हैं ।

२. इन उदाहरणों से प्रकट है कि 'मानस' के विशेषण पद लिंग, वचन और कारक में विशेष्य के अनुसार भी हैं ।

३. इन उदाहरणों से प्रकट है कि 'मानस' के विशेषण पद लिंग, वचन और कारक में विशेष्य के अनुसार भी हैं ।

केहिं अपराध (=किस अपराध से) **'केहिं अपराध** बिसारेहु दाया ।'
(अर० २९।१)
अर्थ : किस अपराध से दया भुला दी ?

तेहिं सर[1] (=उस बाण से) **'तेहिं सर** हतौं मूढ़ कहुँ काली ।'
(गीता प्रेस, किष्कि० १८।५)
अर्थ : **उस बाण** से कल मूर्ख को मारूँगा ।

तेहिं खल (=उस खल द्वारा) **'तेहिं खल** जनकसुता हरि लीन्ही ।'
(अर० ३१।२)
अर्थ : उस दुष्ट ने सीता जी को हर लिया ।

येहि बिधि[2] (=इस विधि से) **'येहि बिधि** प्रभुहि गएउ लै दूरी ।'
(अर० २७।१३)

एहि बिधि (=गीता प्रेस-संस्करण) **अर्थ** : इस विधि से प्रभु को दूर ले गया ।

ताकें भय (=उसके भय से) **'ताकें भय** रघुबीर कृपाला ।
(किष्कि० ६।१२)
अर्थ : हे कृपालु रघुवीर ! उसके भय से ।

केहिं बिधि (=किस विधि से) 'कहौं बिधि केहीं ।' (अयो० १३९।७)
अर्थ : किस विधि से कहूँ ?

एहिं भांति (=इस भांति से) 'कछुक दिवस बीते **एहिं भाँती** ।'
(बाल० १९७।१)

एहि भाँति (गीता प्रेस-सं०) **अर्थ** : कुछ दिन इस प्रकार से बीते ।

येहि रीति (=इस रीति से) 'कपि कर मन विचार **येहि रीती** ।'
(किष्कि० ४।८)

एहि रीति (गीता प्रेस-सं०) **अर्थ** : कपि इस रीति से मन में विचार करता है ।

तेहिं कारन (=उस कारण से) 'कीन्हेउँ प्रगट न कारन **तेहीं** ।'
(बाल० २३६।४)
अर्थ : उस कारण से मैंने (मनोरथ) प्रकट नहीं किया ।

जेहि कारन (=जिस कारण से) 'जेहि कारन महीप सब आए ।'
(बाल० २७०।१)
अर्थ : जिस कारण से सब राजा आये थे ।

१-२. जिस प्रकार यहाँ सार्वनामिक विशेषणों में विभक्ति-प्रत्यय है, उसी प्रकार संज्ञा के साथवाले मूल विशेषण-पदों में अन्यत्र भी पाया जाता है । जैसे : 'कठोरें कुठार' (बाल० २७५।८), 'थोरें श्रम' (बाल० २७५।८) ।

विशेष : यहाँ सार्वनामिक विशेषण-पदों में **—एहिं, —एँहि** तृतीया विभक्ति-प्रत्यय यह सिद्ध कर रहे हैं कि उनके विशेष्य संज्ञापद तृतीयासूचक हैं, भले ही वे संज्ञा-पद उन विभक्ति-प्रत्ययों से रहित हों। इन्हें हमने 'विलोम विशेषण-पद' नाम दिया है। यहाँ संज्ञा में विभक्ति-प्रत्यय लुप्त है।

षष्ठी विभक्ति

तुम्हार अहिबात (=तुम्हारा सौभाग्य) — 'होउ अचल तुम्हार **अहिबाता**।' (अर० ७।२)

अर्थ : तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।

ओहि निहोर (=उसका अहसान) — 'राखा राम **निहोर** न **ओही**।' (किष्कि० २६।५)

अर्थ : राम ने रक्षा की, उसका अहसान नहीं। (अथवा) राम ने रक्षा की, उसको अहसान नहीं।

सप्तमी विभक्ति

तेहि अवसर (=उस समय) — '**तेहि अवसर** सीता तहँ आई।' (बाल० २२८।२)

अर्थ : उस समय सीता वहाँ आई।

येहि अवसर (=इस समय) — '**येहि अवसर** लछिमनु पुर आए।' (किष्कि० १९।८)

अर्थ : इस अवसर पर लक्ष्मण पुर में आये।

जेंहि गिरि (=जिस पर्वत पर) — '**जेंहि गिरि** चरन देइ हनुमंता।' (गीता प्रेस, सुंदर० १।७)

जेहि गिरि (डॉ० गुप्त-संस्करण)

अर्थ : जिस पर्वत पर हनुमान् चरण रखता है।

तेंहि पुर (=उस नगर में) — '**तेंहि पुर** बसै सीलनिधि राजा।' (बा० १३०।२)

अर्थ : उस नगर में शीलनिधि राजा रहता है।

जेंहि जोनि (=जिन योनि में) — '**जेंहि जोनि**[1] जन्मौं कर्म बस।' (गीता प्रेस, किष्कि० १०।छन्द)

अर्थ : कर्म के वश में होकर मैं जिस योनि में जन्म लूँ।

जेंहि जोनि (डॉ० गुप्त-संस्क०)

---

१. मिलाइए—**जेंहि माया** (सूरसागर, १०।४)=जिस माया से। **सूनैं घर** (सूरसागर, १०।३१७)=सूने घर में।

जेहि भायँ[1] (=जिस भाव में) 'रामहि चितव **भायँ जेहि** सीया।' (बाल० २४२।६)

अर्थ : सीता जिस भाव में राम को देखती है।

एहिं लालसाँ (=इस लालसा में) **'एहिं लालसाँ** मगन सबु लोगू।' (बाल० २४६।६)

अर्थ : इस **लालसा** में सब लोग मग्न हैं।

तेहिं रथ (=उस रथ पर) **'तेहिं रथ** रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।' (बाल० ३०१।-)

अर्थ : राजा हर्षपूर्वक उस सुन्दर रथ पर वशिष्ठजी को चढ़ाकर।

तेहिं काल (=उस काल में) 'अमित रूप प्रगटे तेहिं काला।' (उत्तर० ६।५)

अर्थ : **उस समय** में अमित रूप प्रकटे।

विशेष : जेहि अथवा जेहिं आदि का अन्तिम -एहि या -एहिं द्वितीया, तृतीया तथा सप्तमी का सूचक है।

सार्वनामिक विशेषण, विशेष्य और परसर्ग :

तेहि बन निकट (=उस वन के निकट) **'तेहि बन निकट** दसानन गएऊ।' (अर० २७।१)

अर्थ : उस बन के निकट दशानन गया।

येहि धनु पर (=इस धनुष पर) **'येहि धनु पर** ममता केहि हेतू।' (बाल० २७१।८)

एहि धनु पर (गीता प्रेस, सं०)

अथ : इस धनुष पर किस कारण ममता है?

येहि मृग कर (=इस मृग का) **'येहि मृग कर** अति सुंदर छाला।' (अर० २७।४)

एहि मृग कर (गीता प्रेस-सं०)

अर्थ : इस मृग का अति सुन्दर चर्म है।

विशेष : डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण में 'ये' और गीता प्रेस-संस्करण में 'ए' मुद्रित है। अर्थात्,

---

१. 'जेहि भायँ' में तृतीया विभक्ति भी हो सकती है। तुलसी अँकारान्त में तृतीया भी लिखते हैं—'मोहँ मति करषी' (अयो० १०१।५) = मोह द्वारा मति **खींची** गई।

गुप्तजी का पाठ 'य्' श्रुति को लेकर है। श्रीविश्वनाथ-प्रसाद मिश्र-कृत काशिराज-संस्करण में भी 'य्' श्रुतिवाले ही पाठ हैं।

'एहि मृग कर'—
(गीता प्रेस, अर० २७।४)
अर्थ : इसी मृग का—।

३. ५. ४. अपभ्रंश और रामचरितमानस के संज्ञा-पद-रूपान्त :

प्रथमा विभक्ति, एकवचन

अकारान्त पुंलिग शब्द

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
पद	**प्रकृति+प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति+प्रत्यय**
संकरु (हैम[1] व्या० ८।४।३३१।१) (संकरु=शंकर)	=संकर्+—उ	संकरु (बाल० ५०।६) (संकरु=शंकर)।	=संकर्+—उ

प्रथमा विभक्ति, बहुवचन

अकारान्त पुंलिग शब्द

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
पद	**प्रकृति+प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति+प्रत्यय**
खग्ग (हैम व्या० (८।४।३३०।४) (खग्ग=खड्ग)।	=खग्ग+—०	बचन (बाल० ३८।७) (बचन=वचन)	=बचन+—०

द्वितीया विभक्ति, एकवचन

अकारान्त पुंलिग शब्द

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
पद	**प्रकृति+प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति+प्रत्यय**
छंमुहु (हैम व्या० ८।४।३३१।१)	=छंमुह+—उ	मुँहु (अयो० २७।८)	=मुँह्+—उ

१. हैम व्याकरण के लिए यह संक्षिप्त रूप लिखा गया है। आचार्य हेमचन्द्र-कृत सिद्धहैमशब्दानुशासन में पहले सात अध्याय संस्कृत-व्याकरण से और आठवाँ अध्याय प्राकृत-व्याकरण से सम्बद्ध हैं। आठवें अध्याय के चतुर्थ पाद के ३२९वें से ४४८वें तक के सूत्र अपभ्रंश-व्याकरण से सम्बद्ध हैं।

(छंमुहु = षण्मुख को)। (मुँहु[1] = मुख को)।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

वाराणसिहिं (हैम व्या० ८।४।४४२।१)	= वाराणसी ~ वाराणसि + - हिं	रानिहि (अयो० १२२।२)	= रानी ~ रानि + हि
(वाराणसिहिं = वाराणसी को)		विशेष—'हि' का इकार निरनुनासिक है। (रानिहि = रानी को)	

द्वितीया विभक्ति, बहुवचन

अकारान्त पुंलिंग शब्द

अपभ्रंश		**रामचरितमानस**	
पद	**प्रकृति + प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति + प्रत्यय**
पल्लव (हैम व्या० ८।४।३३६।१) (पल्लव = पल्लवों को)।	= पल्लव + - ०[2]	बचन (अयो० ६७। -) (बचन = वचनों को)।	बचन + - ०

तृतीया विभक्ति एकवचन

अकारान्त पुंलिंग शब्द[3]

अपभ्रंश		**रामचरितमानस**	
पद	**प्रकृति + प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति + प्रत्यय**
दइवें (हैमव्या० ८।४।३३१।१) (दइवें = दैव से, दैव द्वारा)	= दइव् + - एँ	निसोतें (बाल० २८।११) (निसोतें = निस्स्रोत से, निस्स्रोत द्वारा)	= निसोत् + - एँ
		भोरें (बाल० २७२।२) (भोरें = भ्रम से)	= भोर् + - एँ
		निहोरें (सुन्दर० ४८।८) (निहोरें = अहसान से, खुशामद से)	= निहोर् + - एँ

---

१. गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों में 'मुहु' पाठ है, जो हैम व्याकरण के 'छंमुहु' के 'मुहु' से वर्त्तनी में समानता रखता है।

२. यह ० शून्य प्रत्यय है।

३. दइव, निसोत, भोर आदि को उच्चारण की दृष्टि से व्यंजनान्त भी माना जा सकता है।

तृतीया विभक्ति, बहुवचन

अकारान्त पुंलिग शब्द

अपभ्रंश

पद	प्रकृति+प्रत्यय
अङ्गहिं (हैम व्या० ८।४।३३२।२) (अङ्गहिं=अंगों से, अंगों द्वारा)	=अङ्ग+–हिं
गुणेहिं (हैम व्या० ८।४।३३५।१) (गुणेहिं=गुणों द्वारा)	=गुण+–एहिं

रामचरितमानस

पद	प्रकृति+प्रत्यय
सयनहिं (बाल० २५४।४) (सयनहिं=इशारों से, संकेतों द्वारा)	=सयन+–हिं =सयन्+–अहिं

सप्तमी विभक्ति, एकवचन

अपभ्रंश

पद	प्रकृति+प्रत्यय
कलिहि (हैम व्या० ८।४।३४१।३) (कलिहि=कलियुग में)।	=कलि+–हि
महिहि (हैम व्या० ८।४।३५२।१) (महिहि=पृथ्वी पर)।	=महि+–हि
अन्नहिं (हैम व्या० ८।४।३५७।२) (अन्नहिं=अन्य में)।	=अन्न+=हिं

रामचरितमानस

पद	प्रकृति+प्रत्यय
मनहि (काशि०, बाल० २१८।२) (मनहि=मन में)।	=मन+–हि
घरहि (काशि०, बाल० २७६।७) (घरहि=घर में)।	=घर+–हि
सयनहि (काशि०, बाल०२५४।४) (सयनहि=इशारे में)।	=सयन+–हि
घरहिं (बा० २७६।७) (घरहिं=घर में)।	=घर+–हिं
सैनहिं (बाल० २७६।८) (सैनहिं=इशारे में)। (गीताप्रेस 'सयनहिं')	=सैन+–हिं

सप्तमी विभक्ति, बहुवचन

अपभ्रंश	रामचरितमानस
मग्गेहिं (हैम व्या० ८।४।३४७।१) = मग्ग् + -एहिं) (मग्ग् + एहिं = मार्गों में)।	जनवासेहिं[1] (बाल० ३२६।७) = जनवास + —एहिं (जनवासेहिं = जनवासे में)। **विशेष :** 'रामचरितमानस' के 'जनवासेहिं' पद का अर्थ है—जनवासे में। अर्थात्, इसका—एहिं प्रत्यय सप्तमी के एकवचन का सूचक है, जबकि अपभ्रंश के 'मग्गेहिं' का—एहिं सप्तमी के बहुवचन का सूचक है।

३. ५. ५. अपभ्रंश और रामचरितमानस के सर्वनाम-पद-रूपान्त :

पुरुषवाचक सर्वनाम, उत्तमपुरुष

अपभ्रंश	रामचरितमानस
मइँ (हैम व्या० ८।४।३७७।१) = म् + —अइँ (मइँ = मेरे द्वारा)	मइँ~मैं (किष्कि० ८।४) = म् + —अइँ = म् + —ऐं (मइँ~मैं = मेरे द्वारा)
अम्हइँ (हैम व्या० ८।४।३७६) = अम्ह + —इँ (अम्हइँ[2] = हमें, हमको)।	हमहि (किष्कि० ५।५) = हम + —हि (हमहि = हमें, हमको)।
अम्हे, अम्हइँ (हैम व्या० ८।४।३७६।१, २) = हम	

---

१. उच्चारण की दृष्टि से 'जनवासेहि' में 'ए' ह्रस्व है, अर्थात् जनवासेहिं = जनवासेहिं। ध्वनि के आधार पर अपभ्रंश के 'मग्गेहिं' की भाँति ही 'जनवासेहिं' को समझना चाहिए। स्वयम्भू-कृत 'पउमचरिउ' में –ए प्रत्यय सप्तमी एकवचन और –एहिं प्रत्यय सप्तमी बहुवचन में आया है—परसासणेहिं (पउम० १।९) = अन्य शासनों में। जिणसासणे (पउम० १।९) = जिन शासन में।

२. संस्कृत के 'वयम्' और 'अस्मान्' पदों के समानार्थी पद अपभ्रंश में 'अम्हइँ', 'अम्हे' होते हैं, अर्थात अम्हइँ, अम्हे = वयम्, अस्मान् (प्रथमा, द्वितीया बहुवचन), प्रा० अम्ह = हम। प्रा० अम्मि = मैं (प्रथमा)। प्रा० मइँ = मैं (तृतीया)।

पुरुषवाचक सर्वनाम, मध्यमपुरुष

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
पद	**प्रकृति+प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति+प्रत्यय**
तुहुँ (हैम व्या० ८।४।३६८।१)	=त्—+—उहुँ	तूँ (अयो० १६२।७) (तूँ=तू)।	=त्+—ऊँ
तइँ=त्+—अइँ (हैम व्या० ८।४।३७०।२) (तइँ=तेरे द्वारा)		तइँ~तैं (सुन्दर० १२।१) (तइँ=तू)।	=त्+—अइँ
		तइँ~तैं (सुंदर० १०।१) (तइँ~तैं=तेरे द्वारा)।	=त्+-अइँ =त्+—ऐँ
तुम्हइँ (हैम व्या० ८।४।३६९) (तुम्हइँ[1]=तुम्हें, तुमको)।	=तुम्ह+-इँ	तुम्हहि (उत्तर० १९।-)	=तुम्ह+-हि
		तुम्हहिं (काशि० १८।—) (तुम्हहि, तुम्हहिं=तुम्हें,= तुमको)	=तुम्ह+-हिं

पुरुषवाचक सर्वनाम, अन्यपुरुष

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
एह=ए+—ह (हैम व्या० ८।४,—३३०।४) (स्त्री०)		येह[2] (अर० ३१।२) (स्त्री०)	=ये+-ह
एहो (हैम० व्या० ८।४।३६२।१) (पुं०)	=ए+—हो	(येहु[3] (बाल० २२१।१)(पुं०) (येह=यह। येहु=यह)।	=ये+—हु
एहु=ए+—हु (हैम व्या० ८।४।३६२।१) (न०) (एह=यह। एहो=यह। एहु=यह)			
एइ (हैम व्या० ८।४।३३०।४) (एइ=ये)।	=ए+इ	=ए[4] (बाल० २२१।३) (ए=ये)।	=ए+—०
ति=त्+—इ (हैम व्या० ८।४।३३०।४) (ति=वे)		ते (बाल० ८।१२) (ते=वे)।	=त्+—ए

---

१. प्रा० तुम्ह=तुम।

२. सं० एषा>अप० एह>येह=हिं० यह।

३. सं० एषः>अप० एहु>येहु=हिं० यह।

४. सं० एते>अप० एइ>ए=हिं० ये।

सो = स् + —ओ (हैम व्या० ८।४।३७०।४) (सो = वह) ।	सो (अयो० १०१।४) = स् + —ओ (सो = वह । सोइ = वह ही, वही) ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

अपभ्रंश		**रामचरितमानस**	
पद	**प्रकृति + प्रत्यय**	**पद**	**प्रकृति + प्रत्यय**
जो, सो (हैम व्या० ८।४।४२२।१६)	= ज् + —ओ = स् + —ओ	जो, सो (उत्तर० ४४।–)	= ज् + —ओ = स् + —ओ
(जो = जो । सो = सो, वह)		(जो + जो । सो = सो, वह)	
जे (हैम व्या० ८।४।४२२।३)	= ज् + —ए	जे (किष्कि० ७।१)	= ज् + —ए
जे = जो (बहुवचन) ।		जे (जे = जो (बहुवचन) ।	
जासु (हैम व्या० ८।४।३५८।१)	= ज् + —आसु	जासु[1] (अयो० १०१।३)	= ज् + —आसु
(जासु = जिसका, जिसकी ।)		(जासु = जिसका, जिसकी) ।	
तासु (हैम व्या० ८।४।३५८।१)	= त् + —आसु	तासु (बाल० ५०।८)	= त् + —आसु
(तासु = उसका, उसकी ।)		(तासु = उसका, उसकी ।)	

३. ६. रामचरितमानस में क्रियाएँ :

वाक्य में होने या करने के भाव को प्रकट करनेवाले पद 'क्रियापद' कहलाते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी (मानक खड़ीबोली हिन्दी) में **'लड़का अच्छा है'** एक वाक्य है। इसमें **'है'** से होने का भाव व्यक्त हो रहा है, अतः **'है'** एक क्रियापद है। **'लड़का पुस्तक पढ़ता है'** वाक्य में **'पढ़ता है'** से करने का भाव प्रकट हो रहा है, अतः इसमें **'पढ़ता है'** क्रिया-पद है। यहाँ यह बात विशेष है कि इस एक क्रियापद में दो क्रियाएँ मिली हुई हैं—१. **पढ़ता** और २. **है** । **'पढ़ता'** मुख्य क्रिया और **'है'** सहायक क्रिया है। अतः, **'पढ़ता है'** एक संयुक्त क्रिया है।

---

१. सं० यस्य > अप० जस्स, जस्सु > जासु ।
जेहिं (भविसयत्तकहा) = जिनके द्वारा (तृतीया बहुवचन) ।
जें (भविसयत्तकहा) = जिसके द्वारा (तृतीया एकवचन) ।
'जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं ।'—(गीता प्रेस, बाल० १२।११)
अर्थ : जिन पवनों द्वारा (जिस पवन द्वारा) सुमेरु पर्वत उड़ जाते हैं ।
'जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता ।'—(गीता प्रेस, सुन्दर० १।७)
अर्थ : जिस पर्वत पर हनुमान् चरण रखता है ।
'जेहिं सायक' (किष्कि० १८।५) = जिस बाण से ।

इसी प्रकार **'लड़का पढ़ा'** में 'पढ़ा' एकाकी क्रिया है और **'लड़का पढ़ चुका'** में **'पढ़ चुका'** संयुक्त क्रिया है। संयुक्त क्रिया में पूर्वागत क्रिया ही अर्थ की दृष्टि से मुख्य होती है। दूसरी पहचान यह भी है कि निषेधवाचक स्थिति में मुख्य क्रिया ही अस्तित्व बनाये रखती है। सहायक क्रिया तो प्रायः साथ छोड़कर अलग हो जाती है। जैसे :

१. लड़का **पढ़ चुका**। (सामान्य कथन)
२. लड़का नहीं **पढ़ा**। (निषेधवाचक कथन)
३. लड़का **उठ पड़ा**। (सामान्य कथन)
४. लड़का नहीं **उठा**। (निषेधवाचक कथन)
५. लड़का **पढ़ने लगा**। (सामान्य कथन)
६. लड़का नहीं **पढ़ा**। (निषेधवाचक कथन)
७. लड़की चलना **चाहती है**। (सामान्य कथन)
८. लड़की चलना नहीं **चाहती** (निषेधवाचक कथन)
९. लड़का **दौड़ता है**। (सामान्य कथन)
१०. लड़का नहीं **दौड़ता**। (निषेधात्मक कथन)

ऐसी भी निषेधवाचक क्रियाएँ होती हैं, जो निषेधसूचक भाव पूर्व या मध्य स्थिति में भी प्रकट करती है। जैसे :

सामान्य कथन	**निषेधवाचक कथन**
लड़का **कह सकता** है।	१. लड़का कह **नहीं** सकता।—मध्यस्थिति
	२. लड़का **नहीं** कह सकता।—पूर्वस्थिति

उपर्युक्त उदाहरणों में सामान्य कथन के अन्तर्गत और निषेधवाचक कथन के अन्तर्गत संयुक्त क्रियाओं का अस्तित्व पाया जाता है।

१. रामचरितमानस में संयुक्त क्रियाएँ :

अब तुलसी-कृत रामचरितमानस में क्रियार्थक क्रिया और संयुक्त क्रिया की स्थिति को देखना चाहिए। उदाहरणों से अर्थ स्पष्ट हो सकता है :

रामचरितमानस	**हिन्दी**
'प्रभुहि **मिलन**[1] आई जनु राती। (बाल० १९५।३)	मानो रात्रि प्रभु से **मिलने आई**।
'गुर गृह गए **पढ़न** रघुराई।' (बाल० २०४।४)	रघुराई गुरु के घर **पढ़ने** गए।

क्रियार्थक क्रिया	**मुख्य क्रिया**	**क्रियार्थक क्रिया**	**मुख्य क्रिया**
मिलन = धातु + अन,	आई = धा० + ई	मिलने = धा० + अने	आई = धा० + ई
पढ़न = धा० + अन,	गए = धा० + ए	पढ़ने = धा० + अने	गए = धा० + ए

१. मिलन = मिलने के लिए (मिलन = मिलने)। सं० मिलनाय > मिलनाइ > मिलनइ > मिलने।

'**कहि न सकइ** सारद अहिराजा ।' (गीता० बाल० १९५।२)	शेष और शारदा कह नहीं सकते हैं । ('कहि न सकै'—गुप्त संस्क० बाल० १९५।२)

संयुक्त क्रिया	मुख्य क्रिया	सहायक क्रिया	संयुक्त क्रिया	मुख्य क्रिया	सहायक क्रिया
कहि सकै,	कहि=धा०+इ	सकै=धा०+ऐ सकइ=धा०[1]+अइ	कह सकती	कह=धातु+०	सकती= धातु+त्+ई सकता= धा०+त्+आ

कुछ वाक्यों के अन्तर्गत कुछ क्रियाएँ ऐसी होती, है जो कर्त्ता के लिंग-परिवर्त्तन पर अपना लिंग-परिवर्त्तन नहीं करती । ऐसी क्रियाएँ 'तिङन्त क्रिया' कहलाती है । हिन्दी में इच्छा तथा आज्ञा अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली कियाएँ तिङन्त हैं । जैसे :

१. **लड़का** वहाँ **बैठे** । (कर्त्ता पुंलिंग, क्रिया 'बैठे') ।

२. **लड़की** वहाँ **बैठे** । (कर्त्ता स्त्रीलिंग, क्रिया 'बैठे') ।

३. **लड़का** पुस्तक **पढ़े** । (कर्त्ता **पुंलिंग**, क्रिया 'पढ़े') ।

४. **लड़की** पुस्तक **पढ़े** । (कर्त्ता स्त्रीलिंग, क्रिया 'पढ़े') ।

उपर्युक्त उदाहरणों में कर्त्ता के लिंग-परिवर्त्तन पर क्रिया में परिवर्त्तन नहीं हुआ है । अतः, उक्त वाक्यों की '**बैठे**' और '**पढ़े**' क्रियाएँ तिङन्त हैं । ये क्रियाएँ आज्ञार्थ और भविष्यत् काल को सूचित कर रही हैं । यदि इन्हें निर्देशवाचक अर्थ के साथ वर्त्तमान काल में परिवर्त्तित करें, तो तिङन्त न रहेंगी, अपितु कृदन्त बन जाएँगी । कृदन्त क्रियाएँ कर्त्ता के लिंग के अनुसार लिंग बदल देती हैं । जैसे :

१. लड़का वहाँ **बैठता है** । (कर्त्ता पुंलिंग, क्रिया 'बैठता')

२. लड़की वहाँ **बैठती है** । (कर्त्ता स्त्रीलिंग, क्रिया 'बैठती,

३. लड़का पुस्तक **पढ़ता है** । (कर्त्ता पुंलिंग, क्रिया 'पढ़ता')

४. लड़की पुस्तक **पढ़ती है** । (कर्त्ता स्त्रीलिंग, क्रिया 'पढ़ती')

उपर्युक्त वाक्यों की क्रियाएँ कर्त्ता के लिंगानुसार परिवर्त्तित हुई हैं, अतः कृदन्त क्रियाएँ हैं । इसी प्रकार, 'लड़का **चला**', 'लड़की **चली**', 'लड़का **चलेगा**', लड़की **चलेगी**' वाक्यों की क्रियाएँ भी कृदन्त क्रियाएँ हैं ।

अब 'रामचरितमानस' की भाषा में तिङन्त और कृदन्त क्रियाओं को देखना चाहिए ।

---

१. गीताप्रेस, गोरखपुरवाले संस्करण में 'सकइ' पाठ है ।

३. ६. १. तिङन्त क्रियाएँ[१] :

३.६.१.१. वर्त्तमान काल :

वर्त्तमान काल, अन्य पुरुष (तिङन्त क्रियाएँ)

'स्त्रीलिंग कर्त्ता की स्थिति में क्रिया :

'बात **बहइ**' (अयो०, दो० २१६) (=हवा बहती है।)
'(नारि) **करइ**' (अर० ५।१६) (=नारी करती है।)
बहइ=धातु+अइ (=हिं० बहती है।)
करइ=धातु+अइ (=हिं० करती है।)

पुंलिग कर्त्ता की स्थिति में क्रिया :

'**जीव निस्तरइ**' (किष्कि० ३।२) (=जीव तरता है।)
'कपिपति **रहइ**' (किष्कि० ४।२) (=कपिपति रहता है।)
'जो **करइ**' (अयो० २१८।६) (=जो करता है।)
निस्तरइ=धातु+अइ (=हिं० तरता है।)
रहइ=धातु+अइ (=हिं० रहता है।)
जाइ[२]=धातु+इ (=हिं० जाती है या जाता है)।
आइ[३]=धातु+इ (=हिं० आती है या आता है)।

रामचरितमानस में उक्त सामान्य वर्त्तमान काल की क्रियाएँ तिङन्त हैं। 'करइ' क्रिया से सिद्ध है कि यह (अर० ५।१६ में) स्त्रीलिंग में और अयो० २१८।६ में पुंलिग रूप में प्रयुक्त हुई है। निम्नांकित उदाहरणों में कर्त्ता विभिन्न लिंग के हैं, क्रियाएँ उनके प्रभाव में नहीं हैं—१. हाथु न बहइ (बाल० २८०।१)=हाथ नहीं उठता है।

यहाँ कर्त्ता 'हाथु' पुंलिग है। १. छाती दहइ (बाल० २८०।१)=छाती जलती है। यहाँ कर्त्ता 'छाती' स्त्रीलिंग है। दोनों क्रिया-पद (बहइ, दहइ) एक-से हैं, अर्थात् **अइ** प्रत्यान्त। ये लिंग का प्रभाव नहीं मान रही हैं।

पुंलिग कर्त्ता की स्थिति में क्रिया :

'सुग्रीव **कह**'[४] (किष्कि० ५।२) (=सुग्रीव कहता है।)
'सरु **सोह**' (बाल० २२७।७) (=तालाब सोहता है।)

---

१. तिङन्त क्रियाएँ लिंग का प्रभाव नहीं मानतीं। संस्कृत में **'पठति'** तिङन्त क्रिया है। जैसे : १. बालकः **पठति**। २. बालिका **पठति**।

२. रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई। (अयो० २८।४) आई~आइ= आती है। जाई~जाइ=जाता है।

३. रघुकुल रीति सदा चलि **आई**। प्रान जाहुँ बरु बचनु न **जाई**। (अयो० २८।४) आई~आइ=आती है। जाई~जाइ=जाता है।

४. इस **कह** का अर्थ **कहा** भी है। सं० कथयति>कहइ>कह। सं० शोभते>सोहइ>सोह।

स्त्रीलिंग कर्त्ता की स्थिति में क्रिया :

'अवनिकुमारी **कह**' (अयो० ६४।४,५) (=अवनिकुमारी कहती है।)

'दुइ बालक देख'[१] (बाल० २०१।७) (= कौशल्या दो बालक देखती है।)

उपर्युक्त उदाहरणों में 'कह' का प्रयोग सामान्य वर्त्तमान काल में है और तिङन्त क्रिया के रूप में है; क्योंकि कर्त्ता जब पुंलिंग है, तब भी क्रिया 'कह' आई है और जब कर्त्ता स्त्रीलिंग है, तब भी क्रिया 'कह' आई है।

कह = धातु[२] + ० (= कहता है।)

कह = धातु + ० (= कहती है।)

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी में क्रिया के सामान्य रूप 'समझना', 'करना' आदि होते हैं, उसी प्रकार अवधी में '**समुझब**'[३], '**करब**' होते हैं। तुलसी के मानस में 'समझना' के अर्थ में 'समुझब' (बाल० ६८।२) का प्रयोग मिलता है।

रामचरितमानस की सामान्य भूतकाल की क्रियाओं में तिङन्त प्रयोग मिलते हैं। उदाहरण :

६. ६. १. २ **भूतकाल :**

भूतकाल, अन्य पुरुष (**तिङन्त क्रियाएँ**)

पुंलिंग कर्त्ता

'लखन **कहेउ**'[४] (बाल० २७६।१) (= लक्ष्मण ने कहा)

'रुचिर बिमानु **चलेउ**' (लंका० ११९।६) (= सुन्दर विमान चला)।

'**चलेउ** सुमंत्रु' (अहो० १९।२) (सुमन्त्र चला)।

स्त्रीलिंग कर्त्ता

'सिय कहेउ'[५] (अयो० १०३।२) (= सीता ने कहा)

'समुझि सुमित्रा[६]···**धुनेउ** सिरु' (काशि०, अयो० ७३।—) (= सुमित्रा ने सिर धुना)।

कहेउ = धातु + एउ (= कहा) } यहाँ—'एउ' प्रत्यय की 'ए' ध्वनि ह्रस्व है।

---

१. मूल पाठ इस प्रकार है : 'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।'
'मह्हुमास पंचम **गाव**' (प्राकृतपैंगलम्, ८७) = मधुमास पंचम स्वर में गाता है।
'बेगार **धर**' (विद्यापति, कीर्त्तिलता, २।२०१) = बेगार के लिए पकड़ता है।

२. यह शून्य का चिह्न है।

३. दसा एक समुझब बिलगाना (बाल० ६८।२)

४. लछिमन कहा तोहि सो बरई। (अर० १७।१८) कर्मवाच्य में। (कहेउ < सं. कथितम्)।

५. 'सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।' (अर० १७।११) (कहेउ < सं. कथितम्)।

६. गीताप्रेस गोरखपुर के संस्करण में '**सुमित्राँ**' पाठ है।

रामचरितमानस की भाषा	**संस्कृत-भाषा**
लखन कहेउ (बाल० २७६।१)	= लक्ष्मण: अकथयत् (लक्ष्मणेन कथितम्) ।
सिय कहेउ (अयो० १०३।२)	= सीता अकथयत् (सीतया कथितम्) ।

स्त्रीलिंग कर्त्ता

'जननी सौंपेसि' (लंका० ६१।१५) (= माता ने सौंपा।)

पुंलिग कर्त्ता—

'निसिचर कृपान काढ़िस' (अर० २९।२१) (= निशिचर ने तलवार निकाली)
'बालक कहेसि' (बाल०, दो० २८१) (= बालक ने कहा)
'बाली मारेसि' (किष्कि० ६।१०,११) (= बाली ने मारा)

सौंपेसि = धातु + एसि = √सौंप् + एसि (= सौंपा)
मारेसि = धातु + एसि = √मार् + एसि (= मारा)

३. ६. १. ३ भविष्यत् काल :

भविष्यत् काल, अन्य पुरुष (तिङन्त क्रियाएँ)

एकवचन में

'सोवरई'[1] (अर० १७।१८) = (वह बरेगा)
'मायावी मारिहि' (किष्कि० ६।२,८) = (मायावी मारेगा)
'स्वामी मिलिहिं' (बाल०, दो० ६७) (= स्वामी मिलेगा)
'बारा लागिहि' (अयो० ६२।२) (= देर लगेगी)
'दुख दाहु मिटिहि' (अयो० २२५।२) (= दु:ख-दाह मिटेगा)।
मारिहि = धातु + इहि = √मार् + इहि (मारेगा)।
मिलिहि = धातु + इहि = √मिल् + इहि (= मिलेगा)।
लागिहि = धातु + इहि = √लाग् + इहि (= लगेगी)।

बहुवचन में

'सब लोगू कहिहिं' (बाल० ७१।५) (= सब लोग कहेंगे)

अर्थ : सब लोग कहेंगे। (धा० कह् + इहिं = कहिहिं)।

× × ×

'मिथिलेस कुमारी **मिलिहिं**' (किष्कि० ५।२) (= जानकी मिलेंगी)।

अर्थ : सीता जी मिलेंगी। (धा० मिल् + इहिं = मिलिहिं)।

कहिहिं = धातु + इहिं = √कह् + इहिं (= कहेंगे)।
मिलिहिं = धातु + इहिं = √मिल् + इहिं (मिलेंगी)।
धातु + इहहिं = √मिल् + इहहिं = मिलिहहिं (= मिलेंगे)।
'मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू।' (अयो० २२५।२)

अर्थ : राम मिलेंगे और दु:ख का दाह मिटेगा।

---

१. जाई = वह जाएगा।

उक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि तिङन्त क्रियाएँ वचन का प्रभाव मानती हैं।

३. ६. २. **कृदन्त क्रियाएँ :**

कर्त्ता के अनुसार

कृदन्त क्रियाएं कर्त्ता के अनुसार लिंग-वचन बदलती हैं। हिन्दी की भाँति 'रामचरित मानस' में भी सामान्य वर्त्तमान और भूतकाल में कृदन्त क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। ये कर्त्तृवाच्य की हैं।

कर्त्ता	**क्रिया**	**उदाहरण**
मन (पुं०, एकव०)	जानत (पुं०, एकव०)	'जानत प्रिया एकु मनु मोरा।' (सुन्दर० १५।६)
बैदेही (स्त्री०, एकव०)	कहति (स्त्री०, एकव०)	'तृन धरि ओट कहति बैदेही।' (सुन्दर० ९।६)
कोउ (पुं०, एकव०)	कहत[1] (पुं०, एकव०)	'तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं।' (बाल० ६९।६)
मन (पुं० एकव०)	डोला (पुं०, एकव०)	'हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।' (अर० २८।५)
दुइ कुँअर (पुं० बहुव०)	आए (पुं०, बहुव०)	'कुँअर दुइ आए।' (बाल० २३९।१)
मति (स्त्री, एकव०)	डोली (स्त्री०, एकव०)	'सो मति डोली।' (बाल० १९२। छन्द)
अलीं (स्त्री०, बहुव०)	चलीं (स्त्री०, बहुव०)	'अलीं मन्दिर चलीं।' (बाल० २३६। छन्द)

कर्म के अनुसार

कर्म के लिंग-वचन के अनुसार भी मानस में कृदन्त क्रियाएँ मिलती हैं। वे कर्मवाच्य की कहलाती हैं। जैसे :

कर्म	**क्रिया**	**उदाहरण**
बचन (पुं०, एकव०)	बोला (पुं०, एकव०)	'मरम बचन जब सीता बोला।' (अर० २८।५)
कथा (स्त्री०, एकव०)	करबि (स्त्री, एकव०)	'भाषाबद्ध करबि मैं सोई।' (बाल० ३१।२)

१. कहत (आदरसूचक भी) '**कहत** अनुज सन कथा अनेका' (किष्किं० १३।७); कहत (एकवचन) 'जो सुनत गावत **कहत** समुझत परम पद नर पावई।' (किष्किं० ३०।छन्द)

३. ६. ३ काल और तिङन्त क्रियाएँ :

३. ६. ३. १. वर्त्तमान काल :

रामचरितमानस की क्रियाओं में काल, पुरुष और वचन

वर्त्तमानकाल, उत्तमपुरुष, एकवचन

धातु+अउँ या उँ। धातु+औं। (अप० कड्ढउँ, हैम व्या० ४।८।३८५।१)= निकालता हूँ)

√ले + उँ=लेऊँ (=लेता हूँ, लेती हूँ)।
√दे + उँ=देउँ (=देता हूँ, देती हूँ)।
'आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ। (अयो० २३०।३)

अर्थ : आज मैं राम-सेवक-यश लेता हूँ और भरत को युद्ध-शिक्षा (युद्ध-दण्ड) देता हूँ।

× × ×

√जा+उँ[1]=जाउँ (=जाती हूँ, जाता हूँ)।

'तात **जाउँ** बलि बेगि नहाहू।' (अयो० ५३।१)

अर्थ : हे पुत्र ! मैं बलि **जाती** हूँ। तुम जल्दी नहाओ।

(**विशेष**—उँ~अउँ~औं (आवौं, सुनावौं—सुन्दर० २।४) प्रत्यय भविष्य के समय को भी सूचित करते हैं। 'राखउँ' का अर्थ रखूंगा, रखूंगी भी है। सं० **द्रक्ष्यामि**=अप० **देक्खउँ** (हैम व्या० ८।४।४२०।१)=

हिं० **देखूँ, देखूँगा**। अप० **जाणउँ** (हैम व्या० ८।४।३९१।१)=हिं० **जानूं**। सं० **जानामि**=अप० **जाणउँ**।)

राख् + —अउं=राखउँ[2] (=रखती हूँ, रखता हूँ, रखूं)

अथवा

'राख्+औं=राखौं (=रखती हूँ, रखताहूँ. रखूं)

'**राखउँ** सुतहि **करउँ** अनरोधू।' (गीता प्रेस, अयो० ५५।४)। अप० करउँ (हैम व्या० ८।४।३७०।२)

'**राखौं** सुतहि **करौं** अनरोधू।' (डॉ० माताप्रसाद गुप्त सं०, अयो० ५५।४)

अर्थ : यदि मैं हठ **करती** हूँ और पुत्र को **रखती** हू।

---

१. दीर्घस्वरान्त धातुओं में 'उँ' प्रत्यय और व्यंजनान्त में 'अउँ' प्रत्यय लगता है। अतः, 'उँ' और 'अउँ' एक पदिक के दो संपद हैं।

२. मिला० **'देखउँ'** (दाऊदकृत चांदायन, पृ० ३२)=√देख्+—अउँ=देखता हूँ।

संस्कृत	अपभ्रंश	रामचरितमानस
	धातु + अउँ = देक्खउँ (हैम व्या० ८।४।४२०।१)	
	धातु + अउँ झिज्झउँ (सं० रा० ३।१६५)	धातु + अउँ
सं० करोमि	करउँ (हैम व्या० ८।४।३६९।२)	करउँ (अयो० ५५।४)

वर्त्तमानकाल, उत्तमपुरुष, बहुवचन

धातु + अहिं = √जान् + —अहिं = जानहिं (= जानते हैं।)।

'एक कहहिं हम बहुत न **जानहिं**।' (अयो० १२०।७)

अर्थ : कोई कहते हैं कि हम बहुत नहीं जानते।

धा० + —अहि = √फिर् + —अहि = फिरहि (= फिरते हैं)।

'बिप्र फिरहि हम खोजत तेही।' (किष्किं० २।३)

अर्थ : हे विप्र ! हम उसे खोजते **फिरते** हैं।

विशेष—'अहिं' प्रत्यय अन्य पुरुष, बहुवचन या आदर भाव का सूचक है।

'फिरहिं'[1] रामु।' (लंका० ३४।६)

विशेष—धातु + अत = √देख् + अत = देखत (उत्तर० १३ (क)। छं० ३) = हम देखते हैं।

√कर् + अहिं = **करहिं**, √फिर् + —अहिं = **फिरहिं**, √डर् + अहिं = **डरहिं**

√लर् + अहिं = लरहिं (अर० १६।६, १०)

'हम छत्री मृगया बन **करहीं**। तुम्ह से खल मृग खोजत **फिरहीं**।

रिपु बलवन्त देखि नहिं **डरहीं**। एक बार कालहु सन **लरहीं**।।'

(अर० १९।९, १०)

अर्थ : हम क्षत्रिय वन में शिकार करते हैं। तुम जैसे दुष्ट हिरनों को खोजते-फिरते हैं। बलवान् वैरी को देखकर डरते नहीं। एक बार तो काल से भी लड़ते हैं।

धातु + —अहिं = √निदर् + अहिं = निदरहिं (= निरादर करते हैं)।

'जो हम **निदरहिं** बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।' (बाल०, दो० २८३)

---

१. अर्थ की दृष्टि से **'फिरहिं'** क्रियापद भविष्य के समय का भी सूचक है।

अर्थ : हे भृगुनाथ ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो सुनो।

वर्त्तमान काल, मध्यमपुरुष, एकवचन

धातु + अहि = √कर + अहि = करहि (उत्तर० ११२।१४) = (= तू करता है)।

धातु + अहि = √जान् + अहि = जानहि (= तू जानता है।)

अप० धातु + अहि = √मर + अहि = मरहि (हैम० व्या० ८।४।३६८।१) (= तू मरता है)।

'निपटहिं द्विज करि **जानहि** मोही' — (बाल० २८३।१)

अर्थ : तू मुझे निरा ही ब्राह्मण करके **जानता है।**

अप० धातु + अहि = **मरहि** (हैम० व्या० ८।४।३६८।१), **जानहि** (बाल० २८३।१)

धातु + असि = √कर + असि = करसि (= तू करता है)।

'नारि सिखावनु क**रसि** न काना।' (किष्कि० ९।९) [गीता प्रेस, 'सीखावन']।

अर्थ : स्त्री-सीख पर तू कान नहीं **करता है।**

धातु + असि = √चह् + असि = चहसि (तू चाहता)।

'रे कपि पोत मरन अब **चहसी** ।' (लंका० ३१।७)

अर्थ : रे बन्दर के बच्चे ! अब तू मरना **चाहता है।**

धातु + 'असि = √प्रगट् + असि' = प्रगटसि (तू प्रकटती है)।

'प्रिया बेगि **प्रगटसि** कस नाहीं।' (अर० ३०।१५)

अर्थ : हे प्रिया ! तू शीघ्र प्रकट क्यों नहीं होती ?

वर्त्तमान काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन

धातु + –उ = √माँग् + –उ = माँगु (तू माँग) – (अयो० दो० २७)

धातु + उ = √सुन् + उ = सुनु (= तू सुन) – (किष्कि० १।३)

धातु + अहि = √उतार् + अहि = उतारहि[1] (= तू उतार) – (अयो० १०१।२), सुनहि (सुन्द० १२।१०)

„ + हि = √दे + हि = देहि (= तू दे) – (लंका २९।९)

अप० कुरु[2] (हेम व्या० ८।४।३३०।२) = √कुर् + उ = √कह् + उ = कहु (राम० सुन्द० २७।७)

„ धरहि („ ८।४।४२९।१) = √धर् + अहि = √उतार् + अहि = उतारहि (अयो० १०१।२[2])

---

१. 'राखहि' (दाऊद, चाँदाहन, ६१।८) = तू रख।

२. 'हि स्वयोरिदुदेत्' (हैम व्याक० ८।४।३८७) 'पंचम्या हि स्वयोरपभ्रंशे इ, उ, ए इत्येते त्रय आदेशा वा भवन्ति (आज्ञा अर्थ में मध्यम पुरुष के एक वचन और बहुवचन में अपभ्रंश की विभक्ति इ, उ, ए, विकल्प से आदेश होती है।

धातु + – असि = मार् + – असि = मारसि[1] (सुन्दर० गीता० १६।२)

तैं[2] श्रमहारी होहि = हो + – हि (सुन्दर० १।९) = तू श्रमहारी हो।

वर्त्तमान काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु + व = √देखा + व = देखाव (= तुम दिखाते हो)।

'पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू।' (बाल० २७३।२)।

अर्थ : बार-बार मुझे कुठार दिखाते हो।

धातु + 'अत = √चह् + अत' = चहत (= तुम चाहते)।

'**चहत** उड़ावन फूंकि पहारू।' (बाल० २७३।२)

अर्थ : पहाड़ को फूंककर उड़ाना **चाहते हो**।

× ×

धातु + अत = √सह् + अत = सहत (= तुम सहते हो)।

'**सहत** दुसह बन आतप बाता।'—(किष्कि० १।९)

अर्थ : वन में दुस्सह धूप और हवा **सहते** हो।

धातु + हु = √दे + हु = देहु(= तुम देते हो)

'सोइ जानइ जेहि **देहु** जनाई।' (अयो० १२७।३)

अर्थ : वही जानता है, जिसे तुम **जना** देते हो।

× ×

धातु + अहु = √फिर् + अहु = फिरहु (फिरते हो)।

'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।

छत्री रूप **फिरहु** बन बीरा॥' (किष्कि० १।७)

अर्थ : हे वीर ! श्यामल और गौर शरीर के तुम कौन हो, जो वन में क्षत्रिय-रूप में **फिरते** हो।

धातु + अहु = √पूंछ् + अहु = पूंछहु (= पूछते हो)।

'तुम्ह **पूंछहु** कस नर की नाईं।' (किष्कि० २।८)

अर्थ : तुम नर की तरह **कैसे पूछते हो** ?

विशेष : अहु, हु प्रत्यय, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन में भी आते हैं। धनपाल-कृत 'भविसयत्तकहा' में वंचहु, संचहु क्रियापद मध्यमपुरुष एकवचन में भी आये हैं।

---

१. डॉ० गुप्त और गीता प्रेस के मानस-संस्करणों में '**मारेसि**' और '**मारसि**' पाठ हैं, दोनों चिन्त्य हैं।

२. 'तइँ' (काशि०, सुंदर० १।६)

वर्त्तमान काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु+अहु=√तज्+अहु=तजहु[1] (=तुम त्यागो)

धातु+हु =√जा +हु=जाहु(=तुम जाओ)

अप० धातु+अहु=√मग्ग+अहु=मग्गहु=तुम माँगो (हैम व्या० ८।४।३८४।१)

'तजहु सोच मन आनहु धीरा।' (किष्कि० ५।७)

अर्थ : शोक त्यागो और मन में धैर्य लाओ।

× ×

'तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।' (अयो० ५६।१)

अर्थ : तो माता को बड़ी मानकर वन मत जाओ।

अप० धातु+अहु=कहहु (हैम व्या० ८।४।३४६)

धातु+अहु=तजहु (किष्कि० ५।७)

अप० धातु+अहु=करहु (हैम व्या० ८।४।३४६)

धातु+अहु=नमहु (,, ,, ८।४।४४६।१)

विशेष : **होहि** (अयो० दो० १९१।–)=तू हो (आज्ञार्थ, मध्यमपु० एकव०)

माँगु[2] (अयो० दो० २७)=माँग (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, एकव०)

देहि[3] (लंका, २९।९)=तू दे (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, एकव०)

माँगहु (बाल० १४८।–)=तुम माँगो (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, बहुव०)

देहू~देहु (अयो० २८।३)=तुम दो (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, बहुवचन)

लेहू~लेहु (अयो० २८।३)=तुम लो (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, बहुवचन)

होहु (अयो० दो० १८९=तुम हो (आज्ञार्थ, मध्यमपु०, बहुवचन)

वर्त्तमान काल, अन्यपुरुष, एकवचन

धातु+–ϕ=√बह्+–ϕ=बह (=बहती है, बही)

धातु+–ϕ=√जान्+ϕ=जान(=जानता है, जाना)

---

१. मिला०—'**करहु**' (दाऊद-कृत चांदायन, पृ० ३३)=तुम करो।

'**कहउ**' (दाऊद-कृत चांदायन, पृ० ३३)=तुम कहो।

'राखहु' (सूरसागर, १०।७९३)=तुम रखो।

२. स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' में हसु, मरु रूप मिलते हैं।

३. विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' में 'जहि' रूप मिलता है।

—दे० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, अपभ्रंश-भाषा का अध्ययन : सन् १९६५ ई०, पृ० २१२।

धातु + − ϕ = √जान + − ϕ = जान[1] (= जानता है, जाना)
,, ,, = √सेव् + ϕ = सेव (= सेवा करती है, सेवा की)
,, ,, = √चह + ϕ = चह (= चाहता है, चाहा)
,, ,, = √कह् + ϕ = कह (= कहती है, कहा)
,, ,, = √सिखाव[2] + ϕ = (बाल० ३२७।छन्द) (= सिखाती है, सिखाता है)

'उत्तर दिसि **बह** सरयू पावनि।' (उत्तर० ४।५)

अर्थ : उत्तर दिशा में पावनी सरयू **बहती** है।

'को नहिं **जान** बिदित संसारा।' (बाल० २७६।१)

अर्थ : कौन नहीं जानता है? संसार में प्रसिद्ध है।

'पुरोडास **चह**[3] रासभ खावा।' (अर० २९।५)

अर्थ : गधा यज्ञ के हवि को खाना **जानता है**।

'अधम सो नारि जो **सेव** न तेही।' (अर० ५।६)

अर्थ : जो उसकी **सेवा** नहीं **करती** है, वह नारी अधम है।

'सूख' (किष्किं० १६।५) = सूखता है, सूख रहा है। 'रस रस **सूख** सरित सर पानी।' (किष्किं० १६।५)

अर्थ : नदी और तालाब का पानी धीरे-धीरे सूखता है (**सूख रहा है**)।

'सभय रानि **कह**[4]।' (अयो० १३ दो०)

अर्थ : रानी डर सहित **कहती है**।

देख (बाल० २०१।७) = देखती है।

'इहाँ उहाँ दुइ बालक **देखा**।' (बाल० २०१।७)

अर्थ : वह (माता) यहाँ और वहाँ दो बालक **देखती है**।

विशेष: 'देख' (= देखती है) क्रिया को छन्दोनिर्वाह के लिए दीर्घस्वरान्त कर दिया गया है।

---

१. स्वरान्त धातु से **जनाव** (उत्तर० १। दो० २) = जनाता है। जनाते हैं।

२. मिला० 'बजाव'— 'नन्दक नन्द कदम्बक तरु तर धिरे-धिरे मुरलि **बजाव**।'—विद्यापति-पदावली।

३. मिला० 'अब उठि छलहु कौल **बस** जहवाँ' (उस्मान, चित्रावली, ना० प्र० सभा, २१/२८९।४)

४. सन्देशरासक (३।१४३) में भी 'काँपती है' के अर्थ में '**सिहर**' प्रयोग है।
'**कह**' क्रिया का अर्थ भूतकाल अन्य पुरुष में भी है, अर्थात् 'कहा'। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (उक्तिव्यक्तिप्रकरण, पृ० १८ और ५३) के मतानुसार—'अ' प्रत्यय का विकास इस प्रकार है—सं० अति > अइ > ऐ > ए > अ। सं० चलति > चलइ > चलै > चल।

धातु + अइ = √बह् + अइ = बहइ (= बहती है)।

अप० धातु + अइ = √जीव् + अइ = जीवइ (हैम व्या० ८।४।३६७।४) (= वह जीती है)।

'किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ[1] बर बात।' (अयो०, दो० २१६)

अर्थ : बादल छाया करते जाते हैं और श्रेष्ठ सुखद हवा **बहती है**।

√जान् + अइ = जानइ (= जानता है।)

'यह प्रसंग **जानइ** कोउ कोऊ।' (उत्तर० ४।४)

अर्थ : यह प्रसंग कोई-कोई **जानता है**।

धातु + इ = √डेरा + इ = डेराइ[2] (= डरता है)।

" " = √डरा + इ = डराइ[3] (= डरता है)।

" " = √हो + इ = होइ[4] (= होता है)।

'अभय होइ जो तुम्हहि डराई।' (बाल० २८४।५)।

अर्थ : जो तुमसे **डरता है**, वह अभय होता है। (अथवा) जो अभय होता है, वह तुमसे **डरता है**।

(**विशेष** : 'डराइ' को छन्द के कारण 'डराई' किया गया है।)

धातु + इ = √जा + इ = जाइ[5] (= जाता है)।

√जान् + अइ = जानइ (उत्तर० ४ (क)।४) = **जानता है**।

√भा + व् + अइ = भावइ (गीता प्रेस, बाल० (१३७।१)[6] = अच्छा लगता है।

'बरु बचन न जाई।' – (अयो० २८।४)।

'कछु बरनि न जाई' (अर० २७।२)

अर्थ : कुछ बरना नहीं जाता है।

अर्थ : किन्तु, वचन नहीं जाता है। (जाई~जाइ); जाइ (=जायगा) (बघेली में)।

---

१. मिला० '**बहइ, धरइ, करइ**' (रोडा-कृत राउलवेल), पृ० ९१।

२. गीता प्रेस-संस्क० में।

३. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्क० में।

४. 'होइ' का प्रयोग 'मानस' में इच्छार्थ भविष्य में भी है—'भोरु जनि **होई**' (अयो० ३७।२)

५. अपभ्रंश-व्याकरण में भी इसी काल में यही रूप मिलता है— **जाइ** (हैम व्या० ८।४।३५०।१) **जाइ** (चांदायन, पृ० ३१) = जाती है।

६. मिला० 'बोलउ जो जसु **भावइ**' (रोडा-कृत राउलवेल, पृ० ९१) 'जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ क्यौं करील फल भावै।'— (सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १।१६८)।

अप० √जा + इ = जाइ (हैम व्या० ८।४।४४५।१) = जाइ (अयो० २८।४) (= जाता है)।

" √जाण् + अइ = जाणइ (= हैम व्या० ८।४।४१६।१) > जानइ (अयो० १२७।३। = जानता है)।

संस्कृत	अपभ्रंश	रामचरितमानस
धातु + अति	धातु + अइ	धातु + अइ
= **मिलति**	**मिलइ** (हैम व्या० ८।४। ३३२।१)	**बहइ** (अयो० २१६ दो०)
	धातु + ० = सिहर (सं० रा० ३।१४३)	धातु + ० = कह (अयो० १३ दो०)

वर्त्तमान काल, अन्यपुरुष, बहुवचन

धातु + - अहिं = √स्रव + - अहिं = स्रवहिं (= टपकाती हैं) — (उत्तर० २३।५)

धातु +अहिं=√बिगर् +अहिं = बिगरहिं (= बिगड़ती हैं) (गीता प्रेस. किष्कि० १५।४)

धातु +अहिं = √पर् + अहिं[1] = परहिं (=पड़ते हैं)।

अप० धातु + अहिं =√धर् + अहिं = धरहिं (हैम व्या० ८।४।३८२।१) (= वे धारण करते हैं)

'ते न **परहिं** भवकूपा।' (बाल० १९२। छन्द)

अर्थ : वे भव-कूप में नहीं **पड़ते हैं**।

धातु + हिं =√हो + हिं[2] = होहिं (= होते हैं)

'सब मिलि **होहिं** न कृपानिधाना।' (अयो० ६६।६)

अर्थ : हे कृपानिधान ! वे सब मिलकर भी नहीं **होते हैं**।

धातु + व् + अहिं =√गा + व्[3]+ अहिं = गावहिं (= गाते हैं)।

" " =√पा + "+ " = पावहिं (= पाते हैं)।

अप० धातु + अहिं =√सु + अ+हिं = सुअहिं (हैम व्या० ८।४।३७६।२) (= सोते हैं)।

'येह चरित जे **गावहिं** हरि पद **पावहिं** ते **न परहिं**[4] भवकूपा।' (बाल० १९२। छन्द)

अर्थ : जो इस चरित को **गाते हैं**, वे हरि-पद **पाते हैं** और संसार-रूपी कूप में नहीं **पड़ते हैं**।

१-२. अहिं, हिं एकपदिक के दो संपद हैं। एकवचन में 'अइ', बहुव० में अहिं। मिला० **जाहिं** (सूरसागर १०।७९९) = जाते हैं।

३. 'व्' श्रुति का आगम होता है।

४. 'अहिं' प्रत्यय वर्त्तमान काल के उत्तमपुरुष, बहुवचन तथा अन्यपुरुष बहुवचन में आता है। मिलाइए, **हम करिहैं** (सूर० १०।७९३) = करेंगी।

धातु + अहिं = $\sqrt{\text{बरष्}}$ + − अहिं = बरषहिं (= बरसते हैं) ।— अकर्मक क्रिया ।

= $\sqrt{\text{बारस्}}$ + − अहिं = बरिसहिं (= बरसाते हैं) — सकर्मक क्रिया ।

'बरषहिं जलद भूमि निअराएँ । (किष्कि० १४।३)

× ×

धातु + अहिं = $\sqrt{\text{बरष्}}$ + अहिं = बरषहिं (= बरसाते हैं) — सकर्मक क्रिया ।

= $\sqrt{\text{बरिस्}}$ + अहिं = बरिसहिं (= बरसाते है) ।

'**बरषहिं** सुमन बजाइ निसाना ।' (बाल० ३१४।१)

'सुर सराहि तेहि **बरिसहिं** फूला ।' (अयो० १९४।२)

× ×

धातु + अहिं = $\sqrt{\text{डर्}}$ + अहिं = डरहिं (= डरते हैं ।)

'कालहु **डरहिं**[1] न रन रघुबंसी ।' (बाल० २८४।४)

अर्थ : रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते हैं ।

विशेष : 'अहिं' प्रत्यय 'अहुँ' के अर्थ (वर्तमान, इच्छार्थ, अन्यपुरुष, बहुवचन) में भी जाता है । जैसे :

'कमठ पीठि **जामहिं** बरु बारा ।' (उत्तर० १२२।१५)

'बरु तीर **मारहुँ** लखनु ।' (अयो० १००।छन्द)

$\sqrt{\text{कर्}}$ + − ϕ = कर[2] (करते हैं, करता है) ।

'मनुजचरित **कर** अज अविनासी ।' (अर० ३०।१७)

अर्थ : अजन्मा और अविनाशी मनुज-चरित्र करते हैं (करता है) ।

संस्कृत	**अपभ्रंश**	**रामचरितमानस**
सं० कुर्वन्ति	धातु + ० = $\sqrt{\text{कर}}$ + ० = कर (सं० रा० ३।१७५) = करती हैं ।	$\sqrt{\text{कर}}$ + ० = कर[3] (अर० ३०।१७) करता है ।

०,१. मिला० 'बसहिं' (दाऊद-कृत चांदायन, पृ० २२) = बसते हैं ।

२. नन्ददास की व्रजभाषा में 'करहिं' (= करते हैं) का प्रयोग है (नन्ददास, भाग १, श्रीउमाशंकर शुक्ल-सम्पादित सन् १९४२, पृ० १७०) ।

३. इसका प्रयोग एकवचन में भी मिलता है—कर (अर० २९।१२) क्रिया, कर = करता है, करते हैं ।

सं० स्वपन्ति	सुअहिं (हैम व्या० ८।४।३७६।२)	कहहिं (अर० ३१।८)
सं० धरतः	धातु+अहि=धरहिं	
धरन्ति	(हैम व्या० ८।४।३८२।१)	√पर् + अहिं
	दीसहिं (सं० रा० ३।१७४) = दीखते हैं।	परहिं (बाल० १९२ छन्द) =पड़ते हैं।
	लहहिं[1] (हैम व्या० ८।४।४४०।१) = पाते हैं।	

विशेष— : कर्मवाच्य में भी तिङन्त क्रियाएँ 'मानस' में मिलती हैं। अन्यपुरुष बहुवचन में निम्नांकित क्रिया वर्त्तमान काल की है। जैसे 'आपद काल परखिअहिं चारी।' (अर० ५।७) अर्थात्, चारों आपत्तिकाल में परखे जाते हैं। सं० परीक्ष्यन्ते = अव० परखिअहिं।

३. ६. ३. २. भूतकाल :

भूतकाल, उत्तमपुरुष, एकवचन

धातु + एउँ = √चल् + एउँ (पुं०) = चलेउँ[2] (= मैं चला)।
,, ,, = √रह् + एउँ (पुं०) = रहेउँ[3] (= मैं रहा)।
,, ,, = √आ + एउँ ,, = आएउँ (लंका० ३०।२) (= मैं आया)।

'सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।' (किष्कि० ६।८)

अर्थ : मैं वहाँ शिला लगाकर भाग चला।

'मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी।' (किष्कि० ६।७)

अर्थ : हे खरारी ! मैं वहाँ एक महीने तक रहा।

धातु + इउँ = √रह् + इउँ (स्त्री०) = रहिउँ[3] (= मैं रही)।

---

१. अपभ्रंश 'लहन्ति' (हैम व्या० ८।४।३४१।२) = पाते हैं।

२. वास्तव में, 'चलेउँ', 'रहेउँ' क्रियापदों में उपान्त्य का स्वर 'ह्रस्व ए' है, जिसे मानस के लिपिकारों ने दीर्घ 'ए' के रूप में लिख दिया है। ऐसे पाठों में 'ए' दिखाई दे, तो वहाँ ह्रस्व 'ए' समझना चाहिए, तभी छन्द ठीक रहेगा।

३. वास्तव में चलेउँ, रहेउँ क्रियापदों में उपान्त्य का स्वर ह्रस्व 'ए' है, जिसे मानस के लिपिकारों ने दीर्घ 'ए' के रूप में लिख दिया है। ऐसे पाठों में 'ए' दिखाई दे, तो वहाँ ह्रस्व 'ए' समझना चाहिए, तभी छन्द ठीक रहेगा।

अप० धातु + इउँ = √जाण् + इउँ = जाणिउँ (हैम व्या० ८।४।३७७।१)
(= मैं समझा)।

'ता तें अब लगि **रहिउँ** कुमारी।' (अर० १७।१०)

अर्थ : इससे अबतक मैं कुमारी रही।

रहेउँ[1] (किष्कि० ६।७) = उत्तम पुरुष, पुं०, एकव०

रहिउँ[2] (अर० १७।१०) = उत्तम पु०, स्त्री०, एकव०)।

अप० √जाण् + इउँ = जाणिउँ (हैम व्या० ८।४।३७७।१)

अप० **मइँ जाणिउँ** (= मैं जाना) = **चलेउँ** (किष्कि ६।८)

अप० जाणिउँ = अव० जानेउँ, जानिउँ[3]।

भूतकाल, संकेतार्थ, उत्तमपुरुष, एकवचन

धातु + तेउँ = √हो + त् + एउँ = होतेउँ (= मैं होता)।

धातु + अतेउँ = √जान् + अत् + एउँ = जनतेउँ (= मैं जानता)।

धातु + अतेउँ = √मान् + अत् + एउँ = मनतेउँ (मैं मानता)।

'गुरहि उरिन **होतेउँ**[5] श्रम थोरें'। (बाल० २७५।८)

अर्थ : गुरु-ऋण से थोड़े श्रम में उऋण हो जाता।

'जौ **जनतेउँ**[5] बन बंधु बिछोहू। पिता बचन **मनतेउँ**[6] नहिं ओहू॥'
(लंका० ६१।६)

अर्थ : यदि मैं वन में बन्धु-वियोग **जानता**, तो पिता के उस वचन को भी न **मानता**।

भूतकाल, उत्तमपुरुष, बहुवचन

धातु + -ए = √हार् + -ए = हारे (= हम हारे)

'सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे।' (बाल० २८२।८)

अर्थ : हम सब प्रकार से तुमसे हारे (पराजित हुए)।

(विशेष : इसमें **चला**; **चलेन** जनपदीय अवधी क्रियाएँ मिलती हैं।)

भूतकाल, मध्यमपुरुष, एकवचन

धातु + एसि = √चल् + एसि = चलेसि[7] (तू चला, तू चली)।

---

१. रहेउँ (किष्किं० ६।७) = मैं रहा।

२. रहिउँ (अर० १७।१०) = मैं रही।

३. 'जानेउँ मरमु।' (अयो० २८।१)
'जानिउँ प्रिया।' (लंका० १६।६)

४. जानेउँ मरमु '(अयो० २८।१) 'जानिउँ प्रिया।' (लंका० १६।६)

५-६. इन क्रियापदों की 'ए' ध्वनि ह्रस्व है।

७. 'चलेसि' और 'जानेहि' में ह्रस्व 'ए' स्वर है। लिपिकारों ने दीर्घ 'ए' लिखा है। कारण यह है कि देवनागरी लिपि में ह्रस्व 'ए' के लिए कोई चिह्न नहीं है।

'निर्भय **चलेसि** न **जानेहि**[1] मोही ।' (अर० २९।११)

अर्थ : तू निर्भय चला, मुझे नहीं समझा ।

× ×

धातु+एहि=√जान्+एहि=जानेहि (=तू समझा, तू समझी) ।

धातु+एहि=√आन्+एहि=आनेहि (=तू लाया) ।

'न जानेहि मोही'=न जानेहि मोही (काशि० अर० २९।११) ।

अर्थ : तू मुझे नहीं **समझा** ।

× ×

'सठ सूनें **हरि आनेहि**[2] मोही ।' (सुन्दर० ६।९) ।

अर्थ : रे शठ ! तू सूने में मुझे **हर लाया** ।

× ×

धातु+ -एउ=√बोल्+एउ=बोलेउ (गीता प्रेस, अर० २८।१२)

'**बोलेउ**[3] बचन दुष्ट की नाईं ।' (गीता प्रेस, अर०२८।१२) ।

अर्थ : तूने दुष्ट व्यक्ति की तरह वचन कहा ।

विशेष : वास्तव में, '**भंजेउ**' और '**बोलेउ**' कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं ।
व्याकरणिक अर्थ इस प्रकार हैं :
भंजेउ=तेरे द्वारा धनुष तोड़ा गया ।
बोलेउ=तेरे द्वारा वचन बोला गया ।

भूतकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु+ ए) हु=√बिसार्+ए) हु[4]=बिसारे) हु=बिसारेहु (अर० २६।१) ।

धातु+इहु=√माँग्+इहु=माँगिहु=(=तुमने माँगा) ।

धातु+ए) हु=क√ह्+ए) हु=कहे) हु=तुमने कहा । (बाल० २१६।६)

---

१. चलेसि और जानेहि में ह्रस्व 'ए' स्वर है । लिपिकारों ने दीर्घ 'ए' लिखा है । कारण यह है कि देवनागरी लिपि में ह्रस्व 'ए' के लिए कोई चिह्न नहीं है । 'चलेसि', 'जानेहि' ।

२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त (लंका० ३०।६)=हरि आनिहि=हर लाया ।

३. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्क० में तथा काशिराज-संस्करण में 'बोलेउ' के स्थान पर क्रमशः 'बोलेहु' और 'बोलेहु' पाठ हैं । 'बोलेहु' मध्यमपुरुषीय बहुवचन में भूतकाल का तिङन्त प्रयोग है । बोलेहु=तुम बोले ।

४. यही 'एहु' प्रत्यय भविष्यत् काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन का सूचक है । दे० किष्कि० २३।२ में '**पूँछेहु**'=तुम पूछना ।

'थाती राखि न माँगिहु[1] काऊ।' (अयो० २८।२)

अर्थ : धरोहर रखकर तुमने कभी माँगी नहीं।

× ×

धातु+एहु=मिल्+एहु=मिलेहु (=तुम मिले, तुम मिलीं)

'मिलेहु[2] राम तुम्ह समन विषादा।' (किष्कि० ७।१९)

अर्थ : राम ! विषाद-शमन तुम मुझे मिले।

× ×

धातु+ए) हु=अवतर्+ए) हु=अवतरे) हु=अवरतरेहु (किष्कि० ९।५)

धातु+एहु=अवतर्+एहु=अवतरेहु (तुम अवतरे, अवतरीं)

'धर्म हेतु **अवतरेहु**[3] गुसाईं।' (किष्कि० ९।५)

अर्थ : हे स्वामी ! तुम धर्म हेतु **अवतरे**।

× ×

धातु+इहु=√भ +इहु=भइहु (=तुम हुईं, तुम हुए)

'भामिनि **भइहु**[4] दूध कइ माखी।' (अयो० १९।७)

अर्थ : हे भामिनी ! तुम दूध की मक्खी हो गईं।

× ×

विशेष : मिलेहु (=तुम मिले)। मिलेहु (=तुम मिलना)।

धातु+एहु=कीन्ह् (कर)+एहु=कीन्हेहु (=तुमने किया)।

'तात जाउँ बलि **कीन्हेहु**[5] नीका'। (अयो० ५५।८)

अर्थ : हे पुत्र ! मैं बलि जाती हूँ, तुमने अच्छा **किया**।

भूतकाल, संकेतार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु+त्+एहु=√आ+उ+त्+एहु=औतेहु (=तुम आते)

'जौ तुम्ह **औतेहु** मुनि की नाईं।' (बाल० २८२।३)

अर्थ : यदि तुम मुनि की तरह **आते**।

---

१. २. ३. **माँगिहु** का 'इ', **मिलेहु** का 'ए' और '**अवतरेहु**' का 'ए' स्वर वास्तव में **ह्रस्व 'ए' है**।

४. ५. इनमें इ, ए के स्थान पर 'ह्रस्व ए' स्वर मानना चाहिए।

भूतकाल, अन्यपुरुष, एकवचन

धातु + एउ (− यउ) = √ग + − एउ = गएउ (अर० २७।१)
गयउ (गीता प्रेस, अर० २७।१)

'दसानन गयउ' (अर० २७।१) = दशानन गया।

सं० गतः = अप० गयउ (हैम व्या० ८।४।४२२।१५) = अवधी० गयउ
(अर० २७।१) = व्रज० गयो।

धातु + इसि = √कीन्ह् + इसि = कीन्हिसि (सुन्दर० १९।६)
(= उसने की)

धातु + एसि = √मार् + एसि = मारेसि (= उसने मारा)।
धातु + इसि = √काढ़् + इसि = काढ़िसि (= उसने निकाला,
उसने निकाली)।

'रिपु सम मोहि **मारेसि**[१] अति भारी।' (किष्कि० ६।११)

'हरि **लीन्हेसि** सर्बसु अरु नारी।' (किष्कि० ६।११)

अर्थ : बालि ने मुझे वैरी के समान बहुत जोर से मारा (पीटा) और मेरी पत्नी तथा सर्वस्व हर लिया।

'**कहेसि** सकल निसिचरिन्ह बोलाई।' (सुन्दर० १०।८)

अर्थ : रावण ने सब राक्षसियों को बुलाकर कहा।

× ×

'तब सक्रोध निसिचर खिसिआना।
काढ़िसि[२] परम कराल कृपाना॥' (अर० २९।२१)

अर्थ : तब राक्षस खिसियाया और उसने क्रोध-सहित परम कराल कृपाण **निकाली**।

'**पठएसि** मेघनाद बलवाना।' (सुन्दर० १९।१)

अर्थ : रावण ने बलवान् मेघनाद को **भेजा**।

× ×

---

१. मिला० **काटेसि** चेरु **सुनेसि** नव खण्डा।' (चांदायन, ८।२२५।५)
'नाना भाँति **करेसि** दुर्बादा।' (रामच०, लंका० ५१।५)
'**सिरजसि** धरती औरु अगासू।' (चांदायन, १।१।३)

२. मिला० 'धरिसि' = √धर् + − इसि (= धरा, रखा)
'चउथें बरिसि **धरिसि** जउ पाऊ।' – (सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, दाऊदकृत चांदायन, सन् १९६७, पृ० ३३)। अर्थ : (उस कन्या ने) जब चौथे वर्ष में पैर रखा।

'छुवत टूट रघुपतिहु न दोसू ।' (बाल० २७२।३)

अर्थ : वह धनुष छूते ही **टूट गया** । रघुपति का भी दोष नहीं ।'

× × ×

धातु + ० = √कह् + ० = कह (= कहा, कहता है) ।

" " = √रह् + ० = रह (रहा, रहता था) ।

धातु + ० = √कर् + ० = कर[1] (किया, करता है) ।

'अति सभीत **कह** सुनु हनुमाना ।' (किष्किं० १।३)

अर्थ : उसने (सुग्रीव ने) अत्यन्त डरते हुए **कहा**, हे हनुमान् ! सुन ।

'सभय रानि **कह** ।' (अयो० १३ । दो०)

अर्थ : रानी ने भयपूर्वक **कहा** ।

'तहँ **रह** सचिव सहित सुग्रीवा ।' (किष्किं० १।२)

अर्थ : वहाँ मन्त्री सहित सुग्रीव **रहता था** (**रहा**) ।

× × ×

'नाना बिधि बिलाप **कर** तारा ।' (किष्किं० ११।२)

अर्थ : तारा ने अनेक प्रकार से विलाप **किया** ।

संस्कृत	**अपभ्रंश**	**बोली**	**रामचरितमानस**
धातु + क्त	धातु + इउ		धातु + एउ[2]
= **मिलित** (= मिला)	**मिलिउ** (हैम व्या० ८।४।३३२।२)		**कहेउ** (बाल० २७६।१)
			गएउ (अर०२७।१)
	रहिउ धातु+इस= (सं० रा० ३।१९७)	दीन्हिस (बघेली)	धातु + एसि लीन्हेसि
	धातु+यउ= गयउ (हैम व्या० ८।४।४२२।१५)	दिहिस (बघेली)	(किष्किं० ६।११)

---

१. कर आदि तिङन्त भूतकाल के अप्रकट (शून्य) प्रत्यय के उदाहरण हैं । तिङन्त में वर्त्तमान काल में भी शून्य प्रत्यय मिलता है । जैसे √चह + — ० = चह (अर० २९।५)

२. वास्तव में 'एउ' प्रत्यय में 'ह्रस्व ए' स्वर है ।

आयातः (= आया) धातु + इउ = आइउ (हैम व्या० ८।४।४३२।१ धातु + एउ = आएउ (उत्तर० १।२)

कहिसि = √कह् + इसि (अयो० १८। दो०)

धातु + इस = कहिस (बघेली)

दीन्हिस[1] (बघेली) कीन्हेसि = कीन्ह् + एसि (अयो० १८। दो०)

अतीत भूतकाल, कृदन्त, पुंलिग, एकवचन और बहुवचन

लुकाई रहा = धातु √लुका + – ई + धातु √रह् + आ (= छिपा था)

'तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई'। (सुन्दर० ९।१)

'गए रहे देखन फुलवाई।' (बाल० २१५।४)

अतीत भूतकाल, कृदन्त रूप, स्त्रीलिंग, एकवचन

लोभाइ रही[2] = धातु √लोभा + – ई + धातु√रह् + ई (= लुभाई थी)

गई रही = धातु√ग + – ई + धातु√रह् + ई (= गई थी)।

'जहँ बसंत रितु रही लोभाई।' (बाल० २२७।३)

'गई रही देखन फुलवाई।' (बाल० २२८।७)

भूतकाल, अन्यपुरुष, बहुवचन

धातु + एन्हि = √देख् + एन्हि = (= उन्होंने देखा।

'अनुपम बालक देखेन्हि[3] जाई।' (बाल० १६३।८)

अर्थ : (वशिष्ठजी ने) अनुपम बालक को जाकर देखा।

अपभ्रंश	**बोली**	**रामचरितमानस**
धातु + एन्हि	धातु + इन = दिहिन[4] (बघेली)	धातु + एन्हि = देखेन्हि (बाल० १६३।८)

१. 'सेठ केर लड़का घरे आइके भोलई का रूपिआ दइ **दीन्हिस**।' (सरगुजा की बघेली बोली)

२. सान्तउ गइ **रही** (= शान्ता भी गई थी) (चाकघाट के आसपास की बघेली बोली)।

३. वास्तव में 'देखेन्हि' में 'ए' को 'ह्रस्व ऍ' मानकर पढ़ना चाहिए।

४. 'दुनउ जने चालाकी केर अन्त कर **दिहिन**।' (सरगुजा की बघेली बोली)

विशेष : अकर्मक क्रियाओं तथा 'बोलब' 'आदि सकर्मक क्रियाओं का प्रयोग 'रामचरितमानस' में, भूतकाल की स्थिति में कृदन्त रूप में भी मिलता है। जैसे :

१. 'आवा निकट जती के बेषा' (अर० २८।७)। २. 'बरषा बिगत सरद रितु आई।' (किष्कि० ८।४)

(१) हृदय प्रीति मुख बचन कटोरा। बोला चितइ राम की ओरा।' (किष्कि० ८।४)

(२) 'बोली मधुर बचन महतारी।' (अयो० ५२।६)

यहाँ 'बोला', 'बोली' कर्त्तृवाच्य कृदन्त क्रियाएँ हैं।'[1]

३. ६. ३.३ भविष्यत् काल :

क. भविष्यत् काल, उत्तमपुरुष, एकवचन

धातु + इहउँ = दैहउँ (गीता प्रेस, लंका० ६१।१६)

'उतरु काह दैहउँ तेहि जाई।' (गीता प्रेस, लंका० ६१।१६)

अर्थ : उसे जाकर क्या उत्तर दूंगा ?

× × ×

धातु + इहौं (अथवा) – इहउँ = कर् + इहौं, – इहउँ = करिहौं, करिहउँ (=करूंगा)

सब प्रकार करिहौं[2] सेवकाई। (किष्कि० ५.७)

अर्थ : मैं सब प्रकार से सेवा करूँगा।

× ×

प्रा० करेहामो (पिशल) = अव० करिहउँ (किष्कि० ५।७)

'सब प्रकार करिहउँ सेवकाई।' (गीता प्रेस, किष्कि० ५।७)

अर्थ : मैं सब प्रकार से सेवा **करूँगा**।

४. ३. १. भविष्यत् काल, उत्तमपुरुष, बहुवचन :

√कर् + अब = करब।

'हम सब भाँति करब सेवकाई।' (अयो० १३६।५)

अर्थ : हम सब प्रकार सेवा करेंगे।

---

१. ऐसे भूतकालीन प्रयोग तुलसी ने नामधातुओं से भी किये हैं। जैसे : **अनंदे** (अयो० २४२।२) = आनन्दित हुए। **अनुरागे** (अयो० २४३।३) = प्रेम में भर गये। मूलतः **'आनंद'** और **'अनुराग'** संज्ञा शब्द हैं। इनसे क्रियाएँ बनाई गई हैं।

२. सं० **करिष्यामि** >जैन महाराष्ट्री प्राकृत **करेहामो** >**करिहउँ, करिहौं।**

कर्मवाच्य एवं भाववाच्य कृदन्त क्रियाएँ

धातु + अब = √घट् + अब = घटब[1] = (मैं करूँगा, करूँगी)

धातु + अब = √कह् + अब = कहब = (= मैं कहूँगा, कहूँगी)

धातु + ब = √ले + ब = लेब = (= मैं लूंगा, लूंगी)

धातु + अबि = √कर् + अबि[2] = करबि[2] = (= मैं करूँगा, करूँगी)

" " = √कह् + " = कहबि[3] = (= मैं कहूँगा, कहूँगी)

धातु + अब = √रह् + अब = रहब = (= मैं रहूँगा, रहूँगी)

'सब विधि घटब काज मैं तोरें।' (किष्कि० ७।१०)

अर्थ : सब प्रकार से मैं तेरे कार्य **करूँगा**।

'अब कछु **कहब**[4] जीभ करि दूजी।' (अयो० १६।१)

अर्थ : अब मैं दूसरी जीभ करके कुछ **कहूँगी** (अथवा) मेरे द्वारा दूसरी जीभ करके कुछ **कहा जायगा**।

'नाहि त मौन **रहब** दिन राती।' (अयो० १६।४)

अर्थ : नहीं तो दिन-रात चुप **रहूँगी** (अथवा) हमसे मौन रहा जायगा।

× ×

'मैं[5] अब **जाब** जहाँ रघुराई।' (किष्कि० २५।४)

अर्थ : जहाँ रघुराज हैं, मैं वहाँ **जाऊँगी**।

× ×

'मैं कछु **करबि**[6] ललित नर लीला।' (अर० २४।१)

अर्थ : मैं कुछ मनोहर नर-लीला **करूँगा** (अथवा) मेरे द्वारा मनोहर नर-लीला **की जायगी**।

× ×

'हमहुँ **कहबि** अब ठकुरसोहाती।' (अयो० १६।४)

अर्थ : हम भी अब ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) **कहेंगी**, अर्थात् मैं ठकुरसुहाती **कहूँगी**। (अथवा) ठकुरसुहाती हमारे द्वारा **कही जाएगी**।

'जिअत न **करबि**[2] सवति सेवकाई।' (अयो० २१।१)

अर्थ : जीवित रहते सौत की सेवा न करूँगी (अथवा) सेवा न की जायगी।

---

१. कर्मवाच्य पुंलिंग।

२-३. कर्मवाच्य स्त्रीलिंग।

४. 'कथितव्यः' से सम्भवतः '**कहब**' का सम्बन्ध है।

५. अवधी और बघेली में '**मैं**' के अर्थ में '**हम**' का ही प्रयोग चलता है।

६. सं० कर्त्तव्या > अव० करबि। **करबि** कर्मवाच्य की क्रिया है।

'भाषाबद्ध करबि मैं सोई।' (बाल० ३१।२)

अर्थ : मैं उस कथा को भाषाबद्ध करूँगा (अथवा) वह कथा भाषाबद्ध की जायगी।

सं० कर्त्तव्या = अव० करबि।

'तब मैं होब तुम्हार सुत।' (बाल० १५१। दो०)

अर्थ : तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।

× ×

'चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।' (अयो० १६।६)

अर्थ : चेरी छोड़कर अब क्या रानी होयेंगी ?

× ×

शौर०, भाग० होदव्व = होब (बाल० १५१। दो०), अर्द्धमागधी होयव्व = अव० होब।

× ×

'सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा।' (अयो० १०२।८)

अर्थ : उस प्रसाद को मैं सिर पर रखकर लूँगा (अथवा) वह प्रसाद मेरे द्वारा सिर रखकर लिया जायगा।

विशेष : उद्धरणों की अकर्मक क्रियाएँ भाववाच्य में हैं।

संस्कृत	बोली	रामचरितमानस
	धातु + ब = लेब (बघेली)	धातु + ब = लेब–लेबा (अयो० १०२।१)
सं० कथितव्यम् (नं०)		
कथितव्य : (पुं०)	धातु + अब = कहब (,,)	धातु + अब = कहब (अयो० १६।१)
सं० कर्त्तव्या (स्त्री०)		धातु + अबि = करबि (अयो० २४।१)

भविष्यत् काल की कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाएँ

विशेष : उद्धरणों की अकर्मक क्रियाएँ भाववाच्य में हैं।

धातु + अब = √कर् + अब = करब (= हम करेंगे, करेंगी)

कर्तृवाच्य, तिङन्त प्रयोग (उत्तमपुरुष, बहुवचन)

'हम सब भाँति करब सेवकाई। (अयो० १३६।५) (कर्मवाच्य क्रिया भी)।

अर्थ : हम सब प्रकार से सेवा करेंगे।

धातु + उब = √आ + उब = आउब (=हम आयेंगी, आयेंगे)।

'पुनि आउब एहि बेरिआँ काली।' (बाल० २३४।६) (भाववाच्य क्रिया भी)

अर्थ : फिर (हम) कल इसी समय आयेंगी।

× ×

धातु + अब = √रह् + अब = रहब (= हम रहेंगी।)

'नाहिं त मौन रहब दिनु राती।' (अयो० १६।४) (भाववाच्य की क्रिया भी)

अर्थ : नहीं तो दिन-रात (हम) मौन रहेंगी। (अथवा) हमसे मौन रहा जायगा।

संस्कृत	**अपभ्रंश**	**रामचरितमानस**
सं० आगतव्यम्	आउव्वं (पाइअ०)	आउब (बाल० २३४।६)

भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, एकवचन

तैं जानब (उत्तर० ८५ (क) ।८) = तू जानेगा (अथवा) तेरे द्वारा जाना जायगा।

तुम्ह जितब (लंका० ३६।३) = तुम जीतोगे।

विशेष : हिन्दी के आज्ञार्थ में मध्यमपुरुष, एकवचन कर्त्ता के साथ क्रिया का सामान्य रूप आता है। जैसे : कहना, जाना आदि।

हिन्दी में (आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन तथा बहुवचन भविष्यत्काल)।

एकवचन	**बहुवचन**		**हिन्दी**	**अवधी** (रामचरितमानस)
(तू) कहना	(तुम) कहना	=	(तू) कहना	कहेसु (किष्कि० ३।४)
(तू) जाना	(तुम) जाना	=	(तुम) कहना	कहेहु (अयो० १५१।६)

विशेष : तू कह, या तू जा भी आज्ञार्थ हैं, किन्तु यहाँ क्रियाएँ वर्त्तमानकाल आज्ञार्थ को सूचित करती हैं।

वर्त्तमानकाल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन

हिन्दी में	**रामचरितमानस में**
१. सीता ! तू सुन।	१. सुनु सिय (बाल० २३६।७)
२. कपि ! तू कह।	२. कहु कपि (सुन्दर० २७।७)
३. तू दे।	३. देहि (लंका २९।९)
४. तू उतार।	४. उतारहि (अयो० १०१।२)

भविष्यत्काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन एवं बहुवचन

हिन्दी में	रामचरितमानस में
एकवचन	बहुवचन
(०) तू अचल प्रेम करना।	(०) 'करेसु अचल अनुराग।' (उत्तर० ८५ ख)
(१) मन में जानकर तू कहना।	(१) 'कहेसु[1] जानि जिअ।' (किष्कि० १।४)
बहुवचन या आदर भाव में	बहुवचन
(१) तात ! तुम मत कहना।	(१) 'तात जनि कहेहु।' (अर० ३१ दो०)
(२) सजग रहना।	(२) 'रहेहु सजग।' (अर० १८।१२)

विशेष : वास्तव में 'कहु', 'कहेहु', 'कहेसु' क्रियापद अवधी में आज्ञार्थसूचक हैं। अन्तर इतना है कि 'कहु' वर्त्तमानकाल को, और 'कहेहु', 'कहेसु' क्रियाएँ भविष्यत्काल को सूचित करती हैं। जैसे :

अवधी में	हिन्दी में
(१) कहु, (२) कहेसु (कहेहु)	(१) कह, (२) कहना।

धातु + एसु = √कह् + एसु =
कहेसु = तू कहना।
धातु + एहु = √रह् + एहु =
रहेहु = तुम रहना।

भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु + अब = √जित् + -अब = जितब (= तुम जीतोगे)
'पिय तुम ताहि जितब संग्रामा।' (लंका० ३६।३)

अर्थ : प्रिय ! तुम उसे संग्राम में जीतोगे ?

× ×

धातु + इहहु = √हो + इहहु = होइहहु[2] (= तुम होओगे)।
'होइहहु अवध भुआल। (बाल० १५१ दो०)

अर्थ : तुम अयोध्या के राजा होओगे।

---

१. पिशल-कृत प्राकृत-भाषाओं का व्याकरण, सन् १९५८ ई०, में पृ० ६९० पर लिखा है कि शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतों में 'कुरु' के अर्थ में 'करेसु और 'आनय' के अर्थ में, आणेसु प्रयोग मिलते हैं। 'कहेसु' इसी प्रकार का प्रयोग है। अर्थात्, कहु = कहेसु। हिन्दी 'कहना' = अव० कहेसु, कहेहु। हिन्दी 'कह' = अव० कहु।

२. मिलाइए, जैहौ (सूर १०। ७९३) = जाओगे।

भविष्यत्काल, कर्मवाच्य और भाववाच्य की क्रियाएँ

धातु + अब = √रह् + अब = रहब

„ + उब = √पा + उब = पाउब

„ + ब = √दे + ब = देब

„ + ब = √जा + ब = जाब

„ + अबि = √कह् + अबि = कहबि

'इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ।' (अयो० १३६।४)

अर्थ : यहाँ सब ऋतुओं में सुखी रहोगे । अर्थात्, सुखी रहा जायगा ।

'तो तुम्ह दुखु पाउब[1] परिनामा ।' (अयो० ६२।३)

अर्थ : तो तुम अन्त में दुःख पाओगी, अर्थात् दुःख झेला जायगा ।

'हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती ।' (अयो० १६।४)

अर्थ : हमारे द्वारा भी अब ठकुरसोहाती कही जायगी ।

× ×

'सब बिधि घटब काज मैं तोरे । (किष्कि० ७।१०)

अर्थ : सब प्रकार मेरे द्वारा तेरे कार्य किये जायेंगे ।

× ×

'फिरती बार मोहि जो देबा ।' (अयो० १०२।८)

'फिरती बार तुम जो मुझे दोगे, अर्थात् तुम्हारे द्वारा जो दिया जायगा ।

'जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई ।

फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ।' (अयो० ११२।८)

अर्थ : जहाँतक तुम जाओगे, वहाँ पहुँचाकर फिर तुम्हें सिर झुकाकर हम वापस होंगे । अर्थात्, जहाँतक तुमसे जाया जायगा, वहाँ से हमसे वापस हुआ जायगा ।

कर्मवाच्य :

'भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।' (बाल० ३१।२)

'मैं कछु करबि ललित नर-लीला ।' (अर० २४।१)

अर्थ : वह कथा मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी ।

---

१. 'आउब' (बाल० २३४।६) में —उब प्रत्यय भविष्यत्काल, उत्तमपुरुष, बहुवचन को भी प्रकट करता है । 'पुनि आउब एहि बेरिआँ काली ।' (बाल० २३४।६) ।

मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जायगी।

संस्कृत	रामचरितमानस
घटितव्याः (पुं०)	घटब[1] (किष्कि० ७।१०)
प्राप्तव्यः (पुं०)	पाउब[2] (अयो० ६२।३)
दातव्यः (पुं०)	देब[3] (अयो० १०२।८)
वसितव्यम् (न०)	रहब[4] (अयो० १३६।४)
कर्त्तव्या (स्त्री०)	करबि[5] (बाल० ३१।२)
कथितव्या (स्त्री०)	कहबि[6] (अयो० १६।४)

भविष्यत्काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष एकवचन

हिन्दी में	रामचरितमानस में
(०) तू एक पक्ष तक मेरी प्रतीक्षा करना।	(०) 'परिखेसु मोहि एक पखवारा।' (किष्कि० ६।६)
(१) तू मन में जानकर कहना।	(१) 'कहेसु[7] जानि जिअँ।' (किष्कि० १।४)
(२) तू निरन्तर मुझे भजना और सुमिरना।	(२) 'सुमिरेसु भजेसु निरन्तर मोही।' (उत्तर० ८८ (क)।१)
(३) तू सन्त को अनन्त समान जानना।	(३) 'जानेसु सन्त अनन्त समाना।' (उत्तर० १०९ (क)।१२)

भविष्यत्काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन

हिन्दी में	रामचरितमानस में
(०) तुम अपनी दासी करके मानना।	(०) 'निज किंकरी करि मानिबी।'[8] (बाल० ३३६। छन्द)
(१) तुम प्रभु को बाण का प्रताप समझाना।	(१) 'बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।'[9] (सुन्दर० २७।५)
(२) प्रिय पुत्र ! तुम इन्द्रपुत्र की कथा सुनाना।	(२) 'तात सक्रसुत कथा सुनाएहु।'[10] (सुन्दर० २७।५)

---

१. से ६. कर्मवाच्य की क्रियाएँ। धातु+अब, धातु+-अबि।

४. भाववाच्य की क्रिया। भाववाच्य की क्रियाएँ—लिंग-प्रभाव से मुक्त है।

७. मिला० 'जानिसु' (चांदायन, पृ० ३३) = जानना। कहिसु (चांदायन, पृ० ३३) = कहना।

८. कौन भाँति रहिहै बिरदु अब **देखिबी** मुरारि। (बिहारीरत्नाकर से)

९. १०. इन क्रियापदों में 'ए' के स्थान पर 'ह्रस्व ए' है।

(३) तुम सब किसी से सीता का समाचार पूछना । (३) 'सीता सुधि पूँछेहु[1] सब काहू ।' (किष्कि० २३।२)

(४) तुम ऐसा विवेक मन में रखना । (४) 'अस बिबेक राखेहु मन माहीं ।' (उत्तर १०९ (क) । १५)

(५) गुरु से सन्देश कहना । (५) गुरसन कहब सँदेसु । (अयो० १५१।)

धातु + एहु = √समुझा + एहु = समुझाएहु (= तुम समझाना)

धातु + एहु = √पूँछ् + एहु = पूँछेहु (= तुम पूछना)

मानस में – पूंछेसु (= तू पूछना) । पूंछेहु (= तुम पूछना)

भविष्यत्काल, इच्छार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन

धातु + ईजै = √कर् + ईजै = करीजै (= कीजिए)

,, + ,, = √की + ,, = कीजै (= कीजिए)

तेहि सन नाथ मइत्री कीजै । दीन जानि तेहि अभय करीजै[2] ।' (किष्कि० ४।३)

अर्थ : नाथ ! उसके साथ मैत्री कीजिए और उसे दीन जानकर अभय कीजिए ।

इच्छार्थ,[3] में कर्मवाच्य एवं भाववाच्य

धातु + इअ = √कर् + इअ = करिअ (= किया जाय) – कर्मवाच्य ।

,, ,, √बैठ् + इअ = बैठिअ (= बैठा जाय) – भाववाच्य ।

'करिअ कृपा सिसु सेवकु जानी ।' (बाल० २७७।४)

अर्थ : बालक या सेवक जानकर कृपा करिए, अर्थात् कृपा की जाय ।

× ×

'बैठिअ होइहिं पाय पिराने ।' (बाल० २७८।२)

अर्थ : बैठिए, पाँव पीड़ा अनुभव करते होंगे । अर्थात् पाँव पीड़ा करते होंगे, आप द्वारा बैठा जाना चाहिए ।

(कीजै = कीजिए । करिअ = करिए । कीजिए और करिए का एक ही अर्थ है ।)

विशेष : मूलत : करीजै, कीजै, दीजै आदि क्रियारूप कर्मवाच्य में हैं ।
सं० क्रियते > करिज्जइ > करीजै, करीजे । सं० दीयते > दिज्जइ > दीजै, दीजे ।
हेमचन्द्र ने अपने 'शब्दानुशासन' में दिज्जइ (८।४।४३८।१) का उल्लेख भी किया है ।

---

१. पूँछेहु = तुम पूछना । कहेहु (दाऊद-कृत चांदायन, पृ० ३३) = तुम कहना ।

२. कीजिए के अर्थ में **करीजै** (किष्कि० ४।३) और **कीजै** (४।३) पाठ हैं । मूलतः ये कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं ।

३. आदर या प्रार्थना के अर्थ में भी लिया जा सकता है ।

तुलसी ने लिखा—'मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।' (सुन्दर० २७।१)

अर्थ : (हे माता ! मुझे कुछ चिह्न दिया जाय, अर्थात् आप कुछ चिह्न दीजिए।)

भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, एकवचन

धातु + इहि = √मिट् + इहि[1] = मिटिहि (= मिटेगा, मिटेगी)

'मिलिहहिं रामु **मिटिहि** दुख दाहू।' (अयो० २२५।२)

अर्थ : राम मिलेंगे और दुःख-दाह **मिटेगा**।

× ×

धातु + इहि = √मिल् + इहि = मिलिहि (= मिलेगा, मिलेगी)

'जेहि विधि **मिलिहि** जानकी आई।' (गीता प्रेस, किष्किं० ५।८)

अर्थ : जिस बिधि से जानकी आ **मिलेगी**।

× ×

अर्धमागधी – प्रत्यय – इहिइ, इही, इहि = अवधी० इहि।

धातु + इहि = √लाग् + इहि = लागिहि (= लगेगी, लगेगा)

दिवस जात नहिं **लागिहि** बारा। (अयो० ६२।२)

अर्थ : दिन बीतते देर न **लगेगी**।

सं० इष्यति > इहइ > इहि, इह।

धातु + ई = √जा + ई = जाई (= जाएगी)

'तरनिउँ मुनि घरिनी **होइ जाई**।' (अयो० १००।६)

अर्थ : नाव भी मुनि की गृहिणी **हो जायगी**।

× ×

धातु + ई = √जा + ई = जाई = जाई (= जाएगा)

'प्रान जाहुँ बरु बचनु न **जाई**[3]।' (अयो० २८।४)

अर्थ : चाहे प्राण जायँ, लेकिन वचन न **जायगा**। (अथवा) प्राण जायँ, लेकिन वचन नहीं **जाता है**।

---

१. मिला० 'सो **करिह** पसंसा।' (विद्यापति, कीर्त्तिलता, १।१६)

२. सन्देशरासक में—इहइ प्रत्यय का प्रयोग हुआ है—'सन्तोसिहइ' (सं० रा० ३।१६७) सन्तोष देगा—'पिउ सन्तोसिहइ' हि० प्रिय सन्तोष देगा। 'खल दूसिहइ' (विद्यापति, कीर्त्तिलता, २।६)।

३. रामचरितमानस में तुकान्त 'जाई' का प्रयोग जाइ, अर्थात् जाकर अर्थ में भी है—'राजु देहु सुग्रीवहि जाई।' (किष्किं० ११।६) आई = आती है। आई = आइ = आकर, आती है, आई। जाई = जा + इ = जाकर। जा + इ = जाइ = जाता है। जाई = जाकर, जाता है, जायगा या जायगी।

'हो + – ई = होई (= होगा)

'ताकर नाम भरत अस होई ।' (बाल० १९७।७)

अर्थ : उसका नाम 'भरत' होगा ।

× ×

'धनुष यज्ञ जेहि कारन होई ।' (बाल० २३१।१)

अर्थ : जिसके कारण धनुष-यज्ञ होगा ।

बोली	रामचरितमानस
जाई √ जा + ई = जाई (अवधी, बघेली)	जाई (अयो० २८।४)

भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, बहुवचन

धातु + इहहिं = √ कर् + इहहिं = करिहहिं (= करेंगे, करेंगी) ।

धातु + इहहिं = √ हो + इहहिं = होइहहिं (= होंगे, होंगी) ।

धातु + इहिं = √ हो + इहिं = होइहिं (= होंगे, होंगी) ।

धातु + इहिं = √ उबर् + इहिं = उबरिहिं (= बचेंगे, बचेंगी) ।

'करिहहिं[1] बिधि मोसन ये प्रीती ।' (किष्कि० ४।८)

अर्थ : हे विधाता ! ये मुझसे प्रीति करेंगे ?

× ×

'धरहु धीर होइहहिं सुत चारी ।' (बाल० १८९।४)

अर्थ : धैर्य धारण करो, चार पुत्र होंगे ।

× ×

'बैठिअ होइहिं पाय पिराने ।' (बाल० २७८।२)

अर्थ : बैठिए, पाँव पीड़ित हुए होंगे ।

× ×

'जेहि बिधि मिलिहिं जानकी आई ।' (किष्कि० ५।८)

अर्थ : जिस विधि से सीता जी आ मिलेंगी ।

'ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ।' (किष्कि० ६ दो०)

अर्थ : ब्रह्मा और शंकर की शरण में जाने पर भी प्राण न बचेंगे ।

---

१. मिला० 'मरिहहिं' (दाऊदकृत चांदायन, पृ० ३१) = राजा मरेंगे। चांदायन में—इहहिं प्रत्यय भविष्यत्काल, उत्तमपुरुष, बहुवचन, का भी सूचक है। 'करिहहिं' (चांदायन, पृ० ३५) = हम करेंगे।

भविष्यत्काल, इच्छार्थ, अन्यपुरुष, एकवचन तथा बहुवचन

हिन्दी में	**रामचरितमानस में**
(०) चाहे कन्या कुमारी रहे।	(०) 'कन्या बरु रहहु कुआरी।' (बाल० ७१।४)
(१) दोनों भाई समर-शय्या पर **सोवें**।	(१) '**सोवहुँ** समर सेज दोउ भाई।' (अयो० २३०।४)
(२) चाहे लक्ष्मण तीर **मारें**।	(२) 'बरु तीर **मारहुँ** लखनु।' (अयो० १००।छन्द)
(३) चाहे प्राण **जावें**।	(३) 'प्रान जाहुँ बरु।' (अयो० २८।४)
(४) चाहे कछुए की पीठ पर बाल **जमें**।	(४) 'कमठ पीठि **जामहिं** बरु बारा।' (उत्तर० १२२।१५)
(५) राम-सीता पुत्र, पुत्र-वधू **हों**।	(५) '**होहुँ** राम सिय पूत पतोहू।' (अयो० १५।७)

(एकव० में) धातु + –उ = √हो + उ = होउ (= हो), (अयो० १६।६)

,, + ,, = √रह् + –अउ[1] = रहउ (= रहे), (बाल० ७१।४)

(बहुव०) धातु + अहुँ = √मार् + अहुँ = मारहुँ (= मारें), (अयो० १००।छन्द)

,, + ,, = √जा + हुँ = जाहुँ (= जावें), (अयो० २८।४)

,, + ,, = √हो + हुँ = होहुँ (= हों) (अयो० १५।७)

,, – व – अहुँ = √सो + वहुँ = सोवहुँ (= सोवें), (अयो० २३०।४)

धातु + –अहिं = √जाम् + अहिं = जामहिं (= जमें) (उत्तर० १२२।१५)

,, + –अहुँ = √रह् + –अहुँ = रहहुँ (= रहें), (गीता प्रेस, उत्तर० १०७।–)

विशेष : (बहुवचन में स्वरान्त धातु में —हुँ प्रत्यय और व्यंजनान्त धातु में –अहुँ या —अहिं प्रत्यय लगते हैं। –हुँ और –अहुँ एक पदग्राम के दो सम्पद हैं।)

---

१. यह प्रत्यय व्यंजनान्त धातु में लगता है। अतः –उ, –अउ सहप्रत्यय हैं। मिला० करउ (उक्तिव्यक्तिप्रकरण, पृ०१०।पं०१) = सं० कुर्यात (= वह करे)।

३. ६. ४. **क्रियाओं के वाच्य :**

वाक्य में क्रिया जिसके अनुसार प्रयुक्त होती है, उस नियन्ता के अनुसार ही वाच्य निश्चित होता है। जब क्रिया लिंग-वचन में कर्त्ता के अनुसार आती है, तब उसे कर्तृवाच्य की क्रिया कहते हैं। जैसे :

(१) लड़का **बोला**।	लड़का **बोलता है**।	लड़का **बोलेगा**।
(२) लड़की **बोली**।	लड़की **बोलती है**।	लड़की **बोलेगी**।
(३) लड़के **बोले**।	लड़के **बोलते हैं**।	लड़के **बोलेंगे**।
(४) लड़कियाँ **बोलीं**।	लड़कियाँ **बोलती हैं**।	लड़कियाँ **बोलेंगी**।

उक्त क्रियाएँ लिंग-वचन में कर्त्ता के अनुसार है, अतः कर्तृवाच्य में हैं। जब क्रिया कर्म के लिंग-वचन के अनुसार आती है, तब कर्मवाच्य की कहलाती है। जैसे :

(१) लड़के ने अमरूद **खाया**।
(२) लड़के ने दो अमरूद **खाये**।
(३) लड़के ने रोटी **खायी**।
(४) लड़के ने दो रोटियाँ **खायीं**।

इन उक्त चारों वाक्यों की क्रियाएँ कर्मवाच्य की है; क्योंकि कर्म के अनुसार हैं। कर्त्ता ('लड़के') के अनुसार नहीं हैं। तुलसी के कर्मवाच्य प्रयोग :

(क) '**देखा** राम नए के भोरें।' (बाल० २७२।२) = राम ने धनुष नये के भ्रम से देखा।

(ख) '**देखीं** सासु आन अनुहारीं।' (अयो० २२६।५) = सीता ने सासें अन्य वेश में देखीं।

जब क्रिया न कर्त्ता के अनुसार और न कर्म के अनुसार आती है, अर्थात् केवल भाव का अनुसरण करती है, तब भाववाच्य की कहलाती है। जैसे :

(क) लड़के ने लड़की को देखा। (ख) लड़कियों ने लड़कों को देखा।	यहाँ देखा[1] सकर्मक, भाववाच्य भूतकालीन क्रिया है।

(१) लड़की से नहीं **चला जाता**।	अकर्मक, भाववाच्य
(२) लड़कियों से नहीं **चला जाता**।	,, ,,
(३) लड़के से नहीं **चला जाता**।	,, ,,
(४) लड़कों से नहीं **चला जाता**।	,, ,,

---

१. जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। (किष्कि० ४।६) (= जब सुग्रीव ने राम को देखा)। कृपाल कहेउ (अयो० १०२।४) = कृपालुना कथितम्। सियँ सुरसरिहि कहेउ—(अयो० १०३।२) = सीतया सुरसरितां कथितम् (भाववाच्य)।

(१) गोपाल ने लड़की को **पढ़ाया**।	सकर्मक, भाववाच्य
(२) गोपाल ने लड़के को **पढ़ाया**।	,, ,,
(३) सीता ने लड़कियों को **पढ़ाया**।	,, ,,
(४) सीता ने लड़कों को **पढ़ाया**।	,, ,,

स्पष्ट है कि भाववाच्य की क्रियाएँ स्वतन्त्र और एक रूपवाली होती हैं। वे न कर्त्ता का अनुशासन मानती हैं और न कर्म का।

कर्तृवाच्य (सकर्मक क्रिया)	**कर्मवाच्य (सकर्मक क्रिया)**
(०) लड़का घर नहीं **देखता है**।[1]	(०) लड़के से घर नहीं **देखा जाता**।[2]
(१) लड़का किस्सा **कहता** है।	(१) लड़के ने किस्सा **कहा**।
(२) लड़की किस्सा **कहती** है।	(२) लड़की ने किस्सा **कहा**।
(३) लड़के कहानी **कहते** हैं।	(३) लड़के ने कहानी **कही**।
(४) लड़कियाँ कहानी **कहती** हैं।	(४) लड़कियों ने कहानियाँ **कहीं**।
परीक्षण : क्रिया यहाँ कर्त्ता के अनुसार है।	**परीक्षण** : क्रिया यहाँ कर्म के अनुसार है।

कर्तृवाच्य (सकर्मक क्रिया)	**कर्मवाच्य** (सकर्मक क्रिया)
(१) लड़का वचन **बोला**।	(१) लड़के ने वचन **बोला**।
(२) लड़की वचन **बोली**।	(२) लड़की ने वचन **बोला**।
(३) लड़के वचन **बोले**।	(३) लड़कों ने अनेक वचन **बोले**।
(४) लड़कियाँ वचन **बोलीं**	(४) लड़कियों ने अनेक वचन **बोले**।
परीक्षण : क्रिया कर्त्ता के अनुसार है।	**परीक्षण** : क्रिया कर्म के अनुसार है।

सारांश यह कि जो क्रिया कर्त्ता के लिंग-वचन को बतावे, वह कर्तृवाच्य और जो कर्म के लिंग-वचन को बताये, वह कर्मवाच्य। जो न कर्त्ता को बताये और न कर्म को, अपितु भाव को बताये, वह भाववाच्य की क्रिया कहाती है। भाववाच्य की क्रिया एकरूप रहती है और स्वतन्त्र सत्ता रखती है।

हिन्दी में सकर्मक क्रिया के सामान्य भूतकाल में कर्त्ता के साथ 'ने' परसर्ग आता है, किन्तु रामचरितमानस में 'ने' परसर्ग नहीं मिलता। अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी में भी 'ने' का अस्तित्व नहीं है।

---

१. तरइ = √तर् + अइ = तरता है। 'गुर बिनु भवनिधि **तरइ** न कोई।'—(उत्तर० ९३।५)। सं० तरति > तरइ

२. तरिअ = √तर् + -इअ = तरा जाता है। 'बिनु हरि भजन न भव **तरिअ**'—(उत्तर० १२२।-)। सं० तीर्यते > तरिअ।

कृदन्त क्रिया :

सामान्य भूतकाल सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य (हिन्दी में)	सामान्य भूतकाल सकर्मक क्रिया कर्मवाच्य (रामचरितमानस में)
(१) सीता ने मर्म वचन बोला	(१) सीता मरम बचन बोला । 'मरम बचन जब सीता बोला ।' (अर०२८।५)
कर्त्ता कर्म क्रिया	कर्त्ता कर्म क्रिया
सीता (स्त्री०) वचन (पुं०) बोला (पुं०)	सीता (स्त्री०) बचन (पुं०) बोला (पुं०) (अर० २८।५)
√बोल् + आ = बोला (पुं०, एकव०)	√बोल् + आ = बोला (पुं०, एकवचन)

कृदन्त क्रिया :

सामान्य भूतकाल अकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य (हिन्दी में)	सामान्य भूतकाल अकर्मक क्रिया कर्तृवाच्य (रामचरितमानस में)
(१) प्रभो ! वह हमारे गाँव में आया ।	'आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ।' (किष्कि० ६।२)
√आ + △ (य्) + आ = आया (पुं० एकव०)	√आ + △ (व्) + वा = आवा (पुं०, एकव०)

३. ६. ४. १. कर्तृवाच्य कृदन्त क्रिया :

जो क्रिया कर्ता के लिंग-वचन के अनुसार चलती है, वह कर्तृवाच्य कृदन्त क्रिया कहलाती है । कर्तृवाच्य कृदन्त के उदाहरण :

हिन्दी में	रामचरितमानस में
भविष्यत्काल (कर्तृवाच्य)	विशेष : यहाँ क्रियापदों में अन्तिम प्रत्यय लिंग-वचन सूचक हैं ।
(०) 'प्रभु तुझे अभय करेगा ।'	(०) प्रभु अभय करैगो[1] तोहि । (लंका० २० दो) √कर् + ऐग् + ओ = करैगो
(०) कृपानिधि राम आकर कुछ दिन वास करेंगे ।	(०) रामु कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे[2] आइ ।। (किष्कि० १२ दो०) √कर् + अहिग् + ए = करहिंगे ।।

१-२. इन क्रियारूपों पर ब्रजभाषा का प्रभाव प्रतीत होता है ।

भूतकाल (कर्त्तृवाच्य)

(०) (बालि) राम की ओर देखकर बोला।

(०) 'बोला चितइ राम की ओरा।' (किष्कि० ६।४)।

√बोल्+—आ = बोला।

(१) प्रभो! वह हमारे गाँव में आया।

(१) 'आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।' (किष्कि० ६।२)

√आ+△(व्)+आ=आवा।

(२) रंगभूमि में जब सीता ने पैर रखे।

(२) 'रंगभूमि जब सिय पगुधारी।' (बाल० २४८।४)

√धार्+ई = धारी।

(३) सुनकर और क्रुद्ध होकर क्रोधी मुनि बोले।

(३) 'सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।' (बाल० २७१।२)

√बोल्+ए = बोले

(४) माता मधुर बचन बोली।

(४) 'बोली मधुर बचन महतारी।।' (अयो० ५२।६)

(५) मुझे आज राम के प्यारे मिले।

(५) 'मिले आजु मोहि राम पिरीते।' (उत्तर० २।११)

√मिल्+ए = मिले।

वर्त्तमानकाल (कर्त्तृवाच्य)

हिन्दी में	रामचरितमानस में
	विशेष : यहाँ क्रियापदों में अन्तिम प्रत्यय लिंग-वचनसूचक हैं।
(१) माता गद्गद वचन कहती है।	(१) 'गदगद बचन कहति महतारी।' (अयो० ५४।५) √कह+अत्+इ = कहति
(२) स्वामी बिलपते हैं।	(२) 'बिलपत स्वामी।' (अर० ३०।१६) √बिलप्+अत+० = बिलपत
(३) नयनों से जल बहता है।	(३) 'नयन स्रवत जल।' (उत्तर०२ (क)।१०) √स्रव्+अत+—० = स्रवत

(४) पक्षी कूजते हैं। (४) 'कूजत[1] बिहग।' (बाल० २२७।६)
√कूज् + अत + — ० = कूजत

कर्त्ता के लिंग-वचन के अनुसार क्रिया जब अपना लिंग-वचन रखती है, तब कर्तृवाक्य की कहलाती है। 'रामचरितमानस' के उक्त उदाहरणों में क्रियाएँ अपने लिंग कर्त्ता के अनुसार रख रही हैं, अतः कर्तृवाच्य की क्रियाएँ कहलाती हैं। वर्त्तमान काल में नं० १ उदाहरण में कर्त्ता '**महतारी**' स्त्रीलिंग है, तो क्रिया भी '**कहति**' स्त्रीलिंग है। नं० ३ के उदाहरण में कर्त्ता '**जल**' पुंलिंग है, तो क्रिया '**स्रवत**' पुंलिंग हैं; चूँकि लिंग कर्त्ता के अनुसार बदलता है, इसलिए ये कृदन्त कियाएँ हैं। 'रामचरितमानस' में √**बोल्** धातु से बनी भूतकालीन क्रिया कर्तृवाच्य है और कर्मवाच्य भी; जैसे—'बोली मधुर वचन महतारी'—(अयो० ५२।६) में '**बोली**' कर्तृवाच्य प्रयोग है। 'मरम बचन जब सीता **बोला**' (अर० २८।५) में '**बोला**' कर्मवाच्य प्रयोग है।

कर्मवाच्य तिङन्त क्रिया

हिन्दी में	**रामचरितमानस में**
वर्त्तमानकाल	**वर्त्तमानकाल**
(१) वे भी पूजे जाते हैं।	(१) पूजिअहिं तेऊ। (बाल० ७।५) सं० पूज्यन्ते। (बहुव०)
(२) चारों परखे जाते हैं।	(२) परिखिअहिं चारी। (अर०५।७) सं० परीक्ष्यन्ते। (बहुव०)
(३) देखने योग्य देखा जाता है।	(३) देखिअहि देखन जोगू। (बाल० २२६।६) सं० दृश्यते। (एकव०)

३. ६. ४. २ कर्मवाच्य कृदन्त क्रिया :

हिन्दी में	**रामचरितमानस में**
भूतकाल (कर्मवाच्य)	**भूतकाल (कर्मवाच्य)** विशेष : यहाँ क्रिया पदों में अन्तिम प्रत्यय लिंग-वचनसूचक हैं।
(१) प्रभु ने बात कही।	(१) प्रभु बाता कही। (अर० १७।११)

---

१. सं० कूजत् > अप० कूजंत > कूजत। तर्कवागीश ने अपभ्रंश की प्रकृति के सम्बन्ध में लिखा—'शतृमतो बहुशस्त्रिकाले'—(प्राकृतकल्पतरु, ३।२।३०)। ग्रियर्सन ने कहा कि—शतृ का प्रयोग सभी कालों में पूरी क्रिया की तरह होता है—(दे० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तवा : अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, सन् १९६५, पृ० २२१)।

(अथवा) प्रभु द्वारा बात कही गयी।	धातु + ई = √कह् + ई = कही (स्त्री०)
(२) पिता द्वारा मुझे वन का राज्य दिया गया। (अथवा) पिता ने मुझे वन का राज्य दिया।	'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।' (अयो० ५३।६) धातु + ० = दीन्ह (पुं०) विशेष : वास्तव में 'दीन्ह' एक भूतकालिक कृदन्त है, जो √दे धातु से बना है। उस कृदन्त शब्द में फिर लिंग-वचन के प्रत्यय लगते हैं। विश्लेषण की सुविधा के लिए हमने 'दीन्ह' को धातु मान लिया है।
(२क) सीता ने जब मर्म वचन बोला।	(२क) 'मरम बचन जब सीता बोला।' (अर० २८।५)
(३) (माता ने) असीस दी। (अथवा) (माता द्वारा) असीस दी गई।	(३) दीन्हि असीस। (अयो० ५२।२) धातु + इ = दीन्हि (स्त्री०)
(४) देवों ने दुन्दुभियाँ दीं।	(४) 'देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं।' (बाल० २८५ दो०) (देवन्ह = तिर्यक्, बहुव०) धातु + ईं = दीन्हीं (स्त्री०)
(४ क) (वह) 'तरु-पल्लव में छिपा था।'	(४क) 'तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।' (सुन्दर० ९।१) धातु + -आ = √रह् + -आ = रहा
(५) देवताओं ने जाना कि राम का मन रम गया। (अथवा) देवताओं द्वारा जाना गया कि राम का मन रम गया।	(५) 'रमेउ राम-मनु देवन्ह जाना।' (अयो० १३३।६) (देवन्ह = तिर्यक् बहुव०) धातु + आ = √जान् + आ = जाना (पुं०)

(६) तब रघुवीर ने सीता थकी जानी ।
(अथवा)
तब रघुवीर द्वारा सीता थकी जानी गई ।

(६) तब रघुवीर स्रमित सिय जानी ।'
(अयो० १२४.३)
धातु+ई=√जान्+ई=जानी (स्त्री०)

(७) राम लौट जायेंगे और मैंने सीता हारी ।

(७) 'फिरहिं रामु सीता मैं हारी ।'
[लंका ३४(क)।९]
धातु+ई=√हार्+ –ई=हारी

(८) रूप देखकर नर-नारी मोहित हुए ।

(८) 'देखि रूप मोहे नर-नारी ।'
(बाल० २४८।४)
√मोह्+ –ए=मोहे ।

कर्मवाच्य में क्रिया का लिंग-वचन कर्म के लिंग-वचन के अनुसार होता है । अतः, रामचरितमानस के उद्धरणों में **'कही'**, **'जानी'** आदि क्रियाएँ अपने कर्म **'बाता'** और **'सिय'** के कारण स्त्रीलिंग एकवचन में हैं । जब क्रिया लिंग-वचन में कर्त्ता या कर्म का अनुसरण नहीं करती, तब वह भाववाच्य की कहलाती है । **'बालकेन हस्यते'**, **'बालिकया हस्यते'** में **'हस्यते'** भाववाच्य की क्रिया है; क्योंकि कर्त्ता के अनुसार लिंग-परिवर्त्तन नहीं हुआ है ।

मानक हिन्दी में निम्नांकित वाक्यों की क्रियाएँ भाववाच्य की हैं :

(१) लड़के से नहीं **चला जाता** ।
(२) लड़कों से नहीं **चला जाता** ।
(३) लड़की से नहीं चला **जाता** ।
(४) लड़कियों से नहीं चला **जाता** ।

} 'चला जाता' पर कर्त्ता के लिंग-वचन का कोई प्रभाव नहीं है ।

भविष्यत्काल, कर्मवाच्य (कृदन्त क्रियाएँ)

विशेष : यहाँ क्रियापदों का अन्तिम प्रत्यय लिंग-वचन का सूचक है ।

कर्म	क्रिया	उदाहरण
दुखु (पुं० एकव०)	पाउब (पुं०, एकव०) √पा+उ+ब+ –० =पाउब	'तो तुम्ह दुखु पाउब ।'[1] (अयो० ६३।३)

---

१. संस्कृत—प्राप्तव्यम् >अव० पाउब ।

सेवकाई (स्त्री० एकव०)	करबि (स्त्री०, एकव०) √कर्+अब्+इ=करबि	'करबि[1] सवति सेवकाई ।' (अयो० २१।१)
प्रसादु (पुं० एकव०)	लेब (पुं०, एकव०) √ले+ब्+ – ० =लेब	'सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा ।' (अयो० १०२।८)
काजु(लुप्त) (पुं०, एकव०)	करब (पुं०, एकव०) √कर्+अब+० =करब	'ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ।' (सुन्दर० ५१।५)
काज (पुं०, बहुव०)	घटब (पुं० बहुव०) √घट्+अब+० =घटब	'सब बिधि घटब काज मैं तोरे ।' (किष्कि० ७।१०)

रामचरितमानस (कर्मवाच्य, भविष्य)	व्याकरणिक अर्थ
'तो तुम दुखु पाउब ।' (अयो० ६२।३) √पा+उब=पाउब (पुं०)	तो तुम्हारे द्वारा दुःख प्राप्त किया जाना चाहिए ।
'सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा ।' (अयो० १०२।८) √लेब+ब=लेब (पुं०)	मेरे द्वारा वह प्रसाद सिर पर धारण करके लिया जाना चाहिए । (लिया जायगा) ।
ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ।' (सुन्दर० ५१।५)	तुम धैर्य धरो, इसी प्रकार (कार्य) किया जायगा ।
सब बिधि घटब काज मैं तोरें । (किष्कि० ७।१०) √कर्+अब=करब[2] (पुं०) √घट्+अब= घटब (पुं०)	मेरे द्वारा तेरे कार्य सब प्रकार से किये जाने चाहिए (किये जायेंगे) ।

---

१. संस्कृत—कर्त्तव्या >अव० करबि ।

२. 'मानस' में विधिपरक भविष्यत्कालीन कर्मवाच्य क्रियाएँ ऐसी भी पाई जाती हैं, जिनपर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता । जैसे 'करिअ'—की जाय, किया जाय, किया जायगा । 'परिहरि कोप **करिअ** अब दाया ।' (बाल० २७८।२) 'जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई ।' (बाल० २७८।३) । 'न भव **तरिअ** यह सिद्धान्त अपेल ।' (गीता प्रेस, उत्तर० १२२ (क) ।–)

‘जिअत न करबि सवति सेवकाई ।’ (अयो० २१।१) $\sqrt{\text{कर्}}$ + अबि = करबि (स्त्री०)	जीते जी मेरे द्वारा सौत की सेवा न की जानी चाहिए । (न की जायगी) ।
‘भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।’ (बाल० ३१।२) $\sqrt{\text{कर्}}$ + अबि = करबि (स्त्री०)	मेरे द्वारा (वह कथा) भाषाबद्ध की जानी चाहिए (की जायगी) ।
‘मैं कछु करबि[1] ललित नर लीला’ (अर० २४।१) $\sqrt{\text{कर्}}$ + अबि = करबि (स्त्री०)	मेरे द्वारा कुछ सुन्दर नर-लीला की जानी चाहिए (की जायगी) ।
‘तो मैं मारबि काढ़ि कृपाना ।’ (सुन्दर० १७।६) $\sqrt{\text{मार्}}$ + अबि = मारबि (स्त्री०)	तो तलवार निकालकर मेरे द्वारा सीता मारी जानी चाहिए (मारी जायगी) ।
‘मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।’ (अयो० १०३।२) $\sqrt{\text{पुर्}}$ + उ + बि = पुरउबि (स्त्री०)	हे माता ! तुम्हारे द्वारा मेरी कामना पूरी की जानी चाहिए (पूरी की जायगी) ।

उक्त उदाहरणों की क्रियाएँ लिंग-वचन में कर्म के अनुसार हैं, अतः कर्मवाच्य की क्रियाएँ हैं । संस्कृत में भी इसी प्रकार परिवर्त्तन होता है । जैसे :

कर्म	क्रिया	उदाहरण
बालकः (पुं०, एकव०)	द्रष्टव्यः (पुं०, एकव०)	मया बालकः द्रष्टव्यः ।
बालकाः (पुं०, बहुव०)	द्रष्टव्याः (पुं०, बहुव०)	मया बालकाः द्रष्टव्याः ।
बालिका (स्त्री, एकव०)	द्रष्टव्या (स्त्री०, एकव०)	मया बालिका द्रष्टव्या ।
बालिकाः (स्त्री०, बहुव०)	द्रष्टव्याः (स्त्री०, बहुव०)	मया बालिकाः द्रष्टव्याः ।
कमलं (न०, एकव०)	द्रष्टव्यम् (न० एकव०)	मया कमलं द्रष्टव्यम् ।
कमलानि (न० बहु०)	द्रष्टव्यानि (न० बहुव०)	मया कमलानि द्रष्टव्यानि ।

उक्त क्रियाएँ कर्त्तव्यसूचक हैं और भविष्यत् काल को प्रकट करती हैं । यदि तुलसी की अवधी के व्याकरण का अनुसरण करते हुए हम ‘बालकः द्रष्टव्यः’ और ‘बालिका द्रष्टव्या’ को रूपान्तरित करें, तो इस प्रकार वाक्य बनेंगे :

(१) बालकः द्रष्टव्यः = लरिका देखब । (= लड़का देखा जायगा, देखा जाना चाहिए) ।

---

१. सं० कर्त्तव्या>करबि । सं० कर्त्तव्यः>करब । सं० तव्य>अव्व>अव>अब । तव्या>अव्वि>अवि>अबि । अप० धर्मु करव= सं० धर्मः कर्त्तव्यः । अप० करव = रामच० करब ।

(२) बालिका द्रष्टव्या = लरिकी देखबि।	(लड़की देखी जायगी, देखी जानी चाहिए)।

३. ६. ४. ३. भविष्यत् काल, भाववाच्य :

भाववाच्य की क्रिया पर कर्त्ता के लिंग-वचन का प्रभाव नहीं पड़ता है। अकर्मक क्रियाएँ भाववाच्य में आती हैं। 'रामचरितमानस' में भाववाच्य क्रियाओं के उदाहरण मिलते हैं। (सं० मया वसितव्यम् = मेरे द्वारा बसा जायगा।)

रामचरितमानस	व्याकरणिक अर्थ
'नाहिं त मौन रहब दिनु राती।' (अयो० १६।४)	नहीं तो मेरे द्वारा दिन रात मौन रहा जाना चाहिए (रहा जायगा)।
√रह् + अब = रहब।	
'पुनि आउब, एहि बेरिआँ काली।' (बाल० २३४।६)	फिर हमारे द्वारा इसी समय आया जाना चाहिए (आया जायगा)।

√आ + उब = आउब (√आ + $\overset{उ}{\wedge}$ + ब)।[1]

संस्कृत (भाववाच्य)	व्याकरणिक अर्थ
सं० मया वसितव्यम् =	मेरे द्वारा बसा जाना चाहिए (बसा जायगा)।
सं० अस्माभिः हसितव्यम् =	हमारे द्वारा हँसा जाना चाहिए।
सं० बालकैः हसितव्यम् =	बालकों द्वारा हँसा जाना चाहिए।
सं० बालिकाभिः हसितव्यम् =	बालिकाओं द्वारा हँसा जाना चाहिए।

वर्त्तमानकाल

हिन्दी में	रामचरितमानस में
वर्त्तमान (कर्मवाच्य) कृदन्त	वर्त्तमान (कर्मवाच्य) तिङन्त
(०) किया जाता है	(०) करिअ (उत्तर० ११६।६) = किया जाता है।[2] √कर् + इअ = करिअ।
(०) परखा जाता है।	(००) परिखिअइ[3] (मानस में मिला नहीं) √परिख् + इअइ = परिखिअइ

---

१. 'आउब' में 'उ' का आगम है।

२. मि० 'चोर घुमाइअ नायक हाँथे।' (विद्यापति, कीर्त्तिलता, ३।६४)

३. मि० 'जाणिअइ' (हैम व्या० ८।४।३३०।४) = जान पड़ता है। अप० जाणिअइ = सं० ज्ञायते। अप० जाणिअहिं = सं० ज्ञायन्ते।

(१) लक्ष्मण रखे जाते हैं।	(१) 'रखिअहिं लखनु।' (अयो० २८४।२) √रख् + इअहिं = रखिअहिं।
(२) पुरुष परखे जाते हैं।	(२) पुरुष परिखिअहिं। (अयो० २८३।६) √परिख् + इअहिं = परिखिअहिं धातु + इअहिं = √परिख् + इअहिं– परखे जाते हैं।
(३) चारों परखे जाते हैं।	(३) परिखिअहिं चारी। (अर० ५।७) √परिख् + इअहिं = परिखिअहिं ॥

३. ६. ५. तिङन्त क्रियाओं के प्रत्यय :

३. ६. ५. १. सामान्य वर्त्तमान :

	एकवचन	बहुवचन
उ० पुरुष	करौं = –औं (अयो० ५५।४)[1]	उ० पुरुष – फिरहिं = –अहिं (किष्कि० २।३)
	करउँ = –अउँ (अयो० ५५।४)[2]	जानहिं = –अहिं (अयो० १२०।७)
	लेउं = –ऊँ (अयो० २३०।३)	होहिं = –हिं (अयो० ६६।६)
म० पुरुष	करसि = –असि (किष्कि० ९।६)	बोलाव = –आव (बाल० २७५।१) लाव = –आव (बाल० २७५।१)
	सकसि = –असि (लंका० ३४।६)	सेव = –० (अयो० १५०।४) फिरहु = –अहु (किष्कि० १।७)
	जानहि = –अहि (बाल० २८३।१)	देहु = –हु (अयो० १२७।३) देखाव = –व (बाल० २७३।२)
अन्य पुरुष	सोह = –० (लंका० ३६।१)	कह = –० (बाल० २७१।८)
	कह = –० (अयो० १३४।३)	कर = –० (अर० ३०।१७) जान = –० (सुन्दर० ४८।१)
	बह = –० (बाल १९१।३)	कर = –० (बाल० दो० ३।—)
	जान = –० (बाल० २७६।१)	बिगरहिं = –अहिं (गीता प्रेस, किष्कि० १५।४)
	भाव = –० (बाल० ५।१०)	परहिं = –अहिं (बाल० १९२।छन्द)
	डराइ = –(बाल० २८४।५)	

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण।

२. गीता प्रेस-संस्क० करउँ <अप० करउँ (हैम व्या० ८।४।३७०।२) <सं० करोमि।

बहइ = – अइ (अयो० दो० २१६)
पुरव = – व (अयो० २३।३)
बुझाव = – व (बाल० ३९।४)
सुनाव = – व (अर० २६।५)

३. ६. ५. २. सामान्य भूत :

विशेष : निम्नांकित क्रियापदों का मध्यगत 'ए' ह्रस्व है।

उ० पु०	एकवचन	उ० पु०	बहुवचन
रहिउँ = – इउँ (अर० १७।१०)—स्त्री०		×	×
गइउँ = – इउँ (अयो० १६६।५)—स्त्री०			
चलेउँ = – एउँ (किष्कि० ६।८)—पुं०		×	×
देखेउँ = = एउँ (अयो० १५३।२)—पुं०			
देखिउँ[1] = – इउँ (काशि०, अर० १७।६)		×	×
देखेउँ = – एउँ (डा० गुप्त, अर० १७।९)			

एकव०, म० पु०	बहुव०, म० पु०
चलेसि = एसि (अर० २६।११)	माँगिहु = – इहु (अयो० २८।२)
जानेहि = एहि (अर० २९।११)	बोलेहु = – एहु (अर० २८।१२)
मारे = – ए (अयो० १६१।७)	मिलेहु = – एहु (किष्कि० ७।१९)
	कहेहु[2] = – एहु (बाल० २२३।१)
	आएहु = = एहु (अर० ३०।२)

एकव०, अ० पु०	बहुव०, अ० पु०
काढिसि = इसि (अर० २९।२१)	देखिन्ह = – इन्हि (बाल० १९३/८)
गएउ = एउ (अर० २७।१)	
मारेसि = एसि (किष्कि० ६।११)	
कहेसि = – एसि (बाल० २८१।—)	
टूट = ०(बाल० २७२।३)	
फूट = – ० (अयो० १६३।५)	
बैठ = – ० (किष्कि० ९।१)	

---

१. काशि० संस्करण का देखिउँ पाठ व्याकरणसम्मत नहीं।
२. 'कहेहु' (अर० ३१।–) = तुम कहना अर्थ में भी है।

३. ६. ५. ३. सामान्य भविष्यत् :

विशेष : निम्नांकित क्रियापदों का मध्यगत 'ए' ह्रस्व है।

एकवचन	**बहुवचन**
उ० पु०	**उ० पु०**
सुनावौं = आवौं (सुन्दर० २।४)	खेलाउब = –उब (अयो० १३६।७)
करिहउँ[1] = इहउँ (किष्कि० ५।८)	देखाउब = –उब (अयो० १३६।७)
करिहौं = इहौं (किष्कि० ५।८)	करब = –अब (अयो० १३६।५)
	फिरब = –अब (अयो० १२।८)
	होब = –ब (अयो० १६।६)
म० पु०	**म० पु०**
जानब[2] = –अब (उत्तर० ८५।८)	जाब = –ब (अयो० ११२।८)
कहेसु = –एसु (किष्कि० १।४)	रहब = –अब (अयो० १०३।८)
	जितब = –अब (लंका० ३६।३)
	पाउब = –उब (अयो० ६२।३)
	होइहहु = –इहहु (बाल० १५१ दो०)
अ० पु०	**अ० पु०**
मिटिहि = इहि[3] (अयो० २२५।२)	करिहहिं = –इहहिं (किष्कि० ४।८)
होई = –ई (बाल० २३१।१ किष्कि० १९।५)	मिलिहिं = –इहिं (किष्कि० ५।८)
जाई = –ई (अयो० १००।६)	उबरिहिं = –इहिं (किष्कि० ६ दो०)
उड़ाई = –ई (अयो० १००।६)	फिरहिं = –अहिं (लंका० ३४ (क)।९) [मूलत: यह वर्त्तमान काल में है]

३. ६. ५. ४. आज्ञादि अर्थ[4] अथवा निवेदनार्थ :

विशेष : निम्नांकित क्रियापदों का मध्यगत 'ए' ह्रस्व है।

---

१. गीता प्रेस-संस्क०—सं० करिष्यामि>जैन महा० प्रा० करेहामो> करिहउँ, करिहौं।

२. तैं जानब का अर्थ 'तेरे द्वारा जाना जाएगा' भी है।

३. सं० इष्यति>अर्धमागधी प्रा० – इहिइ>इहि।

४. मारहु = तुम मारो। कीर्त्तिलता में **करओ, सुनओ** क्रियापद मिलते हैं, जो खड़ीबोली के **'करो', 'सुनो'** के पूर्वरूप माने जा सकते हैं। रामचरितमानस का **'करउ'** (गीता प्रेस, बाल० सो० १।–) तो अन्यपुरुष, एकवचन है।

	एकवचन	बहुवचन
वर्त्तमान (आज्ञार्थ या निवेदनार्थ)	**म० पु०**	**म० पु०**
	करसि = — असि (किष्किं०२८।९)	आनहु = — अहु (अर० २७।५)
	करहि = — अहि (अयो० १५०।२)	मारहु* = — अहु (अर० १८।९)
	उतारहि[1] = — अहि (अयो० १०१।२)	पुरवहु = — व्, अहु (बाल० १४।—)
	देखाउ(देखऊ) = — उ (अयो० १५०।२)	होहु = — हु (अयो० दो० १८९--)
	सुनु = — उ (किष्किं० ३।७)	होहु = — हु (अयो० दो० १८८। —)
		जाहु = — हु (अर० २८।३)
	देहि = — हि (अयो० १६४।३)	
	होहि = — हि (अयो०दो०१९१। —)	
	जाहि = — हि (उत्तर० १८।८)	

भविष्यत् (आज्ञादि अर्थ या निवेदनार्थ)

म० पु०	म० पु०
कहेसु[2] = — एसु (किष्किं० १।४)] कहे)सु = — ए)सु (काशि०, किष्किं०१।४]	समुझाएहु[3] = एहु (सुन्दर २७।५)] समुझाए) हु = ए)हु (काशि० सुन्दर० २७।५)]
जानेसु = — एसु (किष्किं० ६।६)] जाने)सु = — ए)सु (काशि०, किष्किं०६६)]	पूंछेहु[3] = — एहु (किष्किं० २३।२)] पूछे)हु = — ए)हु (काशि०, किष्किं०२३।२)]
परिखेसु = — एसु (किष्किं० ६।६)] परिखे)सु = — ए)सु (काशि०, कि०६।६)]	कहेहु = एहु (अर० ३१ दो) कहब[4] = — अब (अयो० १५१ — ।)

३. ६. ५. ५. इच्छा, प्रार्थना आदि :

	एकवचन		बहुवचन
उ० पु०	×	उ० पु०	×
×	×	×	×
म० पु०		म० पु०	
×	×	कीजिए, लीजिए = — ईजिए (किष्किं० १० छन्द)	
		करीजै = — ईजै (किष्किं० ४।३)	
अ० पु०		अ० पु०	
होइ = — इ (अयो० ३७।२)		मारहुँ = — अहुँ (अयो० १००। छन्द)	

---

*. पृ० २४५ पर चतुर्थ टिप्पणी देखिए।

१. उतारहि = तू उतार।

२. कहेसु = तू कहना। मिलाइए – 'कहिसु' (चांदायन, पृ० ३३) = तू कहना।

३. तुम समझाना। मि० 'कहेहु' (अर० ३१ दो०) = कहेहु (चांदायन, पृ० ३३) = तुम कहना।

४. कहब = तुम कहना (इसे परोक्षविधि का भी रूप कह सकते हैं।)

रहउ = — अउ (बाल० ७१।४)

करउ[1] = — अउ (गीता प्रेस, सो० १)

होउ = — उ (अयो० १६।६, ६९।८)

मिटइ = — अइ (अयो० १६६।३)

रहउ = — अउ (गीताप्रेस, बाल० २५२।५)

करै = — ऐ (बाल० ३ ।२)

रहहुँ = — अहुँ (गीता प्रेस, उत्तर० १०७।)

राखहुँ = — अहुँ (अयो० ५७।१)

जाहुँ = — हुँ (अयो० २८।४)

जामहिं = अहिं[2] (उत्तर० १२२।१५)

(विशेष : इच्छा और प्रार्थना के अर्थ में करिअ (बाल० २७७।४) कहिअ[3] (अयो० १२६।५) भजिअ (बाल० २००।५) आदि कर्मवाच्य के प्रयोग हैं। इसी प्रकार, काछिअ (अयो० १२७।८) और नाचा चाहिअ (अयो० १२७।८) भाववाच्य के प्रयोग हैं। करिअ = किया जाय। कहिअ = कहा जाय। भजिअ = भजा जाय, भजन किया जाय।)

३. ६. ६. कृदन्त क्रियाओं[4] के प्रत्यय :

३. ६. ६. १. वर्तमान काल :

पुंलिंग

एकवचन

स्रवत = — अत (उत्तर० २ (क) ।१०)

होत = — त (अयो० १०१।२) (उत्तर० १। —) (अयो० १४४।६)

स्त्रीलिंग

एकवचन

कहति = — अति (अयो०५४।५)

चितवति = — अति (बाल० २३२।१)

---

१. गुप्त और काशि० संस्कृ० में 'करौं' पाठ है। 'करउ' = करें। मि० – 'करउ' (रोडाकृत राउल-वेल, पृ० ९०) जियउ (विद्यापति, कीर्त्ति० १।७७) = जीवे।

२. अहिं प्रत्यय वर्त्तमान काल उत्तमपुरुष, बहुवचन तथा अन्यपुरुष, बहुवचन के निर्देशार्थ को भी सूचित करता है। जैसे—**फिरहिं** = फिर् + —अहिं = हम फिरते हैं, (अथवा) वे फिरते हैं।

३. वही स्थान कहा जाय।

४. कृदन्त क्रियाओं पर लिंग का प्रभाव पड़ता है। तिङन्त क्रियाएँ लिंग-प्रभाव नहीं मानतीं।

वर्त्तमान काल

पुंलिंग	**स्त्रीलिंग**
बहुवचन	**बहुवचन**
बिराजत = – अत (बाल० २०।–)	
बिहरत = – अत (अयो० २४६।–)	
लसत = – अत (अयो० २३६।–)	
विलपत = – अत[1] (अर० ३०।१६)	
कूजत = – अत (बाल० २२७।६)	
करत = – अत[2] (अयो० १४४।५, बाल० ५४।८)	

विशेष : स्वरान्त धातु – त प्रत्यय और व्यंजनान्त धातु में –अत प्रत्यय वर्त्तमान काल को सूचित करता है। उत्तमपुरुष बहुवचन 'हम' के साथ भी 'देखत' क्रिया आती है। 'हम देखत' (उत्तर० १३ (क)। छन्द ३) तुलसी ने स्रवत (= बहते हैं, बहाते हैं) और बरषहिं (= बरसते हैं, बरसाते हैं) क्रियाओं को अकर्मक और सकर्मक रूप में प्रयुक्त किया है—(१) अकर्मक 'स्रवत नयन जलजात' – (उत्तर० १।–) बरषहिं (किष्कि० १४।३) = बरसते हैं। (२) सकर्मक—स्रवत थन (उत्तर० ६।- छन्द); बरषहिं (बाल० ३१४।१) = बरसाते हैं। बर्षहिं (लंका० १६।= बरसते हैं।

'कोऊ नहिं जानत' (सूर० १०।४९७)। 'हरि कहत' (सूर०।५०१)।
'मुख चूमति' जसुमति (सूर० १०।४९७)। 'ये बोलतिं' (सू० १०।३०८)।
'तू खात' (सूर० १०।३०९)।

३. ६. ६. २. भूतकाल :

पुंलिंग	**स्त्रीलिंग**
एकवचन	**एकवचन**
धारा = – आ (अयो० १३६।१)	धारी = – ई (बाल० २४८।४)
बोला = – आ (किष्कि० ६।४)	बोली = – ई (अयो० ५२।६)
	करि – (करी)[3] = – इ (बाल० १८९।२)

---

१. यदि कर्त्ता दो हों– एक पुलिंग, दूसरा स्त्रीलिंग, तो क्रिया पुलिंग के अनुसार आती है–'भरत नयन भुज दच्छिन **फरकत** बारहिं बार।' (उत्तर०। दो० ४)

२. 'अत' प्रत्यय पुंलिंग में एकवचन का भी सूचक है। उदा०
'चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत बिहग **नटत** कल मोरा ॥' (बाल० २२७।६)

३. छन्दोनिर्वाह के कारण '**करी**' को '**करि**' कर दिया गया है। अन्यत्र भी ऐसी प्रवृत्ति मिलती है।

गइ (गई) = — इ
(बाल० ३५४। —)

कीन्ह = — अ (बाल० २५।३)
कीन्हा = — आ (सुन्दर० २।१०)
कीन्हेउ = एउ (अयो० १५८। —)
कर्‌यो = य् ओ (अर० २० । छन्द)
(यहाँ ओ से पूर्व य् श्रुति का आगम है) ।

कीन्ही[1] = — ई (अर० ३१।२)
कीन्हिहु[2] = — इहु (बाल० २०७।७)

भूतकाल

पुंलिग	स्त्रीलिंग
बहुवचन	बहुवचन
बोले = — ए (बाल० २७१।२)	देखीं = — ईं (अयो० २२६।५)
देखे = — ए (अयो० १६६।३)	चलीं = — ईं (बाल० २३६।छन्द)

३. ६. ६. ३. भविष्यत् काल :

पुंलिग	स्त्रीलिंग
एकवचन	एकवचन
कहब = — अब (अयो० १५२।३)	करबि = — अबि[3] (अयो० सो० १५१।८) = (— अब्+ — ई)
करैगो = — ऐगो (लंका० २० दो०) = (— ऐ+ — ग्+ — ओ)	
पाउब = — उब (अयो० ६२।३)	करबि = — अबि[4] (अयो०२१।१)
लेब = — ब (अयो० १०२।८)	करबि = — अबि[5] (बाल० ३१।२) = (— अब् + — इ)
देब = — ब (अयो० १०२।८)	
करब = — अब[6] (सुन्दर०५१।५)	[ये प्रत्यय कर्मवाच्य और भविष्यत् काल के स्त्रीलिंग को प्रकट करते हैं ।]

---

१. 'नाथ दसानन येहि गति कीन्ही ।' (रामच०, अर० २१।२)
'अरु वृष भानुसुता जो कीन्ही ।' (भ्रमरगीतसार, सं० आचार्य शुक्ल, पद १२ ।)

२. 'मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ।' (बा० २०७।७)

३. ४. ५. ६. ये प्रत्यय कर्मवाच्य स्त्रीलिंग क्रियाओं के सूचक हैं । सं० कर्त्तव्यः = अयो० करिएव्व > करब । सं० कर्त्तव्या = करबि । सं० कथितव्यं = कहब ।
सं० कथितव्यः = कहब ।

विशेष : स्वरान्त धातुओं में – ब
प्रत्यय लगता है ।

भविष्यत् काल :

पुंलिंग	स्त्रीलिंग
बहुवचन	बहुवचन
करहिंगे = अहिंगे (किष्कि० १२ दो०) = (– अहि + – ग + – ए)	
घटब = – अब (किष्कि० ७।१०)	

विशेष : रामचरितमानस में आज्ञार्थ और इच्छार्थ क्रियाओं में अन्तर इस प्रकार पाया जाता है : आज्ञार्थ–(१) तू हो (होहि– अयो० १९१।—), (२) तुम हो (होहु–अयो० १८९) । इच्छार्थ–(१) कोई राजा होवे (कोउ नृप होउ)–अयो० १६।६), (२) राम सीता पुत्र–पुत्रवधू होवें । 'होहुँ राम सिय पूत पतोहू' (अयो० १५७) ।

३. ६. ६. ४. कृदन्तरूपिणी असमापिका क्रियाएँ :

पूर्वकालिक कृदन्त

रामचरितमानस में	हिन्दी में
(०) आई (अयो० १३९।५) = आइ = √आ + इ	(०) आकर
(१) धरि[1] (किष्कि० १।४) = √धर् + इ	(१) धरकर
(२) बिहाइ (गीताप्रेस, लंका० दो० १५ ख) = बिहा + – इ	(२) छोड़कर (सं० विहाय = अप० बिहाइ = विहाइ)
(३) जाई (किष्कि० १।४) = जाइ = जा + इ	(३) जाकर

---

१. मि० 'कौसल्या **धरि** धीरज कहई ।
पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ।।' (अयो० १७६।१)
'उठे राम **सुनि** पेम अधीरा ।' (अयो० २४०।८)
'लंकहि चलेउ **सुमिरि** नरहरी ।' (सुन्दर० ४।१)
'पुलकित गात अत्रि **उठि** धाए ।
देखि रामु आतुर **चलि** आए ।।'(अर० ३।५)

(४) कै (बाल० १००।४) = करि> कइ> कै — (४) करके

अप० मारि (हैम व्या० ८।४।४३९।१) = √मार् + इ = धरि (किष्कि० १।४) √धर् + इ।

(विशेष : कै के साथ दुहरी पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग भी मिलता है। ऐसे दुहरे प्रयोग 'सन्देशरासक' में भी मिलते हैं—दहेवि करि (सन्दे०२।१०८) = जलाकर। 'आयुध सर्ब समर्पि कै' —बाल० २०९।–) समर्पि कै = समर्पित करके।)

वर्त्तमानकालिक कृदन्त

रामचरितमानस में	हिन्दी में
(०) जोगवत (अयो० ५९।६) = √जोगव् + अत	(०) रखवाली करती हुई
(१) प्रगटत (अर० २७।१३) = √प्रगट् + अत	(१) प्रकटता हुआ।
(२) पूँछत (अर० ३०।८) = √पूँछ् + अत	(२) पूछते हुए
(३) जात (सुन्दर० २।१) = √जा + त	(३) जाता हुआ।

तात्कालिक कृदन्त

टूटतहीं (बाल० २८६।८) = √टूट् + अत + हीं = टूटते ही।

भूतकालिक कृदन्त

(१) टूट चाप — (बाल० २७८।२) टूट = √टूट + ० (शून्य प्रत्यय)	(१) टूटा हुआ।

[विशेष : टूट (बाल० २७२।३) = टूटा। मोह (उत्तर० ६२।—) = मोहा]

अपूर्णक्रियाद्योतक कृदन्त

(०) बनाएँ (किष्कि० ९।२) = √बना + –एँ	(०) बनाये हुए
(१) लीन्हें (बाल० १८९।६) = √लीन्ह् + एँ	(१) लिये हुए
(२) जोरें (बाल० २०२।३) √जोर् + एँ	(२) जोड़े हुए।
(३) धरें[1] (सुन्दर० २६।४) √धर् + एँ	(३) धरे हुए।

---

१. मिला० 'करें' (विद्यापति, कीर्त्ति० ४।२३८) = किये हुए। जोरैं (सूर० विनय २२२) = जोड़े हुए। मातैं (सूर, सूरसागर, १।११८) = मस्त बने हुए।

३. ६. ७. रामचरितमानस और जनपदीय अवधी एवं बघेली के क्रिया-प्रत्यय :

३. ६. ७. १. वर्त्तमान काल

रामचरितमानस

उ० पु०, एकवचन	उ०पु०, बहुवचन
उत्तम पु०	
करऊँ = √कर् + अउँ (गीता प्रेस, अयो० ५५।४)	फिरहिं = √फिर् + अहिं (किष्कि० २।३
करौं = √कर् = – औं (अयो०५५।४)	
मध्यम पु०	मध्यम पु०
जानहि = √जान् + अहि (बाल० २८३।१)	फिरहु = √फिर् + अहु (किष्कि० १।७)
करसि = √कर् + असि (किष्कि० ९।९)	
अन्य पु०	अन्य पु०
	फिरहिं – √फिर् + अहिं (लंका० ३०।९)
बहइ = √बह् + अइ (अयो० २१६ दो०)	परहिं = √पर् + अहिं (बाल० १९२ छन्द)

३. ६. ७. २. भूतकाल

रामचरितमानस	जनपदीय भाषा
एकवचन	एकवचन
उ० पु०	उ० पु०
चलेउँ (किष्कि० ६।८)	चलेउँ (अवधी)
(= मैं चला)	(= मैं चला)
√चल् + एउँ	√चल् + एउँ

भूतकाल

रामचरितमानस		जनपदीय भाषा	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
म० पु०	म० पु०		
चलेसि (अर०२९।११)	मिलेहु (किष्कि० ७।१६)	चलेस, चलिस	

(=तू चला) (=तुम मिले) (=तू चला)
√चल्+एसि मिल्+एहु[1] √चल्+एस, –इस

भूतकाल

रामचरितमानस		जनपदीय भाषा	
एकव०	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
अ० पु०		अ० पु०	
काढ़िसि (अर० २९।११) (=उसने निकाला। निकाली)। √काढ़्+इसि		लिहिसि (बघेली) (=उसने लिया।ली)। कहिसि (बघेली) (=उसने कहा। कही) √कह्+इसि।	
	देखेन्हि (बाल० १९३।८) (=देखा) √देख्+एन्हि	लजान (बघेली) (वह लजाया, लजाई) √लजान+०	पूछिनि (बघेली) (=उन्होंने पूछा, पूछी, √पूछ्+इनि
आना (अयो०१००।३) (=वह लाया) आना=आन √आन+०		मिलत (अवधी) (=वह मिलता) (√मिल्+अत)	
धरत (बाल०२८२।३) (=वह धरता। धरती) √धर्+अत			

३. ६. ७. ३. भविष्यत्काल

रामचरितमानस		जनपदीय भाषा	
एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०
उ० पु०			
करिहैं[2] (किष्कि०५।७)	करब (अयो० १३६।५)	करिहौं (अवधी)	करब, करबै (करबइ) (अवधी)

---

१. यह प्रत्यय आदरसूचक मध्यमपुरुष एकवचन तथा मध्यमपुरुष बहुवचन में लगता है।

२. सं० करिष्यामि>जैन महा० प्रा० करेहामो>करिहउँ>करिहौं।

करिहउँ (गीता प्रेस, ५।७)

आउब (बाल० २३४।६)

√कर् + इहौं,

√कर् + इहउँ,

भविष्यत्काल

रामचरितमानस		जनपदीय भाषा	
एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०
म० पु०			
कहेसु (किष्कि० १।४) (=तू कहना)	होइहहु (बाल० १५१ दो०) (=तुम होओगे)	करिहै, करिहसि (अवधी)	करिहौं (अवधी)
√कह् + एसु (आज्ञार्थ) √कह् + – एहु।	√हो + इहहु कहेहु[1] (अर० ३१ दो०) (= तुम कहना)		

भविष्यत्काल

रामचरितमानस		जनपदीय भाषा	
एकव०	बहुव०	एकव०	बहुव०
अ० पु०			
मिटिहि (अयो० २२५।२) (=वह मिटेगा)	मिलिहिं (किष्कि० ५।८) (=मिलेंगी)	करी (अवधी)	करिहैं (अवधी)
√मिट् + इहि	√मिल् + इहिं उबरिहिं (किष्कि० ६ दो०) √उबर् + इहिं (किष्कि० ६।–) = उबरेंगे।		

---

१. 'पिय सों कहेहु सँदेसरा।' (सं० माताप्रसाद गुप्त, जायसी 'पदमावत, ३४६।दो०)

होइहहिं (बाल० १८९।४)	होइहहिं (बघेली)
(=वे होंगे)	(=वे होंगे)
हो+इहहिं	हो+इहहिं

३. ६. ८ रामचरितमानस में संयुक्त क्रियाएँ :

क्रियार्थक संज्ञा या सामान्य क्रिया+क्रिया

करैं+लाग=मन महुँ तरक करैं कपि लागा। (सुन्दर० ६।२)

सुनै+लागीं=लागीं सुनै स्रवन मन लाई। (सुन्दर० १३।६)

हारी+होइहि=मोहि मग चलत न होइहि हारी। (अयो० ६७।१)

उड़ावन+चहत=चहत उड़ावन फूंकि पहारू। (बाल० २७३।२)

करन+आएहु=आएहु मोहि करन बड़भागी। (सुन्दर० ६।८)

कहन+लिय=कहि प्रनामु कछु कहन लिय। (अयो० १५२।)

चलन+चहत=चलन चहत बन जीवन नाथू। (अयो० ५८।३)

जान+दे=मोहि जान दे माई। (सुन्दर० २।५)

वर्त्तमानकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया

जात+देखी=गगन पंथ देखी मैं जाता। (किष्किं० ५।४)

जात+देखा=जात पवनसुत देवन्ह देखा। (सुन्दर० २।१)

बरनत+चले=चले दूत बरनत गुन गाथा। (सुन्दर० ५३।१)

रटति+रहति=रटति रहति हरि नाम। (अर० २९।–)

भूतकालिक कृदन्त+क्रिया

खावा+चह=पुरोडास चह रासभ खावा। (अर० २८।५)

गा+चलेउ=चलेउ सो गा पाताल तुरंता। (सुन्दर० १।७)

गा+चहहु=जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। (अयो० १००।८)

पैठे+चहत=चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे। (अयो० २०६।६)

बैठ+रहेउँ=बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा। (किष्किं० ५।३)

लोभाई+रही=जहँ बसंत रितु रही लोभाई। (बाल० २२७।३)

अवरेखी+रही=रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी। (बाल० २६४।४)

गई+रही=गई रही देखन फुलवाई। (बाल० २२८।७)

देखी + चहौं = देखी चहौं जानकी माता। (सुन्दर०८।४)

पूर्वकालिक कृदन्त + क्रिया

आइ + मिलिहिं = जेहि बिधि मिलिहिं जानकी आई। (किष्कि०५।८)

बोलाइ + पठए = गुर बोलाइ पठए दोउ भाई। (अयो०१५७।३)

उठि + बैठ = पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें। (किष्कि०९।१)

उड़ाइ + सक = गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। (सुन्दर ३।३)

हाँकि + सकइ = सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। (अयो०१४३।४)

फरकि + उठीं = फरकि उठीं। (किष्कि०६।१४)

देखाइ + देहि = मातु तात कहँ देहि देखाई। (अयो० १६४।३)

लिखि + गा = गा लिखि राहू। (अयो०५५।२)

धाइ + चले = धाइ चले श्रीराम। (अर०२९।—)

धरि + लेबा = मइँ सिर धरि लेबा। (अयो०१०२।८)

होइ[1] + जाइ = जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। (अयो०१२६।३)

होइ + जाई = तरनिउँ मुनि घरिनी होइ जाई। (अयो० सो०१००।६)

बधि + करि + आनहु = सत्यसंध प्रभु बधि करि[2] ये ही।
आनहु चर्म कहति बैदेही ॥—(अर०२७।५)

अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त + क्रिया

लीन्हें + प्रगटे = प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें। (बाल०१८९।६)

धरें + देख = जहँ तहँ देख धरें धनु बाना। (अयो०१३१।७)

जोरें + ठाढ़ी = अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी (बाल०२०२।३)

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त + क्रिया

× ×

सहोक्त संयुक्त क्रियाएँ

देत + लेत = देत लेत मन संक न धरई। (किष्कि०७।५)

संज्ञा या विशेषण + क्रिया

सुमिरन + कीन्हा = राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। (सुन्दर०६।३)

हित + करइ = हित करई। (किष्कि०७।५)

---

१. सं० प्रभूय > होइ = होकर।

२. मिला० 'पुलकित गात अत्रि उठि धाए।' (अर०३।५)
'लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।' (सुन्दर०४।१)
अप० करि (सन्देशरासक ३।२१२) = करि (मानस, अर०२७,५) = करके।
अप० पेक्खि (सन्देशरासक ३।२१२) = पेखि (मानस, किष्कि०१३।—) = देखकर।

३. ६. ९. रामचरितमानस और सूरसागर के क्रिया-पदों की तुलना

भाषा-निर्णय के तत्त्वों में समापिका-क्रिया-पद बहुत महत्त्व रखते हैं। क्रियापदों के प्रत्यय ही भाषा के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। यदि संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण पद एक बार अपने स्वरूपों को कुछ भिन्न प्रकार से भी व्यक्त करते हों, तो उनसे सम्बद्ध क्रिया-पद, विशेषतः समापिका क्रियाओं के पद ही भाषा के स्वरूप-निर्णय में प्रमुख तत्त्व सिद्ध होते हैं।

यद्यपि मुंशी सदासुखलाल की भाषा में '**स्वभाव करके**'; इंशा अल्ला खाँ की भाषा में 'आतियाँ जातियाँ'; लल्लूलाल की भाषा में '**जाय**' '**न्हाय**'—'**न्हिलाय**' और पण्डित सदल मिश्र की भाषा में **फूलन्ह के बिछौने सोनन्ह के** थंभ, '**भक्तन**', '**देवतान**' आदि प्रयोग मिलते हैं, फिर भी उक्त चारों महानुभावों की भाषा खड़ीबोली हिन्दी कहलाती है। इसका कारण क्या है? इसका कारण उनकी भाषा के वाक्यों के क्रिया-पद (समापिका क्रियाओं के पद) ही हैं, अर्थात्, उनकी भाषा में समापिका क्रियाओं का व्यारकणिक स्वरूप खड़ीबोली का है। अतः, उनकी भाषा को खड़ीबोली ही कहा जाता है। व्याकरणिक ढाँचे की दृष्टि से उक्त चारों लेखकों की भाषा की समापिका क्रियाएँ मिलती-जुलती हैं। अतः, उन सबकी भाषा को खड़ी-बोली कह दिया जाता है।

इसी दृष्टिकोण से हमें यहाँ देखना चाहिए कि 'रामचरितमानस' और 'सूरसागर' की समापिका क्रियाएँ व्याकरणिक ढाँचे में कितना साम्य और वैषम्य रखती हैं? तभी हम 'रामचरितमानस' और 'सूरसागर' की भाषा के स्वरूप-निर्णय में अपना कुछ मत निर्द्धारित कर सकते हैं।

प्रायः यह कह दिया जाता है कि 'रामचरितमानस' की भाषा' अवधी है और 'सूर-सागर' की व्रजभाषा है। समापिका क्रियाओं की रचना के आधार पर यहाँ देखना है कि तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' और सूर-कृत 'सूरसागर' की भाषा में परस्पर क्या समानता और भिन्नता है?

३. ६. ९. १. सामान्य वर्त्तमान काल के धातु-प्रत्यय :

अन्यपुरुष एकवचन

रामचरितमानस	**सूरसागर**
धातु + —अइ	धातु + —ऐ
= √जान् + —अइ = जानइ	= √करक् + —ऐ[1] = करकै
येह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।	= हरि की प्रीति उर माँहि करकै।[2]
(उत्तर० ४।४)	(स्कन्ध० १०।२९८७)

---

१. ऐ प्रत्यय 'मानस' में इच्छार्थ भविष्यत् में भी मिलता है—'कहै' (गीता प्रेस, अयो० ३७।२)

२. सूरसागर की पद संख्या के लिए डॉ० प्रेम नारायण टण्डन-कृत 'सूर की भाषा' पुस्तक से सहायता ली गई है। लेखक इसके लिए उनका आभारी है।

अर्थ : कोई-कोई इस प्रसंग को जानता है।

विशेष : 'रामचरितमानस' का —अइ प्रत्यय सूरसागर में सन्धि रूप ग्रहण करके —ऐ हो गया है। वैसे दोनों ग्रन्थों में —अइ प्रत्यय भी मिलता है। 'मानस' में शून्य प्रत्यय भी अन्य-पुरुषीय एकवचन का सूचक है।

चह्+० = चह

'पुरोडास चह रासभ खावा।'

(अर० २९।५)

अर्थ : यज्ञान्न को गधा खाना चाहता है।

अर्थ : हरि की प्रीति हृदय में करकती है।

धातु+अइ

√कर्+ —अइ—अई = करई

'पुरुष न तिय बध करई।'

(स्कन्ध १०।४)

अर्थ : पुरुष स्त्री का वध नहीं करता है।

अन्यपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

धातु+ —अहिं

√पर्+ —अहिं = परहिं

'ते न **परहिं** भवकूपा।' (बाल० १९२। छन्द)

अर्थ : वे संसार-कूप में नहीं गिरते हैं।

सूरसागर

धातु+ —अहिं

√कर्+ —अहिं = करहिं

'महतारी आरति **करहिं**।'

(स्कन्ध ९।२९)

अर्थ : माताएँ आरती करती हैं।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में —अहिं प्रत्यय ही पाया जाता है।

मध्यमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु+ —अहि

√जान्+ —अहि = जानहि

'निपटहिं द्विज करि **जानहि** मोही।'

(बाल० २८३।१)

अर्थ : क्या तू मुझे बिलकुल ब्राह्मण ही जानता है?

विशेष : 'रामचरितमानस' का — **अहि** प्रत्यय 'ह्' का लोप करके —अइ हुआ है और फिर सन्धीकृत रूप —ऐ ग्रहण

सूरसागर

धातु+ —ऐ

√सम्हार्+ —ऐ = सम्हारै

'रे मन अजहूँ क्यों न **सम्हारै**।'

(स्कन्ध १।६३)

'रे मन! आज भी क्यों नहीं **स्मरण** करता?'

धातु+ —हि

√रिसा+ —हि = रिसाहि

'तनक दधि कारन जसोदा इतौ

करके 'सूरसागर' में प्रयुक्त होने लगा। दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में – अहि या – हि प्रत्यय मिलते हैं।

√चह् + असि = चहसि

'मारा चहसि अधम अभिमानी।'
(किष्कि० ९।१०)

अर्थ : अधम अभिमानी! उसे तू मारना चाहता है?

कहा रिसाहि।' (स्कन्ध १०।३५०)

अर्थ : यशोदा! थोड़े से दही के लिए तू इतना क्यों क्रोध करती है।

√खो + – इसि = खोइसि

'रे मन (तू) जनम अकारथ खोइसि।'
(स्कन्ध १।३३३)

अर्थ : 'रे मन! तू व्यर्थ जन्म खोता है।'

मध्यमपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

कृदन्त क्रियापद

धातु + – अत

√चह् + – अत = चहत

'चहत उड़ावन फूंकि पहारू।'
(बाल० २७३।२)

अर्थ : तुम पहाड़ को फूंक मारकर उड़ाना चाहते हो।

सूरसागर

कृदन्त क्रियापद

धातु + – अत

√दुरा + = (व् के आगम-सहित) = दुरावत

'तुम बदन दुरावत।'
(स्कन्ध १०।२७९)

अर्थ : तुम मुँह छिपाते हो।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में – अत प्रत्यय है।

आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु + – उ

√सुन् + – उ = सुनु[1]

'सुनु कपि जिअँ मानसि जनि ऊना'
(किष्कि० ३।७)

अर्थ : हे कपि! तू सुन, मन में ग्लानि मत मान।

सूरसागर

धातु + – उ

√आ + – उ = आउ

'हरि की सरन महँ तू आउ।'
(स्कन्ध १।३१४)

अर्थ : तू हरि की शरण में आ।

---

१. मिला० 'ज्ञान डोरि करु।' (उस्मान, चित्रावली, १।२३।५)

√ले + — हि = लेहि

'कहेउ कृपाल लेहि उतराई।'

(अयो० १०२।४)

अर्थ : कृपालु राम ने कहा कि तू उतराई ले।

विशेष : दोनों ग्रन्थों में — उ प्रत्यय है। यह आज्ञार्थ या प्रार्थना का सूचक है। इसी प्रकार — हि प्रत्यय भी दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में मिलता है।

√ले + — हि = लेहि

'मैं बर देउँ तोहि सो लेहि।'

(स्कन्ध १।२२९)

अर्थ : मैं तुझे वर देता हूँ, तू उसे ले।

विशेष : ब्रजभाषा में आज्ञा या विधि अर्थ में 'करै' अन्यपुरुष की एकवचनीय क्रिया है। इस अर्थ में तुलसी ने 'मानस' में 'करउ' (कर् + — अउ) का प्रयोग किया है। 'करउ अनुग्रह सोइ—(गीता प्रेस, बाल०, सो० १।-)

अर्थ : वही अनुग्रह करे। (गुप्त और काशि० संस्क० में 'करौ' पाठ है।

आज्ञार्थ मध्यमपुरुष बहुचवन

रामचरितमानस

धातु + — अहु

√आन् + — अहु = आनहु

'आनहु चर्म कहति बैदेही।'

(अर० २७।५)

अर्थ : वैदेही कहती है कि चर्म लाओ (चर्म लाइए)।

विशेष : आज्ञा या प्रार्थना में दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में-अहु प्रत्यय है। यही अहु हकार का लोप करके — अउ बना और फिर सन्धि-रूप ग्रहण करके सूरसागर में — औ हो गया। 'करौ' (स्कन्ध १०।४०) के अन्त में यही — औ है।

सूरसागर

धातु + — अहू = आनहू

√आन् + — अहु ~ अहू = आनहू।

'काजर रोरी आनहू (मिलि) करौ छठी कौ चार।' (स्कन्ध १०।४०)

अर्थ : काजल और रोली लाओ (लाइए) और मिलकर छठी का दस्तूर करो (कीजिए)।

√सुन् + — अहुँ = सुनहुँ

'तुम सुनहुँ[1] जशोदा गोरी।'

(स्कन्ध १०।२८६)

अर्थ : हे गोरी (सखी) यशोदा! तुम सुनो।

---

१. अलीगढ़-जनपद की ब्रजभाषा में आज्ञार्थ के मध्यमपरुष एकवचन में सुनि और बहुवचन में 'सुनौ' क्रियापद बोले जाते हैं।

विशेष : 'रामचरितमानस' के क्रियापदों में में – अहुँ प्रत्यय पाया तो जाता है, किन्तु वह अन्यपुरुषीय बहुवचन इच्छार्थ भविष्यत् काल का सूचक है। जैसे – 'राखहुँ पलक नयन कीनाईं।' (अयो० ५७।१)

अर्थ : हे राम ! तुम्हें देव-पितर ऐसे रखें, जैसे पलक नेत्रों को रखते हैं।

विशेष : 'मानस' में – अहु प्रत्यय का प्रयोग सामान्य वर्त्तमान काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन में भी मिलता है—'खोजहु जाहि' (किष्कि० २७।-) (=जिसे तुम खोजते हो)।

उत्तमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु + – ऊँ

√दे + – उँ~ऊँ = देऊँ

'भरत हि समर सिखावन देऊँ।'
(अयो० २३०।३)

अर्थ : युद्ध में भरत को दण्ड देता हूँ।

धातु + अउँ = √बंद + – अउँ = बंदउँ

'बंदउँ गुरु पद' (गीता प्रेस,)।
(बाल० १।१)

धातु + – औं

√बद् + – औं = बंदौं

'बंदौं गुरु पद पदुम परागा'
(बाल० १।१)

अर्थ : गुरु के चरण-कमलों के पराग की वन्दना करता हूँ।

विशेष : दोनों ग्रन्थों में – उँ और – औं प्रत्यय पाये जाते हैं।—अउँ का विकास – औं है।

सूरसागर

धातु + – ऊँ

√दे + उँ~ – ऊँ = देऊँ

'तातें देऊँ तुम्हैं मैं साप।'
(स्कन्ध ३।५)

अर्थ : इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ।

धातु + – औं

√बंद + – औं = बंदौं

'चरम कमल बंदौं हरि राइ।'
(स्कन्ध १।१)

अर्थ : महाराज कृष्ण के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।

उत्तमपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

धातु + –अहिं
√फिर् + –अहिं = फिरहिं
'तुम-से खल मृग खोजत फिरहीं ।
(अर० १९।९)

अर्थ : तुम-से दुष्ट हिरनों को खोजते फिरते हैं ।

सूरसागर

धातु + ऐं
√चह् + –ऐं = चहैं
'यहै हम तुम सौं चहैं ।'
(स्कन्ध ३।६)

अर्थ : यही हम तुमसे चाहती हैं ।

विशेष : 'रामचरितमानस' का –अहिं प्रत्यय हकार का लोप करके –अइँ हुआ और फिर सन्धि-रूप लेकर 'सूरसागर' में –ऐं हो गया ।

३. ६. ९. २. सामान्य भूतकाल के धातु-प्रत्यय :

अन्यपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु + –अयउ
√भ् + –अयऊ~अयऊ = भयऊ
'तब मारीच कपट मृग भयऊ[1] ।'
(गीताप्रेस, अर० २७।१)

अर्थ : तब मारीच कपट का मृग हुआ ।

√भ् + –अयो = भयो
'रव गर्जत भयो ।'
(लंका० ९७।छन्द)

अर्थ : गरजता हुआ शब्द हुआ ।

'भूमि परत भा डाबर पानी ।'
(किष्किं० १४।६)

अर्थ : पृथ्वी पर पड़ते ही पानी मैला हुआ ।

सूरसागर

धातु + –अयउ
√भ् + –अयउ = भयउ
'नृप कै मन भयउ कुभाउ ।'
(स्कन्ध १।२९०)

अर्थ : राजा के मन में कुभाव हुआ ।

√भ् + –अयौ = भयौ
'तहँ न भयौ बिस्राम ।'
(स्कन्ध १।५७)

अर्त : तहाँ विश्राम न हुआ ।

√भ् + –औ = भौ (पुंलिंग में)
'वह सुख बहुरि न भौ री ।
(स्कन्ध १०।२३७१)

अर्थ : अरी ! फिर वह सुख नहीं हुआ ।

---

१. काशिराज-संस्करण में भएऊ (काशि०, अर० २७।१) पाठ है ।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में —अयउ प्रत्यय मिलते हैं। —अयो, —अयौ भी लगभग समान ही हैं।

√ग्+ —अई~अइ=गइ

'घरी पंच गइ राति।'

(बाल० ३५४।—)

अर्थ : पाँच घड़ी रात बीत गई।

√भ्+ —अई=भई भइ (स्त्रीलिंग)

'जगु भय मगन गगन भइ बानी।'

(अयो० २३१।१)

अर्थ : संसार भयमग्न हुआ और आकाश वाणी हुई।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के स्त्रीलिंग एकवचन क्रियापदों में एक-सा प्रत्यय —अई पाया जाता है।

कर्मवाच्य क्रियापद

√जान्+ —आ=जाना (पुंलिंग)

'जाना जरठ जटायू येहा।'

(अर० २९।१४)

अर्थ : दशकन्धर (रावण) के द्वारा **जाना गया** कि यह जटायु बुड्ढा है।

√कीन्ह्+ —ई=कीन्ही (स्त्री०)

विशेष : सूर की भाषा में कर्तृवाच्य का भूतकालीन पुंलिंग एकवचन कृदन्त 'भयौ' और स्त्रीलिंग 'भई' मिलता है। किन्तु, तुलसी के 'मानस' में इनके समानान्तर 'भा' और 'भई' क्रियाएँ हैं :

'जगु भयमगन गगन भइ बानी।'

(अयो० २३१।१)

अर्थ : संसार भयमग्न हुआ और आकाश में वाणी हुई।

√ग्+ —अई=गई

'बकी गई घोष मैं।'(स्कन्ध १।१२२)

अर्थ : बकी घोष (अहीरों की बस्ती) में गई।

√भ्+ —अई=भई (स्त्रीलिंग)

'मुरली भई रानी।'

(स्कन्ध १०।१३२९)

अर्थ : मुरली रानी हुई।

कर्मवाच्य क्रियापद

√जान्+ —आ=जाना (पुंलिंग)

'गर्व भयौ ब्रजनारि कौं जब ही हरि **जाना**।'

(स्कन्ध १०।१०८५)

अर्थ : ब्रजनारी को घमण्ड हुआ, भगवान् के द्वारा यह **जाना गया**।

√कीन्ह्+ —ई=कीन्ही (स्त्री०)

'परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही ।'
(बाल० २३५।३)

अर्थ : परम प्रेम रूपी मृदु स्याही बनाई गई ।

'कपिल स्तुति तिहि बहु बिधि कीन्ही ।
(स्कन्ध ९।९)

अर्थ : उसके द्वारा कपिल की स्तुति की गई ।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में समान प्रत्यय—आ (पु०) और—ई (स्त्री०) हैं ।

विशेष : रामचरितमानस में √बोल् आदि धातुओं के भूतकालीन प्रयोग कर्त्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में मिलते हैं :

१ कर्त्तृवाच्य— 'सरल सुभाउ राम महतारी ।
बोली बचन धीर धरि भारी ।।'
(अयो० ५५।६)

२ कर्मवाच्य—'मरम बचन जब सीता बोला ।'
(अर० २८।५)

'सीता परम रुचिर मृग देखा ।'
(अर० २७।३)

अन्यपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

कृदन्त क्रियापद

धातु+—अए

√भ् +—अए=भए (पुंलिग)

'श्रीहत भए भूप धनु टूटें ।'
(बाल० २६३।५)

अर्थ : राजा धनुष टूटने से कान्तिहीन हुए ।

√ग्+—अईं=गईं (स्त्रीलिंग)

'गईं भवानी भवन बहोरी'
(बाल० २३५।४)

अर्थ : फिर वे गौरी के मन्दिर को गईं ।

सूरसागर

कृदन्त क्रियापद

धातु+—अए

√भ् +—अए=भए= (पुंलिंग)

'नैना भए पराए चेरे ।'
(स्कन्ध १०।२३९५)

अर्थ : नेत्र दूसरे के दास हुए ।

√भ्+—अईं=भईं (स्त्रीलिंग)

'सिथिल भईं ब्रज नारि ।'
(स्कन्ध १०।२८३)

अर्थ : ब्रजनारियाँ शिथिल हुईं ।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में समान प्रत्यय हैं।

मध्यमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु+ —ए) सि

√चल्+ —ए) सि=चले)[1] सि

'निर्भय चले) सि न जाने) हि मोही।' (अर० २६।११)

अर्थ : तू निडर होकर चला, मुझे न जाना।

विशेष : रामचरितमानस 'में ह्रस्व ए) के साथ ए) सि प्रत्यय है, तो 'सूरसागर' में 'इसि' प्रत्यय है। दोनों में पर्याप्त साम्य है। ह्रस्व 'ए)' वास्तव में —इ के बहुत निकट है।

सूरसागर

धातु+ —इसि

√सो+ —इसि=सोइसि

'उदर भरे परि सोइसि।' (स्कन्ध १।३३३)

अर्थ : पेट भर जाने पर तू सोया।

विशेष : 'सोइसि' अवधी का प्रयोग है। तिङन्त रूपवाली क्रियाएँ व्रजभाषा में अवधी की अपेक्षा कम हैं। 'सूरसागर' में 'सोइसि' जैसे प्रयोग अवधी का पुट सिद्ध करते हैं।

मध्यमपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

धातु+ —ए

√आ+ —ए=आए

'को तुम्ह तात कहाँ ते आए।' (उत्तर० २।७)

अर्थ : हे तात! तुम कौन हो और कहाँ से आये हो?

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में —ए प्रत्यय ही पाया जाता है।

सूरसागर

धातु+ —ए

√उतर्+ —ए=उतरे

'कहौ कपि कैसे उतरे पार।' (स्कन्ध० ६।८९)

अर्थ : हे कपि! बताओ कि तुम किस प्रकार पार उतरे?

---

१. 'चलेसि' में 'ले' के बाद लगा हुआ छोटे कोष्ठक का-सा ()) चिह्न ह्रस्व 'ए' ध्वनि का सूचक है।

उत्तमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु+ —ए) उँ[1]

√रह्+ —ए) उँ = रहे) उँ

'मास दिवस तहँ रहे)उँ खरारी ।' (किष्किं० ६।७)

अर्थ : हे खरारि ! मैं तीस दिन वहाँ रहा ।

√रह्+ —इउँ = रहिउँ ।[2]

'ता तें अब लगि रहिउँ कुमारी ।' (अर० १७।१०)

अर्थ : इस कारण अबतक मैं कुमारी रही ।

विशेष : वास्तव में 'रामचरित मानस' का—ए) उँ प्रत्यय सन्धीकृत रूप लेकर सूर के 'सूरसागर' में —यौं हो गया है । ह्रस्व० 'ए'(ए) स्वर —इ के अधिक निकट है । अत: 'इ+उँ = यौं, फिर 'यौं' हो गया ।

सूरसागर

धातु+ —यौं

√पर्+ —यौं = पर्यौं

'मैं पर्यौं मोह की फाँसी ।' (स्कन्ध १।१११)

अर्थ : मैं मोह की फाँस में पड़ा ।

√नाच् + —यौ = नाच्यौ

"अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल ।" (स्कन्ध १।१५३)

अर्थ : हे गोपाल ! अब मैं बहुत नाचा ।

विशेष : सूरसागर की 'नाच्यौ' आदि भूतकालीन क्रियाएँ कर्त्ता के लिंग का प्रभाव मानती हैं । अतः कृदन्त-क्रियाएँ हैं । पु० में नाच्यौ, स्त्री० में नाची ।

उत्तमपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

धातु+ —ए

√हार्+ —ए = हारे

'सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।' (बाल० २८२।८)

अर्थ : सब प्रकार हम तुम से पराजित हुए ।

सूरसागर

धातु+ —ए

√पा + —ए = पाए

'(हम) अस्व खोज कतहुँ नहिं पाए ।' (स्कन्ध ९।९)

अर्थ : कहीं भी हम घोड़े को नहीं खोज पाये ।

---

१. यह प्रत्यय पुंसूचक भी है ।

२. स्त्रीलिंग 'रहिउँ' ।

विशेष : दोनों ही ग्रन्थों के क्रियापदों में —ए प्रत्यय पाया जाता है।

३. ६. ६. ३ सामान्य भविष्यत् काल के धातु-प्रत्यय :

अन्यपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु + —इहि

√मिल् + —इहि = मिलिहि

'जे) हि बिधि मिलिहि जानकी आई।'

(किष्कि० ५।८)

अर्थ : जिस तरह जानकी आ मिलेगी।

√मिट् + —इहि = मिटिहि

'मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू।' (अयो० २२५।२)

अर्थ : राम मिलेंगे और दुःख-दाह मिटेगा।

√कर् + —ऐगो = करैगो।

'प्रभु अभय करैगो' तोहि।'

(लंका० २०।—)

अर्थ : प्रभु तुझे अभय करेगा।

√हो + —ई = होई

'ताकर नाम भरत अस होई।'

(बाल० १९७।७)

अर्थ : उसका नाम भरत होगा।

'धनुष जज्ञ जेहि कारन होई।'

(बाल० २३१।१)

अर्थ : जिसके कारण धनुष-यज्ञ होगा।

सूरसागर

धातु + —इहि

√तज् + —इहि = तजिहि

'मैं निज प्रान तजौंगो सुन कपि, तजिहि जानकी सुनिकै।'

(स्कन्ध ९।१४)

अर्थ : हे कपि सुन, मैं अपने प्राण त्याग दूँगा और इस समाचार को सुनकर जानकी भी प्राण त्याग देगी।

√कर् + —ऐगो = करैगो।

'तेरौ कोऊ कहा करैगो।'

(स्कन्ध १०।१४१७)

अर्थ : कोई तेरा क्या करेगा?

√हो + —ई = होई

'कौन ऐसौ जो मोहित न होई'

(स्कन्ध ८।१०)

अर्थ : कौन ऐसा है, जो मोहित न होगा।

विशेष : 'तजिहि, 'होई' अवधी के प्रयोग हैं।

१. 'करैगो' प्रयोग कन्नौजी प्रधान सोरों की बोली का है।

√जा + —ई = जाई

'तरनिउँ मुनि घरिनी होइ जाई ।'

(अयो०, सो० १००।६)

अर्थ : नाव भी मुनि की गृहिणी हो जायगी ।

'न होइ निबाह ।' (बाल० १५६।—)

अर्थ : बचाव न होगा ।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापदों में —इहि प्रत्यय समान है । —ऐगो तथा —ऐगी में कोई विशेष अन्तर नहीं है । —ई प्रत्यय दोनों में समान है । यह —ई प्रत्यय ही यत्र-तत्र —इ हो गया है ।

अन्यपुरुष, बहुवचन

रामचरितमानस

धातु + —इहिं

√उबर् + —इहिं = उबरिहिं

'ब्रह्म रुद्र सरनागत, गएँ न उबरिहिं प्रान ।'

(किष्कि० ६।—)

अर्थ : ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी प्राण न बचेंगे ।

√कर् + —इहहिं = करिहहिं

'करिहहिं बिधि मो सन ये प्रीती ।'

(किष्कि० ४।८)

√कर् + —अहिंगे । 'रामु बास करहिंगे' (किष्कि० १२।—)

अर्थ : राम कुछ दिन वास करेंगे ।

विशेष : 'रामचरितमानस' के —इहहिं प्रत्यय का विकास —इहइँ में हुआ और फिर सन्धीकृत रूप लेकर

सूरसागर

धातु + —इहैं

√कर + —इहैं = करिहैं

'हरि करिहैं कलंकि अवतार ।'

(स्कन्ध १२।३)

अर्थ : हरि कलंकि अवतार करेंगे । (आदरसूचक भाव में 'करिहैं' क्रिया बहुवचन में प्रयुक्त है) ।

√कर् + —अहिंगे = करहिंगे

'छमा करहिंगे श्री सुन्दरबर ।'

(स्कन्ध १०।९४६)

अर्थ : श्रीसुन्दरवर क्षमा करेंगे ।

सूरसागर में 'इहैं' हो गया। इहिं
से भी—इहैं बहुत भिन्न नहीं है।
—अहिगे दोनों में समान है।
'करहिंगे' व्रजभाषा-प्रयोग है।

मध्यमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु + —अहिगो

√पा + —अहिगो (व् के आगम के साथ) = पावहिगो।

'या को भलु **पावहिगो** आगे।'[1]
(लंका०, सो० ३३।८)

अर्थ : तू इसका फल **पावेगा**।

विशेष : 'रामचरितमानस' में ओकार और 'सूरसागर' में औकार के साथ क्रिया-पद आये हैं। प्रत्यय लगभग एक ही ही है।' 'पावहिगो' व्रजभाषा का प्रयोग है।

सूरसागर

धातु + —इगौ

√हो + —इगौ—**होइगौ** :

'छनकहिं मैं (तू) भस्म **होइगौ**।'
(स्कन्ध १०।५५०)

अर्थ : तू क्षण में भस्म होगा।

मध्यमपुरुष, बहुवचन —

रामचरितमानस

धातु + —इहहु

√हो + —इहहु = होइहहु

'**होइहहु** अवध भुआल।'

अर्थ : तुम अयोध्या के राजा होओगे।

√प + —इहहु = पैहहु

'**पैहहु** खोजहु जाहि।' (किष्किं० २७।—)

अर्थ : तुम जिसे खोजते हो, **पाओगे**।
—अब प्रत्ययान्त प्रयोग भी मिलते हैं :

'पिय तुम्ह ताहि **जितब** संग्रामा।'

अर्थ : प्रिय ! तुम उसे **संग्राम** में जीतोगे ?

सूरसागर

धातु + —इहौ

√पा + इहौ = पाइहौ।

'बिना कष्ट यह फल **पाइहौ**।

अर्थ : कष्ट के बिना यह फल तुम पाओगे।

---

१. गीता प्रेस – संस्करण में 'आगें' पाठ है।

उत्तमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु+इहउँ

√कर्+ –इहउँ=करिहउँ

'सब प्रकार **करिहउँ** सेवकाई।'

(गीता प्रेस, किष्कि० ५।७)

√कर्+ –इहौं=करिहौं

'सब प्रकार करिहौं सेवकाई।'

(किष्कि० ५।७)

अर्थ : मैं सब प्रकार सेवा **करूँगा**।

विशेष : अवधी में 'करिहौं' का अन्तिम औं सन्ध्यक्षर के रूप में उच्चरित होता है। कुछ उच्चारण भेद-से दोनों ग्रन्थों के क्रियापद-प्रत्यय वस्तुतः एक हैं।

विशेष : रामचरितमानस के क्रियापद के— –इहहु प्रत्यय में द्वितीय हकार का लोप होकर—इहउ बना, फिर सन्धि-रूप ग्रहण करके 'सूरसागर' में—इहौ हो गया। 'मानस'—इहउ='सागर'—इहौ।

सूरसागर

धातु+ –इहौं

√कर्+ –इहौं=करिहौं

'सेवा मैं **करिहौं**।' (स्कन्ध० १।२८४)

अर्थ : मैं सेवा **करूँगा**।

विशेष : आज व्रजभाषा के उच्चारण के अनुसार कह सकते हैं कि 'सूरसागर' के 'करिहौं' क्रियापद का अन्तिल —औं पश्च विवृत मूल स्वर है। 'करिहौं' सन्ध्यक्षर रूप में 'औं' (अउँ) अवधी का प्रयोग है।

उत्तमपुरुष, एकवचन

रामचरितमानस

धातु+ –अब

√फिर्+अब=फिरब

√कर्+ –अब=करब

'**फिरब** बहोरि तुम्हहि सिरु नाई।'

(अयो० ११२।८)

अर्थ : फिर तुम्हें प्रणाम करके हम **लौटेंगे**।

'हम सब भाँति करब सेवकाई।'

(अयो० १३६।५)

अर्थ : हम सब प्रकार सेवा करेंगे।

सूरसागर

धातु+ –अब

√कर्+ –अब=करब

'हम तेई **करब**[१] उपाइ।'

(स्कन्ध १०।३७१०)

अर्थ : हम वे ही उपाय **करेंगे**।

विशेष : करब' अवधी-भाषा का भविष्य-कालीन बहुवचन में उत्तमपुरुषीय तिङन्त प्रयोग है। किन्तु, इसे सूर ने

---

१. सं० कर्त्तव्य : >अप० करिएव्व (हैम व्या० ८।४।४३८।१)>करब।

विशेष : दोनों ग्रन्थों के क्रियापद-प्रत्यय एक हैं, अर्थात् —अब ।

अपनी व्रजभाषा में भी प्रयुक्त किया है। तुलसी के 'मानस' में कृदन्त प्रयोग भी कर्मवाच्य और भाववाच्य में मिलते हैं :

(१) कर्मवाच्य में :

'मैं कछु करबि ललित नर लीला ।
(अर० दो० २४।१)

(२) भाववाच्य में :

'अब कछु कहब जीभ करि दूजी ।'
(अयो० १६।१)

३. ६. ६. ४ निष्कर्ष :

'रामचरितमानस' और सूरसागर के उपर्युक्त क्रियापदों के प्रत्ययों का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि तुलसी के मानस में सूरसागर की भाषा के तत्त्व और सूर के सूरसागर में 'मानस' की भाषा के तत्त्व सहज भाव से समाविष्ट हो गए हैं। जिस प्रकार 'सूरसागर' की भाषा व्रजभाषा का प्राधान्य ग्रहण करते हुए भी 'अवधी' के तत्त्व रखती है, उसी प्रकार 'मानस' की अवधी भी व्रजभाषा के तत्त्व ग्रहण कर गई है। 'मानस' की अवधी में व्रजी के इन तत्त्वों को देखकर हम यदि 'मानस' की भाषा को 'व्रजावधी' कह दें, तो अत्युक्ति न होगी, परन्तु इस 'व्रजावधी' में आधिक्य अवधी के तत्त्वों का ही है। तुलसी दोनों भाषाओं (अवधी और व्रजी) के ज्ञाता थे। व्रजभाषा उस समय राष्ट्रभाषा के रूप में साहित्यिक आसन पर विराजमान थी। व्रज-प्रदेश से बाहर रहनेवाले कवि भी व्रजभाषा में कविता लिखकर राष्ट्रीय गौरव प्राप्त करते थे। अवधी की काव्य-सर्जना के क्षणों में सहज भाव से ही अनजाने में तुलसी के 'मानस' में व्रजभाषा के प्रयोग में आ गये हैं। तुलसी के 'मानस' में शब्द और व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से अवधी और व्रजभाषा, दोनों ही आसन बिछाकर बैठी हैं। मानस की इस व्रजावधी भाषा के स्रोतों के दर्शन हमें हेमचन्द्रीय अपभ्रंश-भाषा में भी मिल जाते हैं। मानस की शब्दावली पर विचार किया जाए, तो शौरसेनी प्राकृत और अर्द्धमागधी प्राकृत की शब्दावली की विकास-परम्परा में मानस-शब्द प्राप्त हो जाते हैं।

उदाहरण के लिए, यहाँ कुछ शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं, जिससे पता लगा सकता है कि 'मानस' की शब्दावली में शौरसेनी प्राकृत और अर्द्धमागधी प्राकृत के बीज समाविष्ट हैं। 'मानस' के क्रियापदों और शब्दों के सन्धि-साहित्य (विवृति) की प्रवृत्ति को सन्धीभूत कर दिया जाय, तो उनका व्रजभाषा – रूप बन जाता है। जैसे—जानइ (उत्तर० ४।४) = व्रज०

जानै[1]। भयऊ (अर० २७।१) = व्रज० भयौ। करिहउँ (किष्कि० ५।७) व्रज० करिहौं। किआरीं (किष्कि० १५।७) = व्रज० क्यारी। पिआरी (अयो० ५८।८) = व्रज० प्यारी।

३. ६. १० तिङन्त क्रियाएँ :

अपभ्रंश और रामचरितमानस के क्रियापद-रूपान्त :

सामान्य वर्त्तमान, उत्तमपुरुष

अपभ्रंश		**रामचरितमानस**	
एकवचन		**एकवचन**	
पद	**धातु + प्रत्यय**	**पद**	**धातु + प्रत्यय**
करउँ (हैम व्या० ८।४।३७०।२)	= √कर् + – अउँ	करउँ (बाल ८।२)	= √कर् + – अउँ
करउँ = मैं करता हूँ, मैं करूँ।		करउँ = मैं करता हूँ।	

सामान्य वर्त्तमान, मध्यमपुरुष :

अपभ्रंश		**रामचरितमानस**	
एकवचन		**एकवचन**	
पद	**धातु + प्रत्यय**	**पद**	**धातु + प्रत्यय**
मरहि (हैम० व्या० ८।४।३६८।१)	= √मर् + – अहि	करहि~करहि (उत्तर० ११२।१४)	= √कर् + – अहि
मरहि = (तू) मारता है।		करहि[2] = (तू) करता है।	

---

१. 'जानै' (√जान् + – ऐ) क्रिया का प्रयोग 'मानस' में भी मिलता है। गीता प्रेस, गोरखपुरवाले संस्करण में ऐसे प्रयोग पर्याप्त मिलते हैं।

'को जग **जानै**।' (गीता प्रेस, अयो० ७७।—)
'को जग **जानइ** जोगु।' (गुप्त-संस्क०, अयो० ७७।—)
'को जग **जानइ** जोगु।' (काशिराज०, अयो० ७७।—)
'सो किमि **जानै** तीय सुभाऊ' (गीताप्रेस, अयो० १६२।५)
'सो किमि **जानइ** तीअ सुभाऊ' (गुप्त-संस्क०, अयो० १६२।५)
'सो किमि **जानइँ** तीय सुभाऊ' (काशिराज०, अयो० १६१।५)
'सब मोहि कहँ **जानै** दृढ़ सेवा।' (गीता प्रेस, अर० १६।१०)
'सब मोहि कहँ **जानै** दृढ़ सेवा।' (गुप्त-संस्क०, अर० १६।१०)
'सब मोहि कहँ **जानै** दृढ़ सेवा।' (काशिराज०, अर० १६।१०)

२. करहि = तू करता है। सुनहि (बाल० ५१।६) = तू सुन।

करसि[1] (लंका० २५।-) = √कर् + —असि = करसि = (तू) करता है ।

अपभ्रंश	रामचरितमानस
बहुवचन	**बहुवचन**
इच्छहु (हैम व्या० ८।४।३८४।१) = √इछ् + —अहु[2]	फिरहु (किष्कि० १।७) √फिर् + —अहु
इच्छहु = (तुम) चाहते हो ।	फिरहु = (तुम) फिरते हो ।

सामान्य वर्त्तमान, अन्यपुरुष :

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
एकवचन		**एकवचन**	
पद	**धातु + प्रत्यय**	**पद**	**धातु + प्रत्यय**
होइ (हैम व्या० ८।४।४०१।१)	= √हो + —इ	होइ (बाल० ७।६)	= √हो + —इ
होइ = होता है ।		होइ = होता है ।	
करइ (हैम व्या० ८।४।३३८।१)	= √कर् + —अइ	करइ (गीता प्रेस, बाल ४।—)	= √कर् + —अइ
करइ = करता है ।		करइ = करता है ।	
बहुवचन		**बहुवचन**	
पद	**धातु + प्रत्यय**	**पद**	**धातु + प्रत्यय**
करहिं (हैम व्या० ८।४। ३८२।१)	= √कर् + —अहिं	करहिं (बाल० ७।४)	= √कर् + —अहिं
करहिं = (वे) करते हैं ।		करहिं = (वे) करते हैं ।	

वर्त्तमानकाल, आज्ञादि अर्थ

मध्यमपुरुष, एकवचन

अपभ्रंश		रामचरितमानस	
पद	**धातु + प्रत्यय**	**पद**	**धातु + प्रत्यय**
विलम्बु (हैम व्या० ८।४।३८७।२)	= √विलम्ब् + —उ	करु[3] (अयो० १०१)	= √कर् + —उ

---

१. प्रा० करसि > मानस में करसि = तू करता है ।

२. सं० इच्छथ > अप० इच्छहु > अव० इच्छहु ।

३. मिला०—कीर्त्तिलता में **'सुण'**, **'कह'**; 'पउमचरिउ' में **सुणि, कहि, करि**; 'पउमचरिउ' में **णीसरु, मरु, हसु** । (दे० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव-कृत 'अपभ्रंश-भाषा का अध्ययन', १९६५, पृ० २१२) ।

विलम्बु = (तू) बिता, (तू) रह ।
करहि (हैम व्या० = √कर् + –अहि ८।४।३८५)
करहि = (तू) कर

करु = (तू) कर ।
उतारहि = (अयो० १०१।२) = √उतार् + –अहि
(तू) उतार

मध्यमपुरुष, बहुवचन

पद	धातु + प्रत्यय	पद	धातु + प्रत्यय
करहु (हैम व्या० ८।४।३४६)	= √कर् + –अहु	करहु (लंका० सोरठा १७।—)	= √कर् + –अहु

करहु = (तुम) करो ।
सं० कुरुथ = अप० करहु > करहु ।

करहु = (तुम) करो ।

कृदन्त क्रियाएँ

सामान्य भूतकाल, पुंलिंग

अपभ्रंश

एकवचन

गयउ (हैम व्या० ८।४।४२२।१५)
= √ग् + –अयउ
गयउ = (वह) गया ।

रामचरितमानस

एकवचन

गयऊ ~ गयउ (गीता प्रेस, अर० २७।१)
= √ग् + –अयउ
गयउ = (वह) गया ।

सामान्य भूतकाल, स्त्रीलिंग

एकवचन

गइअ (हैम व्या० ८।४।३६७।४)
= √ग् + –अइअ
= (वह) गई ।

एकवचन

गई (बाल० ७२।५) = √ग् + –अई
= (वह) गई ।

पूर्वकालिक कृदन्त

अपभ्रंश

करि[1] (हैम व्या० ८।४।३५७।३)
= √कर् + –इ
करि = करके

रामचरितमानस

करि (बाल० २।२) = √कर् + –इ

करि = करके

---

१. प्रा० बड्ढइ > 'रामचरितमानस' बिढ़इ (अयो० १६१।२) = बढ़ाकर । बइसि (विद्यापति, कीर्त्ति० २।७) = बैठकर ।

हेत्वर्थ कृदन्त (क्रियार्थक क्रिया)

अपभ्रंश	रामचरितमानस
करण (हैम व्या० ८।४।४४१।१)	चलन (अयो० ५८।३)
=√कर् + –अण	=√चल् + –अन
करण = करना, करने के लिए	चलन = चलना, चलने के लिए
'करण पडिहाइ।' (हैम व्या० ८।४।४४१।१)	'**चलन** चहत बन जीवननाथू।' (अयो० ५८।३)
अर्थ : करना सुहाता है।	**अर्थ** : जीवन-नाथ वन को चलना चाहते हैं।
सं० कर्त्तुं प्रतिभाति = करण पडिहाइ।	सं० चलितुं इच्छति = चलन चहत।

३. ७. रामचरितमानस में अव्यय :

३. ७. १. क्रियाविशेषण अव्यय :

कालसूचक क्रियाविशेषण अव्यय :

आजु (= आज)

'**आजु**[१] राम सेवकु जसु लेऊँ।'
(अयो० २३०।३)

अर्थ : आज राम का सेवक होने का यश लेता हूँ।

कालि (= कल)

'पुनि आउब एहि बेरिआँ **काली**।'
(बाल० २३४।६)

अर्थ : कल हम इस समय **फिर** आएँगी।

पुनि (= फिर)

'**पुनि** सिख दीन्हि बोलि लघु भाई।'
(अयो० ३२३।२)

अर्थ : फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी।

बहोरि (= फिर)

'गई भवानी भवन बहोरी।'
(बाल० २३५।४)

अर्थ : फिर भवानी के मन्दिर में गई।

---

१. सामान्यतः, तुलसी 'रामचरितमानस' में अकारान्त पुंलिंग प्रातिपदिकों को प्रथमा या द्वितीया विभक्ति के एकवचन में ही उकारान्त करते हैं; किन्तु **'आजु'** अव्यय में भी उसी प्रवृत्ति का सादृश्य माना जा सकता है।

स्थानसूचक क्रियाविशेषण अव्यय :

इहाँ (=यहाँ)

'**इहाँ** भानुकुल कमल दिवाकर।'
(उत्तर० ४।१)

अर्थ : यहाँ सूर्यवंश के कमलों के लिए सूर्य-समान राम।

'इहाँ स्रापबस आवत नाहीं।'
(किष्कि० ६।१३)

अर्थ : '**यहाँ** शापवश नहीं आता।

'**इहाँ** सुबेल सैल रघुबीरा।'
(लंका० ११।१)

अर्थ : **यहाँ** सुबेल पर्वत पर रघुवीर।

उहाँ (=वहाँ)

'**उहाँ** रामु रजनी अवसेषा।'
(अयो० २२६।३)

अर्थ : वहाँ रात्रि शेष रहने पर राम (जागे)।

'**उहाँ** रामु लछिमनहि निहारी।'
(लंका० ६१।१)

अर्थ : वहाँ राम लक्ष्मण को देखकर।

जहाँ लगि (=जहांतक)

'जाब **जहाँ लगि** तहँ पहुँचाई।'
(अयो० ११२।८)

अर्थ : जहाँ तक जाओगे, वहाँ पहुँचाकर।

जहँ (=जहाँ)

'अवध तहाँ **जहँ** राम निवासू।'
(अयो० ७४।३)

अर्थ : जहाँ राम का निवास है, वहाँ अयोध्या है।

कहाँ तें (=कहाँ से)

'को तुम्ह तात **कहाँ तें** आए।'
(उत्तर० २।७)

अर्थ : तात! तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?

जहवाँ, तहवाँ (=जहाँ, तहाँ)

'चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ।
बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥'
(अर० २३।७)

अर्थ : यान पर अकेला चढ़ कर वहाँ चला,

जहाँ समुद्रतट पर मारीच रहता था।

तहाँ (=वहाँ) — 'अवध तहाँ जहँ रामनिवासू।' (अयो० ७४।३)

अर्थ : जहाँ राम का निवास है, वहाँ अयोध्या है।

जहँ-तहँ (=जहाँ-तहाँ) — 'जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा।' (अयो० १९८।१)

अर्थ : लोगों ने जहाँ-तहाँ विश्राम किया।

आगें - पाछें (=आगे-पीछे) — 'आगें रामु लखनु बने पाछें।' (अयो० १२३।१)

अर्थ : आगे राम और पीछे लक्ष्मण हैं।

ऊपर, हेठ[1] (=ऊपर, नीचे) — 'ऊपर आपुनु हेठ भट।' (लंका० ४१।–)

अर्थ : ऊपर वानर स्वयं, नीचे राक्षस योद्धा।

रीतिसूचक क्रि० विशे० अव्यय :

जनु (=मानों) — 'जनु जीवहि माया लपटानी।' (किष्कि० १४।६)

अर्थ : मानों जीव से माया लिपटी हो।

तैसे (=वैसे) — 'तैसेहि भरतहि सेन समेता। (अयो० २३०।७)

अर्थ : वैसे ही भरत को सेना-सहित।

तिमि (=वैसे) — 'तिमि सुख सम्पति बिनहिं बोलाए।' (बाल० २९४।३)

अर्थ : वैसे ही सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये।

जिमि (=जैसे) — 'जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं।' (बाल० २९४।२)

अर्थ : जैसे नदियाँ सागर में जाती हैं।

---

१. मिला० 'ऊपर कोट हेठ सुरसरी।' (उस्मान, चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा (१।२४।५), ना० प्र० सभा, १९१२ ई०)

कस (=कैसे)
'तुम्ह पुछहु कस नर की नाईं।'
(किष्कि० २।८)
अर्थ : तुम नर की तरह कैसे पूछते हो ?

कैसे (=कैसे)
'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे।'
(किष्कि० १४।४)
अर्थ : पर्वत बूंदों की चोट कैसे सहते हैं ?

जैसे (=जैसे)
'खल के बचन संत सह जैसे।'
(किष्कि० १४।४)
अर्थ : सन्त जैसे खल के वचन सहते हैं।

जथा (=जैसे)
'जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।'
(किष्कि० १४।३)
अर्थ : जैसे विद्या प्राप्त किये हुए विद्वान् नम्र होते हैं।

'जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
(गीता प्रेस, किष्कि० १४।३)
अर्थ : जैसे विद्या पाने से विद्वान् नम्र होते हैं।

कैसें (=कैसे)
'झलका झलकत पायन्ह कैसें।'
(अयो० २०४।१)
अर्थ : छाले चरणों में कैसे चमकते हैं ?

जैसें (=जैसे)
'पंकज कोस ओस कन जैसें।'
(अयो० २०४।१)
अर्थ : जैसे कमल-कोश पर ओस की बूंदें।

परिमाणसूचक क्रि० विशे० प्रत्यय :

एतना (=इतना)
'एतना कहत छींक भई बाएँ।'
(अयो० १९२।४)
अर्थ : इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई।

प्रश्नसूचक क्रि० वि० अव्यय :

कि (=क्या)

'सोह कि कोकिल बिपिन करीला।'
(अयो० ६३।७)

अर्थ : क्या (नये आमों के बाग में विहार करनेवाली) कोयल करीलों की झाड़ियों में शोभा पा है ?

'डाबर जोग कि हंसकुमारी।
(अयो० ६०।५)

अर्थ : क्या हंसी तलैया के मैले पानी में रहने योग्य है ?

की (=क्या)

अर्थ : 'की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ।'
(किष्किं० १।१०)

क्या तुम तीन देव में काई हो ?

गुणसूचक क्रि० वि० अव्यय :

अस (=ऐसा)

'सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं।'
(बाल० २२३।४)

अर्थ : हे सखि ! इनको कोई कोई ऐसा कहते हैं।

अइसे (=ऐसे)

'अइसेउ बचन कठोर सुनि।'
(अयो० ६७।-)

अर्थ : ऐसे भी कठोर वचन सुनकर।

कैसी (=कैसी)

'ससि संपन्न सोह महि कैसी।'
(किष्किं १५।५)

अर्थ : अनाज से भरी धरती कैसी सोहती है ?

जैसी (=जैसी)

'उपकारी कै संपति जैसी।
(किष्किं० १५।५)

अर्थ : जैसी उपकारी की सम्पत्ति।

निषेधात्मक क्रि० वि० अव्यय :

(क) शुद्ध निषेध

जनि (=मत) 'सुनु कपि जिअँ मानसि **जनि** ऊना।' (किष्कि० ३।७)

अर्थ : हे कपि ! सुन, तू मन में बुरा मत मान।

नाहिं (=नहीं) 'इहाँ स्राप बस आवत **नाहीं**।' (किष्कि० ६।१३)

अर्थ : यहाँ शापवश नहीं आता।

न (=न) 'जे **न** मित्र दुख होहिं दुखारी।' (किष्कि० ७।१)

अर्थ : जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते।

(ख) कारणवाचक निषेध

किन (=क्यों नहीं) 'रे रे दुष्ट ठाढ़ **किन** होही।' (अर० २९।११)

अर्थ : अरे दुष्ट ! खड़ा **क्यों** नहीं होता ?

बलात्मक अव्यय

हि (=ही) 'सबहि[1] मनोहर मंगल साजे।' (काशि, बाल० २८६।१)

हि (=ही) 'लोक बेद सब भाँतिहि नीचा।' (अयो० १९४।३)

हिं (=ही) 'लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा।' (गीता० अयो० १९४।३)

अर्थ : लोक और वेद में सब भाँति ही नीच हैं।

'द्विजदेवता घरहि के बाढ़े।' (काशि०, बाल० २७६।७)

अर्थ : ब्राह्मण देवता घर ही के बड़े होते हैं।

हिं (=ही) 'तुम्हारेहिं भाग रामु बन जाहीं।' (अयो० ७५।३)

---

१. –'हि' तृतीया के एकवचन का विभक्ति-प्रत्यय भी माना जा सकता है।

अर्थ : तुम्हारे ही भाग्य से राम बन जाते हैं ।

हीं (=ही)

'टूटतहीं धनु भएउ बिबाहू ।'
(बाल० २८६।८)

अर्थ : धनुष टूटते ही विवाह हुआ ।

इ (=ही)

'सबुइ समय अनूकूल ।'
(अयो० ६२।-)

ई (=ही)

'मातहिँ तेई ।'
(काशि०, अयो० २३०।७)

इँ (=ही)

'तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।'
(अयो० ७४।४)

अर्थ : जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ ही दिन है ।

ही (=ही)

'स्वारथ रहित सखा सब ही के ।'
(अयो० ७४।६)

अर्थ : सब ही (सभी) के स्वार्थ-रहित सखा हैं ।

उ, ऊ (=भी)

'तेऊ[1] आज राज पदु पाई ।'
(अयो० २२८।३)

अर्थ : वे भी आज राज-पद पाकर ।

'बे अति अहित रामु तेउ तोही ।'
(अयो० १६२।७)

अर्थ : तुझे वे राम भी वैरी हुए ।

'अइसउ बचन कठोर सुनि ।'
(अयो० ६७ ।-)

अर्थ : ऐसे भी कठोर वचन सुनकर ।

'बकउ मराला ।' (बाल० ३।१)

अर्थ : बगुले भी हंस हो जाते हैं ।

हुँ (=भी)

'सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ।'
(गीता प्रेस, अर० २८।४)

अर्थ : वह स्वप्न में भी संकट में पड़ता है ।

'तरनिहुँतें ।' (अयो० ६५।३)

---

१. संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण के बाद आनेवाले हि, हि, इ, ई, इँ, उ, ऊ आदि को 'निपात' कहा जाय, तो अधिक वैज्ञानिक माना जा सकता है ।

हुँ (=भी) 'जस थोरेहु धन खल इतराई ।'
(किष्कि० १४।५)
अर्थ : जैसे थोड़े धन से भी खल इतराने लगता है ।
'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ।'
(बाल० २८४।६)
अर्थ : रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते ।
'आनँदहू के आनँददाता'
(काशि०,बाल० २१७।२)
अर्थ : आनन्द के भी आनन्ददाता हैं ।

हूँ (=भी) 'तुम्हहूँ तात कहत अब जाना ।'
(सुन्दर० २७।७)
अर्थ : तात ! तुम भी अब जाने को कहते हो ।

३. ७. २. समुच्चयबोधक अव्यय :

कि, की (=अथवा, या) 'नर नारायन की तुम्ह दोऊ ।'
(किष्कि० १।१०)
अर्थ : अथवा तुम दोनों नर-नारायण हो?
'कि केवल प्राना ?' (अयो० ५८।४)
अर्थ : या केवल प्राण ?

मकु (=चाहे) 'गगनु मगन मकु मेघहि मिलई ।'
(अयो० २३२।९)
अर्थ : चाहे आकाश बादल में मिलकर समा जाय ।

जदपि (=यद्यपि) 'फूलइ फरइ न बेत,
जदपि सुधा बरषहिं जलद ।'
(लंका० १६)
अर्थ : यद्यपि बादल जल बरसाते हैं, तो भी बेत फूलता-फलता नहीं ।

तदपि (=तो भी) 'तदपि करब मैं काजु तुम्हारा ।'
(बाल० ८४।१)
अर्थ : तो भी मेरे द्वारा तुम्हारा कार्य किया जायगा ।

जद्यपि = (यद्यपि)

'जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा ।'
(अर० १९।५)

अर्थ : यद्यपि बहन कुरूप की गई, (तथापि) ये अनूप पुरुष वध के योग्य नहीं ।

जौं (= यदि)

'मूरख हृदयँ न चेत,
जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ।'
(गीता प्रेस, लंका० १६ (ख))

अर्थ : यदि ब्रह्मा के समान गुरु मिले (तो भी) मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता ।

त (= तो)

'धीरजु धरिअ त पाइअ पारू ।'
(अयो० १५४।७)

अर्थ : धैर्य रखा जाय, तो पार पाया जाय ।

जौं, तौ (= यदि, तो)

'जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी ।'
(बाल० ८१।३)

'तौ कौतुकिअन्ह आसलसु नाहीं ।'
(बाल० १।४)

अर्थ : यदि आपके हृदय में बहुत ही हठ है ।
अर्थ : खिलवाड़ करनेवालों को आलस्य तो होता नहीं ।

(बाल० ८१।४)

जौं पै, तौ (= यदि, तो)

'जौं पै प्रिय बियोगु..तौ कस ।'
(अयो० ८६।६)

बरु (= चाहे)

'बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि
न पाय पखारिहौं ।'
(अयो० १०० । छन्द)

पै (= लेकिन)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर मारें, लेकिन जब तक पाँव न धो लूँगा ।

अरु (= और)

'जात न जानिअ दिन अरु राती ।'
(काल० १८७।१)

अर्थ : दिन और रात बीतते हुए नहीं जाने जाते ।

३. ७. ३. विस्मयादिबोधक अव्यय :

हा ! — 'हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा ।' (अर० २९।३)

अर्थ : हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं ।

रे रे ! — 'रे रे दुष्ट ठाढ़, किन होई ।' (अर० २६।११)

अर्थ : अरे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ?

अहह ! — 'अहह धन्य लछिमन बड़भागी ।' (उत्तर० १।३)

अर्थ : अहह ! लक्ष्मण बड़भागी और धन्य हैं ।

हे ! — 'हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी ।' (अर० ३०।६)

अर्थ : हे पक्षियो ! और मृगो ! हे भ्रमर-पंक्तियो !

३. ७. ४. प्राकृत-भाषा और रामचरितमानस के अव्ययों की तुलना :

३. ७. ४. १. क्रियाविशेषण अव्यय :

कालसूचक क्रियाविशेषण अव्यय

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० अद्य	प्रा० अज्ज (पाइअ०)	आजु (अयो० २३०।३) (= आज)
सं० कल्य	प्रा० कल्ल (पाइअ०)	कालि (बाल० २३४।६) (= कल) । विशेष : छन्दोनिर्वाह एवं तुकान्तता के कारण तुलसी ने मूल शब्द 'कालि' को ईकारान्त 'काली' कर दिया है ।
सं० पुनः (पुनर्), अप० पुणु (हैम व्या० ८।४।३४३) अप० पुण (सन्देशरासक ३।१३६)		पुनि (बाल० २३४।६) (= फिर)

स्थानसूचक, क्रियाविशेषण अव्यय :

सं० कस्मिन्	अप० कहिं (हैम व्या० ८।४।४२२।७)	कहाँ, कहँ (बाल० २८२।५) (=कहाँ)
सं० यस्मिन्-तस्मिन्	अप० जहिं – तहिं (हैम व्या० ८।४।३५७)	जहँ-तहँ (अयो० १९८।१; उत्तर० ३०।१) (= जहाँ-तहाँ)[1]
सं० अग्रे	प्रा० अग्गे (पाइअ०)	आगें (अयो० १२३।१) (=आगे)
सं० पश्चात्	अप० पच्छइ (हैम व्या० ८।४।४२०)	पाछें (अयो० १२३।?) (=पीछे)

रीति आदि सूचक क्रियाविशेषण अव्यय :

	अप० जणु, जाणि (हैम व्या० ८।४।४४४)	जनु (किष्कि० १४।६) (= मानों)
	अप० जिम (प्रबन्धचिन्तामणि) 'जिम-जिम वायह विहि पडहु।' (हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, १९५४, पृ० २३३)	जिमि (बाल० २९४।२) (=जैसे)
	अप० तिम (प्रबन्धचिन्तामणि) 'तिम नचिज्जइ मुंज।' (हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग १९५४, पृ० ३३३।)	तिमि (बाल० २९४।३) (=तैसे)

[सं० यत्+एवं>जिम>जिमि। सं० तत्+एवं>तिम>तिमि। सं० कि+एवं>किम>किमि]।

बलात्मक क्रियाविशेषण अव्यय :

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० हि	प्रा० हि (पाइअ०)	इ (अयो० ६२।—) (=ही) हिं (अयो० ७५।३) (=ही) हि (अयो० १९४।३) (=ही)
	प्रा० हु (पाइअ०)	हु (किष्कि०१४।५), ऊ (बाल०३।१) ऊ (अयो० २२८।३) (=भी)

१. जित, तित का विकास सं० यत्र, तत्र तथा प्रा० जत्थ, तत्थ से सम्भव है।

सं० तु	प्रा० तु (पाइअ)	तौ[1] (बाल० २७५।१)
सं० न तु	प्रा० ण तु (पाइअ०)	न त (बाल० २७१।५)

३. ७. ४. २. संयोजक समुच्चयबोधक अव्यय :

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० अपर	अप० अवर (सन्देशरासक २।४८)	अरु (उत्तर० ६५।८) (=और)
सं० यदि	अप० जउ (हैम व्या० ८।४।४१९)	
	अप० जइ (हैम व्या० ८।४।४१७)	जौं[2] (बाल० ८१।३) (=यदि)
सं० ततस्, तदा	अप० तो (हैम व्या० ८।४।४१७)	तो (बाल० २७८।३) (=तो)
सं० परम्	अप० पइ (सन्देश रा० २।७७)	पइ (अयो० सो० १००।छन्द) (=लेकिन)

३. ७. ४. ३. विस्मयादिबोधक अव्यय :

संस्कृत	प्राकृत	रामचरितमानस
सं० अहह !	प्रा० अहह ! (पाइअ०)	अहह ! (उत्तर० १।३)
सं० हा !	प्रा० हा ! (पाइअ०)	हा ! (अर० २९।१; (२९।३)
सं० हे !	प्रा० हे ! (पाइअ०)	हे ! (अर० ३०।९)
सं० रे !	प्रा० रे ! (पाइअ०)	रे रे ! (अर० २९।११)

३. ८. क्रियाओं के अर्थ और वाक्य :

३. ८. १. निर्देशार्थ या विधानार्थ (निश्चयार्थ) और वाक्य :

विशेष : मानस में ऐसे स्थल भी हैं, जहाँ वाक्यों में क्रियापद लुप्त हैं। जैसे :

(१) 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।' (बाल० २२९।२) (२) 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।' (किष्किं० १।७)

(३) 'नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।' (किष्किं० २।२)

---

१. 'तौ' यहाँ अवधारणबोधक क्रियाविशेषण अव्यय है।

२. 'जौं' का मूल डॉ० बाबूराम सक्सेना के मतानुसार 'यदा' है—(इवाल्यूशन ऑव अवधी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९३७ ई०, पृ० ३१२)।

	रामचरितमानस में		हिन्दी में
धातु + –अइ =	'सुखद बहइ बर बात।' (अयो० २१६)	=	सुन्दर हवा चल रही है।
धातु + –अबि =	'भाषाबद्ध करबि मैं सोई।' (बाल० ३१।२)	=	वह कथा मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी।
धातु + –अबि =	'मैं कछु करबि ललित नर लीला।' (अर० २४।१)	=	मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जानी चाहिए (की जायगी)।
धातु + –इसि =	'रिपु सम मोहि मारिसि।' (किष्कि० ६।११)	=	बाली ने मुझे शत्रु के समान मारा।
धातु + – इहि =	'सो सीता कर खोज कराइहि।' (किष्कि० ४।४)	=	वह सीता की खोज करायगा।
धातु + –ए =	'आगे चले बहुरि रघुराया।' (किष्कि० १।१)	=	फिर रघुराज आगे चले।
धातु + –औं =	'तब माया बस फिरौं भुलाना।' (किष्कि० २।९)	=	तुम्हारी माया के वश में भूला फिरता हूँ।
धातु + –त =	'होत बिलम्बु' (अयो० १०१।२)	=	बिलम्ब होता है।
धातु + –हिं =	'किए जाहिं छाया जलद :' (अयो० २१६।-)	=	बादल छाया करते हुए जाते हैं।

३. ८. २. आज्ञादि अर्थ और वाक्य :

धातु + –अब =	'करब सोइ उपदेसु।' अयो० सो० १५१)	=	वही उपदेश किया जाय। ('करब' आज्ञादि अर्थ, भविष्यत् काल)
धातु + –अहि =	'जनि सोच बस करहि।' (द्वितीय प्रति, बाल० २७२)	=	सोच बस मत कर। [करनी = करहि = तू कर]
धातु = –अहि =	'सुनहि सुन्दरि।' (लंका० ९९। छन्द)	=	हे सुन्दरी ! सुन।
धातु + –अहि =	'तजहि संसय महा।' (लंका० ९९। छन्द)	=	महान् सन्देह छोड़।
धातु + –अहि =	'उतारहि[1] पारू।' (अयो० १०१।२)	=	तू पार उतार।

१. मिला० अप० तं आणहि (हैम व्या० ८।४।३४३) = उसे ला। जाहि (सूर० २।३२०) = तू जा।

धातु + —हु	= 'राजु देहु सुग्रीवहि जाई ।' (किष्कि० ११।६	= जाकर सुग्रीव के राज्य दो ।
धातु + —अहु	= 'सुनहु[1] देव रघुबीर कृपाला ।' (अर० २७।४)	= हे देव कृपालु रघुवीर ! तुम सुनो ।
धातु + —अहु	= 'तात जनि कहहु ।' (गीता प्रेस, (अर० ३१ दो०)	= तात ! तुम मत कहो । (आज्ञा० वर्त्तमान)
धातु + — उ	= 'धरि बटु रूप देखु तैं जाई ।' (किष्कि० १।४)	= ब्रह्मचारी का रूप रखकर तू जाकर देख ।

(देखु = यह क्रिया वर्त्तमान, आज्ञार्थ में है)

धातु + — उ	= 'सुनु कपि ।' (किष्कि० ३।७)	= हे कपि ! तू सुन ।
धातु + — एसु	= 'कहेसु जानि जिय़ँ समय बुझाई ।' (किष्कि० १।४)	= हृदय में जानकर इशारे से समझ कर कहना ।
धातु + — एसु	= 'जानेसु मारा' (किष्कि० ६।६)	= तू मारा हुआ जानना ।

(कहेसु, जानेसु == ये क्रियाएँ भविष्य, आज्ञार्थं में हैं ।)

धातु + — एहु	= 'आयसु अनुसरेहू ।' (बाल० ३३४।५)	= तुम आज्ञा का पालन करना ।
धातु + — एहु	= 'तात जनि कहेहु ।' (अर० ३१ दो०)	= तात ! तुम मत कहना । (आज्ञा, भविष्य)
धातु + — हि	= 'तैं मैनाक होहि स्रमहारी ।' (सुंदर० १।६)	= हे मैनाक ! तू श्रमहारी हो ।
धातु + — हि	= 'वीर अधीर न होहि ।' (अयो० १६१।)	= हे वीर ! तू अधीर मत हो ।

३. ८. ३ इच्छा, प्रार्थना, आशीर्वादार्थ और वाक्य :

धातु + — ०	= 'जेहिं न सोच मोहि अवधपति ।' (अयो० सो० १५१।-)	= जिससे अवधपति मुझे न सोचें । = अर्थात्, मेरा सोच न करें ।

---

१. सुनहुँ—'तुम सुनहुँ जसोदा गोरी ।' (सूरसागर, ना० प्र० सभा काशी, १०।२८६) ।

धातु + – अइ	=	'हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहइ[1] जानि कोई ।' (अयो० ३७।२)	=	हृदय में मानते हैं कि प्रातः न हो और कोई राम से जाकर न कहे ।
धातु + – अउ	=	'कुंअरि कुआरि रहउ ।' (गीता प्रेस, बाल० २५२।५)	=	कन्या कुमारी रहे !
धातु + – अउ	=	'करउ[2] अनुग्रह सोइ ।' (गीता, बाल० सो० १।-)	=	वही (गणनायक) अनुग्रह करे ।
धातु + – अहिं	=	'कमठ पीठ जामहिं बरु बारा ।' (उत्तर० १२२।१५)	=	चाहे कछुए की पीठ पर बाल जम आएँ ।
धातु + – अहिं	=	'नयन फलु पावहिं ।' (अयो० ११।२)	=	(वे) नेत्रों का फल पायें ।
धातु + – अहिं	=	'मन अस रहन कहहिं मोहि रामा ।' (उत्तर० १९।३)	=	राम रहने के लिए मुझसे कहें, ऐसा मन में है ।
धातु + – अहुँ	=	'देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं ।' 'राखहुँ पलक नयन की नाईं ।' (अयो० ५७।१)	=	पलक जैसे नयनों की रक्षा करते हैं, वैसे ही सब गोस्वामी देव-पितर तुम्हें रखें ।
धातु + – अहुँ	=	'बरु तीर मारहुँ लखनु ।' (अयो० १००। छन्द)	=	चाहे लक्ष्मण तीर मारें ।
धातु + – अहुँ	=	'तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं ।' (बाल० २५५।८)	=	हे गोस्वामी गणेश ! राम (शिव-धनु) तोड़ें ।
धातु + – अहुँ	=	'सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ।' (अयो० २३०।४)	=	दोनों भाई सर-शय्या पर सोयें ।
धातु + – इहुँ	=	'हृदयँ मनाव भोरु जनि होई ।' अयो०३७।२)	=	हृदय में मनौती है कि प्रातः काल न होवे ।
धातु + – इअ	=	'कौसिक कहा छमिअ अपराधू ।' (बाल० २७५।५)	=	'कौशिक ने कहा, अपराध क्षमा किया जाय ।
धातु + – इअ	=	'रिस तजिअ[3] मुनीसा ।' (बाल० २८१।७)	=	हे मुनीश ! क्रोध त्यागिए (अथवा) आप द्वारा क्रोध त्यागा जाय ।

---

१. 'कहै जनि कोई ।' (गीता प्रस, अयो० ३७।२)
२. 'वरु मेरी परतिज्ञा जाउ' (सूरसागर, १।२७४)
३. तजिअ = √तज + – इअ = त्यागी जाय (कर्मवाच्य क्रिया)

धातु + —इअ	=	'जाइ जनकपुर आइअ देखी ।' (बाल० २१८।१)	=	जाकर जनकपुर देखकर आया जाय ।
धातु + —इअ	=	'करिअ कृपा सिसु सेवकु जानी ।' (बाल० २७७।४)	=	शिशु या सेवक समझकर इसपर कृपा की जाय ।
धातु — + ईजे	=	'तेहि सन नाथ मयत्री कीजे ।' (गीता प्रेस : किष्कि० ४।३)		
धातु + —ईजे	=	'दीन जानि तेहि अभय करीजे ।' (गीता प्रेस, : किष्कि० ४।३)		
धातु + —ईजे	=	'तेहि सन नाथ मइत्री कीजै । (किष्कि० ४।३)	=	नाथ ! उसके साथ मित्रता कीजिए ।
धातु + —ईजै	=	'दीन जानि तेहि अभय करीजै ।' (किष्कि० ४।३)	=	दीन जानकर उसे अभय कीजिए ।
धातु + —उ	=	'अचल होउ[1] अहिबातु तुम्हारा ।' (अयो० ६९।८)	=	तुम्हारा सौभाग्य अचल हो ।
धातु + —उ	=	'कोउ नृप होउ हमहि का हानी ।' (गीता० बाल०, सो०१)	=	कोई राजा होवे, हमें क्या हानि ?
धातु + —ऐ	=	'रामहि जाई कहै जनि कोई ।' (गीता० ३७।२)	=	राम से जाकर कोई न कहे ।
धातु + —ऐ	=	'अब जनि कोउ माखै भट मानी ।' (बाल० २५२।३)	=	कोई मानी भट अब क्रुद्ध न हो ।
धातु + —हुँ	=	'प्रान जाहुँ बरु' (अयो० २८।४)	=	चाहे प्राण जावें ।
धातु + —हुँ	=	'होहुँ राम सिय पूत पतोहू ।' (अयो० १५।७)	=	राम-सीता पुत्र और पुत्रवधू हों ।

३. ८. ४. संकेतार्थ और वाक्य :

धातु + —अत	=	'सकल धरम धुर धरनि धरत को ।' (अयो० २३३।१)	=	(तो) पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता ?

---

१. विधि अर्थ में अन्यपुरुष, एकवचन—**होउ** (पुष्पदन्त, णायकुमारचरिउ) **करउ** (उक्तिव्यक्ति-प्रकरण) । (१) **होउ** (अयो० ६९।८) = वह हो । (२) **होहि** (सुन्दर० ८।९) = तू हो ।

धातु + – त = 'जौं न होत जग जनम भरत को ।' (अयो० २३३।१) = यदि जग में भारत का जन्म न होता ।

धातु + – तेउँ = 'जों जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू ।' (लंका० ६१।६) = यदि मैं वन में बन्धु-वियोग को जानता ।

धातु + – तेउँ = 'पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू ।'[1] (लंका ६१।६) = तो पिता के उस वचन को न मानता ।

३. ८. ५. सन्देहार्थ और वाक्य :

धातु + – अहिं = 'कदाचि मोहि मारहिं ।' (किष्कि० ७ दोहा) = कदाचित् मुझे मारें ।

३. ८. ६. प्रश्नार्थ और वाक्य :

(धातु लुप्त) (१) 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा ।' (किष्कि० १।७) (१) सांवले और गोरे शरीरवाले तुम कौन ?

पुं० एकव० भूतकाल :

धातु + – आ (२) 'अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ।' (किष्कि० ९।६) (२) नाथ ! किस दोष से मुझे मारा ?

धातु + – आ (३) 'कहु जड़ जनक धनुष कैं[2] तोरा ।' (बा० २७०।३) (३) हे मूर्ख जनक ! बता धनुष किसने तोड़ा ?

विशेष : वाक्यान्तर्गत 'हो' या 'है' के समानान्तर अवधी में जब क्रिया आती है, तब तुलसी अपने 'मानस' में उसका प्रयोग आवश्यक नहीं समझते । 'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा ।' (किष्कि० १।७)—इस अर्द्धाली-खण्ड में क्रिया नहीं आई है । यही बात 'की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ' (किष्कि० १।१०) में भी पाई जाती है । संस्कृत के वाक्यों में भी 'अस्ति' जैसी क्रिया नहीं आती, जैसे 'वत्स, इयमप्यपरा का ?' (भवभूति, उत्तरराम०)

३ ८. ७. विस्मादि अर्थ और वाक्य :

(१) 'हा जगदेक वीर रघुराया ।'
'केहि अपराध बिसारेहु दाया ।'
(अर० २९।१)
(१) हा संसार के एक वीर रघुराज ! किस अपराध के कारण तुमने दया भुला दी ?

(२) 'अहह धन्य लछिमन बड़ भागी ।' (उत्तर० १।३) (२) अहह, लक्ष्मण बड़भागी और धन्य है ।

---

१. सं० अदस् > अप० ओहु (कीर्तिलता ३।६०) > ओहु > वह । ओइ (हैम व्या० ८।४।३६४) = वे ।

२. काशिराज-संस्करण में 'कैं' और गीताप्रेस-संस्करण में 'कै' पाठ है । 'कैं' व्याकरणसम्मत नहीं । तृतीया विभक्ति एकवचन में 'कैं' होना चाहिए । अप० कई (विक्रमोर्वशीय, ४।३२) > कैं ।

३. ६. 'मानस : में वाक्य-संरचना :

'रामचरितमानस' में तीन प्रकार के वाक्य मिलते हैं :

(१) साधारण वाक्य, जिसमें एक समापिका क्रिया होती है ।

(२) मिश्रवाक्य, जिसमें एक से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं, किन्तु प्रमुख उपवाक्य एक ही होता है ।

(३) संयुक्तवाक्य, जिसमें प्रमुख उपवाक्य दो या दो से अधिक होते हैं ।

३. ६. १. साधारणवाक्य :

'आगे चले बहुरि रघुराया ।' (किष्कि० १।१)

(क) उद्देश्य – रघुराया ।

(ख) विधेय – बहुरि आगे चले ।

३. ६. २. मिश्रवाक्य :

'अति सभीत कह सुनु हनुमाना ।' (किष्कि० १।३)

(क) प्रमुख उपवाक्य—(सुग्रीव) अति सभीत कह ।

(ख) आश्रित उपवाक्य – हनुमाना सुनु ।

३. ९. ३. संयुक्तवाक्य :

'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गएऊ । माथ नाइ पूँछत अस भएऊ ।' (किष्कि० १।६)

(क) प्रमुख उपवाक्य – 'कपि बिप्ररूप धरि तहँ गएऊ ।'

(ख) प्रमुख उपवाक्य – (कपि) 'माथ नाइ अस पूँछत भएऊ ।'

४. अर्थ-विचार

४. अर्थ-विचार

४.१. रामचरितमानस में विशिष्ट शब्दार्थ :

शब्द	बहुप्रचलित अर्थ	मानस का अर्थ
अनु (अयो० ३०।४)	= पीछे के अर्थ में एक उपसर्ग।	= हाँ; 'अनु करहु' (अयो० ३०।४)
अनुमानि (अयो० १६१।४)	= अन्दाजा करके	= मानकर, विचार कर 'अस अनुमानि सोच परिहरहू'। (अयो० १६१।४) अर्थ : ऐसा मानकर सोच त्यागो।
अनुहारी (अयो० २२६।५)	= समानता	= वेश
अनैसें (बाल० २७९।७)	= अनधिकारपूर्वक, अनीशया।	= तिरछा—'चितव अनैसे।' (बाल० २७९।७)
अभिनंदन (अयो० १७६।७)	= प्रशंसा, स्वागत	= अनुमोदन 'सचिव अभिनंदनु।' (अयो० १७६।७)
अंबारी (बाल० २१३।३)	हाथी की पीठ पर रखा जानेवाला हौदा।	= मकान का छज्जा 'चारु बाजारु बिचित्र अँबारी'। (बाल० २१३।३) अर्थ : बाजार सुन्दर है। छज्जे विचित्र हैं।
अरनी (बाल० ३१।६)	= एक वृक्ष; एक गुल्म।	= यज्ञाग्नि-उत्पादक काष्ठयन्त्र।
अवकास (उत्तर० ९०।३)	= मौका, छुट्टी	= शून्यता, रिक्तता
अवगाहा (बाल०२४५।६)	= अथाह	= गम्भीर, कठिन 'तोरेहुँ[1] धनुषु ब्याहु अवगाहा।' (बाल० २४५।६)
अवगाहू[2] (अयो०२७।७)	= अथाह	

१. 'तोरेहु धनुषु ब्याहु अवगाहा।' (काशि०, बाल० २४५।६)। तोरेहु = तोड़ने पर भी। तोरेहुँ = तोड़ने पर भी।

२. 'मानस' में **'अव'** उपसर्ग प्रायः **'अप'** (= बुरा) अर्थ में ही आया है, किन्तु यहाँ **'अ'** (= नहीं) के अर्थ में है।

		अर्थ : धनुष तोड़ने पर भी विवाह कठिन है।
अवडेरि[1] (बाल० ७९।८)	= न रहने देकर	= अलग करके, 'पुनि अवडेरि।' (बाल० ७९।८)
उपचार (गीता प्रेस अयो० २२९।७)	= इलाज, सेवा, उपाय	= छेड़छाड़ की, इलाज किया 'भरत हमहि उपचार न थोरा।' (गीता प्रेस, अयो० २२९।७)
उपचरा[2] (अयो० २२९।७)		'भरत हमहिं उपचरा न थोरा।' (अयो० २२९।७) अर्थ : भरत ने हमसे कम छेड़छाड़ नहीं की (अथवा) भरत ने हमारा कम इलाज नहीं किया।
कदंबा (अयो० ८२।६)	= एक वृक्ष	= समूह 'येहि बिधि करेहु उपाय कदंबा।' (अयो० ८२।६) अर्थ : इस प्रकार उपायों का समूह करना, अर्थात् बहुत-से उपाय करना।
करन (बाल० ११७।५)	= करना	= इन्द्रिय।
करारा (अयो० १५८।४)	= कगार, टीला	= काक; 'कुखेत करारा।'
कसमसात[3] (लंका० ८७।१)	= उकताकर[3] हिलते-डुलते हुए	= बहुत-से व्यक्तियों का एक दूसरे से रगड़ खाते हुए। 'कसमसात आई अति घनी।' (लंका ८७।१)
कृत (अयो० १०५।२)	= किया हुआ	= कृति, कृत्य, कार्य = 'प्रात प्रातकृत करि रघुराई'। (अयो० १०५।२) अर्थ : प्रातः में प्रातः किये जानेवाले कृत्य करके रामचन्द्रजी।

---

१. डेरा और डेरि में मूल अंश 'डेर' ही है। 'पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही।' —(गीता प्रेस, बाल० ७९।८)।

२. श्रीविश्वनाथ मिश्र-सम्पादित काशिराज-संस्करण में पाठ तो 'उपचरा' ही ह, जैसा कि डॉ० गुप्त के संस्करण में है, किन्तु सन्दर्भ-संख्या अयो० २२८।७ है।

३. इस अर्थ में तुलसी ने 'कसमसे' का प्रयोग किया है—'तीन सहायक कसमसे' (लंका०, ९१ छन्द)।

कौतूहल (लंका० ५५।१)	= जानने या देखने की उत्कण्ठा	= लीला 'यह कौतूहल जानइ सोई'। (लंका ५५।१) अर्थ : इस लीला को वही जानता है।
गएउँ (अयो० २९।)	= गया	= समाप्त हुआ। 'गएउँ नारि बिस्वास ।'(अयो० २९।-) अर्थ : मैं नारी के विश्वास में समाप्त हुआ (नष्ट हुआ)।
गवँ[1] (अयो० १५८।–)	= मतलब, गरज	= मौका, अवसर 'गवँहि जोहरहिं ।' (अयो० १५८।-) अर्थ : मौके से प्रणाम करते हैं।
गाइ (अयो० १३२।- किष्कि० २।४)	= गाकर	= वर्णन करके, बखान कर 'कही महामुनि गाइ ।' (अयो० १३२।-) अर्थ : वाल्मीकिजी ने बखान कर कही। 'आपन चरित कहा हम गाई ।' (किष्कि० २।४) अर्थ : अपना चरित्र हमने बखान करके कहा।
ग्यान (गीता प्रेस, अर० १६।३)	= ज्ञान, जानकारी	= आत्मस्थिति एवं तत्त्वदर्शन
छमा (लंका० १११।छन्द)	= सहिष्णुता, माफी (सं० क्षमा>छमा)	= पृथ्वी। 'मंडन रम्य छमा ।' (लंका १११।छन्द) अर्थ : पृथ्वी के सुन्दर भूषण।
छोह (बाल० ८।३)	= दया, कृपा, स्नेह (सं०क्षोभ= घबराहट)	= कृपा, स्नेह। 'सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू ।' (बाल० ८।३)

१. व्रजभाषा में 'गौं' शब्द 'ग़रज़' या मतलब के अर्थ में प्रचलित है।

		अर्थ : सब मिलकर छल छोड़कर कृपा करो । सं० क्षोभ (=व्याकुलता) > छोह (=कृपा)
जनेत (बाल० ३४३।–)	= बरात, वरयात्रा (सं० जन्य[1] यात्रा = >जनेत)	= बरात 'पहुँची आइ **जनेत** ।' (बाल० ३४३।–) अर्थ : बरात आ पहुँची ।
जल (अयो० १४६।४)	= पानी	= आँसू 'लोचन **जल** छाए ।' (अयो० १४६।४) अर्थ : नेत्रों में आँसू छा गये (भर गये)।
जठेरी (अयो० ४६।३)	= बड़ी, ज्येष्ठा	= बड़ी, बूढ़ी 'विप्रबधू कुलमान्य **जठेरी** ।' (अयो० ४६।३) अर्थ : ब्राह्मण स्त्रियाँ, कुलमान्य बड़ी-बूढ़ी नारियाँ ।
जीव (बाल० १५९।३)	= जीवात्मा	= प्राण, जीवन 'सुन्दर युवा **जीव** परहेलें ।' (बाल० १५६।३) अर्थ : सुन्दर युवक हो, प्राणों की परवा न करके, अर्थात् जीवन की अवहेलना करके ।
जुड़ावा (किष्कि० ३।६)	= संयुक्त कराया (सं० जुड् = बाँधना)	= शीतल किया, ठण्डा किया । 'निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ।' (किष्कि० ३।६) अर्थ : अपने आँसुओं से सिंचित करके शीतल किया । सं० जाड्य > जाड़ा ।
जुवानू (काशि० अयो० ३०२।८)	= जवान	= कामी पुरुष ।

---

१. जन्य = दूल्हे के साथी ।

झारी[1] (बाल० १८४।७)	= झाड़ी, सुराही	= सब । 'गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ।' (बाल० १८४।७) अर्थ : गाय का रूप धर कर धरती वहाँ गई, जहाँ देवता और मुनि (थे) ।
झोटिंग (लंका०८८।१)	= जुट्टाधारी	= जटाजूटधारी । 'प्रमथ महा झोटिंग कराला ।' (लंका० ८८।१) अर्थ : महा जटाजूटधारी कराल प्रमथ । (=शिव के एक प्रकार के गण) ।
झोंटी[2] (अयो० १६३।७)	= बालों का जूड़ा, जुट्टी (सं० झुंट> झोंटा)	= बालों का जुट्टा । 'धरि धरि झोंटी ।' (अयो० १६३।७) अर्थ : बालों का जुट्टा पकड़कर ।
त्रासइ[3] (बाल० १८३।छन्द)	= डराता है	= सताता है, ताँसता है 'तेहि बहुविधि त्रासइ ।' (बाल० १८३।छन्द)
दर (लंका० ११५।छन्द)	= शंख	= डर
दंड (बाल० १५४।७)	= डण्डा, सजा	= कर, टैक्स 'लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे ।' (बाल० १५४।७) अर्थ : कर ले-लेकर राजा छोड़ दिये । (बाल० १५४।७)
दरिद्र (उत्तर० ११२।१)	= निर्धन, गरीब	= निर्धनता, दरिद्रता 'तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ।' (उत्तर० ११२।१)
दाऊ (अयो० २५८।१)	= बड़ा भाई, पिता, बलदाऊ	= दाँव 'सूझ जुझारिहि आपन दाऊ ।' (अयो० २५८।१)

---

१. व्रजक्षेत्र में 'झारिकै' या 'झरिकैं' शब्द 'सब' के अर्थ में व्यवहृत होता है ।

२. झंझा-झोंटी—व्रजभाषा-क्षेत्र में प्रचलित है । इसका अर्थ है – वह लड़ाई, जिसमें दो स्त्रियाँ एक दूसरे के बालों का जुट्टा पकड़ लेती हैं ।

३. 'डर' के अर्थ में 'त्रास' का प्रयोग 'मानस' (सुन्दर० १०।–) में मिलता है ।

			अर्थ : जुआरी को अपना दाँव ही सूझता है।
धार (बाल० ६५।७)	= पानी आदि के गिरने का क्रम।	=	सेना 'जम कर धार।' (बाल० ९५।७)
धारा (लंका०७९।१)	= शाखा, जल-प्रवाह	=	टुकड़ी 'चतुरंगिनी अनी बहु धारा। (लंका० ७६।१) अर्थ : चतुरंगिणी सेना की अनेक टुकड़ियाँ हैं।
धारी (लंका० ६२।७)	= धारण करनेवाला	=	पंक्ति, सेना। 'सिलीमुख धारी।' (लंका० ६२।७) अर्थ : बाणरूपी भ्रमर-पंक्ति।
धावन (अयो० १५७।४)	= दौड़, दौड़ना	=	हरकारा[१] = 'धावन धारा।' (अयो० १५७।४)।
नयन (गीता प्रेस, बाल० २७२।२)	= नेत्र, ले जाना	=	झुकाना, लचक 'देखा राम नयन के भोरें।' (बाल० २७२।२) अर्थ : राम के झुकाव (लचक) के भ्रम में देखा था।
निदान (अयो० ५४।८)	= आखिर, रोग-निर्णय	=	कारण 'तात सुनावहु मोहि निदानू।' (अयो० ५४ ८) अर्थ : हे पुत्र! तुम मुझे कारण सुनाओ।
निसान (बाल० ३४४।१)	= चिह्न, झण्डा	=	नगाड़ा 'हने निसान पनब बर बाजे।' (बाल० ३४४।१) अर्थ : सुन्दर नगाड़े और ढोल बजने लगे।

१. यहाँ 'धावन' के अर्थ में तुलसी ने मूर्त्तीकरण की स्थिति ला दी है।

परिचेहु (बाल० १३७।३) =	घुले-मिले हो (सं० परिचयन =परिचना)	= आदी हो गये हो 'डहकि डहकि **परिचेहु सब काहू** ।' (बाल० १३७।३) अर्थ : सब किसी को ठग-ठग कर आदी हो गये हो ।
पास (बाल०२१२।-)	= निकट, पास	= ओर, तरफ, 'चहुँ **पास** ।' (बाल० २१२।-) अर्थ : चारों ओर ।
प्रबोध (बाल० ३१।२)	= जागना, यथार्थ ज्ञान	= सन्तोष 'मोरे मन **प्रबोध** जेहि होई ।' (बाल० ३१।२) अर्थ : जिससे मेरे मन को सन्तोष होगा ।
प्रभु (बाल० ६३।५; अर० २६।५)	= ईश्वर	= स्वामी, पति ।
प्रमान (अयो० ५३ ।)	= सबूत	= सत्य ।
प्रसंग (बाल० ७।६)	= प्रकरण	= संगति, साथ मेल ।
प्रसंग (उत्तर ४।४)	= बात का सम्बन्ध-सूत्र	= रहस्य, भेद 'यह **प्रसंग** जानइ कोउ कोऊ ।' (उत्तर० ४।४) इस रहस्य को कोई-कोई जानता है ।
बनज (बाल० ६०।५)	= वाणिज्य, वन में उत्पन्न ।	= जलज, कमल 'सुरसर सुभग बनज बनचारी ।' (बाल० ६०।५) अर्थ : देव-सरोवर के सुन्दर कमल-वन में विचरण करनेवाली ।
बरषहिं (किष्कि० १४।३) =	बरसते हैं	= बरसते हैं '**बरषहिं** जलद' । (किष्कि० १४।३) अर्थ : बादल बरसते हैं ।
बरसि (अयो० १३४।३) =	बरस कर	= बरसाकर '**बरसि** सुमन कह देव समाजू ।' (अयो० १३४।३)

अर्थ : देव-समाज फूल बरसाकर कहता है।

विशेष : देवसमाजु 'प्रथमा विभक्ति में एकवचनीय रूप है और कर्त्ता-कारक है, अतः 'देवसमाज कहता है' ही अर्थ होगा। जिन टीकाकारों ने 'देवसमाज ने कहा' अर्थ किया है, उन्होंने 'समाजु' के उकार पर ध्यान नहीं दिया।

बाजन (बाल० ३४६।३) = बाजा बजाना = बाजा। 'बाजने बाजे।' (बाल० ३४६।३)

बारी[1] (अयो० २३८।१) = पानी = आँसू

बिज्ञान (अयो० १५६।- उत्तर—९०।३) = आध्यात्मिक ज्ञान, तत्त्वज्ञान।

बिग्यान[2] (गीता प्रेस, बाल० १८।५; अयो० १५६।-) = साइन्स = 'निज **बिग्यान** प्रकाश' (अयो० १५६।-)

अर्थ : अपने अध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाश से।

बिग्यानी (गीता प्रेस, बाल० २३७।५) = साइन्स जाननेवाला = तत्त्वज्ञानी

बिटप (बाल० २२७।४) = शाखा, टहनी = पेड़, वृक्ष।

बिषई (अयो० २२८।१) = कामी = संसार के भोगों में लिप्त

बिषय (बाल० ११७।५) = सांसारिक वस्तु = इन्द्रियगृहीत पदार्थ

बीर (अयो० १५०।-) = बहादुर, शूर = भाई = 'सिय समेत दोउ **बीर**।' (अयो० १५०।-)

अर्थ : सीता-सहित दोनों भाई।

बोलि (बाल० ६६।८) = बोलकर = बुलाकर। 'सुता **बोलि**।' (बाल० ६६।८)

---

२. 'बारी' के साथ 'उमगे' क्रिया बहुवचन में आई है। अतः, स्पष्ट है कि तुलसी के मन में 'बारि' का अर्थ 'आँसू' है।

२. 'बिग्यान' (गीताप्रेस, अर० १६।३) का अर्थ 'अविद्या-वृत्ति या माया' भी है।

भरनी (बाल० ३१।६)	= एक नक्षत्र, जुलाहे की ढरकी	= मोरनी; भरणी नक्षत्र की वर्षा। 'राम कथा कलि पंनग **भरनी**।' (बाल० ३१।६) अर्थ : राम-कथा कलियुग-रूपी सर्प के लिए मोरनी है।
भामा (बाल० १००।७)	= क्रोधवती स्त्री।	= पत्नी, स्त्री। 'भव भामा।' (बाल० १००।७)
मग (बाल० ६।८)	= रास्ता	= मगध देश 'कासी मग सुरसरि क्रमनासा।' (बाल० ६।८) अर्थ : काशी और मगध तथा गंगा और कर्मनाशा।
मनुसाई (लंका० ३६।२)	= मनुष्यता	= पुरुषत्व, शूरता 'सोउ नहिं नाघेउ असि **मनुसाई**।' अर्थ : वह भी नहीं पार की गई, ऐसी आपमें शूरता है।
मापी (अयो० ५४।४) माँपी (काशि०, श्लो०५४।४)	= नापी	= पागल हुई। 'माजहि खाइ मीन जुन **मापी**।' (अयो० ५४।४) अर्थ : मछली मानों प्रथम वर्षा का जल-फेन खाकर पागल हुई।
मृग (अयो० १४३।५)	= हिरन	= पशु (यहाँ प्राचीन अर्थ तुलसी को गृहीत है।) 'बन **मृग** मनहुँ आनि रथ जोरे। (अयो० १४३।५) अर्थ : मानों जंगली **पशु** लाकर रथ में जोते हों।
मंदिर (उत्तर० १०८।-)	= देवस्थान, देवालय	= 'पुनि मंदिर नभबानी, भइ द्विजबर बर मागु।' (उत्तर० १०८।-) अर्थ : फिर देवालय में आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँग।

मंदिर (बाल० २३६।छन्द) मंदिर (सुंदर० ५।६)	= देवालय	= घर, भवन; 'मुदित मन मंदिर चलीं।' (बाल० २३६।–छन्द) 'गएउ दसानन मंदिर[1] माहीं।' (सुन्दर० ५।६) अर्थ : हनुमान, रावण के भवन में गया।
रंग (अयो० १६६।१)	= वर्ण	= आनन्द, हर्ष 'मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू।' (अयो० १६६।१) अर्थ : मुख प्रसन्न था। मन में न हर्ष था, न रोष।
रहँसि (अयो० ४।१)	= प्रसन्न होकर	= हर्षित होकर 'बोलेउ राउ रहँसि मृदुबानी।' (अयो० ४।१) अर्थ : हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोला।
राउ (गीता प्रेस, अयो० १४९।७)	= राजा, स्वामी	= (राज्य>राजु>राउ) राज्य। 'राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू।' (अयो० १४९।७) अर्थ : 'राज्य' सुनाकर वनवास दिया गया।
लहइ (अयो० ९।८)	= प्राप्त करता है, लेता है	= लाभ प्राप्त करता है 'सेवकु **लहइ स्वामि** सेवकाई।' (अयो० ९।८) अर्थ : सेवक स्वामी की सेवा में लाभ प्राप्त करता है।
लाइ[2] (अयो० १५९।५)	= लाकर	= लगाकर 'हनहुँ मुदित दव लाइ किराती।' (अयो० १५९।५) अर्थ : मानों भीलनी (जंगल में) आग लगाकर प्रसन्न हो।

---

१. 'जैसैं स्वान काँच-**मंदिर** मैं भ्रमि भ्रमि भूँकि मर्यौ।' (सूरसागर, २।२६)

२. लाना = ले + आना = ल्याए हो (व्रजभाषा, भ्रमरगीत, पद १६) = ले आये हो।

ल्याइ (बाल० ३२२।छन्द)	= ले जाकर, लिवाकर	= ले आकर 'चलि ल्याइ सीतहि ।' (बाल० ३२२।छन्द) अर्थ : चलकर और सीता को ले आकर ।
समन (अर० २।६; उत्तर० ६२।१)	= नाश, नाशक, शान्ति ।	= यमराज ।
सँभारि (बाल० ६६।-)	= सँभालकर, काबू में रखकर	= स्मरण करके । 'सुता सनेह सँभारि ।' (बाल० ६६।-) अर्थ : पुत्री के स्नेह को स्मरण करके ।
संभ्रम (अयो० २७४।-)	= चक्कर, घबराहट	= शीघ्रता; आदरपूर्वक; 'संभ्रम उठेउ ।' अर्थ : शीघ्रतापूर्वक उठे ।
सजि (अयो० १५९।३)	= सजकर	= सजाकर[1] 'सजि आरती मुदित उठि धाई ।' (अयो० १५९।३) वह प्रसन्न होकर आरती **सजाकर** उठ दौड़ी ।
सजि[2] (बाल० ३२२।छन्द)	= सजकर	= सजकर; 'सजि सुमंगल भामिनी ।' (बाल० ३२२।छन्द)
समाजु (अयो० ३२।७)	= सभा; मानव-समूह	= सामग्री, वस्तुएँ; 'समाजु साजि ।' (अयो० २३।७)
सयाना (अयो० ३३।७)	= चतुर, होशयार, वयस्क	= चालाक = 'राम साधु तुम साधु **सयाने** ।' (अयो० ३३।०) अर्थ : राम साधु है, तुम चालाक साधु हो ।

---

१. 'सजाकर के' अर्थ में 'सजि' का प्रयोग सूरदास ने भी किया है : 'तन भूषण सजि ल्याए हो ।'—भ्रमरगीतसार, सं० रामचन्द्र शुक्ल, पद-सं० १६ ।

२. साजें (बाल० ३२२।छन्द) = सजाये हुए ।

सहाय (किष्किं० २७।—) (अयो० २३०।८)	= सहचर, साथी, सहायक	= सहायता 'बचन **सहाय** करबि मैं ।' (किष्किं० २७।—) अर्थ : मेरे द्वारा वचन से सहायता की जायगी ।
सहाए[1] (अयो० २३३।४)	= सहायक	= सहायक । 'सहित सहाए ।' (अयो० २३३.४)
सादर[2] (बाल० ३५८।८) सादर (अयो० ५२।६) सादर (बाल० ६३।२)	= आदर-सहित, सम्मानपूर्वक	= लालसा-सहित 'जननिन्ह **सादर** बदन निहारे ।' (बाल० ३५८।८) '**सादर** सुन्दर बदनु निहारी ।' (अयो० ५२।६) अर्थ : माताओं ने लालसा-सहित पुत्रों के मुख देखे । 'सादर भलेहिं मिली एक माता ।' (बाल० ६३।२)
साधा (बाल० १३७।४)	= बनाया, पूरा किया, सहन किया ।	= ठीक किया । 'तुम्हहि न काहूँ **साधा** ।' (बाल० १३७।४) अर्थ : किसी ने तुम्हें ठीक नहीं किया ।
सिख (अयो० १३।७)	= सीख, शिक्षा, उपदेश	= दण्ड 'दीन्हि लखन **सिख** अस मन मोरें ।' (अयो० १३।७) अर्थ : मेरे मन में ऐसा है कि लक्ष्मण ने तुझे दण्ड दिया है ।
सुटुकि (बा० १५६।—)	= निगल कर	= संटी मारकर 'हय सुटुकि ।' (बाल० १५६।—)
सोधु (अयो० १९८।१)	= शुद्धि, सफाई, खोज	= पता

---

१. यह 'सहाय' (=सहायक) का बहुवचन है ।

२. आप्टे के कोश में 'आदर' का अर्थ 'ईगरनैस' और 'डिज़ायर' भी है । सं० दर=डर । आ+दर=आदर (=सम्मान) ।

		'भरत सोधु सबही कर लीन्हा ।' (अयो० १९८।१)
		अर्थ : भरत ने सभी का पता लगाया ।
स्रवहिं (अयो० १६९।५)	= टपकते हैं	= टपकाते है ।
		'थन पय स्रवहिं ।' (अयो० १६९।५)
		अर्थ : स्तन दूध टपकाते हैं ।
हाँकि (बाल० १५६।–)	= जानवरों को चलाकर	= ललकार कर
		'चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि ।' (बाल० १५६।—)
		अर्थ : राजा शीघ्रता से घोड़े में चाबुक मारकर और ललकार कर चला ।
हित (बाल० ३।—)	= कल्याण, भलाई	= मित्र, हितैषी
		'हित अनहित नहिं कोइ ।' (बाल० ३।—)
		अर्थ : कोई न मित्र है और न शत्रु है ।
हित (अयो० १७६।७)	= भलाई, प्रेम	= के लिए
		'हिय हित ।' (अयो० १७६।७)
हुने (लंका० २८)	= होमे (सं० हवन>हउन>हुन)	= होमे, हवन किये गये ।
		'हुने अनल अति हरष ।' (लंका० २८।—)
		अर्थ : अत्यन्त हर्षपूर्वक अग्नि में होमे ।
हेठ (लंका० ४१।—)	= हीन, छोटा, नीचा ।	= नीचे, निम्न स्थान में
		'ऊपर आपुनु हेठ भट ।' (लंका० ४१।—)
		अर्थ : ऊपर स्वयं वानर, नीचे राक्षस भट ।
होनी (बाल० ३।३)	= होनेवाली, भवितव्यता	= वृत्तान्त, हाल
		'कही निज होनी ।' (बाल० ३।३)
		अर्थ : अपना वृत्तान्त कहा ।

४. २. रामचरितमानस के कुछ उपमान-उपमेय :

उपमान	उपमेय
अक्षयवट (बाल० २।११)	अटल धर्म-विश्वास
अबुध कुटुम्बी (किष्कि० १६।८)	मीन
अमृतमय नयनांजन (बाल० २।१)	गुरु-पद-रज
अलिनि (बाल० २५९।१)	गिरा (=वाणी)
अवगाह उदधि (बाल० ६।१)	साधु-गुण-गाथा
अवगाह उदधि (बाल० ६।१)	खल-अवगुण-गाथा
अवध साढ़साती (अयो० १७।४)	मन्थरा
इंदु (बाल० सो० ४।—)	शंकर-देह
ईति भीति (अयो० २५३।१)	कुचाल
उपकारी के संपति (किष्कि० १५।५)	ससिसम्पन्न महि (=सस्ययुक्त भूमि)
उलूक (उत्तर० ३१।४)	अघ (=पाप)
उलूक (सुन्दर० ४७।३)	राग-द्वेष
ऊसर (किष्कि० १५।१०)	हरिजन-हिय (=ईशभक्त का हृदय)
कपास (बाल० २।५)	साधु
कपूत (किष्कि० १५ ।-)	प्रबल मारुत
कमल (अयो० ६२।६)	चरण
कमल कुल (बाल० ३७।५)	छन्द, सोरठा और दोहा
कलि-विपट-कुठारी (बाल० ११४।२)	रामकथा
काक (बाल० ९।१)	खल
काग (बाल० ३८।३)	विषयी खल
किरात-मिताई (अयो० २५१।२)	इंधन-पात
कुंद (बाल० सो० ४।-)	शंकर-देह
कुधातु (बाल० ३।९) (=लोहा)	सठ (=मूर्ख)
कुमुदनी (उत्तर० ९।)	अवध-नारियाँ
कुल-सद्धर्म (किष्कि० १५।-)	मेघ
कुसंग (किष्कि० १५।)	निविड़तम (=घनान्धकार)
कृसानु (बाल० ४।५)	तेज
केत (बाल० ४।६) (=पुच्छल तारा, केतु)	विनाशक तत्त्व
कौरव (उत्तर० ३१।४)	काम-क्रोध
कोक (उत्तर० २१।८)	सुख, सन्तोष, विराग, विवेक
खल (किष्कि० १४।५)	छुद्र नदी, क्षुद्र नदी (=छोटी नदी)

उपमान	उपमेय
खल-उद्यम (किष्कि० १५।३)	अर्क-जवास-पात (आक और जवासे के पत्ते)
खल कै प्रीति (किष्कि० १४।२)	दामिनि-दमक (=बिजली की चमक)
खीरु (अयो० २३२।५) (=दूध)	सुगुन (=सद्गुण)
घृत (बाल० ४।४)	परहित
चकोर-किसोरक (बाल० २६३।७)	लक्ष्मण
चंद (अयो० ६३।८)	वदन (=मुख)
चातक (बाल० ९।३)	सन्त
चातकी (बाल० २६३।६)	सीता
चोर (उत्तर० ३१।५)	मत्सर (मान, मोह, मद)
जंगम तीर्थराज (बाल० २।७)	सन्त-समाज
जलु (अयो० २३२।५)	अवगुन
जल (बाल० ७।६)	नीच
जहाज (बाल० २६१)	शंकर-चाप
जिव (किष्कि० १४।८) (=जीव)	सरिता-जल
जीव (अर० ७।३)	लक्ष्मण
तड़ागा (अयो० २३२।६)	रविबंस
तड़ाग (उत्तर० ३१।७)	धर्म
तम (बाल० १।६)	मोह
तरुन अँधियारी तमी (सुन्दर० ४७।३)	ममता
तृन (किष्कि० १५।१०)	काम (=वासना)
दर (उत्तर० ७७।२) (=शंख)	ग्रीवा (=गरदन)
दंभिन्ह कर समाज (किष्कि० १५।६)	खद्योत-समूह
दादुर (बाल० ६।२)	खल
दिनेस(उत्तर० ३१।१)	राम-प्रताप
धरम (किष्कि० १५।६)	चक्रवाक
धरम (किष्कि० १५।४)	धूरि (=धूलि)
धेनु (उत्तर० ६।६)	माता
निसा (बाल० २५९।१)	लाज
निसा (उत्तर० ३१।३)	अविद्या
नारी (उत्तर० ११६।३)	भक्ति
नारी (उत्तर० ११६।३)	माया
नील सरोरुह (बाल० सो० ३।-)	विष्णु-शरीर

उपमान	उपमेय
पंकज (अर० ७।–)	राम-मुख
पंकज (उत्तर० ३१।७)	ज्ञान-विज्ञान
पंकज (बाल० २५६।१)	मुख
पराग (बाल० १।१)	गुरु-पद-रज
पद्म (बाल० १।१)	गुरु-पद
पय (बाल० ६।-)	सद्गुण
पयोनिधि (बाल० २६२।२)	कौसिक रूप (=विश्वामित्र का रूप)
पराग, मकरन्द और सुवास (बाल० ३७।६)	अर्थ, भाव और भाषा
पवन (बाल० ७।६)	सन्त
पाखंडबाद (किष्कि० १४। —)	भूमि-तृण
पारस (बाल० ३।६)	सत्संगति
पुरुष (उत्तर० ११५।१५)	ज्ञान
पुरुष (उत्तर० ११५।१५)	बिराग
प्रजा (किष्कि० १५।११)	विविधि जन्तु
फनिक-मनि (बाल० ३५८।४)	पुत्रवधुएँ
फनिक (बाल० ३५८।४)	सासुएँ
फणी (बाल०३।१०)	कुसंगति
फनि-मनि (बाल० ३।१०)	सुजन
बग (बाल० ३८।३)	बिषयी खल
बज्र (बाल० ४।१२)	कठोर वचन
बिकार (बाल० ६। —)	वारि
बिद्या पाये बुध (किष्कि० १४।३)	जलद (=जल-भरे बादल)
बिधु (अयो० ६५।८)	बदन (=मुँह)
बिबेक (बाल० २।२)	नेत्र
बिबेक (किष्कि० १५।२)	नव पल्लव
बिहग (बाल० ११४।१)	संसय
बेणी (बाल० २।१०)	हरि-हर-कथा
ब्रह्म (अर० ७।३)	राम
भगति (किष्कि० १६।१०)	सारदी बृष्टि (=शरद् ऋतु की वर्षा)
भवँरु अयो० ५३।४)	मन
भृंग (अर० ७। —)	मुनिवर-लोचन
मकरंद (अर० ७। –) (बाल० २३१)	राममुख-सौन्दर्य, सीतामुख-छवि
मकरंद (अयो० ५३।४)	सुख
मणि ज्योति (बाल० १।५)	गुरु-पद-नख-ज्योति

उपमान	उपमेय
मदन (अयो० १३३।—)	रामचन्द्रजी
मनि-मानिक (बाल० १।८)	रामचरित्र
माखी (बाल० ४।३)	मन
माया (अर० ७।३)	सीताजी
मीन (बाल० ३७।८)	ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण
मोह (मद-मोह) (किष्किं० १६।४)	मल
रति (अयो० १३३।—)	सीता जी
रतिनाथ (बाल० २१३।५) (=कामदेव)	चितेरा (=चित्रकार)
रबि (सुन्दर० ४७।४)	प्रभु-प्रताप
रबिनंदिनि (बाल० २।९) (=यमुना नदी)	कर्म-कथा
राकेस (उत्तर० ९।—) (=चन्द्रमा)	रामचन्द्रजी
राकेस (अयो० २६२।३)	रामरूप
राहु (बाल० ४।३)	खल
रितुराज (अयो० १३३।—) (वसन्त)	लक्ष्मण
लोभ (किष्किं० १६।३)	जल
विश्वास (बाल० श्लोक २)	शंकर
सन्त हृदय (किष्किं० १६।४)	सरिता-सर
सन्तोष (किष्किं० १६।३)	अगस्ति तारा
सम्भु-तन-बिमल-बिभूति (बाल० १।३)	गुरुपद-रज
संसार (बाल० २।२)	बन्धन
सज्जन (किष्किं० १४।७)	तालाब
सदगुन (किष्किं० १४।७)	जल
सर (अयो० ५४।१)	वचन
सरोज (अयो० ६७।१)	चरन
सरोज (बाल० २३१)	मुख
ससि (बाल० २६३।७) (=चन्द्र)	राम
सहसबाहु (बाल० ४।३)	खल
सागर (बाल० २६१।—)	रघुवर-बाहु-बल
साधक-मन (किष्किं० १५।२)	विटप (=शाखा)
सावन-घन (बाल० ३००।२)	गज (=हाथी)
सिन्धु (बाल० ८।१४)	सज्जन
सुकृत (किष्किं० १६।६)	खंजन

उपमान	उपमेय
सुधा सम सलिल (बाल० ३७।३)	राम-सीअ जस
सुमन (बाल० ३। –)	सन्त
सुरतरु-फूल (अयो० ५३।४) (=कल्पवृक्ष के फूल)	अनुकूल बचन
सुर धेनु (बाल० ११३। =)	रामकथा
सुरसरि (बाल० १४।९) (=गंगा नदी)	भूति, कीरति, भनिति
सुरसरि-धारा (बाल० २।८)	राम-भक्ति
सुसंग (किष्कि० १५। –)	दिवस-प्रकास
स्वाती जल (बाल० २६३।६)	सुख
श्राद्ध (बाल० श्लोक २)	पार्वती
हंस (मराल) (बाल० ३७।७)	ज्ञान-बिराग-बिचार
हंस (अयो० २३२।५)	भरतु
हंस (बाल० ६।२)	सन्त
हरि (किष्कि० १४।८)	जलनिधि

੫. ਵਿਸ਼ਿਸ਼ਟ ਪਰਿਸ਼ਿਸ਼ਟ

५. विशिष्ट परिशिष्ट

५. १. डॉ० गुप्त-सम्पादित 'रामचरितमानस' के कुछ पाठ

गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' भारतीय साहित्य, धर्म और संस्कृति का श्रेष्ठ एवं व्यापक ग्रन्थ है। भक्ति, शील एवं आचरण के क्षेत्र में भारतीयों के लिए यह एक आदर्शरूप तथा लोकप्रिय कृति मानी गई है। उत्तर भारत की जनता तो 'रामचरितमानस' को अपना परम प्रिय कण्ठहार ही समझती है। ऐसे उत्तम एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रामाणिक संस्करण की महती आवश्यकता थी। प्रामाणिक संस्करण से हमारा तात्पर्य यह है कि सम्पादक द्वारा ऐसी प्रति का तैयार किया जाना, जो हमें मूल कवि की स्वहस्तलिखित प्रति अथवा उसकी सही प्रतिलिपि के अभाव में अधिक-से-अधिक सत्य के निकट पहुँचा सके। सारांश यह है कि प्रामाणिक संस्करण की सहायता से पाठक मूल कवि के अधिक-से-अधिक निकट पहुँच जाता है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सन् १९३० ई० से ही गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कृतियों पर अपना विशेष अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। तबसे लेकर सन् १९४८ ई० तक डॉ० गुप्त तुलसी की कृतियों विशेषतः 'रामचरितमानस' का अध्ययन करते रहे। इस अध्ययन के मार्ग में 'रामचरितमानस' के प्रामाणिक पाठ के विषय में भी उनके समक्ष एक प्रमुख समस्या रही। उसी समस्या के समुचित समाधान के लिए डॉ० गुप्तजी ने 'रामचरितमानस' का एक प्रामाणिक पाठ तैयार किया और सन् १९४९ ई० में वह साहित्य-कुटीर, प्रयाग से प्रकाशित भी हुआ। यह संस्करण वास्तव में परिश्रमपूर्वक वैज्ञानिक प्रणाली पर तैयार किया गया था। आज 'मानस' के अनेक संस्करण होने पर भी डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' पाठ शोधन-प्रणाली में अपना एक पृथक् और विशिष्ट स्थान रखता है। निम्नांकित पाठ में 'सुनाव' (एकवचन) के साथ 'सुहाई' (एकवचन) लिखना नितान्तरूपेण वाक्य-संरचना और व्याकरण के अनुसार सही है :

'गुरहि सुनाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई।' (अयो० २०२।८)

सन् १९४९ ई० में डॉ० माताप्रसाद गुप्त का 'श्रीरामचरितमानस' प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व कई सम्पादकों के 'रामचरितमानस' प्रकाशित हो चुके थे। जैसे श्रीरघुनाथदास की प्रति, वन्दन पाठक की प्रति, श्रीकोदवराम की प्रति, श्रीविजयानन्द त्रिपाठी की भारती भण्डारवाली प्रति, श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी की कल्याण-मानसांकवाली प्रति और श्रीभागवतदास की काशी-प्रकाशित प्रति हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी थीं।

इन उक्त प्रकाशित संस्करणों के पाठ-निर्द्धारण में समस्त बहिस्साक्ष्यों और अन्तस्साक्ष्यों के विश्लेषण-सहित व्यापक सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं किया गया था।

सर्वश्री रघुनाथदास, वन्दन पाठक और कोदवराम के संस्करणों में किसी एक प्रति को आधार माना गया है और अधिक-से-अधिक भूलों का परिमार्जन कर दिया गया है।

श्रीविजयानन्द त्रिपाठी और श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित मानस-संस्करणों में विशेष काण्डों के लिए कुछ विशेष प्रतियाँ आधार मानी गई हैं।

श्रीभागवतदास खत्री द्वारा सम्पादित संस्करणों में एक से अधिक प्रतियों को आधार माना गया है। उन सभी आधार-प्रतियों का अध्ययन करने पर जो पाठ ठीक मालूम पड़ा है, उसे स्वीकार किया गया है।

किन्तु, डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने व्यापक सिद्धान्तों का अनुसरण किया है और अपनी सम्पादन-प्रणाली की स्थापना में तत्कालीन सभी प्राप्त प्रतियों का अध्ययन अन्तस्साक्ष्य एवं बहिस्साक्ष्यपरक विश्लेषण के साथ किया है। इस प्रणाली का अनुगमन करते हुए डॉ० गुप्त ने अपने संस्करण को पर्याप्त प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण बना दिया है। उनके द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' के पाठों का अध्ययन करने के पश्चात् मेरी यह निश्चित धारणा बन चुकी है कि डॉ० गुप्त के मानस-संस्करण के पाठ भाषा और व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से पर्याप्तरूपेण ठीक और प्रामाणिक हैं। उन पाठकों के द्वारा तुलसी के पाठों के अधिक-से-अधिक निकट पहुँचा जा सकता है।

सन् १९६० ई० से मैं डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' के पाठों का अध्ययन कर रहा हूँ। तुलसी के शब्दविन्यास, लिंग-विधान एवं व्याकरणिक स्वरूप की दृष्टि से मैंने 'रामचरितमानस' का कुछ अध्ययन किया है। दोहों, सोरठों, चौपाइयों आदि के पाठों को प्रस्तुत करने में विद्वान् सम्पादक ने बड़ी सावधानी बरती है। भाषा के स्वरूप और प्रकृति को पहचानने में डॉ० गुप्त कुशल मर्मी थे। तुलसी जैसे भाषाविज्ञ कवि-शिरोमणि की कृति के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' का अध्ययन अधिकांश में उपादेय है। पाद-टिप्पणी में अनेक पाठान्तरों का उल्लेख विद्वानों के लिए अधिकांश में उपादेय मार्ग प्रस्तुत करता रहेगा।

व्याकरणिक दृष्टि से भाषा का अध्ययन करते समय मुझे कुछ ही स्थल ऐसे मिले हैं, जिनके पाठों के सम्बन्ध में मेरे मन में कुछ शंकाएँ उठी हैं। उन स्थलों पर आये हुए पाठों को मैं 'मानस-प्रेमी' विद्वानों के लिए यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, ताकि मैं भी भविष्य में कुछ जानकारी प्राप्त कर सकूँ।

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' की भाषा के अध्ययन से मेरा ऐसा मत बनता जा रहा है कि तुलसी प्राचीन अवधी और व्रजभाषा के पण्डित हैं। उनकी अवधी बड़ी व्यवस्थित, सुगठित और व्याकरण-सम्मत है। उनके प्रयोग बहुत ही शुद्ध और सटीक हैं। 'मानस' की भाषा व्याकरणशास्त्र की कसौटी पर खरी उतरती है। यदि कहीं कुछ व्याकरणिक अशुद्धि मिलती है, तो मुझे ऐसा लगता है कि वहाँ वह तुलसी की अशुद्धि नहीं है,

अपितु प्रतिलिपिकार अथवा सम्पादक की भूल है। यदि सम्पादन में सम्पादक पूर्णतः सावधान रहा है, तो वह भूल मुद्रण की हो सकती है। ऐसी ही कुछ भूलों की ओर हम अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने डॉ० गुप्त के मानस-संस्करण का मिलान गीता प्रेसवाले और काशिराजवाले संस्करणों से भी किया है।

यहाँ हम पाठ-सम्बद्ध उद्धरणों को दोहा और अर्द्धाली की संख्याओं के साथ प्रस्तुत करेंगे और साथ ही तुलसी की भाषा के व्याकरणिक सिद्धान्तों की चर्चा भी करेंगे, ताकि पाठक हमारी शंकाओं के औचित्य पर भी विचार कर सकें।

१. (क) '**रामु**[१] कहा सबु कौसिक पाहीं।
सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं' ॥' (डा० गुप्त संस्करण०, बाल०२३७।२)

(ख) '**माँगा रामु** तुरत तेहि दीन्हा। (डॉ० गुप्त-संस्क०, किष्कि० ५।६)

उपर्युक्त अर्द्धाली में 'रामु' पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है। '**रामु कहा**' वाक्य की '**कहा**' क्रिया कर्मवाच्य में सामान्य भूतकाल की है। 'राम ने कहा' के अर्थ में 'रामु कहा' का प्रयोग हुआ है। 'राम ने कहा' से तात्पर्य है 'राम द्वारा कहा गया।' अतः, 'राम' प्रातिपदिक में तृतीया विभक्ति मानी जायगी। जब कर्त्ता 'राम' का प्रयोग तृतीया विभक्ति के साथ होगा, तब 'रामु' पद नहीं आयगा। तुलसी अपने 'रामचरितमानस' की भाषा में अकारान्त पुंलिग शब्द को तभी उकारान्त करते हैं, जब उस पुंलिंग शब्द का प्रयोग प्रथमा विभक्ति एकवचन में अथवा द्वितीया विभक्ति एकवचन में होता है। तृतीया से सप्तमी विभक्ति तक के प्रयोगों में तुलसी अकारान्त पुलिंग शब्द को उकारान्त नहीं करते हैं। सम्पूर्ण 'रामचरितमानस' में इसी सिद्धान्त का पालन किया गया है। ऐसी बात तो मिलेगी कि 'उकारान्तता' को छोड़ दिया गया हो, किन्तु जहाँ उकारान्तता न आती हो, वहाँ तुलसी ने 'उकार' नहीं किया है। इसमें कवि सावधान है।

अन्य उदाहरण उक्त कथन की पुष्टि में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

'**केवट**' अकारान्त पुंलिंग शब्द है। प्रथमा विभक्ति एकवचन के रूप में प्रयुक्त होने पर तुलसी इसे '**केवटु**'[२] (उकार के साथ) लिखते हैं। जैसे :

'माँगी नाव न केवटु आना।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० १००।३)

अर्थ : नाव माँगी; केवट नहीं लाया।

'**केवट** उतरि दंडवत कीन्हा।' (अयो० १०२।२)

अर्थ : उतरकर केवट ने दण्डवत् (प्रणाम) किया अथवा नाव से उतरकर केवट द्वारा दण्डवत् (प्रणाम) किया गया।

---

१. यही 'रामु' पाठ काशिराज-संकरण में भी पाया जाता हैं।

२. राजस्थानी कवियों की डिंगल भाषा में भी —उ विभक्ति-प्रत्यय कर्त्ता और कर्म कारकों में पाया जाता है। डिंगल में '**कलेजे को**' या '**कलेजे ने**' के लिए '**कलेजउ**' का प्रयोग मिलता है।

'केवट दंडवत कीन्हा' में 'केवट' तृतीया विभक्ति एकवचन में प्रयुक्त है। इसीलिए, वह उकारान्त नहीं हुआ है। ऐसे स्थलों पर तुलसी 'उकार' नहीं लिखते, सावधानी बरतते हैं।

हम पहले बता चुके हैं कि तुलसी उस अकारान्त पुंलिंग संज्ञा शब्द को भी उकारान्त कर देते हैं, जो द्वितीया विभक्ति एकवचन के रूप में आता है। 'तू जल ला' वाक्य में 'जल' कर्म है, अर्थात् 'जल' द्वितीया विभक्ति के एकवचन का प्रयोग है। इसीलिए तुलसी ने 'जल' को 'जलु' करके लिखा है :

'बेगि आनु जलु पाय पखारू।' (अयो० १०१।२)

अर्थ : जल्दी जल ला; पाँव धो।

निम्नांकित अर्द्धाली में पुं० 'पंथ' शब्द को 'पंथु' इसीलिए लिखा गया है कि 'पंथु' द्वितीया विभक्ति का एकवचनीय रूप है। जैसे :

'नाथ साथ रहि पंथु दिखाई।' (अयो० १०४।४)

अर्थ : नाथ ! साथ रहकर और पन्थ दिखाकर।

उक्त अर्द्धाली के चरणान्त का 'दिखाई' पद वास्तव में 'दिखाइ' है, जिसका अर्थ है—'दिखाकर'। चरणान्त में तुलसी ह्रस्व को दीर्घ कर देते हैं। इसी सिद्धान्त पर 'इ' को 'ई' किया गया है।

निम्नांकित उद्धरण में 'लखन' को 'लखनु' इसीलिए लिखा गया है कि यहाँ 'लखनु प्रथमा विभक्ति में एकवचन का प्रयोग है :

'बरु तीर मारहुँ लखनु।' (अयो० १००। छन्द)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर मारें।

निष्कर्ष यह है कि – उ पुंलिंग शब्द के प्रथमा या द्वितीया के एकवचन का विभक्ति-प्रत्यय है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी यदि अकारान्त पुंलिंग शब्द को उकारान्त करके लिखेंगे, तो निश्चित रूप से वह शब्द प्रयोग में प्रथमा विभक्ति एकवचन में होगा अथवा द्वितीया विभक्ति एकवचन में। 'रामु कहा सबु कौसिक पाहीं।' (बाल० २३७।२) का 'रामु' न प्रथमा विभक्ति में है और न द्वितीया विभक्ति में; अपितु तृतीया में है। अतः, 'रामु' पाठ न होकर 'राम' होना चाहिए। गीता प्रेस, गोरखपुर के संवत् २०१६ के 'रामचरितमानस' में 'राम कहा' पाठ दिया भी गया है। इसी आधार पर 'माँगा राम' गीता प्रेस (किष्कि० ५।६) का पाठ ठीक है। काशिराज-संस्करण में भी 'मागा राम' पाठ है, अर्थात् 'राम' अकारान्त छपा हुआ है। 'राम मागा' का अर्थ है—राम द्वारा माँगा गया, अर्थात राम ने माँगा।

२. 'केवट रामु राजयेसु पावा।
पानि कठवता भरि लइ आवा॥' (डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० १०१।६)

का० : केवट द्वारा राम का रजायस प्राप्त किया गया। वह पानी से काष्ठ-पात्र भरकर ले आया।

उक्त अर्द्धाली में 'रामु' में षष्ठी विभक्ति है। प्रथमा या द्वितीया में ही उकारान्तता पाई आती है। अतः, शुद्ध पाठ '**राम रजायसु**' होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रामु' पाठ न होकर '**राम**' होना चाहिए। 'मानस' में उ प्रथमा या द्वितीया विभक्ति का चिह्न है। षष्ठीतत्पुरुष समास की स्थिति में प्रथम पद में विभक्ति का लोप भी होना चाहिए। इस दृष्टि से भी '**राम रजायेसु**' पाठ ही उपयुक्त है। यह काशिराज, गीता प्रेस आदि अन्य कई प्रतियों में मिलता भी है।

३. जिस प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से '**राम रजायेसु**' पाठ ठीक है, '**रामु रजायेसु**' नहीं; उसी प्रकार षष्ठीतत्पुरुष समास की स्थिति में '**राम पिरीते**' पाठ ही संगत माना जाएगा, '**रामु पिरीते**' नहीं। डॉ० गुप्त के संस्करण में '**रामु पिरीते**' (उत्तरका० २।११) पाठ मिलता है, जो चिन्त्य है; क्योंकि 'रामु' पद में उ विभक्ति-प्रत्यय लगा दिया है। सामासिक पद के प्रथम पद में विभक्ति-प्रत्यय का लोप रहता है।

'कपि तव दरस सकल दुख बीते।
मिले आजु मोहि **रामु पिरीते**॥'[1]

(डॉ० गुप्त-संस्क०, उत्तर० २।११)

गीता प्रेस-संस्करण में '**राम पिरीते**' पाठ है, जो शुद्ध है।

अर्थ : हे कपि! तेरे दर्शन से सब दुःख समाप्त हो गये। आज मुझे राम-प्रिय मिले।

'रामु पिरीते' सामासिक पद है। इसके प्रथम पद में षष्ठी विभक्ति का लोप होना चाहिए। तुलसी की व्याकरणिक पद्धति में '**राम पिरीते**' पाठ ठीक लगता है। यह पाठ गीता प्रेस आदि कुछ अन्य प्रतियों में मिलता भी है।

४. तुलसीदासजी ने अकारान्त पुंलिंग प्रातिपदिक को उकारान्त जहाँ लिखा है, वहाँ पद परसर्ग-रहित है अर्थात् उस उकारान्त संज्ञापद के बाद कोई परसर्ग नहीं है। '**लखन**' अकारान्त पुंलिंग संज्ञा प्रातिपदिक है। इसे तुलसी प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के एकवचन में उकार तभी करेंगे, जब इस पद के बाद कोई परसर्ग न हो। परसर्ग की उपस्थिति में वे उसे अकारान्त ही रहने देते हैं। जैसे :

(क) **प्रथमा विभक्ति में परसर्ग-रहित स्थिति**

'बरु तीर मारहुँ **लखनु**।' (अयो० १००। छन्द)

अर्थात्, चाहे लक्ष्मण तीर मारें।

(ख) **परसर्ग-सहित स्थिति**

'**बिहँसे करुनाअयन चितइ जानकी लखन तन**।' (अयो० सो० १००।-)

---

१. 'पिरीते' बहुवचन रूप है। यह व्रजभाषा के अनुकरण पर है।

'मनहुँ **लखन** सन भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ।' (अयो० १९३।-)

'लखनु' (अयो० १००। छन्द) उकारान्त तभी है, जब वह परसर्ग-रहित है और प्रथमा विभक्ति के एकवचन में है। 'लखन' (अयो०, सो० १००।-) अकारान्त है; क्योंकि इसके बाद **'तन'** परसर्ग है। तुलसी इस नियम का पालन 'रामचरितमानस' में सर्वत्र करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण की निम्नांकित अर्द्धाली में **'लखनु समेता'** पाठ को देखना चाहिए :

'उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता।
सीय रामु गुह लखनु **'समेता'** ।। (अयो०१०२।१)

उक्त पाठ में **'समेत'** परसर्ग है। अत; **'लखन'** पाठ होना चाहिए। 'मानस' की गीता प्रेस तथा काशिराज-संस्करणवाली प्रतियों में **'लखन समेता'** पाठ मिलता भी है।

५. डॉ० गुप्त के संस्करण के निम्नांकित दोहे में 'बीरु अधीरु' पाठ दिया गया है :

'सुनि सरोष बोले सुभट **बीरु अधीरु** न होहिं।' (अयो० १९१।-)

पूरा दोहा इस प्रकार है :

'भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीरु अधीरु[1] न होहिं।।'

(डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० १९१।-)

उक्त दोहे के द्वितीय चरण के अन्त में **'मोहि'** पद है। अतः, चतुर्थ के अन्त में तुकान्तता की दृष्टि से 'होहि' पाठ होना चाहिए। 'होहिं' तो वर्त्तमान काल में अन्यपुरुषीय बहुवचन की क्रिया है, जिसका अर्थ है 'होते हैं'। इसका कर्त्ता 'बीरु' पुंलिंग एकवचन है। ऐसी वाक्य-रचना नहीं हो सकती। क्रिया कर्त्ता के अनुसार ही होनी चाहिए। 'होहि' आज्ञार्थ में मध्यमपुरुषीय एकवचन की क्रिया है, अर्थात् 'तू हो'। ऐसी स्थिति में 'बीरु' प्रातिपदिक का प्रयोग सम्बोधन के एकवचन में होना चाहिए। यह निषादराज गुह के साथियों की उक्ति निषादराज के प्रति है, अर्थात् 'हे वीर। तू अधीर मत हो।'

प्रसंग और व्याकरणिक अर्थ पर विचार करने पर यह निर्णय अधिक संगत प्रतीत होता है कि ठीक पाठ **'बीर अधीर न होहि'** है। सम्बोधन की स्थिति में 'बीरु' पद न होकर 'बीर' होना चाहिए। 'बीरु' तो प्रथमान्त या द्वितीयान्त का एकवचनीय रूप है। गीता प्रेस, गोरखपुरवाले संस्करण में **'बीर अधीर न होहि'**(=हे वीर ! अधीर मत हो) ही पाठ है।

६. तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में अनेक स्थलों पर 'असीस' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है। जैसे :

---

१. काशिराज-संस्करण में भी 'बीरु अधीरु' ही पाठ है।

'सुनु सिय सत्य **असीस** हमारी ।
पूजिहि मनकामना तुम्हारी ।।'
(डॉ० गुप्त-संस्क०, बाल० २३६।७)

'रामु लखनु दसरथ के ढोटा ।
दीन्हि **असीस** देखि भल जोटा ।।' (वही, बाल० २६९।७)

लेकिन, अयोध्याकाण्ड (पृ० २६१) में गुप्तजी के संस्करण में **'असीस'** के साथ **'दीन्ह'** क्रिया लिखी गई है, जो पुंलिंग है । 'असीस' स्त्रीलिंग संज्ञापद है, अतः व्याकरणानुसार और तुलसी के अन्य पाठों की परम्परा में 'दीन्हि' स्त्रीलिंग क्रिया ही होनी चाहिए थी । डॉ० गुप्त का पाठ इस प्रकार है :

'जानि रामप्रिय **दीन्हि** असीसा ।' (अयो० १९३।६)

प्रामाणिक पाठ 'दीन्हि' होना चाहिए था । कुछ अन्य प्रतियों में **'दीन्हि असीसा'** पाठ मिलता भी है । गीता प्रेस, गोरखपुर और काशिराज-संस्करणवाली प्रतियों में **'दीन्हि असीसा'** ही पाठ है ।

७. 'रामचरितमानस' में **'करबि'** क्रिया का प्रयोग कर्मवाच्य स्त्रीलिंग कृदन्त के रूप में हुआ है, अर्थात् कर्म जब स्त्रीलिंग एकवचन होता है, तब क्रिया **'करबि'** आती है । जैसे :

'मैं कछु **करबि** ललित नर लीला ।'
(डॉ० गुप्त-संस्क०, अर० २४।१)

अर्थात्, मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जायगी अथवा की जानी चाहिए । इसी प्रकार **'छमबि** देबि बड़ि अबिनय मोरी' (अयो० ६४।५) में **'छमबि'** क्रिया का स्त्रीलिंग प्रयोग **'अबिनय'** स्त्रीलिंग कर्म के कारण है ।

अवधी-भाषा की 'करबि' क्रिया का विकास सं० 'कर्त्तव्या' से हुआ है । 'करब' क्रिया सं० 'कर्त्तव्यः' या 'कर्त्तव्यम्' से विकसित है । सं० 'मया ललितनरलीला कर्त्तव्या' का तुलसी की भाषा में रूपान्तर होगा—'मैं ललित नर लीला करबि' । इसी नियम के अनुसार सं० 'मया ललितनरकार्यं कर्त्तव्यम्' का अवधी-रूपान्तर होगा—'मइँ ललित नर-कारजु करब ।' तुलसी ने लिखा भी है :

'ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, सुन्दर० ५१।५)

गुप्तजी के संस्करण में **'मानबि'** और **'देबि'** पाठ हैं :
'बिलगु न **मानबि** जानि गँवारी ।' (अयो० ११६।७)
(यहाँ **'मानबि'** पाठ अशुद्ध है ।)
'तब मोहि कहँ जसि **देबि**[1] रजाई ।' (अयो० १०४।६)
(यहाँ **'देबि'** पाठ शुद्ध है ।)

---

१. गीताप्रेस-संस्करण में 'देब' पाठ है, जो अशुद्ध है ।

'मानबि' और 'देबि' स्त्रीलिंग कर्मवाच्य कृदन्त-क्रियाएँ हैं। अतः, इनका कर्म स्त्रीलिंग एकवचन में होना चाहिए। उक्त अर्द्धाली में 'मानबि' का कर्म 'बिलगु' है, जो पुंलिंग एकवचन में है। इसलिए, 'मानबि' पाठ न होकर 'मानब' होना चाहिए। कुछ प्रतियों में 'मानब' पाठ मिलता भी है। गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों में 'मानब' पाठ ही दिया हुआ है। 'देबि' पाठ ही व्याकरणसम्मत है।

८. तुलसी 'स्राप' को स्त्रीलिंग मानते हैं। इसीलिए, उन्होंने 'दुर्वासा मोहि दीन्ही स्रापा' (अर० ३३।७) और 'अगस्ति की स्राप' (गुप्त-संस्क०, सुन्दर० ५७।११) लिखा है। डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' (उत्तर० १०९।३) में 'स्राप' के साथ पुंलिंग क्रिया 'दीन्ह' लिखी गयी है। जैसे :

'मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि स्रापा।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, उत्तर० १०९।३)

व्याकरणानुसार 'स्राप' स्त्रीलिंग पद के साथ 'दीन्हि' स्त्रीलिंग क्रिया आनी चाहिए। गीता प्रेस, काशिराज आदि कुछ प्रतियों में 'दीन्हि' पाठ मिलता भी है। अतः, 'दीन्हि' पाठ ही व्याकरण-सम्मत प्रतीत होता है। डॉ० गुप्तजी का 'दीन्ह' पाठ चिन्त्य है।

९. डॉ० गुप्तजी के संस्करण की एक अर्द्धाली में 'हृदय मन' (अर० ११।२०) पाठ मिलता है। जैसे :

'करहु सो रामु हृदय मन अयना।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, अर० ११।२०)

उक्त उद्धरण के पाठ 'हृदय मन' में द्विरुक्ति दोष है। अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। 'मन' के स्थान पर 'मम' पाठ होना चाहिए। यह छापे की भी भूल हो सकती है। गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों में 'मम' पाठ ही दिया गया है।

१०. 'सुनहुँ'[१] भविष्यत्कालीन अन्यपुरुष की इच्छार्थक क्रिया है। इसी के समानान्तर तुलसी ने 'रामचरितमानस' में 'मारहुँ' और 'सोवहुँ' क्रियाओं का प्रयोग किया है :

'बरु तीर मारहुँ लखनु' (डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० १००। छन्द)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर मारें।

'सोवहुँ समर सेज दोउ भाई।'

(डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० २३०।४)

अर्थ : दोनों भाई समर-शय्या पर सोवें।

डॉ० माताप्रसादजी गुप्त के संस्करण में जहाँ 'सुनहुँ' पाठ है, वहाँ इच्छार्थक क्रिया की दृष्टि से अर्थ-संगति नहीं बैठती। देखिए :

'अस जिअँ जानि सुनहुँ[१] सिख भाई।'

(डॉ० गुप्त-संस्क०, अयो० ७१।१)

१. सुनहुँ=वे सुनें। सुनहु=तुम सुनो।

'**करहु**' की भाँति आज्ञार्थ में मध्यमपुरुषीय बहुवचन की क्रिया '**सुनहु**' ही आनी चाहिए। व्याकरणिक संरचना और प्रसंग के आधार पर '**सुनहु**' पाठ ही समीचीन है। अन्य कुछ प्रतियों में यह पाठ मिलता भी है। गीता प्रेस तथा काशिराज-संस्करणों में भी '**सुनहु**' पाठ ही है। अन्यपुरुष बहुवचन में 'सुनहुँ'।[1]

११. डॉ० गुप्तजी के संस्करण की निम्नांकित अर्द्धाली में 'चितवत' पाठ है। उदा०

'कौसल्या पुनि-पुनि रघुबीरहि।
चितवत कृपासिंधु रनधीरहि।।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, उत्तर० ७।६)

'**चितवत**' क्रिया तुलसी की अवधी-भाषा में वर्त्तमानकाल के कृदन्त-प्रयोग की है, जिसका कर्त्ता '**कौसल्या**' है और यह कर्त्ता स्त्रीलिंग में है। कृदन्त-क्रिया का लिंग कर्त्ता के लिंग के अनुसार होना चाहिए, अर्थात् '**कौसल्या**' स्त्रीलिंग कर्त्ता के अनुसार क्रिया भी स्त्रीलिंग में होनी चाहिए। '**चितवत**'[2] पुंलिंग का प्रयोग है। इसका स्त्रीलिंग रूप '**चितवति**' होगा। 'रामचरितमानस' में ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ इस प्रकार की कृदन्त-क्रियाएँ लिंग में अपने कर्त्ता के लिंग का अनुसरण कर रही है। जैसे :

'मन **पछताति** सीय महतारी।' (गुप्त, गीता प्रेस, काशि० २७०।७)
'राजीवलोचन **स्रवत** जल।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, उत्तर० ५। छन्द)
'प्रभु **मिलत** अनुजहि।' (वही, उत्तर० ५। छन्द)
'**बूझत** कृपानिधि कुसल भरतहि।' (वही, उत्तर ५। छन्द)

उक्त उद्धरणों की **स्रवत, मिलत** और **बूझत** क्रियाएँ पुंलिंग हैं; क्योंकि इनके कर्त्ता पृथक्-पृथक् क्रमशः '**जल**', **प्रभु** और **कृपानिधि** हैं, जो पुंलिंग ही हैं। **पछताति** स्त्रीलिंग है, क्योंकि इसका कर्त्ता '**सीय महतारी**' स्त्रीलिंग है।

निम्नांकित उद्धरणों में क**हति** और **चितवति** क्रियाओं को भी देखिए और उनके कर्तृपदों पर विचार कीजिए :

'गदगद बचन **कहति**[3] महतारी।'(डॉ० गुप्त-संस्करण, अयो० ५४।५)
'**चितवति**[4] चकित चहूँ दिसि सीता।'
(डॉ० गुप्त-संस्क०, बाल० २३२।१)

महतारी कर्त्तृपद स्त्रीलिंग है, इसीलिए कृदन्त-क्रिया **कहति** स्त्रीलिंग में है। **सीता** स्त्रीलिंग कर्त्ता के कारण **चितवति** क्रिया भी स्त्रीलिंग में हैं। इसी व्याकरणिक

---

१. सुनहुँ=वे सुनें (व्याकरण के अनुसार)।
२. मिला०, **डरपत** (किष्किं० १४।१)=डरता है।
गरजत (किष्किं० १४।१)=गरजते हैं। **गर्जहिं** (अर० १८।८) =गरजते हैं।
३. **कहति** गीता प्रेस, अयो० ५४।५, काशिराज, अयो० ५४।५)।
४. **चितवति** (गीता प्रेस, बाल० २३२।१, काशिराज, बाल० २३२।१)।

सिद्धान्त के आधार पर 'कौसल्या' स्त्रीलिंग कर्त्तृपद के कारण **'चितवति** कृपासिन्धु रनधीरहि' पाठ प्रामाणिक है। यह पाठ अन्य कुछ प्रतियों में भी मिलता है। गीता प्रेस और काशिराज-वाली प्रतियों में **चितवति** क्रियापद ही लिखा गया है।

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि गुप्त-संस्करण का पाठ **'लगति'** (बाल० ११।७) शुद्ध और व्याकरण-सम्मत है, किन्तु गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों का **'लगत'** (बाल० ११।७) पाठ अशुद्ध है। इसमें कर्त्ता **'गिरा'** स्त्रीलिंग, एकवचन है, अतः क्रिया **'लगति'** आनी चाहिए।

१२. डॉ० गुप्तजी के संस्करण की निम्नांकित अर्द्धाली में 'जीव' और 'जिव' शब्दों की द्विरुक्ति के साथ पाठ इस प्रकार है :

'आकर चारि लच्छ चौरासी।
जीव भ्रमतयेह **जिव** अबिनासी ।।' (डॉ० गुप्त-संस्क०, उत्तर० ४४।४)

उपर्युक्त अर्द्धाली में **जीव** और **जिव** से कोई अर्थ नहीं निकलता। कुछ प्रतियों में **जीव** के स्थान पर 'जोनि' पाठ मिलता है। पुराणों के आधार पर योनियों की संख्या चौरासी लाख मानी भी गयी है। अतः, निम्नांकित पाठ ही ठीक लगता है :

'जोनि भ्रमत ये जिव अबिनासी।'

अर्थ : यह अविनाशी जीव चार आकारों और चौरासी लाख योनियों में घूमता है।

गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों में पाठ इस प्रकार है :

'जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।' (गीता प्रेस, उत्तर० ४४।४)

'जोनि भ्रमत येह जिव अबिनासी ।।' (काशिराज, उत्तर० ४४।४)

१३. डॉ० गुप्तजी के संस्करण की निम्नांकित अर्द्धाली के **'राखे'** पाठ पर भी विचार करना चाहिए :

'देखि दसा रघुपति जिअँ जाना।
हठि **राखे** नहिं राखिहि प्राना ।।' (अयो० ६८।२)

उक्त अर्द्धाली का **'राखे'** भूतकाल का बहुवचनीय पुंलिंग कर्मवाच्य प्रयोग माना जाएगा। जैसे: 'पितु बालक राखे', अर्थात् पिता द्वारा बालक रखे गये। 'सीता सखीं **राखीं**', अर्थात् सीता द्वारा सखियाँ रखी गईं। इस दृष्टिकोण से 'हठि राखे' का कोई संगत अर्थ नहीं बैठता। अनुनासिकता-सहित 'राखें' पाठ से अर्थ की संगति बैठ जाती है। **'राखें'** का अन्तिम **—एँ** प्रत्यय तृतीया विभक्ति के एकवचन को प्रकट करता है। यह संस्कृत **—एन** से विकसित है। अपभ्रंश में इसका —एँ रूप हो जाता है। सं० **अन्येन** तथा सं० **मत्स्येन** के स्थान पर हेमचन्द्र के अपभ्रंश-व्याकरण में **'अन्नें'** तथा **'मच्छें'** प्रयोग मिलते भी हैं ?

'मच्छें मच्छु गिलिज्जइ।' (हैम व्या० ८।४।३७०।२)

सं० मत्स्येन = अप० मच्छें (= मच्छ से, मच्छ द्वारा)।

अपभ्रंश की परम्परा ही अवधी में आई। अतः, तुलसी ने भी **'बधें'** तथा 'हारें' (बाल० २७३।७) प्रयोग तृतीया एकवचन में ही किये हैं। उसी आधार पर **'रखने से'** के अर्थ में **'राखें'** प्रयोग होना चाहिए। अतः, उक्त अर्द्धाली का 'राखे' कुछ चिन्त्य प्रयोग है। इसके स्थान पर 'राखें' प्रयोग कुछ अधिक संगत है। वैसे **'राखे'** पाठ भी कुछ प्रतियों में मिलता है। **'हठि राखें नहिं राखिहि प्राना'** (गीता प्रेस-संस्क०) का अर्थ है—'हठपूर्वक रखने से यह प्राण नहीं रखेगी।' यह अर्थ प्रसंग में अधिक ठीक लगता है। यह भी सम्भव है कि छापे में **'राखें'** का अनुनासिक चिह्न छपने से रह गया हो। **'राखे'** का अर्थ **'रखने पर'** करने से व्याकरणिक संगति ठीक मानी जा सकती है। तब यह सप्तमी का प्रयोग माना जायगा। काशिराज-संस्करण में **'राखे'** और गीता प्रेस संस्करण में **'राखें'** पाठ है।

१४. डॉ० गुप्त के संस्करण में निम्नांकित अर्द्धाली के अन्तर्गत **'जौ'** पाठ है :

'बीते अवधि रहहिं **जौ** प्राना।
अधम कवन जग मोहि समाना।।' (उत्तर० १।८)

'यदि' के अर्थ में **'जौं'** का प्रयोग उक्त अर्द्धाली में हुआ है। **'जौं'** समुच्चयबोधक अव्यय है। इसका प्रयोग **'मानस'** में कई बार हुआ है। **'यदि'** के अर्थ में पहले जहाँ-जहाँ डॉ० गुप्तजी ने **'जौं'** (अनुनासिक चिह्न-सहित) लिखा है। जैसे :

'जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।' (बाल० २७७।३)

'जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई।।' (बाल० २७८।३)

'जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं।' (बाल० २८२।३)

'जौं न होत जग जनम भरत को।' (अयो० २३३।१)

'जौं जिअँ होति न कपट कुचाली।' (अयो० २२८।७)

अन्य कुछ प्रतियों के उक्त पाठ भी **'जौं'** के साथ मिलते हैं। इसलिए, उत्तरकाण्ड की उक्त अर्द्धाली में भी **'जौं'** पाठ ही ठीक लगता है। डॉ० गुप्तजी का **'जौ'** पाठ चिन्त्य है।

सामान्य भूतकाल के निर्देशार्थ उत्तमपुरुष एकवचन की स्थिति में अकर्मक क्रिया का कर्त्ता जब पुंलिंग होता है, तब धातु में —एउँ प्रत्यय लगता है। जैसे : **'रहेउँ'** (किष्कि० ६।७) = √रह् + –एउँ। जब कर्त्ता स्त्रीलिंग होता है, तब इउँ प्रत्यय लगता है। जैसे : 'रहिउँ' (अर० १७।१०) = √रह् + –इउँ। रहेउँ = मैं रहा। रहिउँ = मैं रही।

सकर्मक क्रिया की स्थिति में 'मानस' में इउँ प्रत्यय मिलता है, किन्तु तभी मिलता है, जब उसका कर्म स्त्रीलिंग एकवचन में और कर्त्ता उत्तमपुरुष एकवचन में होता है। जैसे :

'जारिउँ जायँ जननि कहि काकू।' (अयो० २६१।६)
'सो सुनि समुझि **सहिउँ** सब सूला'। (अयो० २६२।३)
'जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई।' (लंका० १६।६)

उक्त प्रमाण और व्याकरणिक रूपों को दृष्टि-पथ में रखते हुए यह निर्णय किया

जा सकता है कि गुप्त-संस्करण का 'कहेउँ' पाठ निम्नांकित उद्धरण में चिन्त्य है; क्योंकि 'कथा' कर्म स्त्रीलिंग एकवचन में है :

'तोहि प्रान प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित।' (अर० दो ५।-)।

व्याकरणिक नियम के आधार पर उक्त उद्धरण में 'कहिउँ' पाठ होना चाहिए। अन्य कुछ प्रतियों में 'कहिउँ' पाठ मिलता भी है। (कहिउँ—गीताप्रेस, अर० ५।-)

५. २. रामचरितमानस के काशिराज-संस्करण के कुछ पाठ

विक्रमी संवत् २०१० में तत्रभवान् महाराजा काशिराज की मानस-पाठ-सम्पादन की जिज्ञासा आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के समक्ष प्रस्तुत हुई थी। तब आचार्य मिश्रजी ने अपने शिष्यों की सहायता से तीन महीने तक महाराज के पुस्तकालय में सुरक्षित 'मानस' के हस्तलेखों, विविध प्रकाशन-संस्थाओं और सम्पादकों द्वारा सम्पादित-प्रकाशित मानस के पाठानुसन्धायी विशिष्ट मुद्रित संस्करणों का आलोडन किया। तदुपरान्त महाराज के सम्मुख यह निष्कर्ष उपस्थित किया कि 'मानस के मूल पाठ के क्षेत्र में शोधन करने का अवकाश है।'

उपर्युक्त निष्कर्ष के फलस्वरूप संवत् २०१० वि० की विजयादशमी से आचार्य मिश्रजी के द्वारा 'मानस' के पाठशोध का कार्य आरम्भ हुआ और वह काशिराज-संस्करण के के नाम से सं० २०१८ वि० में प्रकाशित हुआ।

आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बड़ी विद्वत्ता एवं परिश्रम से 'मानस' का काशिराज-संस्करण तैयार किया है। तुलसीदास के 'पंचनामा' को लिपि-लेखन में प्रमाण मानते हुए प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु, ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ, ष, स आदि का प्रयोग किया गया है। बड़ी सावधानी से पुंलिंग अकारान्त संज्ञा शब्द के प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के एकवचनीय रूप में उकार के प्रयोग को प्रस्तुत किया गया है। छन्दों में अर्द्धाली, दोहरा आदि पर भी प्रकाश डाला गया है।

काशिराज-संस्करण से पूर्व जितने भी मानस-संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें उच्चारण की स्पष्टता हेतु **ह्रस्व ए** और **ह्रस्व ओ** के लिए कोई लिपि-चिह्न नहीं मिलता। काशिराज-संस्करण में **एकार** और **ह्रस्व एकार** तथा **ओकार** और **ह्रस्व ओकार** को मुद्रण में विशिष्ट चिह्नों के साथ स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे : **'एक एकन्ह** कहुँ बूझहिं भाई।' (काशि० उत्तर० ३।८)

'एॆक' का प्रथम स्वर 'ए' ह्रस्व है और जिसे नीचे चन्द्राकार वक्ररेखा से व्यक्त किया गया है। 'एकन्ह' का 'ए' दीर्घ है, जो परम्परानुगामी है।

जहाँ व्यंजन पर मात्रा के रूप में ह्रस्व एकार आया है, वहाँ काशिराज-संस्करण में 'ए' की मात्रा को कुछ वक्र बना दिया गया है। **दाहिनॆहु** के ने में ए की मात्रा ह्रस्व है, अत: काशिराज-संस्करण में उसे 'नॆ' के रूप में मुद्रित किया गया है। जैसे :

'जे बिनु काज दाहिनॆहु बाएँ।' (काशि० बाल० ४।१)

इसी सिद्धान्त के आधार पर **'लोभाई'** को **'लोभाई'** के रूप में मुद्रित किया गया है; क्योंकि उच्चारण की दृष्टि से **'लोभाई'** का 'ओ' दीर्घ न होकर ह्रस्व है। अतः, काशिराज-संस्करण में निम्नांकित रूप में उक्त शब्द मुद्रित हुआ है।

'जहँ बसंत रितु **'लोभाई**।' (काशिराज-बाल० २२७।३)

इतना ही नहीं, कुछ अर्द्धालियों के प्रमुख शब्दों के शुद्ध पाठों का पता लगाने में आचार्य मिश्रजी ने घोर परिश्रम किया है। जिन पाठों का पता उन्होंने लगाया है, वे अर्थ की दृष्टि से बड़े सटीक सिद्ध होते हैं। जैसे : 'तेऊ आजु **राजपदु** पाई' (काशि०, अयो० २२७।३) में **'राजपदु'** पाठ संगत है, गीता प्रेस का 'रामपदु' (गीता प्रेस, अयो० २२८।३) पाठ असंगत है। प्रसंग भी राज-पद का ही है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित मानस-संस्करण में और गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण में **'बायस'** पाठ हैं। एक ही अर्द्धाली में **'बायस'** और **'कागा'** का प्रयोग एक तो द्विरुक्ति-दोष उत्पन्न करता है, दूसरे 'निरामिष' से उसकी ठीक संगति भी नहीं बैठती। गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण में पाठ इस प्रकार हैं :

'**बायस** पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ।।' (बाल० ५।२)

× ×

उक्त अर्द्धाली काशिराज-संस्करण में इस प्रकार है :

'**पायस** पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ।।' (काशि० बाल ५।२)

(अर्थ : यदि कौए अति प्रेमपूर्वक खीर से पाले जायँ, तो क्या वे कभी निरामिष हो जायेंगे ?)

'मानस' में बालकाण्ड के ७८वें दोहे की आठवीं अर्द्धाली को गुप्त-संस्करण में इस प्रकार मुद्रित किया गया है :

'देखहु मुनि अबिबेक हमारा।
चाहिअ **सिवहि सदा** भरतारा ।।' (गुप्त-संस्क०, बाल० ७८।८)

यही गीता प्रेस-संस्करण में इस प्रकार मुद्रित है :

'देखहु मुनि अबिबेकु हमारा।
चाहिअ **सदा सिवहि** भरतारा ।।' (गीता प्रेस, बाल० ७८।८)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से यह व्यक्त होता है कि प्राचीन काल में भर्त्तार (पति) भी स्थायी और अस्थायी हुआ करते थे। नारी जिसे पति बनायगी, वह तो उसका सदा के लिए पति होगा ही। कोई तलाक-प्रथा थोड़े थी, जो 'सदा' शब्द का प्रयोग पार्वती कर रही हैं।

उक्त उद्धरण का वास्तविक मर्म काशिराज-संस्करण के पाठ से उद्घाटित हो जाता है। शिवजी का एक नाम **सदाशिव** भी है। अतः, काशिराज-संस्करण में एक शिरोरेखा-सहित **'सदासिव'** पाठ मुद्रित किया गया है, जो वस्तुतः समीचीन है :

'देखहु मुनि अबिबेकु हमारा ।
चाहिअ सदासिवहि भरतारा ।।' (काशि०, बाल० ७८।८)

यदि किसी व्यक्ति के नाम में दो शब्द हैं, तो उसे एक शिरोरेखा के साथ छापा गया है—जैसे 'हिमभूधर' (बाल० ६५।८) । यह राजा हिमाचल का नाम है। ऐसी वैज्ञानिकता गुप्त-संस्क० में और गीता प्रेस-संस्क० में कम है ।[1]

बालकाण्ड के ३००वें दोहे की दूसरी अर्द्धाली गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण में इस प्रकार है :

'चले मत्त गज घंट बिराजी ।
मनहुँ सुभग सावन घन राजी ।।' (गुप्त-संस्क०, बाल०, ३००।२)
'चले मत्त गज घंट बिराजी ।
मनहुँ सुभग सावन घन राजी ।।' (गीता प्रेस, बाल० ३००।२)

सारांश यह है कि गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण में समान पाठ हैं ।

उक्त अर्द्धाली का अर्थ यह है कि 'घण्टों से सुशोभित होकर मत्त गज ऐसे चले, मानों सावन की सुन्दर घन-पंक्ति हो ।'

यहाँ रूप-गत उपमा है । 'घन' उपमान है, और 'गज' उपमेय है । 'घंट' शब्द जो नाद का सूचक है, उसकी संगति उपमान के साथ नहीं बैठती । ऐसी स्थिति में लगता है कि तुलसी का अपना पाठ कुछ और होना चाहिए । वह क्या है ? इसका पता आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लगाया है । वास्तविक पाठ यह होना चाहिए था :

'चले मत्त गज **घटा** बिराजी ।
मनहु सुभग सावन धनराजी ।।' (काशि०, बाल० ३००।२)

अर्थ : मत्त हस्ती चले । उनकी घटा ऐसी सुशोभित हुई, मानों सावन की सुन्दर घन-पंक्ति हो ।

ऐसे कुछ और भी महत्त्वपूर्ण पाठों का पता आचार्य मिश्र द्वारा लगाया गया है, जो काशिराज-संस्करण में यथास्थान दिये गये हैं। इससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य मिश्रजी ने काशिराज-संस्करण के सम्पादन में बड़ा परिश्रम किया है । परन्तु, साथ-ही-साथ यह प्रश्न भी उठ खड़ा होता है कि क्या 'मानस' के काशिराज-संस्करण के पाठों से तुलसी के मानस की भाषा की व्याकरणिक समस्याओं का पूर्णतः समाधान हो जाता है ?

---

१. गीता प्रेस गोरखपुरवाले संस्करण में एक शिरोरेखा का भ्रष्ट पाठ : 'समुझइ खग **खगही** कै भाषा।' (गीता प्रेस, (उत्तर० ६२।९) ।
काशिराज-संस्करण का दो शिरोरेखाओं का शुद्ध पाठ :
'समुझै खग **खग ही** कै भाषा ।' (काशि०, उत्तर० ६२।९)

आचार्य मिश्रजी द्वारा सम्पादित 'रामचरितमानस' (काशिराज-संस्करण, संवत् २०१८ वि०) के पाठों को देखकर तथा उनपर व्याकरणिक दृष्टि से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि अब भी अनेक समस्याएँ ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और बहुत-सी समस्याएँ, जिनका समाधान गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण से हो जाता था, फिर नये सिरे से काशिराज-संस्करण ने उभार दी हैं। उन्हें यहाँ हम लिंग, वचन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, विभक्ति आदि के दृष्टिकोण से अपने पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. लिंग-विषयक समस्या :

तुलसी के 'मानस' की भाषा-संरचना के आधार पर कुछ उदाहरणों को दृष्टिपथ में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि **'आसिष'** शब्द तुलसी के मतानुसार स्त्रीलिंग है; क्योंकि उसके साथ **'दीन्हि'** स्त्रीलिंग भूतकालीन क्रिया का प्रयोग हुआ है :

'आसिष **दीन्हि**[1] सखीं हरषानीं।
निज समाज लै गई सयानीं ॥' (काशि०, बाल० २६६।५)

अर्थ : (परशुराम ने) 'आसिष' दी, सखियाँ हर्षित हुईं। वे सयानी सखियाँ सीता को अपने समाज में ले गईं।

'कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हि हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥'
(काशि०, उत्तर०, दो० ८)

अर्थ : हनुमान् आदि वीर वानरों ने फिर कौशल्याजी के चरणों में अपना मस्तक झुकाया। कौशल्याजी ने 'आसिष' दी और कहा कि तुम राम के समान मुझे प्रिय हो।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से सिद्ध है कि तुलसी **'आसिष'** को स्त्रीलिंग मानते हैं। किन्तु, उत्तरकाण्ड के ११३वें दोहे की अर्द्धाली उक्त मान्यता का खण्डन कर देती है और पाठक के मन में यह शंका उत्पन्न करती है कि काशिराज-संस्करण का **'दीन्ह'** (उत्तर० ११३।१५) पाठ अशुद्ध है। व्याकरणिक दृष्टि से **'दीन्हि'** होना चाहिए। काशिराज-संस्करण में पूरी अर्द्धाली इस प्रकार मुद्रित है :

'निज कर कमल परसि मम सीसा।
हरषित **आसिष दीन्ह**[2] मुनीसा ॥'
(काशि०, उत्तर० ११३।१५)

---

१. व्रजभाषा में **दीनी, दई** स्त्रीलिंग भूतकालीन क्रियाएँ प्रचलित हैं। छन्द के निर्वाह में **दीनि** भी हो सकता है। व्रज० **दीनि**=अव० **दीन्हि**।

२. डा० गुप्त-संस्करण में 'दीन्हि' पाठ है, जो अन्य पाठों से व्याकरणिक संगति रखता है।

अर्थ : मुनीश्वर ने अपने कर-कमल से मेरा सिर स्पर्श करके और प्रसन्न होकर मुझे 'आसिष' दी।

जब 'आसिष' तुलसी के मत से स्त्रीलिंग है और उसके साथ कृदन्त क्रियापद अन्यत्र **'दीन्हि'** प्रयुक्त भी है, फिर उक्त अर्द्धाली में 'दीन्ह' पाठ क्यों ? यह चिन्त्य है।

गीताप्रेसवाले संस्करण में भी 'दीन्ह' ही पाठ है। किन्तु, गुप्त-संस्करण में **'दीन्हि'** पाठ है, जो व्याकरण-सम्मत है और अन्य पाठों की संगति में शुद्ध माना जा सकता है।

२. वचन-विषयक समस्या :

'गरबु' (काशि० बाल०, सो०, २४५) पद पुंलिंग, एकवचन है। **'नृपन्ह के'** की संगति में **'गरब'** (बहुवचन) आना चाहिए। **'गरबु'** पाठ काशिराज-संस्करण (बाल० २४५।-) में चिन्त्य है। 'नृपन्ह के' प्रयोग ठीक माना जाय तो फिर 'गरब' पाठ होना चाहिए।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द का बहुवचनीय रूप तुलसी अनुनासिक करके बनाते हैं, अर्थात् चन्द्रबिन्दु के योग से उस शब्द को ईकारान्त कर देते हैं।

जैसे : **'सखी'** का बहुवचन **'सखीं'** प्रयुक्त है

'सुनि हरषीं सब **सखीं** सयानी।' (काशि०, बाल० २२९।३)
'देखि सुरन्ह **दुंदुभीं बजाईं**॥' (काशि०, उत्तर० १२।८)

इन उद्धरणों से सिद्ध है कि तुलसी बहुवचनीय ईकारान्त स्त्रीलिंग पद के साथ भूतकालीन क्रिया का प्रयोग भी स्त्रीलिंग बहुवचन में ही करते हैं, अर्थात् क्रिया लिंग और वचन में कर्त्ता या कर्म का अनुसरण करती है। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि **'हरषीं'** एवं **'बजाईं'** कृदन्त-रूपिणी क्रियाएँ हैं। वैसे तुलसी ने तिङन्त-रूपिणी क्रियाएँ भी प्रयुक्त की हैं। जैसे :

'सखी गावहिं' (काशि०, बाल० २२८।३)

उक्त उदाहरणों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि एकवचन में **'सखी हरषी'** और बहुवचन में **'सखीं हरषीं'** प्रयोग तुलसी के दृष्टिकोण से ठीक है। इसी प्रकार, एकवचन में **'सखी आई'** ठीक है; और बहुवचन में **'सखीं आईं'** व्याकरण सम्मत है।

अब शंका या समस्या यह उत्पन्न होती है कि काशिराज-संस्करण में 'सखीं' नामिक पद के साथ **'लै आई'** क्यों मुद्रित है ? 'आई' तो **एकवचन** की क्रिया है। यह पाठ चिन्त्य है।

'पूजन गौरि सखीं लै आई।[1]
करत प्रकासु फिरहि[2] फुलवाई॥' (काशि०, बाल० २३१।२)

---

१. 'पूजन गौरि सखीं लैं आईं। करत प्रकास **फिरहिं** फुलवाईं।' (गुप्त-संस्क०, बाल०, २३१।२)
२. 'फिरहि' = यह आज्ञा या निवेदन के अर्थ में मध्यमपुरुष एकवचन की क्रिया है। अर्थ है 'तू फिर' अथवा 'तू फिरता है'। अतः, **फिरहि** चिन्त्य प्रयोग है। गीता प्रेस-संस्करण का **फिरइ** पाठ ठीक है।

'बहु धनुहीं' के स्थान पर **'बहु धनुही'** (काशि०, बाल० २७१।७) मुद्रित है।

इसी तरह **'पठईं'** पाठ न देकर **'पठई'** दिया गया है, जो वचन-दोष युक्त है :

'पठईं जनक अनेक सुसारा।' (काशि० बाल० ३३३।५)

उत्तरकाण्ड में एक शब्द **'बंदनवार'** (उत्तर० ९।२) लिखा गया है। इसी का बहुवचन रूप **'बंदनिवारे'** (बाल० २८९।१) मुद्रित है। पूर्ण अर्द्धाली इस प्रकार है :

'रचे रुचिर बर **बंदनिवारे**।
मनहु मनोभव फंद सँवारे॥' (काशि०, बाल० २८९।१)

अर्थ : सुन्दर और उत्तम बन्दनवार बनाये गये, मानों कामदेव ने फन्दे सजाये हों।

उक्त दोनों शब्दों (**बंदनवार** और **बंदनिवार**) से समया यह खड़ी हो जाती है कि एक ही अर्थ में एक शब्द उत्तरकाण्ड में **'बंदनवार'** रूप में और बालकाण्ड में **'बंदनिवार'** रूप में मिलता है। क्या तुलसी इसे दो प्रकार से लिखा करते थे ? तुलसी का तो शब्द का अपना कोई एक रूप ही होगा। **'बरर्षाहं'** और **'बरिसहिं'** के प्रकाश में पण्डित मिश्रजी के मतानुसार सम्भवतः उक्त प्रयोगों का समाधान दिया जा सके।

३. संज्ञा शब्द और विभक्ति-समस्या :

ईकारान्त पुंलिंग शब्द को तृतीया में तुलसी इंकारान्त कर देते हैं। जैसे : 'तुलसीं' (काशि०, बाल० ३६१।छन्द), किन्तु काशिराज-संस्क० में **जोगी, रोगी** (बाल० ३५०।६) को इंकारान्त नहीं किया गया।

अयोध्याकाण्ड के एक संज्ञापद **'गोमतीं'** (अयो० ३२१।५) के प्रयोग से सिद्ध होता है कि **'गोमतीं'** के अन्तिम 'ईकार' पर चन्द्रबिन्दु का प्रयोग सप्तमी के एकवचन का सूचक है।

अर्थ है 'गोमती में।' उदाहरण :

'सई उतरि **गोमतीं** नहाए।
चौथे दिवस अवधपुर आए॥' (काशि०, अयो० ३२१।५)

अर्थ : सई उतर कर गोमती नदी में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्या आ गये।

किन्तु, काशिराज-संस्करण में निम्नांकित अर्द्धालियों के **'बानी'** और **'फुलबाई'** संज्ञा शब्दों में चन्द्रबिन्दु नहीं लगाया गया, जबकि ये दोनों शब्द स्त्रीलिंग ईकारान्त हैं और **'गोमतीं'** की भाँति सप्तमी एकवचन के रूपों में प्रयुक्त हैं :

'गावहिं गीत मनोहर **बानी**। (काशि०, बाल० २२८।३)

अर्थ : (सखियाँ) मनोहर वाणी में गीत गाती हैं।

× ×

'करत प्रकासु **फिरहि फुलबाई**।' (काशि०, बाल० २३१।२)

अर्थ : फुलवारी में प्रकाश करती...।

उक्त सिद्धान्त के आधार पर ही बालकाण्ड का 'भीती' पद व्याकरणानुसार 'भीतीं' होना चाहिए। लेकिन, तुलसी की भाषा संरचना-पद्धति के विरुद्ध काशिराज-संस्करण में 'भीती' छपा हुआ है, जबकि अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से वहाँ वह सप्तमी एकवचन का रूप है :

'चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही।' (काशि०, बाल० २३५।१)

अर्थ : राम द्वारा जानकी सुन्दर चित्त-रूपी दीवार पर लिख ली गई।

सप्तमी विभक्ति-सूचक अन्य पाठों के प्रकाश में उक्त चरण में 'भीतीं' पाठ होना चाहिए था।[1] इसी तरह 'जिय' (काशि०, अयो० १५६।-) के स्थान पर 'जियँ' होना चाहिए।

४. सर्वनाम शब्द और विभक्ति-समस्या :

उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम 'हम' का द्वितीया विभक्ति में तुलसी कोई एक निश्चित रूप प्रयोग में लाते होंगे। काशिराज-संस्करण में एक स्थल पर 'हमहिं' मुद्रित है, तो दूसरे स्थल पर उसी अर्थ में 'हमहि' छपा हुआ मिलता है। मन्थरा कैकेयी से कहती है :

'कत सिख देइ हमहिं कोउ भाई।
गालु करब केहि कर बलु पाई॥' (काशि०, अयो० १४।१)

× ×

फिर, वही मन्थरा कैकेयी से कहती है :

'कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥' (काशि०, अयो० १६।६)

उपर्युक्त उद्धरणों में से पहले में 'हमहिं' और दूसरे में 'हमहि' है। दोनों कथन मन्थरा के ही हैं। उत्तमपुरुष सर्वनाम 'हम' भी दोनों में द्वितीया, अर्थात् कर्मकारक की स्थिति में प्रयुक्त है। फिर, एक के 'हिँ' पर चन्द्रबिन्दु है और दूसरे 'हि' पर चन्द्रबिन्दु नहीं है। तुलसी का तो कोई निश्चित रूप होगा—**हमहिँ** या हमहि। 'हिँ' और 'हि' से शंका उत्पन्न होती है। गीता प्रेस वाले संस्करण में दोनों स्थलों पर 'हमहि' ही पाठ है।

अयोध्याकाण्ड के १३वें दोहे के बाद से १७वें दोहे तक अधिकांश में द्वितीया विभक्ति के पदों में 'हि' पाया जाता है। गीता प्रेस, गोरखपुरवाले संस्करण में तो उपरिनिर्दिष्ट स्थलों पर हि प्रत्यय ही मिलता है। काशिराज-संस्करण में भी द्वितीया के अर्थ में 'हि' प्रत्ययवाले पद अपेक्षाकृत अधिक हैं।

५. विशेषण शब्द और विभक्ति-समस्या :

तुलसी के 'रामचरितमानस' में विशेषण-विशेष्य के कुछ प्रयोग बड़े विचित्र हैं। 'मानस' में तुलसी कहीं-कहीं विशेष्य पद में विभक्ति-प्रत्यय को लुप्त रखते हैं। तृतीया एकवचन

---

१. व्याकरणिक रूपों की अर्थपरक स्पष्टता की दृष्टि से गीता प्रेस की प्रति के ऐसे पाठ अपेक्षाकृत अधिक उचित एवं सही प्रतीत होते हैं।

का विभक्ति-प्रत्यय —एँ विशेषण में तो लगा हुआ है, किन्तु उसके विशेष्य 'सनेह' में नहीं है। जैसे :

'रीझत राम **सनेह निसोतें** ।
को जग मंद मलिनमति मोतें ॥' (काशि०, बाल० २८।११)

× ×

'निसोतें' (निसोत् + —एँ) का अन्तिम —एँ विभक्ति-प्रत्यय संस्कृत-एन का विकसित रूप है— सं० एन > एँ। **'निसोतें सनेह राम रीझत'** अर्थात् शुद्ध स्नेह से राम प्रसन्न होते हैं। इसी आधार पर **'कठोर कुठार से'** का रूप होगा **'कठोरें कुठार'**। शंका तब होती है, जब काशिराज-संस्करण में हम **'कठोरे कुठार'** छपा हुआ देखते हैं :

'न त येहि काटि **कुठार कठोरे** ।
गुरहि उरिन होतेउँ **श्रम थोरे** ॥' (काशि०, बाल० २७५।८)

हमें तो तृतीया एकवचन के रूप में अन्यत्र अन्य संस्करणों में —ए विभक्ति-प्रत्यय का योग मिला नहीं। भाषा-प्रकृति यह कहती है कि 'सनेह **निसोतें**' की भाँति यहाँ भी **'कुठार कठोरें'** और **'श्रम थोरें'** पाठ होने चाहिए थे। गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण में तो **'कठोरें'** और **'थोरें'** पाठ बिन्दु-सहित (नासिक्यता-सहित) ही मिलते हैं।[1]

६. क्रियाएँ और उनकी विभक्तियाँ (विभक्ति-प्रत्यय)[2]

छन्द और व्याकरणिक अर्थ की दृष्टि से गीता प्रेस-संस्करण का **'खेलत'** (लंका० ६६।१) पाठ ठीक नहीं लगता। काशिराज-संस्करण का **खेल** (लंका० ६६।१) पाठ शुद्ध है। **गिरा** कर्त्ता स्त्रीलिंग एकवचन है, अतः क्रिया **लगति** आनी चाहिए। अतः, काशिराज-संस्करण का **लगत** (बाल० ११।७) पाठ अशुद्ध है।

बालकाण्ड में **'सखीं हरषीं'** (बाल० २२९।३) प्रयोग है। उसी संरचना-पद्धति पर **'अलीं चलीं'** (बाल० २३६।छन्द) प्रयोग भी मिलता है। अर्थात्, कर्त्ता स्त्रीलिंग बहुवचन में है, तो क्रिया भी स्त्रीलिंग बहुवचन में आई है। किन्तु उसी छन्द में **'अलीं'** क्रिया **'हरषी'** छपी मिलती है। वास्तव में, **'हरषीं'** पाठ होना चाहिए। काशिराज-संस्क० में अशुद्ध पाठ इस प्रकार है :

'येहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ **हरषी अलीं** ।
(काशि०, बाल० २३६।छन्द)

जिस प्रकार तुलसी **'सखी'** का बहुवचन **'सखीं'** लिखते हैं, उसी प्रकार वह **'रानी'** का बहुवचन **'रानीं'** लिखते होंगे। किन्तु, काशिराज-संस्करण में **'राजहिं'** बहुवचनीय तिङन्त

---

१. 'दिग्दर्शन' शीर्षक अध्याय में इसपर प्रकाश डाला गया है।
२. यहाँ 'विभक्ति-प्रत्यय' का तात्पर्य उन पर-प्रत्ययों से भी है, जो धातु में लगकर क्रियापद का निर्माण करते हैं।

क्रियापद के साथ कर्त्तृ पद **'रानी'** के एकवचनीय प्रयोग को देखकर पाठ की शुद्धि के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न होती है। उदाहरण :

'मंदिर महुँ सब **राजहिं रानी**।' (काशि०, बाल० १९०।७)

तुलसी की भाषा-रचना-पद्धति के आधार पर पाठ इस प्रकार होना चाहिए :

'मन्दिर महुँ सब **राजहिं रानीं**।'

यही उक्त पाठ डॉ० माताप्रसाद गुप्त के संस्करण में मिलता भी है।

'मानस' में 'उपाइ' (इकारान्त) शब्द स्त्रीलिंग माना गया है। तुलसी लिखते भी हैं :

'सखा कही तुम्ह नीकि **उपाई**।' (काशि०, संस्क० सुन्दर० ५१।१)

व्याकरण से **'करबि'** स्त्रीलिंग एकवचन कर्मवाच्य की क्रिया है। यह कर्म के लिंगानुसार आनी चाहिए। काशिराज-संस्क० में 'उपाय' (अकारान्त) के साथ पाठ है। 'अवसि उपाय करबि मैं सोई' (बाल० १२६।६)। वास्तव में, यहाँ **'उपाय'** के स्थान पर **'उपाइ'** होना चहिए। तुलसी **'उपाइ'** को स्त्रीलिंग, **'उपाय'** (अयो० ७८।१) को पुंलिंग मानते हैं।

काशिराज-संस्करण में **'करत प्रकासु फिरहि फुलवाई'** (बाल० २३१।२) की **'फिरहि'** क्रिया हमें बड़ी भ्रान्ति में डाल देती है। यदि यह एकवचन में अन्यपुरुषीय वर्त्तमान कालीन क्रिया है, तो पाठ **'फिरइ'** होना चाहिए। यदि बहुवचनीय प्रयोग है, तो **'फिरहिं'** लिखा जाना चाहिए। **'फिरहि'** तो उक्त स्थल पर व्याकरण-विरुद्ध है। तुलसी के 'मानस' की भाषा-संरचना के आधार पर **'फिरहि'** का व्याकरणिक अर्थ हो सकता है—'तू फिर अर्थात् वापस जा।' इस अर्थ की यहाँ कोई संगति नहीं।

गुप्त-संस्करण में **'फिरहिं'** पाठ है और गीता प्रेस-संस्करण में **'फिरइ'**। व्याकरणानुसार दोनों प्रयोग ठीक हैं। वर्त्तमानकाल में अन्यपुरुष एकवचन **फिरइ**, अन्यपुरुष, बहुवचन **फिरहिं**। 'करत प्रकास **फिरहिं** फुलवाईं।' (गुप्त-संस्करण, बाल० २३१।२)।

अर्थ : फुलवारी में (वे सखियाँ) प्रकाश करती फिरती है।

× ×

'करत प्रकास **फिरइ**[1] फुलवाई।' (गीता प्रेस, बा० २३१।२)

अर्थ : (सीता) फुलवारी में प्रकाश करती फिरती हैं।

× ×

---

१. गीता प्रेस के संस्करण में **फिरइ, फिरै** (बाल० २३१।२, ३४०।४) और 'करइ', 'करै' (बाल० ३६।३, बाल० ८१।२) में व्याकरणिक भेद है। 'करइ' वर्त्तमान और करै क्रिया भविष्यसूचक है। करइ = करता है। करै = करे। फिरइ = फिरती है। मिला० 'सारस **कुरलहिं** राति नींदि तिल एक न **आवइ**।' (सं० माताप्रसाद गुप्त, दाऊद-कृत चांदायन, प्रामाणिक प्रकाशन, लाजपतकुंज, आगरा, सन् ६७, पृ० २०)। कुरलहिं = बोलते हैं। आवइ = आती है।

काशिराज-संस्करण में **'फिरहि'** पाठ है, जो व्याकरणिक संरचना के विरुद्ध बैठता है। अन्यपुरुष में यह न एकवचन है और न बहुवचन। यदि संगत रूप है, तो —अहि।—हि प्रत्ययान्त निर्देशार्थ वर्त्तमानकालीन अन्य पुरुषीय क्रियापद 'मानस' में अन्यत्र भी तो मिलना चाहिए। ऐसा रूप सम्पूर्ण मानस में कहीं नहीं मिलता।

व्याकरणानुसार **'जागे'** का अर्थ है—**'जागने पर'** या **'जागे'**।'जागें' का तो अर्थ है—**जागने से**। काशिराज-संस्करण में निम्नांकित अर्द्धाली-चरण का **जागें**[1] पाठ चिन्त्य है। गुप्त-संस्करण और गीता प्रेस-संस्करण का 'जागे' पाठ ठीक है।' उहाँ **रामु** रजनी अवसेषा। **जागें** सीय[1] सपन अस देखा।।' (काशिराज-सं०, अयो० २२५।३)

तृतीया विभक्ति के साथ जब कर्त्ता आता है, तब क्रिया का रूप कर्मवाच्य में होता है। सुमित्रा द्वारा सुन्दर चौकें पूरी गईं'—इस वाक्य की क्रिया कर्मवाच्य की है। तुलसी के अनुसार इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है—'सुमित्राँ चारु चौकइँ पूरीं।' काशिराज-संस्करण में पाठ इस प्रकार है :

'चौकइँ चारु सुमित्राँ पूरीं।' (काशि०, अयो० ८।३)

उक्त उद्धरण से सिद्ध है कि तुलसी आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द का तृतीया एकवचनीय रूप चन्द्रबिन्दु के योग से बनाते हैं। जैसे : **'सुमित्रा'** से **'सुमित्राँ'** (=सुमित्रा द्वारा, सुमित्रा से)। ऐसी स्थिति में कर्मवाच्य में कृदन्त-क्रिया ही प्रयुक्त हुई है।

अब काशिराज-संस्करण में अन्यत्र **'सुमित्राँ'** का प्रयोग देखिए :

'भेटेउ तनय सुमित्राँ, रामचरन रति जानि।' (काशि०, उत्तर० ६।—)

उक्त दोहांश में **'भेंटेउ'** क्रिया कृदन्त है। इसका कर्त्ता 'सुमित्राँ' है, जो अर्थ की दृष्टि से तृतीया विभक्ति के एकवचन में है। अर्थ होगा—'सुमित्रा द्वारा राम-चरणों में प्रीति जानकर पुत्र से मिला गया।

'राम द्वारा भरत भेंटा गया' = राम **भेंटेउ** भरत।[2]

'कौसल्या द्वारा भरत भेंटा गया =' कौसल्याँ **भेंटेउ** भरत।

'सुमित्रा द्वारा भरत भेंटा गया = 'सुमित्राँ **भेंटेउ** भरत।'

'राम द्वारा कैकेयी भेटी गई' = राम **भेंटी** कैकेई।'

ऐसी स्थिति में तृतीया विभक्ति के रूप का प्रश्न अवश्य उठता है। अतः, **'सुमित्राँ'** पाठ ही समीचीन है। गुप्त-संस्करण में **'सुमित्रा'** पाठ है, जो व्याकरणिक रूप की दृष्टि से अस्पष्ट और चिन्त्य है :

---

१. इस **'जागे'** क्रिया का कर्त्ता 'रामु' है। 'रामु' आदरवाची कर्त्ता है, अतः क्रिया **'जागे'** तो ठीक है; किन्तु **'जागें'** पाठ व्याकरण की दृष्टि से असंगत है। ठीक अन्वय यह है—'उहाँ रजनी अवसेषा रामु जागें। सीय अस सपन देखा।'

२. इसी आधार पर काशिराज-संस्करण में 'जानेउ' (अयो० २८।१) पाठ है।

'भेंटेउ तनय सुमित्रा, रामचरन रति जानि।' (गुप्त-संस्करण, उत्तर० ६।—)

'सुमित्राँ'[1] पाठ से ही वाक्य-रचना की व्याकरणिक संगति ठीक बैठती है।

यही पाठ गीता प्रेस और काशिराज-संस्करणों में मिलता भी है। लेकिन, काशिराज-संस्करण में 'रामहि राय कहैउ बन जाना' (काशि०, अयो० २९१।३) का 'राय' पाठ असंगत है; 'रायँ' समीचीन है।

काशिराज-संस्करण में 'करि प्रनामु भेंटी सब सासू' (अयो० ३१९।२) का 'भेंटी' पाठ व्याकरण-विरुद्ध है। सीताजी द्वारा सब सासें भेंटी गई हैं, अतः 'भेंटीं' पाठ होना चाहिए। गीता प्रेस-संस्क० में 'भेंटीं' पाठ ही दिया हुआ है।' 'प्रथम राम भेंटी कैकेई।' (काशि०, अयो० २४२।६) में 'भेंटी' ठीक है। काशिराज-संस्करण का 'कहेउ' (अयो० ३०।५) पाठ व्याकरणसम्मत है। लेकिन, गीता प्रेस और गुप्त-संस्करणों का 'कहेहु' (गीता प्रेस, अयो० ३०।५) पाठ भी ठीक है।[2] काशि० संस्क० (बाल० २२९।६) में 'देखिअहि' पाठ अशुद्ध है, 'देखिअहिं' होना चाहिए। इसी प्रकार काशि० का 'देखी' (लंका० १०५।४) पाठ भी अशुद्ध है। 'देखीं'[3] शुद्ध है।

७. विशिष्ट विभक्ति-चिह्न :

पुंलिंग अकारान्त प्रातिपदिक से बने पद कर्त्ता और कर्म की स्थिति में 'मानस' में प्रायः उकारान्त मिलते हैं। तुलसी की यह भाषा-संरचना-पद्धति प्रायः सर्वत्र स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। जैसे :

'मागी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥' (काशि०, अयो० १००।३)

उक्त अर्द्धाली के 'केवटु' और 'मरमु' पद उकारान्त हैं। निम्नांकित दोहे में 'मन' शब्द का प्रयोग प्रथमा विभक्ति (कर्त्ताकारक) के रूप में हुआ है, किन्तु काशिराज-संस्करण में 'मनु' नहीं, अपितु 'मन' पाठ है :

'करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लुभान।' (काशि०, बाल० २३)

अर्थ : राम अनुज से बातें कर रहे हैं, किन्तु मन सीता के रूप में लुब्ध है।

यहाँ मन प्रातिपदिक का प्रयोग प्रथमा विभक्ति में हुआ है। अतः, अर्थ और मानस-भाषा-रचना-पद्धति के अनुसार मनु पाठ होना चाहिए। गुप्त-संस्करण में तो 'मनु' पाठ ही मिलता है। पुंलिग अकारान्त प्रातिपादिकों को प्रथमा या द्वितीया विभक्ति के एकवचन में तुलसी ने उकारान्त किया भी है।

---

१. मिला०। 'राम सखा रिषँ बरबस भेंटा।' (काशि०, अयो० २४३।६) अर्थ : ऋषि द्वारा रामसखा भेंटा गया।

२. व्याकरणिक रूप और अपने-अपने प्रसंगार्थ में दोनों पाठ संगत हैं। कहेउ = कहा गया। कहेउ = तुमने कहा। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तुलसी 'कहेहु' का प्रयोग 'तुम कहना' और 'कहेसु' का प्रयोग 'तू कहना' के अर्थ में भी करते हैं। कहेहु (अर० ३१।–)। कहेसु (किष्कि०१।४)। सं० कथयिष्यसि > अप० कहेसु > अव० कहेसु।

३. 'रुदन करत देखीं सब नारी'। (गीताप्रेस, लंका० १०५।४)

इस प्रकार, बहुत-से स्थलों पर विचार करने के पश्चात् यही कहा जा सकता है कि 'मानस' के महत्त्वपूर्ण काशिराज-संस्करण के प्रकाशित हो जाने पर भी 'रामचरितमानस' की भाषा-पद्धति से सम्बद्ध कुछ नई व्याकरणिक समस्याएँ भी पाठकों के लिए उठ खड़ी हुई हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ भाषागत समस्याएँ तो ऐसी हैं, जिनका समाधान तीनों (गुप्त-संस्करण, गीता प्रेस-संस्करण और काशिराज-संस्करण) में से किसी के भी द्वारा नहीं होता। जैसे : **सीता कै बिलाप** '(अरण्य० २६।६)

'हम सब भाँति **करब** सेबकाई।' (अयो० १३६।५)
'हम सब भाँति **करब** सेवकाई।' (काशि०, अयो० १३५।५)

यदि यह मान लिया जाय कि तुलसी के मतानुसार **'बिलाप'** स्त्रीलिंग है और **'करब'** कर्त्तृवाच्य का तिङन्त-प्रयोगी क्रियापद है, तब तो पाठक की शंका का समाधान हो जाता है। किन्तु, अभी यह विचारणीय विषय है। 'मानस' में प्राय: —अबि प्रत्ययान्त क्रियापद कर्मवाच्य स्त्रीलिंग एकवचन में मिलते हैं।

'रामचरितमानस' के देखने से विदित होता है कि तुलसी **'कै'** परसर्ग का प्रयोग स्त्रीलिंग में करते हैं, अर्थात् जब **'कै'** के बाद सम्बन्धी संज्ञापद स्त्रीलिंग में होता है, तब तुलसी **'कै'** और पुंलिंग की स्थिति में **'कर'**, **'क'** आदि लिखते हैं। मानस में **'कै'** के निम्नांकित प्रयोग द्रष्टव्य हैं। ये प्रयोग गुप्त-संस्करण, गीता प्रेस-संस्करण और काशिराज-संस्करण में भी मिलते हैं :

'मेली कण्ठ सुमन **कै** माला।' (किष्कि० ८।७)
× ×
'उपकारी **कै** संपति जैसी।' (किष्कि० १५।५)

१. सुमन **कै** माला = सुमनों **की** माला।
२. उपकारी **कै** सम्पति = उपकारी **की** सम्पत्ति।

किन्तु, समस्या तब खड़ी हो जाती है, जब 'मानस' में अरण्यकाण्ड की निम्नांकित अर्द्धाली में 'बिलाप' (पुंलिग शब्द) के साथ **'कै'** परसर्ग का **प्रयोग** मिल जाता है :

'सीता **कै** बिलाप सुनि भारी।' (अर० २९।६)
अर्थ : सीता का भारी विलाप सुनकर।

सीता **कै** विलाप = सीता **का** विलाप।

उक्त **'कै'** से यह सिद्ध होता है कि तुलसी के मतानुसार **बिलाप** स्त्रीलिंग शब्द है। अवधी के जनपदीय क्षेत्र में इसकी खोज की जानी चाहिए।

तुलसी के मानस में **'करब'** और **'करबि'** का प्रयोग कर्मवाच्य की क्रिया के रूप में मिलता है, अर्थात् पुंलिग में 'करब'; और स्त्रीलिंग में **'करबि'** का प्रयोग 'मानस' में कई स्थलों पर हुआ है :

'सब कै सार सँभार गोसाईं।
करबि जनक जननी की नाईं॥' (अयो० ८०।६)

अर्थ : हे गुसाईं ! माता-पिता के समान इन सबकी देख-रेख आपके द्वारा की जाय ।

'भाषाबद्ध करबि में सोईं ।' (काशि०, बाल० ३१।२)

अर्थ : (वह कथा) मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी ।

× ×

'जिअत न करबि सवति सेवकाई ।' (अयो० २१।१)

अर्थ : जीते जी सौत की सेवा न की जाएगी ।

'मैं कुछ करबि ललित नरलीला ।' (काशि० अर० २४।१)

अर्थ : मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जाएगी ।

× ×

उपर्युक्त उद्धरणों में 'करबि' स्त्रीलिंग क्रिया इसीलिए आई है कि उससे सम्बद्ध कर्म 'कथा', 'सेवकाई' और 'नर-लीला' स्त्रीलिंग में हैं ।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि स्त्रीलिंग कर्म 'सेवकाई' होने पर भी 'मानस' की निम्नांकित अर्द्धाली में 'करब' पाठ क्यों दिया गया है ? यह पाठ तीनों ही संस्करणों (गुप्त, गीता प्रेस, और काशिराज-संस्करण) में पाया जाता है :

'हम सब भाँति करब सेवकाई ।
करि केहरि अहि बाघ बराई ।। (काशि०, अयो० १३५।५)

× ×

'हम सब भाँति करब सेवकाई ।' (गुप्त, गीता प्रेस, अयो० १३६।५)

तुलसी के मानस की भाषा-रचना-पद्धति तो यह कहती है कि स्त्रीलिंग कर्म की स्थिति में पाठ 'करबि' होना चाहिए, किन्तु उक्त तीनों संस्करणों में 'करब' पाठ ही मिलता है । यह समस्या भी विचारणीय है ।

सं० 'अस्माभिः सेवा कर्त्तव्या' का रूपान्तर तुलसी की भाषा-पद्धति से तो यह होना चाहिए : 'हम सेवकाई करबि ।'

सं० कर्त्तव्यः >करअब्ब>करब से स्त्रीलिंग रूप 'करबि'(सं० कर्त्तव्या) ।

अतः, 'सीता कै विलाप' का परसर्ग 'कै' और 'हम सब भाँति करब सेवकाई' का क्रियापद 'करब' वास्तव में मानस के पाठकों के लिए एक समस्या बना हुआ है । क्या तुलसी के विद्वान् 'करबि' पाठवाले मानस-संस्करण के खोजने की कृपा कर सकेंगे ? पूरे मानस में एक यही सकर्मक 'करब' प्रयोग उत्तमपुरुष बहुवचन में तिङन्त क्रिया के रूप में कर्तृवाच्यवाला मिलता है ।

यदि इन समस्याओं का समाधान किया जाय, तो हमारे मत से इस प्रकार किया जा सकता है :

१. करि>कइ>कै=करके (=से द्वारा)

सीता कै विलाप (अर० २९।६)=सीता-कृतविलाप, सीता द्वारा विलाप ।

२. हम करेंगे=हम करब (अयो० १३६।५)

सीतापुर जिले में हम करब, हम करबि,
हम करबै—आज भी बोला जाता है।

काशिराज-संस्करण के सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ के श्लोकों में तृतीय श्लोक हनुमान् की वन्दना से सम्बद्ध है। उसमें 'स्वर्णशैलाभ' और 'रघुपतिवरदूतं' पाठ हैं। किन्तु, गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण में 'हेमशैलाभदेहं' और और 'रघुपतिप्रियभक्तं' पाठ हैं।

काशिराज-संस्करण के ये पाठ संगत प्रतीत होते हैं; क्योंकि तुलसी के आराध्य राम के भक्त हनुमान् के शरीर की दिव्य चमक और सुवर्णता की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति 'स्वर्ण' शब्द से ही होती है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान् का मुख्य का कार्य 'दूतत्व' है। भक्त तो वे सदा हैं ही। पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। अतः, 'स्वर्ण' और 'वरदूतं' पाठ ही उचित हैं।

८. छन्दोविषयक पाठ :

गीता प्रेस, गोरखपुर के 'रामचरितमानस' में लंकाकाण्ड का एक पाठ इस प्रकार है:
'राम पदारबिंद सिर, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधि, जाहु पवनसुत लेन॥' (काशि०, लंका० ५५।)

उक्त उद्धरण में मात्राओं का कोई ऐसा निश्चित क्रम नहीं, जिससे कोई विशिष्ट छन्द निर्धारित हो सके।

काशिराज-संस्करण का पाठ समीचीन है; क्योंकि छन्दःशास्त्र की दृष्टि से उसमें 'दोहरा' छन्द ठहरता है। भिखारीदास के 'छन्दोर्णव' (७।७) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दोहरे के विषम चरणों में १२, १२ मात्राएँ और सम चरणों में ११, ११ मात्राएँ होती हैं। निम्नांकित में यह नियम घटता है:

'रामपदारबिन्द सिरु, नाएउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधि, जाहु पवनसुत लेन॥' (काशि०, लंका० ५५)

५. ३. 'रामचरितमानस' की भाषा में चन्द्रबिन्दु अनुनासिकता का अर्थ :

प्रस्तुत प्रकरण में चन्द्रबिन्दु के प्रयोग पर विचार करते समय गीता प्रेस, गोरखपुरवाले संस्करण को प्रमुख आधार माना गया है। आवश्यकता पड़ने पर डॉ० माताप्रसाद गुप्त-सम्पादित संस्करण तथा पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र-सम्पादित काशिराज-संस्करण को भी देख लिया गया है।

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' में यदि 'हृदय' और 'हृदयँ' अथवा 'कृपा' और 'कृपाँ' लिखा हुआ मिलता है, तो निश्चितरूपेण उन निर्दिष्ट पदों में अर्थ-भेद है। चन्द्रबिन्दु के प्रयोग से शब्द के रूप में तथा अर्थ में क्या-क्या अन्तर उत्पन्न हो जाता है, यही यहाँ विचारणीय है।

चन्द्रबिन्दु के प्रयोग से तुलसी के 'मानस' की संज्ञाएँ और क्रियाएँ क्या-क्या विशिष्ट अर्थ धारण कर लेती हैं, इसी दृष्टिकोण से यहाँ विश्लेषण किया जा रहा है।

१. अकारान्त पुंलिग शब्द :

'हृदय' अकारान्त पुंलिग शब्द है। 'रामचरितमानस' में इसे तुलसी जब 'हृदयँ' रूप में (अँकारान्त रूप में) प्रयुक्त करते हैं, तब इसका क्या अर्थ होता है, यह द्रष्टव्य है :

'कबि कोबिद अस हृदयँ[1] बिचारी।
गावहिं हरि जस कलि मल हारी॥' (गीता प्रेस, बाल०, दो० ११।६)

अर्थ : कवि और पण्डित हृदय में ऐसा विचार कर कलिमलहारी हरियश गाते हैं।

'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥'
(गीता प्रेस, बाल०, दो० २१।६)

अर्थ : रूप के विना देखे भी नाम का स्मरण किया जाय, तो विशेष प्रेम के कारण वह रूप हृदय में आ जाता है।

'सचिवँ[2] चलायउ तुरत रथु।' (गीता प्रेस, अयो० ८५।—)

अर्थ : सचिव द्वारा रथ तुरन्त चलाया गया।

पद		व्याकरणिक विश्लेषण		अर्थ
हृदयँ	=	पुंलिग, सप्तमी, एकवचन	=	हृदय में
सचिवँ	=	पुंलिग, तृतीया, एकवचन	=	सचिव द्वारा

---

१. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में भी 'हृदय' ही पाठ है।

२. गुप्त-संस्करण में 'सचिव' और काशिराज-संस्करण में 'सचिवँ' पाठ है।

२. आकारान्त पुंलिग शब्द :

'मित्र' के अर्थ में **'सखा'** आकारान्त पुंलिग शब्द है। इसका प्रयोग **'सखाँ'** (आँकारान्त) रूप में होने पर 'मानस' में क्या अर्थ प्रकट करता है ? यहाँ इसे देखना चाहिए।

'तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लषन **सखाँ** सब कीन्ह सुपासू ॥'

(गीता प्रेस, अयो० १०५।१)

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मण और **सखा** (गुह) द्वारा सब प्रबन्ध किया गया।

'राम **सखाँ**[१] तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥'

(गीता प्रेस, अयो० १५१।३)

अर्थ : **राम-सखा** (निषादराज) द्वारा तब नाव मँगाई गई। प्रिया सीताजी को पहले उसपर चढ़ाकर फिर रामचन्द्रजी चढ़े।

'कुल कलंकु करि सृजेउ **बिधाताँ**[२]।

साइँ दोह मोहि कीन्ह कुमाताँ ॥' (गीता प्रेस, अयो० १०१।६)

अर्थ : **विधाता द्वारा** कुल-कलंक बनाकर मैं उत्पन्न किया गया और कुमाता द्वारा मुझे स्वामिद्रोही बनाया गया।

पद		व्याकरिणक विश्लेषण		अर्थ
सखाँ	—	पुंलिग, तृतीया, एकवचन	=	सखा द्वारा
बिधाताँ	=	पुंलिग, तृतीया, एकवचन	=	विधाता द्वारा

३. ईकारान्त पुंलिग शब्द :

'जोगी' ईकारान्त पुंलिग शब्द है। ईंकारान्त रूप में, अर्थात् **'जोगीं'** रूप में प्रयुक्त होने पर अर्थ की स्थिति द्रष्टव्य है :

'पावा परम तत्त्व जनु **जोगीं**। अमृत लहेउ जनु संतत **रोगीं**[३] ॥'

(गीता प्रेस, बाल० ३५०।६)

अर्थ : मानों **योगी द्वारा** परम तत्त्व प्राप्त किया गया और मानों शाश्वत **रोगी द्वारा** अमृत प्राप्त किया गया।

'करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु **जोगीं**[३] परमारथु पावा ॥'

(गीता प्रेस, अयो० २३९।३)

---

१. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में 'सखा' पाठ है, 'सखाँ' नहीं।
२. काशिराज-संस्करण में भी 'बिधाताँ' और 'कुमाताँ' ही पाठ है।
३. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में 'जोगी' और 'रोगी' पाठ हैं।

अर्थ : आश्रम में प्रवेश करते ही भरतजी के दुःख-दाह मिटे, मानों **योगी** द्वारा परमतत्त्व प्राप्त किया गया ।

पद		व्याकरणिक विश्लेषण		अर्थ
जोगीं	=	पुंलिंग, तृतीया, एकवचन	=	योगी द्वारा
रोगीं	=	पुंलिंग, तृतीया, एकवचन	=	रोगी द्वारा

४. अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द :

'नाव' अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द है । जब तुलसी 'नावँ' (अँकारान्त) रूप में प्रयुक्त करते हैं, तब क्या अर्थ होता है, इसे देखना चाहिए :

'गुरहि **सुनावँ** चढ़ाइ सुहाईं । नईं[1] नाव सब मातु चढ़ाईं ।।'

(गीता प्रेस, अयो० २०२।८)

अर्थ : गुरुजी को सुन्दर **नाव पर** चढ़ाकर फिर सब माताएँ शोभायमान नई नावों पर चढाई गईं ।

'सीय' का **'सीयँ'** रूप में प्रयोग और अर्थ भी यहाँ द्रष्टव्य है :

'सकुचि **सीयँ**[2] तब नयन उघारे ।'

सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे ।।' (गीता प्रेस, बाल० २३४।३)

अर्थ : तब सकुचाकर **सीता द्वारा** नेत्र खोले गये और सामने दोनों रघुवंश-सिंह देखे गये ।

पद		व्याकरणिक विश्लेषण		अर्थ
नावँ	=	स्त्रीलिंग, सप्तमी, एकवचन	=	नाव पर
सीयँ	=	स्त्रीलिंग, तृतीया, एकवचन	=	सीता द्वारा

५. आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द :

'सीता' आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द है । इसका चन्द्रबिन्दु के साथ **'सीताँ'** रूप बनता है । इसी प्रकार, 'कृपा' का अनुनासिक रूप **'कृपाँ'** है । इसका प्रयोग और अर्थ 'मानस' में देखना चाहिए :

'सतानंद तब आयसु दीन्हा । **सीताँ**[3] गमनु राम पहिं कीन्हा ।।

(गीता प्रेस, बाल० २६३।८)

अर्थ : तब शतानन्दजी द्वारा आदेश दिया गया और **सीता** द्वारा राम के पास प्रस्थान किया गया ।

'तुम्हरी **कृपाँ**[3] सुलभ सोउ मोरे । सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ।।'

(गीता प्रेस, बाल० १४।११)

अर्थ : तुम्हारी **कृपा से** (कृपा द्वारा) मेरे लिए वह भी सुलभ है । रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है ।

---

१. 'नईं नाव' का अर्थ 'नयी नावें' अथवा 'झुकी हुई नावें' हो सकता है ।

२. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में **'सुनाव'** और **'सीय'** पाठ है ।

३. गुप्त-संस्करण और काशिराज-संस्करण में 'सीता' पाठ है ।

'बिष **बाटिकाँ** कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि।' (गीता प्रेस, अयो० ५९।–)

अर्थ : हे पुत्र ! क्या विष की **वाटिका** में सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पाती है ?

पद		व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
सीताँ	=स्त्रीलिंग,	तृतीया, एकवचन	=सीता द्वारा
कृपाँ[1]	= ,,	,, ,,	=कृपा से
बाटिकाँ[2]	= ,,	सप्तमी ,,	=बाटिका में

६. **ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द :**

'सखी' और **'गली'** स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्द हैं। इनपर चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया जाय, तो इनके रूप क्रमशः **'सखीं'** और **'गलीं'** होंगे। अब देखना है कि तुलसी ने इन्हें किन अर्थों में प्रयुक्त किया है :

'**सखीं** सीय मुख पुनि पुनि चाही।
गान करहिं निज सुकृत सराही॥' (गीता प्रेस, बाल० ३४६।५)

अर्थ : सीताजी के मुख को बार-बार देखकर **सखियाँ** अपने पुण्यों की सराहना करके गान करती हैं।

'**गलीं** सकल अरगजाँ सिंचाईं।
जहँ तहँ चौकें चारु पुराईं॥' (गीता प्रेस, बाल० ३४४।५)

अर्थ : सारी **गलियाँ** अरगजे से सींची गईं। जहाँ-तहाँ सुन्दर चौकें पूरी गईं।

'हाट बाट घर गलीं अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥'

(गीता प्रेस, अयो० ११।३)

अर्थ : बाजार, रास्ते, घर, गली और चौपाल पर स्त्री-पुरुष आपस में कहते हैं।

पद		व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
सखीं	=स्त्रीलिंग	प्रथमा, बहुवचन	= सखियाँ
गलीं	= ,,	,, ,,	= गलियाँ
गलीं	= ,,	सप्तमी, एकवचन	= गली में
अथाईं	= ,,	,, ,,	=चौपाल पर

विशेष :

ईँकारान्त पुंलिंग	**ईँकारान्त स्त्रीलिंग**
१. तुलसीं (गीता प्रेस, बाल० ३६१। छन्द) —तुलसी द्वारा	(१) गलीं (गीता प्रेस, अयो० ११।३) —गली में

---

१. गुप्त संस्क० और काशि० संस्क० में 'कृपाँ' पाठ है।
२. ,, ,, 'बाटिका' पाठ है।

'राम जस तुलसीं[1] कह्यो ।' (बाल० ३६१। छन्द)

अर्थ : राम का यश तुलसी द्वारा कहा गया ।

गलीं[2] कहहिं ।' (अयो० ११।३)

अर्थ : गली में कहते हैं ।

क्रियापदों में चन्द्रबिन्दु का प्रयोग :

१. √वध् धातु से 'बधे' क्रियापद बनता है, जिसका अर्थ है **'मारे'** या **'मारे गये'** । तुलसी **'बधे'** का प्रयाग **'मारे गये'** के अर्थ में करते भी हैं :

'खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली ।
बधे सकल अतुलित बलसाली ।।' (गीता प्रेस, सुन्दर० २१।११)

अर्थ : खर, दूषण त्रिशिरा और बालि जैसे सारे अतुल बलशाली जिनके द्वारा मारे गये ।

'बधे' क्रियापद जब चन्द्रबिन्दु के साथ अनुनासिक कर दिया जाता है, तब तुलसी के अर्थ पर विचार कीजिए, अर्थात् **'बधें'** के अर्थ पर :

'इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई ।
ताहि **बधें** कछु पाप न होई ।।' (गीता प्रेस, किष्कि० ९।८)

अर्थ : जो इन्हें कुदृष्टि से देखता है, उसे **मारने से** कुछ पाप नहीं लगता ।

'परा बिकल महि सर के **लागें** ।' (गीता प्रेस, किष्कि० ९।१)

अर्थ : बाण के **लगने** से पृथ्वी पर व्याकुल होकर गिर पड़ा ।

पद	व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
बधें	= धातु बध् + –एँ क्रियापरक संज्ञा, तृतीया, एकवचन, = बधने से	(= मारने से)
लागें	= धातु लाग् + –एँ क्रियापरक संज्ञा, तृतीया एकवचन	(= लगने से ।)

२. √कर् धातु में –अउ प्रत्यय के योग से **'करउ'** रूप बनता है । इसका अर्थ है : वह करे । यह क्रियापद इच्छार्थ में भविष्यत् काल का रूप है, जो अन्यपुरुष, एकवचन को सूचित करता है । तुलसी ने इसका प्रयोग किया है ।

---

१. गुप्त-संस्करण में **'तुलसी'** और काशिराज-संस्करण में **'तुलसीं'** पाठ है ।
२. गुप्त-संस्करण में **गली'** पाठ है । यही काशिराज-संस्करण में भी है ।

'करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन ।' (गीता प्रेस, बाल०, दो० १। सो०१)

अर्थ : वही बुद्धिराशि, शुभगुणधाम गणेश अनुग्रह करे ।

'करउ' को चन्द्रबिन्दु-सहित अनुनासिक (करउँ) करने से क्या अर्थ हो जाता है, इसे देखना चाहिए :

'करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ।' (गीता प्रेस, बाल० २।८)

अर्थ : मैं प्रेम-सहित सुन्दर वाणी से प्रणाम करता हूँ ।

पद	व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
करउँ[1]	= √कर् + –अउँ । तिङन्त क्रिया, सामान्य वर्त्तमान काल, उत्तमपुरुष, एकवचन	= करता हूँ, करती हूँ, करूँ ।

३. √कर् धातु में —अहु प्रत्यय के योग से 'करहु' क्रियापद बनता है, जो प्रार्थना, आज्ञा आदि अर्थ में मध्यमपुरुष, बहुवचन (आदर में एकवचन) का सूचक है । इसका साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में अर्थ किया जा सकता है : 'कीजिए', 'करिए' या 'करो' । 'करहु' को अनुनासिक करने पर 'करहुँ' रूप बनता है । इसे 'मानस' में देखना चाहिए ।

'भरतहि रामु करहुँ[2] जुवराजा ।' (गीता प्रेस, अयो० २७३।७)

अर्थ : राम भरत को युवराज करें ।

पद	व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
करहुँ	= √कर् + –अहुँ । तिङन्त क्रिया, इच्छार्थ, भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, बहुवचन (आदर में एकवचन)	= करें

४. कर् √ धातु में —इहि प्रत्यय के योग से 'करिहि' रूप बनता है । यह सामान्य भविष्यत् काल में अन्यपुरुष, एकवचन का रूप है । तुलसी ने लिखा भी है—'सोई करिहि कल्यान ।' (गीता प्रेस, बाल० ७१।-)

अर्थात्, वही कल्याण करेगा ।

---

१. 'करउँ' में 'अउँ' प्रत्यय है । जब 'कर्' में –इहउँ प्रत्यय लगता है, तब भविष्यत्काल का अर्थ होता है—करिहउँ (गीता प्रेस, बाल० १४।१) = करूँगा, करूँगी ।

२. मिला० राखहु = राख् + —अहुँ = रखें —राखहुँ पलक नयन की नाईं ।' (गीता प्रेस, अयो० ५७।१) अर्थात्, देव और पितर तुम्हारी ऐसे रक्षा करें, जैसे पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं । करहुँ = वे करें । करहु = तुम करो ।

'करिहि'[1] पर चन्द्रबिन्दु लगाने पर 'करिहिँ' रूप बनता है। इसका प्रयोग और अर्थ द्रष्टव्य है :

'सो उमेस मोहि पर अनुकूला।
करिहिँ[2] कथा मुद मंगल मूला।।' (गीता प्रेस, बाल० १५।७)

अर्थ : वह शंकर मुझपर प्रसन्न होकर इस कथा को आनन्द और मंगल की मूल करेंगे।

पद	व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
करिहिँ	=कर्+इहिँ। तिङन्त क्रिया, सामान्य भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, बहुवचन (आदर में एकवचन)	=करेंगे

५. √आ धातु से सामान्य भूतकाल में पुंलिगीय एकवचन कृदन्तीय क्रियापद 'आवा' बनता है। इसका स्त्रीलिंग रूप होता है—'आई'[3]। चन्द्रबिन्दु के प्रयोग से 'आई' का 'आईँ' हो जाता है। तुलसी ने इसका प्रयोग किया है :

'कौसल्यादि तहाँ चलि आईँ।' (गीता प्रेस, बाल० १९०।१)

अर्थ : कौशल्या आदि रानियाँ वहाँ चली आईं।

पद	व्याकरणिक विश्लेषण	अर्थ
आईं	=आ+ -ईं। सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग, बहुवचन (कृदन्तीय क्रियापद)	=आईँ

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में भी सामान्य भूतकाल में स्त्रीलिंग, बहुवचन में 'आईं' का प्रयोग ही प्रचलित है।

---

१. करिहि=कर्+ — इहि=करेगा— भविष्यत, सामान्य, अन्यपुरुष, एकवचन।
२. करिहिं=कर+ — इहिं=करेंगे—भविष्यत्, सामान्य, अन्यपुरुष, बहुवचन।
३. 'पूरब जन्म कथा चित **आई**।' (गीता प्रेस, बाल० १०७।४)
अर्थ : पहले जन्म की कथा चित्त में आई।
आई=एकवचन, आईँ=बहुवचन।

५.४ रामचरितमानस के कुछ संज्ञापदों का लिंग-विधान

निर्जीव पदार्थों का अर्थ व्यक्त करनेवाले शब्दों में अथवा गुण, दशा, व्यापार आदि का अर्थ प्रकट करनेवाले भाववाचक संज्ञा-शब्दों में लिंग-निर्णय कठिन है। संस्कृत-भाषा में भी ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनके लिंग की जानकारी केवल कोश के आधार पर ही हो सकती है। ग्रन्थों के श्लोकों या वाक्यों से भी लिंग का पता लग सकता है। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में लिंग-निर्णय को लोकाश्रय बताया है। संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं, जो त्रिलिंग, अर्थात् पुंलिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग हैं। **'तट'** शब्द तीनों लिंगों में पाया जाता है, जैसे— **तटः, तटी और तटम्।** **'पद'** शब्द नपुंसक लिंग है, किन्तु स्वामीकोश में उसे पुंलिंग भी लिखा गया है। संस्कृत में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है: 'सर्वे पदाः हस्तिपदे निमग्नाः।'

किसी शब्द का लिंग जानने के लिए अर्थ ज्ञान भी सहायता देता है, किन्तु सदा नहीं। संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनके अर्थ से लिंग-निर्णय नहीं हो सकता। **'कलत्र'** और **'दारा'** अर्थ में एक हैं, अर्थात् दोनों शब्दों का अर्थ **'पत्नी'** है, परन्तु **'कलत्र'** शब्द नपुंसकलिंग है और **'दारा'** पुंलिग। इसी प्रकार, हिन्दी में **'खाट'** और **'पलंग'** का एक ही अर्थ है, किन्तु लिंग की दृष्टि से **'खाट'** शब्द स्त्रीलिंग और **'पलंग'** शब्द पुंलिग है। इतना ही नहीं, समान ध्वनिग्रामवाले कुछ शब्द, जिनका अर्थ भिन्न होता है, भिन्नलिंगी होते हैं, जैसे **'चांद'** (= चन्द्रमा, खोपड़ी)। **'चन्द्रमा'** के अर्थ में **'चाँद'** शब्द पुंलिग है, जैसे—**'चाँद'** निकल आया। **'खोपड़ी'** के अर्थ में **'चाँद'** शब्द 'स्त्रीलिंग है, जैसे—चाँद गंजी हो गई।'

कुछ भाषाओं के अध्ययन के समय उनके संज्ञापदों के लिंग-निर्णय के लिए आकार, सन्दर्भ और वाक्य सहायता दे सकते हैं। वाक्य-रचना के अन्तर्गत आये हुए विशेषण और क्रियापद भी लिंग-निर्णय के प्रमुख आधार हैं।

जब वाक्य के अन्तर्गत किसी पद की व्याकरणिक रचना दोनों लिंगों (पुंलिग और स्त्रीलिंग) में एक-सी रहती है, तब सन्दर्भ के आधार पर ही लिंग-निर्णय किया जा सकता है।

हिन्दी में पुंलिग शब्द **'भैंसा'** और इसका स्त्रीलिंग शब्द **'भैंस'** है। इन दोनों का तिर्यक् अवस्था में बहुवचन रूप 'भैंसों' ही होता है। यदि कहीं निम्नांकित वाक्य लिखा हुआ हो, तो लिंग-निर्णय कठिन ही होगा?

वाक्य यह है:

'उन **भैंसों** को खेत में से खोल लाओ।'

इस उक्त वाक्य में आये हुए **'भैंसों'** संज्ञापद में लिंग का पता सन्दर्भ के आधार पर ही लग सकता है।

विशेषण के आधार पर लिंग-निर्णय :

वाक्य में विशेषण-पद संज्ञा-पद के लिंग-निर्णय में सहायक सिद्ध होता है। जैसे :

१. अच्छे[1] **भैंसों** को खूब चारा दो।

२. अच्छी[2] **भैंसों** को खूब चारा दो।

प्रथम वाक्य का '**भैंसों**' संज्ञापद पुंलिग है; क्योंकि उसका विश्लेषण '**अच्छे**' पुंलिग है। द्वितीय वाक्य का '**भैंसों**' संज्ञापद स्त्रीलिंग है; क्योंकि उसका विशेषण पद '**अच्छी**'[3] स्त्रीलिंग है।

किसी-किसी भाषा में सम्बन्धकारकीय परसर्ग भी लिंग-निर्णय में सहायता देता है, जैसे : '**लड़की का ग्रन्थ**', '**लड़के की पुस्तक** :' यहाँ '**ग्रन्थ**' और '**पुस्तक**' का लिंग-निर्णय '**का**' और '**की**' द्वारा हो रहा है।

क्रिया के आधार पर लिंग-निर्णय :

हिन्दी में कृदन्त-क्रियाओं के प्रयोग पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। कृदन्त-पद लिंग के प्रभाव को मानता है। इसलिए संज्ञापदों के लिंगनिर्णय में यह क्रियाएँ भी सहायक सिद्ध होती हैं। हमें जब यह मालूम नहीं है कि 'पवन' शब्द और 'वायु' शब्द किस लिंग में हैं ? तब क्रियापद हमें कुछ सहायता दे सकता है। जैसे :

१. **पवन** चल रहा है।

२. **वायु** चल रही है।

उक्त दोनों वाक्यों की क्रियाएँ '**पवन**' और '**वायु**' के लिंग-निर्णय में सहायक सिद्ध हो रही हैं। क्रिया '**चल रहा है**' बता रही है कि '**पवन**' संज्ञा-पद पुंलिग है और क्रिया '**चल रही है**'[4] बता रही है कि 'वायु' संज्ञापद स्त्रीलिंग है। ये कृदन्त क्रियाएँ हैं, अतः लिंग-निर्णय में सहायक हैं।

'रामचरितमानस' के कुछ संज्ञापदों का अध्ययन इन्हीं आधारों पर करके उनमें लिंग का निर्णय किया गया है। तुलसी के 'रामचरितमानस' में वाक्य-रचना का अध्ययन करने के बाद जो लिंग निश्चित हुआ है, उसी का दिग्दर्शन यहाँ कराया जायगा।

व्रजभाषा और साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में '**मनोरथ**' शब्द पुंलिग है। अवधी-

---

१-२. अवधी में पुं० '**बड़**' और स्त्रीलिंग '**बड़ि**' है, जैसे **बड़ लरिका, बड़ि लरिकी**। बँगला के विशेषण में लिंग-भेद प्रायः नहीं होता। जैसे—**बड़ छेले, बड़ मेये**।

३. मराठी में विशेषण पद भी तीन लिंग रखते हैं :

क. पुंलिग '**चांग्ला मुलगा**' = अच्छा लड़का।

ख. स्त्रीलिंग—'**चांग्ली मुलगी**' = अच्छी लड़की।

ग. नपुंसक लिंग '**चांग्लें फल**' = अच्छा फल।

४. अवधी में वर्त्तमान निर्देशार्थ (विधानार्थ) में तिङन्त क्रिया आती है जैसे : लरिका **पढ़इ**, लरिकी **पढ़इ**। बँगला में भी यही बात है। जैसे : छेले जाय (=लड़का जाता है)। मेये जाय (=लड़की जाती है)।

भाषा के कोशों में भी इसे पुंलिग ही लिखा गया है। अब देखना यह है कि तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' में '**मनोरथ**' का प्रयोग किस लिंग में किया है ?

हिन्दी का सार्वनामिक विशेषण '**मेरा**' पुंलिग है, जैसे '**मेरा भाई**'। इसका स्त्रीलिंग रूप '**मेरी**' होता है, जैसे '**मेरी बहिन**'।

ठीक इसी प्रकार अवधी-भाषा में पुंलिग सार्वनामिक विशेषण '**मोर**' और स्त्रीलिंग सार्वनामिक विशेषण '**मोरि**' है।

तुलसी ने रामचरितमानस (बाल० २३६।३) में '**मोर मनोरथु**' लिखा है :

'**मोर मनोरथु**[१] जानहु नीकें।
बसहु सदा उर पुर सबही कें॥' (बाल० २३६।३)

अर्थ : मेरा मनोरथ तुम अच्छी तरह जानती हो; क्योंकि तुम सदा सभी के हृदयपुर में वास करती हो।

'मोर मनोरथु' प्रयोगों से सिद्ध है कि तुलसी ने यहाँ 'मनोरथु' संज्ञापद को पुंलिग माना है; क्योंकि 'मानस' में पुंलिग अकारान्त शब्द को ही प्रथमा या द्वितीया के एकवचन में उकारान्त किया गया है।

अब निम्नांकित अर्द्धाली पर भी विचार करना चाहिए :

'सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी।
मातु **मनोरथ** पुरउबि **मोरी**॥' (अयो० १०३।२)

अर्थ : सीताजी ने हाथ जोड़कर गंगाजी से कहा—'हे माता ! मेरी इच्छा पूरी कीजिए।'

यहाँ **मनोरथ** कर्मकारक में है। कृदन्त क्रिया **पुरउबि** स्त्रीलिंग की है। कर्मवाच्य की क्रिया **पुरउबि** कर्म के लिंग-वचन का अनुकरण करती है।[२] अतः, **मनोरथ** पद स्त्रीलिंग, एकवचन होना चाहिए। तुलसी में जिस प्रकार कर्मवाच्य में पुंलिग क्रिया **करब** और स्त्रीलिंग क्रिया **करबि** का प्रयोग मिलता है, उसीसे मिलता-जुलता प्रयोग **पुरउबि** का है। उदा०

१. 'ऐसेइ **करब**।' (सुन्दर० ५१।५)

२. '**करबि** ललित नर-लीला।' (अर० २४।१)

'**नर-लीला**' संज्ञा-पद स्त्रीलिंग एकवचन है। कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के लिंग-वचन का अनुसरण करती है। अतः, जब कर्म '**नर-लीला**' होगा, तब कर्मवाच्य की क्रिया भी

---

१. यहाँ 'मनोरथु' पुंलिग, द्वितीयान्त एकवचन है। मिला० 'झूठेहु हमहि **दोसु** जनि देहू।' (अयो० २८।३)। इसमें भी **दोसु** पुंलिग, द्वितीयान्त एकवचन है।

२. भाववाच्य की क्रिया न कर्त्ता के लिंग-वचन को मानती है और न कर्म के लिंग-वचन को। वह एकरूप रहती है। जैसे : लड़के ने अभी नहीं **खाया**। लड़की ने अभी नहीं **खाया**। 'लड़के/लड़की से नहीं चला जाता।'

स्त्रीलिंग एकवचन में आयगी[1]। इसीलिए, तुलसी ने 'नर-लीला' कर्म के साथ **करबि** क्रिया का प्रयोग किया है। पूर्ण अर्द्धाली इस प्रकार है :

'सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु **करबि**[2] ललित नर-लीला।।' (अर० २४।१)

अर्थ : हे सुन्दर व्रतवाली सुशीला प्रिये ! सुनो। मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जायगी।

अवधी	संस्कृत
१. नर-लीला **करबि**।	१. नरलीला **कर्त्तव्या**।
२. ग्रन्थु **पढ़ब**।	२. ग्रन्थः **पठितव्यः**।

सं० कर्त्तव्या > अव० **करबि**। सं० **पठितव्यः** > अव० **पढ़ब**। सं० **कर्त्तव्यः** > अव० **करब**।

करबि की भाँति **पुरउबि** भी कर्मवाच्य में स्त्रीलिंग एकवचन की क्रिया है। इसलिए, इसका कर्म **मनोरथ** भी स्त्रीलिंग एकवचनीय संज्ञापद है। दूसरा तर्क है कि **चरणान्त** का **मोरी** पद भी स्त्रीलिंग विशेषण है, जो **मनोरथ** संज्ञापद की विशेषता बताता है। अतः, स्पष्ट है कि **मातु मनोरथ पुरउबि मोरी** में 'मनोरथ' संज्ञा-पद स्त्रीलिंग है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने 'रामचरितमानस' में **मनोरथ** शब्द को पुंलिंग तो माना ही है, किन्तु स्त्रीलिंग भी माना है। **'मातु मनोरथ पुरउबि मोरी'** में सम्भवतः तुलसी **मनोरथ** के प्रयोग के समय उसके पर्यायवाची शब्द **इच्छा, अभिलाषा** या **आकांक्षा** के लिंग से प्रभावित हुए मालूम पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि **'पवन'** शब्द के प्रयोग के समय यदि उसका पर्यायवाची **'हवा'** लेखक के मन में आसन जमा गया, तो वाक्य की क्रिया स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में **'पवन चल रही है'** वाक्य लिखा जा सकता है। 'शैली' के अर्थ में एक अँगरेजी शब्द **'स्टाइल'** है। **शैली** शब्द स्त्रीलिंग है। अतः, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने **स्टाइल**[2] का प्रयोग भी स्त्रीलिंग में कर दिया है। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में वे लिखते हैं :

उन्होंने खड़ी बोली-गद्य की चार स्टाइलें कायम की थीं।'

(रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, सं० २००६ वि०, पृ० ५९९)

पर्याय शब्द के लिंग के प्रभाव के कारण ही सम्भवतः तुलसी **'मनोरथ'** का प्रयोग स्त्रीलिंग में कर गये हैं। हमारा यह निर्णय अनुमान के ही आधार पर है :

---

१. सीतापुर जिले की अवधी में 'मैं करब / करबि' प्रयोग भी चलते हैं। पुरुष हो या स्त्री, दोनों ही भविष्यत्काल के उत्तमपुरुष एकवचन में करब / करबि बोलते हैं। **हम करब / करबि / करबै** भी चालू प्रयोग हैं।

२. किसी शब्द का लिंग अर्थ की दृष्टि से भी निश्चित किया जाता है। 'अंक' शब्द का अर्थ जब **'चिह्न'** लिया जायगा, तब पुंलिग होगा; जब **'गोद'** लिया जायगा, तब स्त्रीलिंग होगा।

ब्रजक्षेत्र की जनपदीय ब्रजभाषा में **'घाम'** (=धूप) शब्द स्त्रीलिंग में प्रचलित है, किन्तु तुलसी ने इसे पुंलिंग मानकर प्रयुक्त किया है; तभी तो उसे उकारान्त कर दिया है— 'घोर घामु हिम बारि बयारी।' (अयो० ६२।४)। तुलसी पुंलिंग अकारान्त शब्द को एकवचनीय कर्त्ता और कर्म कारक की स्थिति में उकारान्त कर देते हैं।

इसके अतिरिक्त, 'रामचरितमानस' में ऐसे कुछ और भी संज्ञापद हैं, जिन्हें तुलसी ने एक स्थल पर यदि पुंलिंग में प्रयुक्त किया है, तो दूसरे स्थल पर स्त्रीलिंग में। **'आसिष'** ऐसा ही संज्ञा शब्द है।

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में **'दे'** धातु है और उससे बना **'देना'** क्रिया का सामान्य रूप है। इस 'दे' धातु से अवधी में भूतकालिक कृदन्त 'दीन्ह' बनता है, जो पुंलिंग है। इसका स्त्रीलिंग रूप **'दीन्हि'** बनेगा। साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में भी यही बात है। जैसे—

१. बैल दिया।[1]
२. गाय दी।

प्राचीन अवधी में यों होगा :

१. बरधा दीन्ह। (=बैल दिया)।
२. गाय दीन्हि। (=गाय दी)।

इस उक्त आधार पर **दीन्ह** के साथ आनेवाला कर्म पुंलिंग और 'दीन्हि' के साथ आनेवाला कर्म स्त्रीलिंग होगा। इसी कसौटी पर निम्नांकित उद्धरणों में **आसिष** और **असीस** के लिंग का निर्णय किया जा सकता है।

'कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।'
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥'(उत्तर० दो० ८)

उक्त दोहे में **आसिष** पद पुंलिंग है; क्योंकि **दीन्हे** क्रिया का प्रयोग पुंलिंग में है और बहुवचन का है।

निम्नांकित अर्द्धाली में **आसिष** का प्रयोग द्रष्टव्य है :

'आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं।[2]
निज समाज ले गईं सयानीं॥' (बाल० २६९।५)

उक्त अर्द्धाली में कर्मवाच्य की भूतकालीन **दीन्हि** क्रिया स्त्रीलिंग है, अतः कर्म **आसिष** भी स्त्रीलिंग होना चाहिए; क्योंकि कर्मवाच्य की क्रिया लिंग-वचन में कर्म का

---

१. वर्त्तमान काल, निर्देशार्थ, अन्यपुरुष में लिंगानुसार दो रूप बनेंगे : १. वह देता है, २. वह देती है। मराठी में तीन लिंग हैं, अतः क्रिया के तीन रूप बनते हैं : १. तो धावतो, २. ती धावते, ३. तें धावतें।

२. सखीं हरषानीं' में क्रिया कर्तृवाच्य है और कृदन्त है। इसका कर्त्ता **सखीं** स्त्रीलिंग बहुवचन है, अतः **हरषानीं** क्रिया के लिंग-वचन भी वैसे ही हैं।

अनुसरण करती है। साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में भी ऐसी ही स्थिति पाई जाती है। जैसे :

१. पिता ने लड्डू दिया। अर्थात्, पिता द्वारा लड्डू दिया गया।

२. पिता ने जलेबी दी। अर्थात्, पिता द्वारा जलेबी दी गई।

उपर्युक्त वाक्यों की क्रियाएँ कर्मवाच्य की हैं। इनके लिंग-वचन अपने-अपने कर्म के अनुसार हैं। लड्डू कर्म पुंलिग एकवचन है, इसलिए क्रिया भी 'दिया' है, जो पुंलिग एकवचन है। 'जलेबी' कर्म स्त्रीलिंग एकवचन है, इसलिए 'दी' क्रिया भी स्त्रीलिंग एकवचन है। उक्त वाक्य अवधी में इस प्रकार कहे जा सकते हैं :

१. पिता लाडू दीन्ह।

२. पिता जलेबी दीन्हि।

ठीक इसी प्रकार तुलसी के उद्धरणों की परीक्षा की जा सकती है :

१. कौसल्या आसिष दीन्हे (उत्तर० दो० ८)=कौशल्या ने आशिष् दिये अथवा कौशल्या द्वारा आशिष् दिये गये।

२. भृगुपति आसिष दीन्हि (बाल० २६९।५)=भृगुपति ने असीस दी अथवा भृगुपति द्वारा असीस दी गई।

साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी में 'आशिष्' शब्द स्त्रीलिंग है, किन्तु तुलसी ने 'रामचरितमानस' में उसे पुंलिग और स्त्रीलिंग दोनों ही लिंगों में लिखा है। 'आसिषा मोरी' (उत्तर० १०६।१६) में भी आसिषा स्त्रीलिंग है।

असीस को भी तुलसी के 'रामचरितमानस' में पुंलिग और स्त्रीलिंग दोनों ही माना गया है। उदा०

'जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा।
भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा।।'[1] (डॉ० गुप्त-संस्क०, श्रीरामच०, अयो०१९३।६)

इस उक्त अर्द्धाली में असीस पुंलिग है; क्योंकि दीन्ह क्रिया पुंलिग है। व्रजभाषा में असीस शब्द स्त्रीलिंग है।

'रामु लखनु दसरथ के ढोटा।
दीन्हि असीस देखि भल जोटा।।' (बाल० २६९।७)

इसमें असीस संज्ञापद स्त्रीलिंग है। व्रजभाषा में 'स्राप' और साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में 'शाप' शब्द पुंलिग है, किन्तु 'रामचरितमानस' में उसका प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है :

'जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा।
मैं पुनि दीन्हि[2] कोप करि सापा।।
[गीता प्रेस, रामच०, उत्तर० १०६ (क)।३]

१. यह पाठ डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' (साहित्य-कुटीर, प्रयाग, सन् १९४९ ई०) से उद्धृत है।

२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण में दीन्ह पाठ है।

'रिषि अगस्ति की स्राप भवानी ।
राछस भएउ रहा मुनि ज्ञानी ॥' (सुन्दर० ५७।११)

'बिदा' शब्द साहित्यिक खड़ीबोली में स्त्रीलिंग है। श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' ने भी अपने 'अवधी-कोश' में 'बिदा' को स्त्रीलिंग ही लिखा है, किन्तु तुलसी द्वारा यह शब्द पुंलिग में प्रयुक्त किया गया है :

'माँगा' बिदा ताहि सिरु नावा[२] ।' (सुन्दर० २।११)

साहित्यिक खड़ीबोली के पुंलिग 'त्रास' को तुलसी ने स्त्रीलिंग में लिखा है :

'सुखी भये मुनि बीती त्रासा[३] ।' (अर० १४।१)

साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी और व्रजभाषा में **चौक** शब्द पुंलिग है, किन्तु तुलसी ने उसे स्त्रीलिंग में प्रस्तुत किया है। 'अवधी-कोश' में भी **चौक** पुंलिग लिखा गया है। बहुत सम्भव है कि अवधी के किसी क्षेत्र-विशेष में यह शब्द स्त्रीलिंग में बोला जाता हो। तुलसी लिखते हैं :

'बीथी सकल सुगन्ध सिचाईं ।
गजमनि रचि बहु **चौक** पुराईं ।।' (उत्तर० ९।३)

'शयन' शब्द तत्सम है और हिन्दी (साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी) में यह पुंलिग है।

'अवधी-कोश' में भी इसे पुंलिग ही माना गया है, किन्तु तुलसी ने तद्‌भव 'सयन' का प्रयोग अपने 'मानस' में स्त्रीलिंग रूप में किया है। व्रजभाषा में **सयन** पुंलिग है।

'मुनिवर **सयन** कीन्हि तब जाई ।
लगे चरन चापन दोउ भाई ॥' (बाल० २२६।३)

अर्थ : तब मुनिवर ने जाकर **शयन** किया, और फिर दोनों भाई उनके **चरण** दबाने लगे।

साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी और व्रजभाषा में **लात** शब्द स्त्रीलिंग है, किन्तु अवधी में यह शब्द पुंलिग रूप में मिलता है, जैसा कि समीर-कृत 'अवधी-कोश' से प्रमाणित होता है। तुलसी द्वारा भी '**लात**' शब्द पुंलिग ही प्रयुक्त हुआ है। 'लात मारा' = लात मारा गया—कर्मवाच्य प्रयोग।

'हुमगि **लात** तकि कूबर मारा ।
परि मुँह भर महि करत पुकारा ।।' (काशि० अयो० १६२।४)

अर्थ : शत्रुघ्न ने हुंकार के साथ मन्थरा के कूबर में लात मारी। तब वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी।

---

१. अन्यपुरुष में एकवचन का सामान्य भूतकालीन तिङन्त प्रयोग मानने पर शंका नहीं उठती।

२. मिला० '**माँगी नाव** न केवट आना।' (अयो० १००।२) **मागी** नाव—(काशि०, अयो० १००।३,) **मागी** नाव (गीताप्रेस, अयो० १००।३)।

३. अवधी में **तरास** शब्द पुंलिग है।

(अथवा) शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा के कूबर पर पद-प्रहार किया गया। तब वह चिल्लाती हुई भूमि पर गिर पड़ी।

'तात लात रावन मोहि[1] मारा[2]।
कहत परम हित मन्त्र बिचारा।।' (लंका० ६४।५)

अर्थ : हे तात! परम हित की सलाह और विचार कहते हुए मुझे रावण ने **लात** मारी। अथवा रावण द्वारा लात मारी गई।

संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर (ना० प्र० सभा, काशी) में **छाला**, अर्थात् **मृगछाला** को स्त्रीलिंग लिखा है। व्रजभाषा के जनपदीय जीवन में भी यह शब्द स्त्रीलिंग में ही प्रचलित है, किन्तु अवधी-कोश में **छाला** शब्द पुंलिंग है। तुलसी ने भी चमड़े के अर्थ में छाला को पुंलिंग में ही प्रयुक्त किया है :

'सुनहु देब रघुबीर कृपाला।
येहि **मृग कर** अति सुन्दर छाला।।' (अर० २७।४)

'पते' 'निशान' आदि के लिए व्रज की जनपदीय बोली में 'खोज' शब्द पुंलिंग है—'वाको कछू **खोजु** लग्यौ।' तुलसी ने भी **खोज** को पुंलिंग माना है, जबकि अवधी में यह शब्द स्त्रीलिंग है :

'सो सीता कर खोज[3] कराइहि'। (किष्कि० ४।४)

'छाला' पुंलिग है, तभी तुलसी ने **'मृग कर छाला'** लिखा है। यदि **छाला** शब्द तुलसी की दृष्टि में स्त्रीलिंग होता तो, **'मृग कै छाला'** लिखा जाता। तुलसी स्त्रीलिंग शब्दों से पहले सम्बन्धकारकीय परसर्ग **कै** या **कइ** का प्रयोग करते हैं। जैसे :

'पुलकित तन मुख आव न बचना।
देखत रुचिर बेस **कै रचना**।।' (किष्कि० २।५)

'मेली कण्ठ **सुमन कै माला**[4]।
पठवा पुनि बल देइ बिसाला।।' (किष्कि० ८।७)

रचना और **माला** शब्द स्त्रीलिंग हैं, तभी तो तुलसी ने **कै** सम्बन्धकारकीय परसर्ग का प्रयोग किया है। **कै** के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसी ने **'बिलाप'** को स्त्रीलिंग माना है—**'सीता कै बिलाप** सुनि भारी।' (अर० २९।६)

---

१. गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण में 'मोहि' पाठ है। 'मारा' को अन्यपुरुष का तिङन्त प्रयोग मान लेने पर शंका नहीं उठती।

२. 'रावन लात **मारा**' में **मारा** को अन्यपुरुष का एकवचन में सामान्य भूतकाल का तिङन्त प्रयोग भी माना जा सकता है। अवधी-क्षेत्र में ऐसे प्रयोग आज भी प्रचलित हैं।

३. सीता **कर** खोज = सीता का पता। 'मानस' में **कर** = का।

४. सुमन **कै** माला = फूलों की माला। 'मानस' में **कै** = की।

संज्ञाशब्दों के लिग-प्रयोग में जनजीवन का प्रभाव व्यक्ति पर अवश्य पड़ता है। बाल्यकाल में जनजीवन के प्रभाव से जो शब्द जिस लिंग में मन में समा जाता है, उसका प्रभाव बहुत काल तक रहता है। 'मानस' में प्रयुक्त उक्त शब्दों के लिंग-प्रयोगों[३] का अध्ययन जन-जीवन के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए। यदि सोरों तथा राजापुर आदि के पार्श्ववर्त्ती क्षेत्रों में उक्त शब्दों के लिंग-प्रयोगों का पता लग सके, तो हम महात्मा तुलसी के निवास-स्थान के सम्बन्ध में कुछ दिशा प्राप्त कर सकते हैं। साथ-ही-साथ 'मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।' (बाल०, दो० ३०) के 'सूकरखेत' के भूगोल पर भी कुछ भाषावैज्ञानिक प्रकाश पड़ सकता है। सोरों के आसपास की भाषा में सामान्य भूतकालीन पुंलिंग क्रियाएँ ओकारान्त तो बोली ही जाती हैं और अकारान्त पुंलिग संज्ञाशब्द एकवचनीय प्रथमा और द्वितीया विभक्ति की ऋजु अवस्था में उकारान्त भी व्यवहृत होते हैं। ये लक्षण 'मानस' की भाषा में भी पर्याप्तरूपेण मिलते हैं।

---

३. हिन्दी में **आवाज** और **नाक** स्त्रीलिंग हैं, लेकिन पंजाबी में पुंलिंग हैं। जैसे: **रोवने दा आवाज, मुंडे दा नाक।**

५.५ रामचरितमानस में कारकसूचक विभक्ति-प्रत्यय :

नामिक पदों (संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण-पदों) में विभक्ति-प्रत्ययों का योग संश्लिष्टावस्था में संस्कृत काल में पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत-भाषा में ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें विभक्ति प्रत्यय के पश्चात् परसर्ग की उपस्थिति पायी जाती है। जैसे : बालक: ग्रामं प्रति गच्छति' **ग्रामं प्रति** में 'ग्राम' प्रातिपदिक है। **-अम्** एकवचनीय द्वितीया विभक्ति का प्रत्यय है और **प्रति** परसर्ग है। **ग्रामम्** में—अम् की स्थिति संश्लिष्टावस्था में है—अर्थात् —**अम्** प्रत्यय '**ग्राम**' प्रातिपदिक से पृथक् नहीं है। **ग्राम** और **अम्** के मध्य कोई अन्य तत्त्व नहीं आ सकता; किन्तु साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में मूल पद और परसर्ग की स्थितियाँ कुछ भिन्न हैं। '**तुम बालकों को** बुलाओ' वाक्य के 'बालकों का अन्तिम –ओं बहुवचन को प्रकट करता है और '**को**' परसर्ग कर्मकारकत्व का सूचक है। साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में 'बालकों' का **–ओं** विभक्ति-प्रत्यय है। 'त्वं **बालकान्** आनय' के **बालकान्** का —आन् बहुवचन के साथ-साथ कर्मकारकत्व भी सूचित करता है। इससे सिद्ध है कि संस्कृत का **–आन्** विभक्ति-प्रत्यय जहाँ वचन और कारक दोनों को प्रकट करता है, वहाँ साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी के **बालकों** का **–ओं** केवल वचन को ही सूचित करता है, परन्तु कारक की तिर्यक् अवस्था अवश्य बताता है।

व्रजभाषा और अवधी में विभक्ति-प्रत्ययों की स्थिति संस्कृत के समान पायी जाती है। 'बालक के लिए' का संस्कृत-रूपान्तर होगा—'बालकं प्रति'। व्रजभाषा और अवधी भाषा में होगा—'बालकहि लागि'। दोनों के उदाहरणों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

वाक्यांश	**प्रातिपदिक**	**विभक्ति-प्रत्यय**	**परसर्ग**	**भाषा**
बालकं प्रति	बालक	—अम् (द्वितीया)	प्रति	संस्कृत
बालकहि लागि	बालक्	—अहि (द्वितीया)	लागि	व्रजभाषा
"	"	"	"	अवधी-भाषा

'**उसके**' लिए के अर्थ में सूर ने '**ताहि लागि**' और '**मेरे लिए**' के अर्थ में तुलसी ने '**मोहि लागि**' (रामच०, बाल० २७५।१) लिखा है। संस्कृत में **ताहि लागि** का रूपान्तर '**तं प्रति**' और **मोहि लागि** का '**मां प्रति**' होगा। प्राकृत-काल में भी भाषा की व्याकरणिक रचना में विभक्ति-प्रत्यय और परसर्ग की स्थितियाँ संस्कृत से मिलती-जुलती ही थीं। अपभ्रंश-काल में भी वैसी ही स्थिति बनी रही। हेमचन्द्र के अपभ्रंश-व्याकरण में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जिनमें विभक्तियों की स्थिति संश्लिष्टावस्था में पाई जाती है और उनके उपरान्त परसर्ग विश्लिष्टावस्था में आये हैं।

संस्कृत में '**युष्मद्**' प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति एकवचन 'त्वया' रूप बनता है। 'त्वया विना' में 'विना' परसर्ग है। इसी प्रकार, '**प्रवसत्**' प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति

एकवचन में 'प्रवसता' रूप बनता है। 'प्रवसता सह' में सह परसर्ग है। त्वया और 'प्रवसता' में अन्तिमांश विभक्ति-प्रत्यय है। अपभ्रंश अपनी प्रकृति में संस्कृत के समान दृष्टिगोचर हो रही है :

संस्कृत में	अपभ्रंश
१. त्वया विना	१. पइँ बिणु (हेम० अप० व्या० ८।४।४२१।१)
२. शान्त्या विना	२. संतें बिणु (हेम० अप० व्या० ८।४।४४१।२)
३. प्रवसता सह	३. पवसन्तें सहुँ (हेम० अप० व्या० ८।४।४१९।३)

पवसन्ते सहुँ में जिस प्रकार **पवसन्ते** का अन्तिम-एँ विभक्ति-प्रत्यय है और **सहुँ** परसर्ग है, ठीक उसी प्रकार तुलसी के 'रामचरितमानस' में ते**हि** सन (किष्कि० ४।३) के तेहि का अन्तिम **हि** विभक्ति-प्रत्यय है और **सन** परसर्ग है। अव० **तेहि सन**=हिं० **उनके** साथ **उनसे**। **'पवसन्त'** प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति के एकवचन में **'पवसन्ते'** रूप अपभ्रंश को गृहीत है। ठीक उसी प्रकार **बध** और **हार** संज्ञा प्रातिपदिकों से तुलसी की अवधी को **बधें** और **हारें** रूप गृहीत हैं। अर्थात् -एँ विभक्ति-प्रत्यय अपभ्रंश की भाँति तुलसी की अवधी में भी पाया जाता है। उदाहरण :

'बधें पापु अपकीरति **हारें**।' (बाल० २७३।७)

अर्थ : वध से पाप; और हार से अपकीर्त्ति है।

उक्त उदाहरण में-एँ विभक्ति-प्रत्यय है, जो एकवचन और करणकारकत्व प्रकट कर रहा है।

सं० एन > अप० एँ > अवधी० एँ। सं० वधेन > अव० बधें।

विभक्ति-प्रत्यय से पूर्व कोई अव्यय शब्द नहीं आ सकता, किन्तु परसर्ग से पूर्व आ सकता है। जैसे : **कालहु सन**[1] (अर० १९।१०)। इसी प्रकार, साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में **'काल ही से'** प्रयोग प्रचलित है।

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' में कारकों की दृष्टि से विभक्तियों का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है।

१. कर्त्ताकारक तथा एकवचन का विभक्ति-प्रत्यय :

जब पुंलिग संज्ञा प्रातिपदिक कर्त्ताकारक के एकवचन में प्रयुक्त होता है, तब उस प्रातिपदिक में तुलसी -उ प्रत्यय का योग करते हैं। जैसे : **राम** से **रामु**, **केवट** से **केवटु** और **लखन** से **लखनु** का प्रयोग मिलता है।

---

१. साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी में 'काल **भी** से' प्रयोग ठीक नहीं है, किन्तु अवधी में **'कालहु सन'** प्रयोग ठीक है।

'बोले बिहँसि रामु धनुपानी ।' (किष्किं० ७।२२)

अर्थ : धनुषपाणि राम हँसकर बोले ।

'माँगी नाव न केवटु आना ।' (अयो० १००।३)

अर्थ : नाव माँगी । केवट न लाया ।

'बरु तीर मारहुँ लखनु ।' (अयो० १००।छन्द)

अर्थ : चाहे लक्ष्मण तीर मारें ।

अकारान्त पुंलिग प्रातिपदिक :

प्रातिपदिक	विभक्ति-प्रत्यय	कारक	पद
१. राम	+ -उ	कर्त्ता	रामु (किष्किं० ७।२२)
२. केवट	+ -उ	,,	केवटु (अयो० १००।३)
३. लखन	+ -उ	,,	लखनु (अयो० १००।छन्द)

विशेष : अपभ्रंश में सं० शङ्करः का संकरु होता है । हेमचन्द्र ने इसका उल्लेख अपने व्याकरण (हैम व्या० ८।४।३३१) में किया है कि प्रथमा और द्वितीया के एक-वचन के परे रहने पर अपभ्रंश में अकार को उकार हो जाता है : 'अपभ्रंश अकारस्य स्यमोः परयोः उकारो भवति ।'

ऋजु रूप पुं० बहुवचन में तुलसी सुर[1] (अयो० १९५।२) और तिर्यक् पुं० बहुवचन में सुरन्ह[2] (सुन्दर० २।३) लिखते हैं ।

२. कर्मकारक तथा एकवचन का विभक्ति-प्रत्यय

कर्त्ता की भाँति कर्मकारक के पुं० एकवचन में भी -उ त्यय ही लगता है। यह प्रत्यय भी पुंलिग प्रातिपदिक में ही लगता है ! 'जल' पुंलिग प्रातिपदिक है । जब इसका प्रयोग कर्मकारक की एकवचनीय अवस्था में होता है, । तब उसे तुलसी 'जलु' रूप में लिखते हैं । जैसे :

'बेगि आनु जलु पाय पखारू ।' (अयो० १०१।२)

अर्थ : जल्दी जल ला और पाँव धो ।

'जलु थलु देखि बसे निसि बीतें ।' (अयो० २२६।२)

अर्थ : रात्रि बीतने पर जल और थल को देखकर ठहरे ।

इसी प्रकार 'सिखावन अकारान्त पुंलिग संज्ञा प्रातिपदिक को कर्मकारकत्व की स्थिति में 'सिखावनु' लिखा गया है :

---

१. सुर कहहिं = देवता कहते हैं ।

२. सुरन्ह अहार दीन्ह = देवताओं द्वारा आहार दिया गया ।

'नारि सिखावनु करसि न काना ।' (किष्कि० ९।९)

अर्थ : तू नारि-सिखावन को नहीं सुनता है ।

अकारान्त पुंलिग प्रातिपादिक :

प्रातिपादिक	विभक्ति-प्रत्यय	कारक	पद
१. जल	+ – उ	कर्म	जलु (अयो० १०१।२)
२ सिखावन	+ – उ	कर्म	सिखावनु (किष्कि० ९।९)

कर्मकारक में एकवचन तथा बहुवचन विभक्ति-प्रत्यय

तुलसीदासजी ने '–हि' विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग भी कर्मकारक में किया है । कहीं-कहीं इसी अर्थ में–'हिं' प्रत्यय भी मिलता है । उदाहरण :

(अ) अकारान्त प्रातिपदिक में – हि और – हिं प्रत्यय का योग

'तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुनासींव ।' (किष्कि० १८।–)

अर्थ : तब करुणा की सीमा रघुपति ने अनुज को समझाया ।

(अ) अन्य योग

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।' (अयो० १२७।३)

अर्थ : वही जानता है, जिसे आप जना देते हैं ।

'तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चन्दन ।' (अयो० १२७।४)

अर्थ : तुम्हारी ही कृपा से **तुम्हें**—भक्त जानते हैं ।

'राम **तुम्हहिं** प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं ।' (अयो० २०१।८)

अर्थ : राम तुम्हें प्रिय हैं और तुम राम को प्रिय हो ।

'जिन्हहिं बिस्व कर बदर समाना ।' (अयो० १८२।१)

अर्थ : संसार **जिन्हें** कर-बदर सदृश है ।

(आ) आकारान्त प्रातिपदिक में—हि प्रत्यय का योग

लरिका + – हि = **लरिकहि** ।

जनकसुता + – हि = **जनकसुतहि** ।

पुंलिग या स्त्रीलिंग आकारान्त प्रातिपदिक को अकारान्त करके प्रायः '–हि' प्रत्यय का योग किया जाता है । **लरिका** में '–हि' प्रत्यय के योग से **लरिकहि**' पद बनता है । **जैसे :**

'भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ।'

अर्थ : वीर जानकर लड़के को रिस हुई ।

---

१. पादुका के तिर्यक् बहुवचनीय प्रत्यय 'न्हि' से पूर्व भी वह प्रातिपदिक 'पादुक' हो जाता । है । जैसे : 'पादुकन्हि' (सुन्दर० ४२। –) = पादुकाओंमें ।

विशेष : '—हि' प्रत्यय एकवचन और बहुवचन प्रातिपादिक में लगता है। जैसे : **मोहि** (किष्कि० ३।८)=मुझे। हमहि (किष्कि० ५।५)=हमें।

(इ) इकारान्त प्रातिपदिक में –हि प्रत्यय का योग

मूल प्रातिपदिक 'कलि' + –हि=कलिहि।

'**कलिहि**[1] पाइ जिमि धर्म पराहीं।'

अर्थ : जैसे कलियुग को पाकर धर्म दूर हो जाते हैं।

(ई) ईकारान्त प्रातिपदिक में '—हि' प्रत्यय का योग

'बाली' बालि+ —हि।

ईकारान्त प्रातिपदिक – हि प्रत्यय के योग से पहले इकारान्त कर दिया जाता है।

तुलसी ने **बालिहि** पद का प्रयोग किया है, **बालीहि** का नहीं।

'सुनु सुग्रीव मारिहौं **बालिहि** एकहि बान।' (किष्कि० ६।–)

अर्थ : हे सुग्रीव ! तू सुन। मैं एक ही बाण से बाली को मारूँगा।

प्रातिपदिक 'भवानी' + –हि=भवानिहि (बाल० २३६।छन्द)

'तुलसी **भवानिहि** पूजि पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चलीं।'[2] (बाल० २३६।छन्द)

अर्थ : तुलसी कहते हैं कि सखियाँ पार्वती को बार-बार पूजकर प्रसन्न मन से घर को चलीं।

(उ) उकारान्त प्रातिपदिक में –हि प्रत्यय का योग

प्रभु + –हि = **प्रभुहि**

'**प्रभुहि** जानि मन हरष कपीसा।' (किष्कि० ७।१४)

अर्थ : प्रभु को जानकर कपीश मन में प्रसन्न होता है।

(ऊ) ऊकारान्त प्रातिपदिक में —हि प्रत्यय का योग

स्त्री० बधू+ – हि=बधुहि।

'**सिंघ-बधुहि** जिमि ससक सिआरा।' (अयो० ६७।७)

अर्थ : जैसे : सिंह-वधू को खरगोश और गीदड़ नहीं देख सकते।

अपभ्रंश में **—हिं** विभक्ति प्रत्यय सप्तमी के एकवचन के रूप में आता है। यह संस्कृत के '**स्मिन्**' का विकास प्रतीत होता है। स्मिन्>हिं[3]।

---

१. हैम शब्दानुशासन में सप्तमी एकवचन में '**हि**' के भी आदेश का उल्लेख है : कलिहि (हैम व्या० ८।४।३४१।३)=कलियुग में। **महिहि** (हैम व्या० ८।४।३५२।१)=पृथ्वी पर।

२. तुलसी ने **मन्दिर** शब्द का प्रयोग **घर** के अर्थ में भी किया है। जैसे : 'गएउ दसानन **मंदिर** माहीं।' (सुन्दर० ५।६), अर्थात् हनुमान रावण के घर में गया।

३. सं० अन्यस्मिन्>अप० अन्नहिं (हेमचन्द्र : शब्दानुशासन ८।४।३५७।२)।

'रामचरितमानस' में –हिं विभक्ति-प्रत्यय कर्मकारक, करणकारक और अधिकरण-कारक की स्थिति में प्रयुक्त हुआ है। **रामहि** (अयो० २०१।८) का —हिं[1] कर्मकारक को और **सैनहि** (बाल० २७६।८) का —हिं करणकारक को प्रकट करता है। **घरहिं** (बाल० २७६।७) का –हिं अधिकरणकारक-सूचक है।

'तुम्ह प्रिय **रामहि**।' (अयो० २०१।८)

अर्थ : तुम राम को प्रिय हो।

'रघुपति **सैनहिं** लखनु निवारे।' (बाल० २७६।८)

अर्थ : रघुपति द्वारा इशारों से लक्ष्मण रोके गये।

'द्विज देवता **घरहिं** के बाढ़े।' (बाल० २७६।७

अर्थ : ब्राह्मण देवता घर में के बड़े हैं।

अपभ्रंश में भी —हिं विभक्ति-प्रत्यय का प्रयोग तृतीया में और –इ का सप्तमी में मिलता है :

'निअ मुह करहिं वि मुद्ध कर अन्धारइ पडिपेक्खइ।' (हैम व्या० ८।४।३४९।१)

अर्थ : मुग्धा अन्धकार में अपने मुख की किरणों से अपना हाथ देख लेती है।

सं० करैः, अप० = करहिं = किरणों से।

सं० अन्यस्मिन् = अप० अन्नहिं (हैम व्या० ८।४।३५७।२)

अपभ्रंश की तृतीया विभक्ति —हिं 'मानस' की अवधी-भाषा में भी पाई जाती है। निम्नांकित **जेहिं** का – हिं तृतीया का प्रत्यय है :

'जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किअ।' (किष्कि०, सो० २)

अर्थ : समस्त देवताओं को जलानेवाला विषम गरल **जिसके** द्वारा पिया गया; अथवा जिसने पिया। यहाँ **जेहिं** तृतीयान्त पद है, किन्तु कर्त्ताकारक में है।

एक्कहिं अक्खिहिं सावणु **अन्नहिं** भद्दवउ। (हैम ,व्या० ८।४।३५७।२)

अर्थ : एक आँख में सावन और दूसरी में भाद्रपद है।

सं० **एकस्मिन्** > अप० **एक्कहिं**। सं० **अन्यस्मिन्** > अप० **अन्नहिं**।

इसी प्रकार सं० गृहे > अपभ्रंश **गेहहिं** > अवधी **घरहिं** = घर में।

द्वितीया विभक्ति के एकवचन में **जलु** रूप बनता है। अर्थात्, जल प्रातिपदिक में —उ विभक्ति-प्रत्यय का योग है। किन्तु, कुछ पद ऐसे भी हैं, जिनमें विभक्ति-प्रत्यय का लोप पाया जाता है। निम्नांकित उद्धरण में **जलु** के स्थान पर **जल** का प्रयोग कर्मकारक एकवचन में तुलसी द्वारा किया गया हैं।

'राजीव लोचन स्रवत[2] **जल**।' (उत्तर० ५। छन्द)

अर्थ : कमलवत् नेत्र जल टपकाते हैं, अर्थात् कमलवत् नेत्र आँसू गिराते हैं।

---

१. नन्ददास की व्रजभाषा में भी –हिं विभक्ति-प्रत्यय कर्मकारक में मिलता है। 'इनहिं रिझाऊँ' (नन्ददास भाग १, सं० श्रीउमाशंकर शुक्ल, प्रयाग-विश्वविद्यालय, १९४२ ई०। पृ० १३४)।

२. 'जन धेनु—**स्रवत** थन' (उत्तर० ६। छन्द), अर्थात् 'मानों **गौएँ** थनों से दूध टपकाती हुई।' **स्रवत**—सकर्मक क्रिया है।

विशेष : कुछ टीकाकारों ने उक्त उद्धृत अंश 'राजीव लोचन स्रवत जल' (उत्तर० ५ । छन्द) का अर्थ किया है कि 'कमलवत् नेत्रों से जल बहता है ।'यह अर्थ व्याकरणिक दृष्टि से ठीक नहीं है । **लोचन** का तिर्यक् बहुवचन रूप अर्थात् पंचमी विभक्ति के बहुवचन में **लोचनह** रूप बनना चाहिए ।ऋजु रूप में बहुवचनीय प्रयोग लोचन है, जो कर्त्ताकारक में है । अत:, अर्थ होगा—'कमलवत् नेत्र जल बहाते हैं ।'

३. करणकारक में विभक्ति-प्रत्यय

'रामचरितमानस' में -एँ विभक्ति-प्रत्यय करणकारक को सूचित करता है । अर्थात्, -एँ प्रत्यय तृतीया के एकवचन के रूप में मिलता है । सं० **वधेन**>अप० **वधें** >अप० **बधें**[1] ।'

बध+ —एँ=बधें । हार+ —एँ=हारें ।

'**बधें** पापु अपकीरति **हारें** ।' (बाल० २७३।७)

अर्थ : वध से पाप और हार से अपकीर्त्ति है ।

बधें और **हारें** तृतीया के एकवचनीय प्रयोग हैं ।

सं०—**एन** > अप० —**एँ** > अव० -**एँ** ।

अपभ्रंश में '**अन्नें**' और '**मच्छें**' पदों का अन्तिम -एँ प्रत्यय ही 'रामचरितमानस' की अवधी में आसन जमाये हुए है । हेमचन्द्र ने उदाहरण लिखा है :

'**अन्नें** बिनडिज्जइ ।' (हैम व्या० ८।४।३७०।२) ।

सं० **अन्येन** >अप० **अन्नें** ।

'**मच्छें** मच्छु गिलिज्जइ ।' (हैम व्या० ८।४।३७०।२)

अर्थ : मत्स्य मत्स्य द्वारा निगला जाता है ।

सं० '**मत्स्येन** मत्स्य: गिल्यते' का अपभ्रंश-रूपान्तर ही ऊपर लिखा गया है । सं० **मत्स्येन** > अप० **मच्छें** ।

इसी प्रकार सं० में **सत्यभावेन** से अपभ्रंश और अवधी में **सतिभायें** है :

'बहुरि बन्दि खलगन **सतिभायें** ।' (बाल० ४।१)

धातु में भी —एँ प्रत्यय 'रामचरितमानस' में मिलता है ।√देख्+ —एँ=देखें । √राख्+ — एँ=राखें ।

अव० देखें=देखने से ।

अव० राखें=रखने से ।

'श्रम कन सहित स्याम तनु **देखें** ।' (अयो० ६७।४)

अर्थ : श्रम कण सहित श्याम शरीर **देखने से** ।

---

१. (क) सुभाएँ (रामच०, बाल० २५४।८)=स्वभाव से ।
सोनैं (सूरसागर, १०।२४)=स्वर्ण से ।

(ख) मिलाइए : -सं० प्रीतेन > अव० पिरीतें 'कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीतें' (अयो० २२६।२), अर्थात् रघुनाथ के प्रिय द्वारा गमन किया गया ।

'हठि राखें नहिं राखिहि प्राना ।' (अयो० ६८।२)

अर्थ : जबरदस्ती रखने से यह प्राण न रखेगी ।

गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'रामचरितमानस' में ऐसे अनेक पाठ हैं, जिनमें 'अनुनासिकता' तृतीया विभक्ति-एकवचन को प्रकट करती है । जैसे :

सुग्रीवँ (किष्किं० १९।३) = सुग्रीव द्वारा ।

'राम काजु **सुग्रीवँ** बिसारा ।' (गीता प्रेस, रामच०, किष्किं० १९।१)

अर्थ : सुग्रीव द्वारा राम का कार्य भुला दिया गया ।

कृपाँ (किष्किं० २१।६) = कृपा से ।

'तुम्हारी **कृपाँ** पाव कोइ कोई ।'

अर्थ : तुम्हारी कृपा से कोई-कोई पाता है ।

सखाँ (अयो० १५१।३) = सखा द्वारा ।

'राम सखाँ तब नाव मगाई ।' (गीता प्रेस, रामच०, अयो० १५१।३)

अर्थ : तब राम-सखा द्वारा नाव मँगाई गई ।

रामसखाँ में तृतीया-विभक्ति है, किन्तु यह कर्त्ताकारक है । यहाँ 'सखाँ' पद से कर्तृत्व प्रकट है ।

ऐसे भी करणकारकीय प्रयोग 'मानस' में मिलते हैं, जिनमें कोई विभक्ति-प्रत्यय तो नहीं है, किन्तु अर्थ करणकारक के रूप में अवश्य है ।[1] निम्नांकित उद्धरण में 'बान' में करणकारक है, अर्थात् तृतीया विभक्ति का लोप है :

'सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहि बान ।' (किष्किं० ६।-)

एकहि बान = एक ही **बाण** से ।

४. सम्प्रदानकारक में विभक्ति-प्रत्यय

सम्प्रदानकारक में 'रामचरितमानस' में प्रायः -हि विभक्ति-प्रत्यय ही 'कहँ' या 'लागि' परसर्ग के साथ प्रयुक्त किया गया है ।

मोहि कहँ (अयो० ६०।७) = मेरे लिए ।

मोहि लागि (बाल० २७५।१) = मेरे लिए ।

'मोहि कहँ होइ बहुत अबलम्बा ।' (अयो० ६०।७)

अर्थ : मुझे (मेरे लिए) बहुत सहारा हो जाय ।

'बार-बार **मोहि लागि** बोलावा ।' (बाल० २७५।१)

अर्थ : उसे बार-बार मेरे लिए तुम बुलाते हो ।

---

१. 'कपि तव दरस सकल दुख बीते ।' (उत्तर० २।११) के **दरस** पद में तृतीया विभक्ति-प्रत्यय का लोप है । 'आँखिन्ह देखउँ' (अयो० २६२।७)—**आँखों से** मैंने देखा ।

५. अपादानकारक में विभक्ति-प्रत्यय

—हि विभक्ति प्रत्यय अपादान कारक में भी प्रयुक्त होता है। निम्नांकित पंचमी विभक्ति का है।

तोहि (उत्तर० २।१४) = तुझसे

'नाहिन तात उरिन मैं तोही।' (उत्तर० २।१४)

अर्थ : हे प्रिय ! मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता।

तुम्हहि (बाल० २८४।५) = तुमसे।

'अभय होइ जो तुम्हहि डे)राई।' (काशि० बाल० २८४।५)

अर्थ : जो तुमसे डरता है, वह अभय हो जाता है (अथवा) जो अभय होता है, वह तुमसे डरता है।

कभी-कभी तें परसर्ग भी अपादानकारक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

'सुमनमाल जिमि कंठ तें गिरत न जानइ नाग।' (किष्किं० १०।—)

अर्थ : जैसे हाथी पुष्पमाला को कण्ठ से गिरते हुए नहीं जानता है।

पंचमी विभक्ति में हे)[1] आदेश की बात हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण (हैम व्या० ८।४।३५०।१) में कही है। ऐसा प्रतीत होता है कि यही 'हे' 'विभक्ति-प्रत्यय अवधी में आकर —हि में परिवर्तित हो गया है। ह्रस्व एकारान्त '—हे)' '—हि' के बहुत निकट है। पंचमी में '—हु' आदेश की बात भी हेमचन्द्र के व्याकरण (८।४।३५१।१) में कही गई है। तुलसी की अवधी में भी '—हु' प्रत्यय पंचमी विभक्ति, अर्थात् अपादानकारक को सूचित करता है :

'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।' (बाल० २८४।४)

अर्थ : रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते हैं।

अवधी० कालहु = काल से। अपभ्रंश० 'वयंसिअहु' = वयस्काओं से। अपभ्रंश की पुस्तक हेमचन्द्र व्याकरण (८।४।३५१।१) में '—हु' आदेश की ओर संकेत किया गया है।

अन्तर इतना ही है कि हेमचन्द्र —हु आदेश की बात स्त्रीलिंग बहुवचन के सम्बन्ध में कहता है। हेमचन्द्र से तुलसी तक आते-आते व्याकरण के ये बन्धन ढीले पड़ गये और तुलसी ने 'रामचरितमानस' की अवधी में —हु-प्रत्यय का प्रयोग पुंलिंग एकवचन में अपादानकारक की स्थिति में कर दिया। अर्थात्, 'कालहु' पंचमी विभक्ति का एकवचनीय पुंलिंग पद है। 'कालहु'[2] = काल से।

६. सम्बन्धकारक में विभक्ति-प्रत्यय

'रामचरितमानस' की अवधी में प्रायः —हि और —सु विभक्ति-प्रत्यय सम्बन्धकारक में प्रयुक्त हुए हैं। संज्ञा पदों में —हि और सर्वनाम पदों में —सु विभक्ति-प्रत्यय अधिक पाये

---

१. 'कोष्ठक का ऐसा)' चिह्न स्वर की ह्रस्वता प्रकट करता है।

२. 'हु' का अर्थ भी भी होता है, किन्तु यहाँ '—हु' पंचमी का विभक्ति-प्रत्यय मालूम पड़ता है।

जाते हैं। अवधी० –हि तो अपभ्रंश (हैम व्या० ८।४।३५०।१) के –हे) का विकास ही प्रतीत होता है और '–सु' भी संस्कृत के 'स्य' से अपभ्रंश में होता हुआ आया है। सं० **यस्य**= अप० **जस्सु**=अवधी **जासु**।

अव० तेहि=उसका।
अव० जानकिहि =जानकी का।
'मयसुत मायाबी तेहि नाऊँ।' (किष्कि० ६।२)

अर्थ : मय का पुत्र था। उसका नाम मायावी था।

'जोगु जानकिहि येहु बरु अहई।' (बाल० २२२।१)

अर्थ : **जानकी** के योग्य यह वर है।

अव० जासु=जिसका। अव० तासु=उसका, उसके।
'**जासु** नामु सुमिरत एक बारा।' (अयो० १०१।३)

अर्थ : जिसके नाम को एक बार सुमिरते हुए।

'**तासु** बचन अति सियहि सोहाने।' (बाल० २२९।७)

अर्थ : उसके वचन सीता को बहुत सुहाये।

उपर्युक्त जासु, तासु आदि में षष्ठी विभक्ति है।

७. अधिकरणकारक में विभक्ति-प्रत्यय

तुलसी ने अवधी-भाषा में –एँ प्रत्यय का प्रयोग सप्तमी एकवचन के रूप में भी किया है। यह विभक्ति-प्रत्यय संस्कृत-प्राकृत की परम्परा से आया है। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण (हैम व्या० ८।४।४२३।२) में **दिट्ठें** का प्रयोग संस्कृत दृष्टे के अर्थ में किया है। तुलसी का **बीतें** प्रयोग भी उसी प्रकार का है :

'**बीतें**[1] अवधि रहहिं जो प्राना।' (उत्तर० १।८)

अर्थ : अवधि **बीतने पर** यदि प्राण रहते हैं।

सं० व्यतीतें=बीतें=बीतने पर।
'जलु थलु देखि बसे निसि **बीतें**।
कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीतें॥'(अयो० २२६।२)

अर्थ : जल और स्थल देखकर ठहरे और रात्रि बीतने पर राम-प्रिय (भरत) द्वारा गमन किया गया। **सं० व्यतीते=अव० बीतें**।[2]

---

१. द्वारैं (सूरसागर, १०।२५)=द्वार पर।

२. जिस प्रकार सं० **व्यतीत** का अवधी में अनुनासिक **बीतें** हैं, ठीक उसी प्रकार सं० **अग्रे** का **आगें** है– 'परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु **आगें**।' (किष्कि० ६।१)।

यहाँ बीतें का -एँ प्रत्यय सप्तमी एकवचन का सूचक है। किन्तु, निम्नांकित उद्धरण के **बीते** का अन्तिम -ए भूतकालीन क्रिया में पुंलिंग बहुवचन प्रकट करता है—'कपि तब दरस सकल दुख **बीते**।' (उत्तर० २।११)

गीता प्रेस, गोरखपुर की 'मानस'-प्रतियों में अनुनासिक चिह्न (चन्द्रबिन्दु) भी सप्तमी विभक्ति के एकवचन का सूचक बनकर प्रयुक्त हुआ है। **हृदयँ** (किष्किं० २।७), **भयँ** (किष्किं० २०।२), **चिन्ताँ** (किष्किं० १२।३) और **सभाँ** (अयो० २३९।–) पदों की अन्तिम अनुनासिकता अधिकरणकारक के एकवचनीय रूप को प्रकट करती है।

अव० **हृदयँ** = हृदय में। अव० **भयँ** = भय में।

अव० चिन्ताँ = चिन्ता में। अव० सभाँ = सभा में।

'हरष **हृदयँ** निज नाथहि चीन्ही।' (किष्किं० २।७)

अर्थ : अपने स्वामी को पहचान कर हृदय में हर्ष है। (अथवा) अपने स्वामी को पहचान कर हृदय में प्रसन्न होता है।

'कह कपीस अति **भयँ** अकुलाना।' (किष्किं० २०।२)

अर्थ : कपीश (सुग्रीव) भय में या भय से अत्यन्त अकुलाया और उसने कहा।

'तन बहु ब्रन **चिन्ताँ**[1] जर छाती' (किष्किं० १२।३)

अर्थ : सुग्रीव के शरीर में बहुत घाव थे और चिन्ता में या चिन्ता से उसकी छाती जलती थी।

'ज्ञान **सभाँ** जनु तनु धरें भगति सच्चिदानन्दु।' (अयो० २२९।-)

अर्थ : मानों ज्ञान की **सभा** में भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धरने पर सुशोभित हैं।

'मानस' में ऐसे बहुवचनीय संज्ञापद हैं, जिनमें अधिकरणकारक तो है, किन्तु कारकीय विभक्ति प्रत्यय वहाँ लुप्त है। जैसे :

(१) चरनन्हि = चरणों में
(२) अंगन्हि = अंगों में।
(३) पायन्ह = पाँवों में।
(४) आँखिन्ह = आँखों में।

उक्त चारों पद तिर्यक् अवस्था में बहुवचन हैं।

'कपि पुलकि तन **चरनन्हि** पर्‌यो।' (उत्तर० २। छन्द)

अर्थ : शरीर से पुलकित होकर हनुमान् चरणों में गिर पड़ा।

'भूषन अंग **अंगन्हि** प्रति[2] सजे।' (उत्तर १२।छन्द)

अर्थ : आभूषण अंग-अंग पर सजे हुए हैं।

---

१. ऐसी अनुनासिकता जायसी के पदमावत में भी मिलती है—'पुनि सो मीचु पराए **हाथाँ**'(सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पदमावत, १९५१ ई०, ६५३ ७)।

२. 'प्रति' संस्कृत का अव्यय है। ब्रजभाषा का **पै** इसी से विकसित है। सं० प्रति→पै।

'झलका झलकत पायन्ह कैसें।' (अयो० २०४।१)

अर्थ : छाले पावों में कैसे झलकते हैं ?

'चरन रेख रज आँखिन्ह लाई।' (अयो० १९९।२)

अर्थ : चरण रेखा-रज आँखों में लगाई।

अकारान्त पुंलिग शब्दों के ऋजु तथा तिर्यक् अवस्था के रूप इस प्रकार हो सकते हैं।

ऋजु अवस्था		**तिर्यक् अवस्था**	
एकवचन में	**बहुवचन में**	**एकवचन में**	**बहुवचन में**
पुं० चरन	चरन	चरन	चरनन्हि
पुं० अंग	अंग	अंग	अंगन्हि
पुं० पाउ	पाय	पाय	पायन्ह
स्त्री० आँखि	आँखि	आँखि	आँखिन्ह
स्त्री० सखी	सखीं[1]	सखी	सखिन्ह

एकवचन पदों में भी विभक्ति-प्रत्यय का लोप मिलता है। **'चरन** में' के अर्थ में तुलसी ने केवल **'चरन'** पद का प्रयोग किया है। यहाँ सप्तमी का लोप है।

'सीता **चरण** चोंच हति भागा।' (अर० १।७)

अर्थ : काक सीता के **चरण** में चोंच मारकर भागा।

'सरीर' पद में भी सप्तमी का लोप है :

'ब्यापेउ कोपु **सरीर**।' (बाल० २६९।–)

अर्थात्, **शरीर में** क्रोध व्याप्त हुआ।

उपर्युक्त तिर्यक् बहुवचन रूपों को देखकर कहा जा सकता है कि तुलसी ह्रस्व-स्वरान्त प्रातिपदिक को जब तिर्यक् बहुवचन रूप प्रदान करते हैं, तब अन्त में **-न्ह** या **-न्हि** प्रत्यय जोड़ते हैं। दीर्घस्वरान्त प्रातिपदिक में भी वे **-न्ह** या **-न्हि** लगाने से पहले उसे वे ह्रस्व बना लेते हैं। जैसे :

प्रातिपदिक	**तिर्यक् रूप बहुवचन**	**विश्लेषण**
१. चरन	चरनन्हि (उत्तर० २। छन्द)	चरन + न्हि
२. कपि	कपिन्ह (उत्तर ४।१)	कपि + न्ह
३. पुरबासी	पुरबासिन्ह (उत्तर० ३।४)	पुरबासि + न्ह
४. अटारी	अटारिन्ह (उत्तर० ३।–)	अटारि + न्ह

अष्टछापी कवि नन्ददास आदि की व्रजभाषा में भी तिर्यक् बहुवचनीय संज्ञापदों की लगभग ऐसी स्थिति ही पाई जाती है। अन्तर केवल इतना है कि व्रजभाषा के तिर्यक्

१. गलीं = गली में। अथाईं = चौपाल पर। लो) गाईं = स्त्रियाँ। 'हाट बाट घर **गलीं अथाईं**। कहहिं परसपर लोग **लोगाईं**।'' (गीताप्रेस, अयो० ११।३)

बहुवचनों में न या नि प्रत्यय लगता है। व्रजभाषा को कोमलता अधिक प्रिय है, अतः हकार की महाप्राणता उसको स्वीकार नहीं। जैसे :

प्रातिपदिक	तिर्यक् रूप बहुवचन	विश्लेषण
१. देव	देवन (रासपंचा०,[1] पृ० १५७, पंक्ति ५५)	देव+ —न
२. नैन	नैननि (वही, पृ० १६२, पंक्ति १६४)	नैन+ —नि
३. श्रवन	श्रवननि (वही, पृ० १६२, पंक्ति १६२)	श्रवन+ —नि
४. कंठ	कंठनि (,, पृ० १७५, पंक्ति ४४६)	कंठ+ —नि
५. जुवती	जुवतिन (वही, पृ० १७४, पंक्ति ४२६)	जुवति+ —न

जिस प्रकार प्राचीन व्रजभाषा में तिर्यक् बहुवचनीय प्रत्यय न और नि मिलते हैं, उसी प्रकार तुलसी के रामचरितमानस में वे प्रत्यय न्ह और न्हि रूप में पाये जाते हैं। नन्ददास 'तुम' लिखते हैं, तो 'तुलसी तुम्ह'। उदाहरण :

'कह्यौ स्याम संदेस एक, मैं तुम पै लायो।'

(नन्ददास, भाग १, भँवरगीत, पृ० १२३, पंक्ति ६)

'एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ।' (गुप्त संस्क०, किष्कि० ८ ५)

---

१. दे० श्रीउमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित 'नन्ददास', प्रथम भाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग, सन् १९४२ ई० का प्रथम संस्करण।

५. ६. रामचरितमानस के क्रियापदों में शून्य प्रत्यय

जब प्रातिपदिक या धातु में विभक्ति-प्रत्यय का योग हो जाता है, तब उस प्रत्यय प्रातिपदिक या धातु की संज्ञा 'पद' हो जाती है। जहाँ क्रियापद और धातु का एक ही रूप होता है, वहाँ आधुनिक भाषाविद् शून्य प्रत्यय की कल्पना कर लेते हैं। रहा, कहा, चाहा, बैठा आदि क्रियापद हैं। इनमें क्रमशः रह्, कह्, चाह् और बैठ् धातुएँ हैं। जब इन धातुओं में – आ प्रत्यय का योग-हो गया, तब ये पुं० एक व० भूतकालीन क्रियापद बन गये।

कुछ क्रियापद ऐसे होते हैं, जिन्हें हम धातु भी कह सकते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी की वर्त्तमानकालीन आज्ञार्थ क्रिया, जो मध्यपुरुष के एकवचन में होती है, वह वास्तव में धातु-रूप रूप ही होती है। जैसे :

१. तू रह्
२. तू कह्
३. तू चाह्
४. तू बैठ्

इन वाक्यों में आये क्रियापदों का विश्लेषण हम इस प्रकार कर सकते हैं :

पद	धातु	प्रत्यय
१. रह् (रह)	=रह्	+ – ० (शून्य)
२. कह् (कह)	=कह्	+ – ० ,,
३. चाह् (चाह)	=चाह्	+ – ० ,,
४. बैठ् (बैठ)	=बैठ्	+ – ० ,,

रामचरितमानस में भी रह्, कह्, चह आदि क्रियापदों का प्रयोग हुआ है। शून्य प्रत्ययवाले ये क्रियापद वहाँ किस काल की सूचना देते हैं, इसका निर्णय करना अभीष्ट है।

क्रियापद	विश्लेषण	उदाहरण
(१) रह्	रह् + – ०	'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा।' (डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्करण, (किष्कि० १।२) अर्थ : वहाँ सचिव सहित सुग्रीव रहता था। 'रह' क्रियापद यहाँ भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।)
(२) कह्	कह् + – ०	'अति सभीत कह' सुनु हनुमाना।' (डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्क०, श्रीरामच० (किष्कि० १।३)

१. 'सुमिरेसि' (अर० २७।१६), काढ़िसि (अर० २९।२१) क्रियाएँ तिङन्त की हैं और भूतकाल में अन्यपुरुष एकवचन की हैं।

अर्थ : बहुत डरते हुए सुग्रीव ने कहा कि हनुमान् ! सुनो ।
'कह' क्रियापद यहाँ भूतकाल का ही अर्थ दे रहा है ।

अब चह क्रियापद के अर्थ पर भी विचार करना चाहिए ।

(१) चह् चह् + – ० 'पुरोडास चह रासभ खावा ।'
(डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्क०, अर० २९।५)

अर्थ : यज्ञ के हवि को गधा खाना चाहता है ।
(यहाँ चह का प्रयोग वर्त्तमानकाल के अर्थ में हुआ है ।)

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि रामचरितमानस के शून्य प्रत्ययवाले क्रियापद वर्त्तमानकाल तथा भूतकाल—दोनों में ही प्रयुक्त हुए हैं। चह क्रियापद का प्रयोग यहाँ चहत के अर्थ में हुआ है । चहत रामचरितमानस का वर्त्तमानकालीन प्रयोग है । राम के वनगमन के समय सीताजी कहती हैं :

'चलन चहत बन जीवननाथू ।
केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥'
(डॉ० माताप्रसाद गुप्त-संस्क०, श्रीराम०, अयो० ५८।३)

अर्थात्, जीवननाथ वन चलना चाहते हैं । किस पुण्य द्वारा उनका साथ होगा ।

निष्कर्ष :

	अवधी-क्रियापद	**विश्लेषण**	**काल**	**हिन्दी-अर्थ**
(१)	कह् (किष्कि० १।३)	कह् + – ०	भूतकाल	कहा
(२)	चह् (अर० २९।५)	चह् + – ०	वर्त्तमानकाल	चाहता है ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि तुलसी के रामचरितमानस की अवधी में शून्य प्रत्ययवाले क्रियापद सामान्य भूतकाल और सामान्य वर्त्तमानकाल का अर्थ देते हैं ।

ऐसे उदाहरण रामचरितमानस में से और भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

वर्त्तमानकाल के उदाहरण – (शून्य प्रत्यय वर्त्तमानकाल में)

बह् = बह् + – ० (= बहती है) । (अन्यपुरुष, एकव०)

'उत्तर दिसि बह सरऊ पावनि ।' (काशि० उत्तर० ४।५)

अर्थ : उत्तर दिशा में पावनी सरयू **बहती** है ।

जान् = जान् + – ० (= जानता है) । (अन्यपुरुष, एकवचन)

'बरनइ सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ।' (अरण्य० १२वाँ दोहा)

अर्थ : शारदा, शेष और वेद वर्णन करते हैं । उस रस को शंकर **जानते हैं** ।

रह्=रह्+—० (=रहती है)। (अन्यपुरुष, एकव०)

'दामिनि दमक **रह** न घन माहीं।' (काशि०, किष्कि० १४।२)

अर्थ : बिजली की चमक बादल में नहीं रहती है।

चल=चल्+—० (=चलती है)। (अन्यपुरुष, एकव०)

'सुनहु राम स्वामी सन, **चलन** चातुरी मोरि।' (किष्कि० ९।—)

अर्थ : हे राम! सुनो। स्वामी से मेरी चतुराई नहीं **चलती है**।

'बिनु अवसर भय ते **रह** जोई।' (अर० ५।१५)

अर्थ : जो अवसर के विना और भय से पतिव्रता बनी **रहती है**।

समुझ्=समुझ्+—० (=समझती है)।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न **समुझ** तेहि सम को खोटी॥'

(अर० ५।१७)

अर्थ : क्षण के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्मों के दुःखों को नहीं **समझती है**, उसके समान खोटी कौन है? अर्थात्, कोई नहीं।

भूतकाल के उदाहरण (शून्य प्रत्यय भूतकाल में)

कह्=कह्+—० (=कहा)। (अन्यपुरुष, एकवचन)

'कह सुग्रीव नयन भरि बारी।' (किष्कि० ५।२)

अर्थ : सुग्रीव ने नेत्रों में आँसू भरकर कहा।

कह्=कह्+—० (=कहा)। (अन्यपुरुष, एकवचन)

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। **कह**[१] सुनु रावन मोर सिखावा। (अरण्य० २९।१५)

अर्थ : सुनते ही गीध क्रोध से आतुर होकर दौड़ा और उसने **कहा** कि—'हे रावण! मेरी सीख सुन।'

कर्=कर्+—० (=किया) (अन्यपुरुष, एकव०)

'फिर दसकंधर **कर** अनुमाना।' (अरण्य० २९।१२)

अर्थ : फिर रावण ने अनुमान **किया**।

सोह्=सोह्+—० (=सोहता था, शोभित था) (अन्यपुरुष, एकव०)

'**सोह** चाप कर कटि तूनीरा।' (अरण्य० २८।१)

अर्थ : हाथ में धनुष और कमर में तरकस **सोहता था**।

टूट[२]=टूट्+—० (=टूटा, टूट गया) (अन्यपुरुष, एकव०)

'छुवत **टूट** रघुपतिहु न दोसू।' (बाल० २७२।३)

अर्थ : छूते ही **टूट गया**। रघुपति का भी दोष नहीं।

---

१. रामचरितमानस में भूतकालीन कृदन्त क्रियाएँ 'दीन्ह' (पुं०) और 'दीन्हि' (स्त्री०) भी आई हैं—
'ताहि दीन्ह निज धामा।' (लंका० ७१वाँ दोहा)
'सोइ सम्पदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ।' (सुन्दर० ४९ दोहा)

२. 'टूट' भूतकालीन कृदन्तीय विशेषण भी है—'टूट चाप' (बाल० २७८।२)

५. ७ रामचरितमानस के वे धातु-प्रत्यय, जो एक से अधिक अर्थों में हैं :

प्रस्तुत प्रकरण की सर्जना के क्षणों में 'रामचरितमानस' के निम्नांकित संस्करणों से सहायता ली गई है। उद्धरणों की संख्याएँ दोहा और अर्द्धाली की संख्याएँ बताती हैं।

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस'। प्रकाशक : साहित्य कुटीर, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सन् १९४९ ई०।

२. गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'रामचरितमानस' संवत्, २०१६ वि०, संस्करण।

३. पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र–सम्पादित 'रामचरितमानस' (काशिराज-संस्करण, सन् १९६२ ई०)।

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि में लगनेवाले प्रत्यय नाम-प्रत्यय कहलाते हैं। धातु में लगनेवाले प्रत्ययों को धातु-प्रत्यय कहते हैं। 'बालक' संज्ञा प्रातिपदिक में 'अम्' प्रत्यय लगाने से 'बालकम्' पद बनता है। यह 'अम्' नाम-प्रत्यय या शब्द-प्रत्यय है। किन्तु 'पठ्' धातु में 'अति' लगने पर 'पठति' क्रियापद बनाता है। इस 'अति' को हम धातु-प्रत्यय कहेंगे। इसी प्रकार अवधी के 'केवटु' पद के अन्तिम 'उ' को नाम-प्रत्यय कहेंगे–केवट्+–उ=केवटु। लेकिन, 'जानइ' क्रियापद के अन्तिम 'अइ' को धातु-प्रत्यय कहेंगे; क्योंकि यह जान् धातु में लग रहा है–जान्+अइ=जानइ। तुलसी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं :

'मागी नाव न केवटु आना।' (अयो० १००।३)

अर्थ : नाव माँगी, केवट नहीं लाया।

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।' (अयो० १२७३)

अर्थ : वही जानता है, जिसे तुम जना दो।

रामचरितमानस के धातु-प्रत्यय :

१. शून्य प्रत्यय

धातु+–० धातुरूप क्रियापद
चाह्+–०=चह्~चह (अर० २९।५) चाहता है।
'पुरोडास चह रासभ खावा।' (अर० २९।५)

अर्थ : गधा यज्ञ-हवि को खाना चाहता है।

'सेब्+–०=सेब्~सेब (अर० ५।६)=सेवा करती है।
'अधम सो नारि जो सेब न तेही।' (अर० ५;६)

अर्थ : वह नारी अधम है, जो उसकी सेवा नहीं करती है।

देख्+–०=देख्~देख (बाल० २०१।७)=देखती है।
देख=देखा (चरणान्त के कारण)। तुलसी चरणान्त में 'ह्रस्व' स्वर को दीर्घ कर देते हैं।

'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा ।'[1] (बा० २०१।७)

अर्थ : कौशल्या यहाँ और वहाँ दो बालक देखती है ।

उक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि धातु का शून्य प्रत्यय 'रामचरितमानस' की भाषा में सामान्य वर्त्तमान काल के अन्यपुरुष, पुंलिंग या स्त्रीलिंग के एकवचनीय रूप में प्रयुक्त होता है ।

धातु + – ० = पढ़् + – ० = पढ़ (बाल० २०४।५) = पढ़ते हैं ।

'सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।' (बाल० २०४।५)

अर्थ : वह हरि पढ़ते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ।

धातु + – ० = सह् + – ० = सह् = सह (किष्कि० १४।४) = सहते हैं ।

'खल के बचन संत सह[2] जैसे ।' (किष्कि० १४।४)

अर्थ : सन्त जैसे दुष्टों के वचन सहते हैं ।

धातु + – ० = कह् + – ० = कह् = कह (किष्कि० ३।८) = कहते हैं ।

'समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।' (किष्कि० ३।८)

अर्थ : मुझे सब कोई समदर्शी कहते हैं ।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि शून्य प्रत्यय सामान्य वर्त्तमान काल के अन्यपुरुष, स्त्रीलिंग तथा पुंलिंग के बहुवचनीय रूप में प्रयुक्त होता है । यह आदरसूचक एकवचन को भी व्यक्त करता है ।

धातु + – ० = टूट + – ० = टूट् = टूट (बाल० २७२।३) = टूटा ।

'छुवत टूट रघुपतिहु न दोसू ।' (बाल० २७२।३)

अर्थ : छूते ही टूट गया, रघुपति का दोष नहीं है ।

धातु + – ० = कर् + – ० = कर् – कर (किष्कि० ११।२) = किया ।

'नाना बिधि बिलाप कर[3] तारा ।' (किष्कि० ११।२)

अर्थ : तारा ने अनेक प्रकार से विलाप किया ।

---

१. चरणान्त के 'देख' को तुलसी ने 'देखा' कर दिया है । तुलसी चरणान्त के पद के अन्तिम ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर देते हैं ।

'सरिता सर निर्मल जल **सोहा** ।' (किष्कि० १६।४)

'दामिनि दमक **रह** न घन माहीं ।' (किष्कि० १४।२)

सोहा~**सोह** = सोहता है । **रह** = रहती है ।

२. मिला० 'काग गीध **कर** नाच ।' (उस्मान, चित्रावली, ४५०।–)

अर्थ : कउए और गीध नाच करते हैं ।

'**जान** भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।' (रामच०, गीताप्रेस०, सुन्दर० ४८।१)

अर्थ : भुसुंडी, शंभु और गिरिजा भी जानती हैं ।

३. कर = करती है (यह अर्थ भी है) ।

धातु + – ० = कह् + – ० = कह् = कह (अयो० १३ दो०) = कहा।
'सभय रानि कह।'[1] (अयो० १३ दो०)

अर्थ : रानी ने डरकर कहा।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि शून्य प्रत्यय सामान्य भूतकाल के अन्यपुरुष, पुंलिंग और स्त्रीलिंग तथा एकवचन के रूप को प्रकट करता है।

२. 'अहिं'[2] प्रत्यय :

धातु + – अहिं = फिर् + – अहिं = फिरहिं (किष्कि० ३।३) = फिरते हैं।
'बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।' (किष्कि० ३।३)

अर्थ : हे ब्राह्मण। हम उसे खोजते-फिरते हैं।

'फिरहिं' में 'अहिं' प्रत्यय सामान्य वर्त्तमानकाल के उत्तमपुरुष, बहुवचन को सूचित करता है। यह तिङन्त प्रयोग है। अतः लिंग तो दोनों (पुं०स्त्री०) ही माने जा सकते हैं।

धातु + – अहिं = उतर् + – अहिं = उतरहिं[3] (अयो० १०१।३) उतरते हैं।
'उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।' (अयो० १०१।३)

अर्थ : नर अपार भवसागर से उतरते हैं।

'उतरहिं' में 'अहिं[4]' प्रत्यय सामान्य वर्त्तमानकाल के अन्यपुरुष, बहुवचन को सूचित करता है। यह क्रिया का तिङन्त प्रयोग है। तुलसी ने कुछ स्थलों पर –अहिं प्रत्ययान्त क्रियापदों का प्रयोग सामान्य भविष्यत् काल में भी किया है। जैसे–'फिरहिं[5] रामु सीता मैं हारी।' (गुप्त, गीता प्रेस, काशिराज, लंका० ३४।९)। फिरहिं = फिर् + —अहिं (= फिरेंगे)। इसी तरह —अइ प्रत्ययान्त भी सामान्य भविष्यत् काल में मिलते हैं। जैसे : 'एहि जीतइ[6] रन सोइ।' (बाल० ८२।—)। जीतइ = जीत + – अइ (= जीतेगा)।

३. 'एहु' प्रत्यय

धातु + – एहु = अवतर् + – एहु = अवतरेहु (किष्कि०९।५) तुम अवतरे।
'धर्म हेतु अवतरेहु गुसाईं।' (किष्कि० ९।५)

अर्थ : हे इन्द्रियों के स्वामी! तुम धर्म-हेतु अवतरे।

---

१. कह = कहती हैं (यह अर्थ भी है)।

२. –अहिं प्रत्यय वर्त्तमानकाल, इच्छार्थ, अन्यपुरुष, बहुवचन को भी प्रकट करता है–'फूलहिं नभ बरु

३. बहु बिधि फूला।' (उत्तर० १२२।१०)

४. –अहिं प्रत्यय –अहुँ के अर्थ में (इच्छार्थ, अन्यपुरुष, बहुवचन में) भी प्रयुक्त होता है। जैसे : 'कमठ पीठि जामहिं बरु बारा।' (उत्तर० १२२।१५) = मारहुँ (अयो० १००।छंद)

५. 'फिरहिं' का –अहिं प्रत्यय व्याकरणिक रूप की दृष्टि से तो सामान्य वर्त्तमानकाल का ही माना जायगा। अर्थ की दृष्टि से भविष्य का समय भी यहाँ प्रकट कर रहा है।

६. यही बात 'जीतइ' के –अइ प्रत्यय के साथहै।

धातु + −एहु = मिल् + −एहु = मिलेहु (किष्कि० ७।१९) = तुम मिले।
'मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा।' (किष्कि० ७।१९)
अर्थ : हे राम! तुम विषाद नाश करनेवाले मुझे मिले।

उक्त उदाहरणों में —एहु प्रत्यय सामान्य भूतकाल के मध्यमपुरुष के बहुवचन या आदर-भाव को प्रकट करता है। यह क्रिया का तिङन्त प्रयोग है।

धातु + −एहु = रह् + एहु = रहेहु (अर० १८।१२) = तुम रहना।
'रहेहु सजग, सुनि प्रभु कै बानी।
चले सहित श्री सर धनु पानी।।' (अर० १८।१२)
अर्थ : तुम सजग रहना, प्रभु की इस वाणी को सुनकर लक्ष्मण हाथ में धनुष-बाण लेकर सीताजी-सहित चले।

'रहेहु का 'एहु' प्रत्यय यहाँ सामान्य भविष्यत् काल के आज्ञार्थ में मध्यमपुरुषीय बहुवचन अथवा आदर-भाव का सूचक है।

४. 'अहि' प्रत्यय

धातु + − अहि = $\sqrt{\text{जान्}}$ + अहि[१] = जानहि (बाल० २८३।१) = तू समझता है।
'निपटहिं द्विज करि जानहि मोही।' (बाल०२८३।१)
अर्थ : तू मुझे निरा ब्राह्मण करके मानता है। (समझता है)।

यहाँ 'अहि' प्रत्यय सामान्य वर्त्तमानकाल के मध्यमपुरुष एकवचन का सूचक है।
धातु + − अहि = $\sqrt{\text{उतार्}}$ + −अहि = उतारहि (अयो० १०१।२) = तू उतार।
'होत बिलंबु उतारहि[२] पारू।' (अयो० १०१।२)
अर्थ : विलम्ब होता है, तू पार उतार।

जब धातु स्वरान्त हो, तब 'अहि' प्रत्यय 'हि' में बदल जाता है। 'लेहि', 'देहि' आदि क्रियाओं में 'हि' प्रत्यय है। इसे 'अहि' का सम्पद (ALLO MORPH) कहना चाहिए।
धातु + हि = $\sqrt{\text{ले}}$ + हि = लेहि (अयो १०२।४) = तू ले।
'कहेउ कृपाल लेहि उतराई।' (अयो० १०२।४)
अर्थ : कृपालु राम ने कहा कि उतराई ले।

---

१. **−अहि** 'प्रत्यय की भाँति ही 'असि' प्रत्यय है। 'मारसि' के दो अर्थ हैं–(१) तू मारता है। (२) तू मार। 'रे कपि-पोत मरन अब **चहसी**।' (लंका० ३१।७)। '**मारसि** जनि सुत बाँधेसु ताही।' (सुंदर० १९।२)।

२. उतरहि (अयो० १०१।२) = तू उतार। सुनहि (बाल० ५१।६) = तू सुन। जानहि (बाल० २८३।) = तू जानता है।

धातु + हि = √दे + हि = देहि (लंका० २९।९) = तू दे।

'सुनु मतिमन्द देहि अब पूरा।' (लंका २९।९)

अर्थ : हे मूर्ख रावण ! सुन और अब पूर्णता दे। अर्थात्, चुप रह।

उक्त उदाहरणों में आये हुए क्रियापदों के—'अहि' या —'हि' प्रत्यय वर्त्तमानकाल के आज्ञार्थ मध्यमपुरुष, एकवचनीय रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

५. 'अहु'[1] प्रत्यय

धातु + —अहु = √फिर् + —अहु = फिरहु (किष्कि० १।७) = तुम फिरते हो।

'छत्री रूप फिरहु बन बीरा।' (किष्कि० १।७)

अर्थ : हे वीर ! तुम क्षत्रिय रूप से वन में फिरते हो।

यहाँ —'अहु' प्रत्यय सामान्य वर्त्तमानकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदर-भाव को सूचित कर रहा है।

धातु + —अहु = √तज् + अहु = तजहु (किष्कि० ५।७) = तुम छोड़ो।

'तजहु सोच मन आनहु धीरा।' (किष्कि० ५।८)

अर्थ : हे रघुवीर ! सोच (चिन्ता) छोड़ो और मन में धैर्य लाओ।

यहाँ 'तजहु' और 'आनहु' का —'अहु' प्रत्यय वर्त्तमानकाल के आज्ञार्थ में मध्यमपुरुष के वहुवचन को सूचित करता है।

अतः, निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' के निम्नांकित धातु-प्रत्यय व्याकरणिक प्रयोग में एक से अधिक अर्थों को प्रकट करते हैं।

१. शून्य प्रत्यय
२.—अहि प्रत्यय
३.—एहु प्रत्यय
४.—अहि या – हि प्रत्यय
५.—अहु प्रत्यय

धातु-प्रत्यय	व्याकरणिक प्रयोग
१. शून्य प्रत्यय	(अ) सामान्य वर्त्तमानकाल, अन्यपुरुष, एकवचन, बहुवचन या आदर-भाव में।
	(आ) सामान्य भूतकाल, अन्यपुरुष, एकवचन।
२. – अहि प्रत्यय[2]	(अ) सामान्य वर्त्तमान, मध्यमपुरुष, एकवचन।
	(आ) वर्त्तमानकाल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन।

१. —'उब' प्रत्यय भी दो अर्थों में आता है : (१) भविष्यत्काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन – 'पुनि **आउब** एहि बेरिआँ काली'। (बाल० २३४।६)। (२) भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन 'तौ तुम्ह दुखु **पाउब** परिनामा।' (अयो० ६२।३)। '**जानब** तैं – (उत्तर० ८५ (क)।८)।

२. **उतरहिं** = उतर् + अहिं (= उतरते हैं) (अयो० १०१।३) **फूलहिं** = फूल + – अहिं = (= चाहे फूले) (उत्तर० १२२।१६ अर्थात् – अहि = अहुँ – 'बरु तीर **मार**हुँ लखन।' (अयो० छन्द। १००)

विशेष : —अहि = —असि । जैसे :

चहसि (=तू चाहता है)
(लंका० ३१.७)

मारसि (=तू मार)
(सुन्दर० १९.२)

३.—अहु प्रत्यय	(अ)	सामान्य वर्त्तमान, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदर भाव में ।
	(आ)	वर्त्तमानकाल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदर-भाव में ।
४.—अहिं प्रत्यय	(अ)	सामान्य वर्त्तमान, उत्तमपुरुष, बहुवचन ।
	(आ)	सामान्य वर्त्तमान, अन्यपुरुष, बहुवचन। कभी-कभी सामान्य भविष्यत् काल, अन्यपुरुष, बहुवचन या आदरसूचक एकवचन ।
५.—एहु, एहु प्रत्यय	(अ)	सामान्य भूतकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन, अथवा आदर-भाव में ।
	(आ)	भविष्यत्काल, आज्ञार्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदर-भाव में ।

५. ८ 'रामचरितमानस' में भाषा-पंचामृत

पंचामृत में पाँच पदार्थ होते हैं—१. दूध, २. दही, ३. घी, ४, शहद और ५. शर्करा। 'रामचरितमानस' में भी पाँच भाषाओं का पंचामृत पान करने को मिलता है। 'अवधी' भाषा की प्रमुखता के साथ अन्य चार भाषाओं का पुट भी यथास्थान तुलसी लगाते चले हैं। अवधी के साथ-साथ वे कौन-सी चार भाषाएँ 'मानस' में पाई जाती हैं, उनका दिग्दर्शन एवं विश्लेषण ही यहाँ अभीष्ट है।

बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक सम्पूर्ण 'रामचरितमानस' प्रधान रूप से अवधी (प्राचीन परिनिष्ठित अवधी) में लिखा गया है। किन्तु, तुलसीदासजी की यह पद्धति रही है कि प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में उन्होंने संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं। काण्डों के बीच-बीच में भी स्तुति-प्रार्थना आदि के भावों की अभिव्यक्ति तुलसी ने संस्कृत-भाषा के श्लोकों के माध्यम से ही की है। महात्मा तुलसी जीवित भाषा के लक्षणों से परिचित थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि संस्कृत प्रचलित लोकभाषाओं के शब्दों को लेकर चलने पर ही जीवित रह सकती है। इसीलिए, संस्कृत के श्लोकों की भाषा में तुलसी के ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं, जिसे हम हिन्दीपरक संस्कृत कह सकते हैं। पाणिनीय व्याकरण की कसौटी पर कसने से वे प्रयोग अपाणिनीय ही सिद्ध होंगे, किन्तु क्रान्तिकारी एवं युगप्रवर्त्तक मनीषी कवि इन बातों की परवाह नहीं करते। वे अपने चलने के लिए 'सपूत' की भाँति अपनी लीक स्वयं बनाया करते हैं: 'बिना लीक के तीन हैं सायर, सिंह, सपूत।'

निम्नांकित उद्धरणों में तुलसी के ऐसे ही प्रयोग हैं, जिन्हें हम क्रान्तिकारी प्रयोग कह सकते हैं। ऐसा लगता है कि वे संस्कृत को भाषा[1] के निकट ला रहे हैं या भाषा का संस्कृतीकरण कर रहे हैं:

'स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गङ्गा।
लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा॥
× × ×
'चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी।
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥'
× × ×
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम्।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो॥'

(उत्तरकाण्ड, १०८। रुद्राष्टक)

जिस प्रकार 'आपं नमामि' में हिन्दी 'आप' शब्द का प्रयोग है, उसी प्रकार √समर् नामक हिन्दी धातु से संस्कृतीकरण रूप 'समरामहे' [उत्तर० १३(क)।छन्द३] लिखा गया है—'जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।'

---

१. 'भाषा' से तात्पर्य 'हिन्दी' है।

हिन्दी में आज्ञार्थ और इच्छा-प्रार्थनार्थ में दो तरह के प्रयोग प्रचलित हैं :

आज्ञार्थ में	इच्छा-प्रार्थनार्थ में
१. तू हाथी पर चढ़ ।	१. भगवान् करे, तू हाथी पर चढ़े ।

इसी का व्रजभाषा में यह होगा :

१. तू हाथी पै चढ़ि ।	१. भगवान करै तू हाथी पै चढ़ै ।

आज्ञा (लोट्) और इच्छा-प्रार्थना (विधि) के इस सूक्ष्म अन्तर को अवधी-भाषा के मर्मज्ञ पण्डित तुलसी की बुद्धि अच्छी तरह समझती है । आज्ञार्थ के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रयोगों तक तुलसी की दृष्टि पहुँची है ।

जैसे हिन्दी आज्ञार्थ की क्रिया वर्त्तमानकाल और भविष्यत् काल में आती है, उसी प्रकार अवधी में भी उसके प्रयोग हैं ।

हिन्दी में आज्ञार्थसूचक क्रियाएँ :

वर्त्तमानकाल	**भविष्यत्काल**
मध्यमपुरुष, एकवचन	**मध्यमपुरुष, एकवचन**
तू माँग	तू माँगना
तू सुन	तू सुनना
तू उतार	तू उतारना
तू ले	तू लेना
वर्त्तमानकाल	**भविष्यत्काल**
मध्यमपुरुष, बहुवचन	**मध्यमपुरुष, बहुवचन**
तुम माँगो	तुम माँगना
तुम सुनो	तुम सुनना
तुम उतारो	तुम उतारना
तुम लो	तुम लेना

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि परिनिष्ठित हिन्दी में भविष्यत्काल के आज्ञार्थ की मध्यमपुरुष एकवचन क्रिया के समान ही बहुवचन क्रिया भी होता है । जैसे : एकवचन में 'तू माँगना', बहुवचन में 'तुम माँगना' । 'माँगना' प्रयोग दोनों वचनों में एक-सा ही है ।

तुलसी के 'रामचरितमानस' की अवधी में ऐसे प्रयोग मिलते हैं और बड़ी सावधानी तथा जागरूकता के साथ तुलसी द्वारा उनका निर्वाह किया गया है । आज्ञार्थ के ऐसे प्रयोगों को 'मानस' में भी देखना चाहिए और उनके अन्तर पर भी ध्यान देना चाहिए ।

'मानस' के वर्त्तमानकालीन आज्ञार्थ क्रियापद

१. मध्यमपुरुष, एकवचन में :

'माँगु माँगु' (अयो० २७ दो०) = तू माँग, तू माँग।

माँग् + —उ = माँगु।

'माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।' (अयो० २७ दो०)

अर्थ : कैकेयी राजा दशरथ से कहती है : 'हे प्रिय ! तू माँग, तू माँग' ऐसा तो मुझसे कहते हो, लेकिन कभी न देते हो और न लेते हो।'

सुनु (किष्कि० १।३) = तू सुन। सुन् + —उ = सुनु।

'अति सभीत कह सुनु हनुमाना।' (किष्कि० १।३)

अर्थ : सुग्रीव ने हनुमान् से भयपूर्वक कहा कि हे हनुमान् ! तू सुन।

आगे के प्रयोग भी मध्यमपुरुषीय एकवचन के ही हैं, किन्तु उनमें प्रत्यय भिन्न हैं। अवधी-भाषा के पाठक को इनपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

'उतारहि' (अयो० १०१।२) = तू उतार।

उतार् + —अहि = उतारहि

'बेगि आनु जल पाय पखारू।

होत बिलंबु उतारहि पारू।।' (अयो० १०१।२)

अर्थ : रामचन्द्रजी केवट से कहते हैं : जल्दी जल ला और पाँव धो। देर होती है, तू पार उतार।

'लेहि' (अयो० १०२।४) = तू ले। $\sqrt{\text{ले}}$ + — हि = लेहि।

'कहेउ कृपाल लेहि[1] उतराई।' (अयो० १०२।४)

अर्थ : रामचन्द्रजी ने कहा : हे केवट ! तू उतराई ले।

२. मध्यम पुरुष, बहुवचन में

'तजहु' (किष्कि०) = तुम त्यागो।

$\sqrt{\text{तज्}}$ + —अहु = तजहु।

'तजहु सोच मन आनहु धीरा।' (किष्कि० ५।७)

अर्थ : सुग्रीव रामचन्द्रजी से कहने लगा कि हे रघुवीर ! तुम चिन्ता छोड़ो और मन में धैर्य लाओ।

जिस प्रकार ला और लाओ में अन्तर है, ठीक वैसा ही अन्तर तुलसी की अवधी के आनु और आनहु में है। आदरसूचक एकवचन, मध्यमपुरुष के आज्ञार्थ में आनहु का प्रयोग और अपने से छोटे के लिए आनु का प्रयोग मिलता है। निम्नांकित उद्धरण प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

---

१. तुलना करके अन्तर मालूम कीजिए :

'दुइ के चारि माँगि बरु लेहू।' (अयो० २८।३)

'बेगि आनु जलु पाय पखारू ।' (अयो० १०१।२)

अर्थ : राम केवट से कहते हैं : जल्दी जल ला और पाँव धो ।

'तजहु सोच मन आनहु धीरा ।' (किष्कि० ५।७)

अर्थ : सुग्रीव रामन्द्रजी से कहता है : चिन्ता छोड़ो और मन में धैर्य लाओ ।

लेहू~लेहु (अयो० २८।३)=लो ।

ले+ —हु =लेहू ।

'दुइ के चारि माँगि बरु लेहू ।' (अयो० २८।३)

अर्थ : राजा दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि चाहे दो के स्थान पर चार माँग लो ।

'रामचरितमानस' में अवधी की कर्मवाच्य क्रियाओं में करब और करबि का अन्तर भी बड़े मार्के का है । करब क्रिया पुंलिंग एकवचन कर्मवाच्य की है और करबि स्त्रीलिंग एकवचन कर्म की । उदाहरण :

'ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ।' (सुन्दर० ५१।५)

अर्थ : मन में धैर्य धरो । इसी प्रकार कार्य किया जायगा ।

० ० ०

'मैं कुछ करबि[1] ललित नर लीला ।' (अर० २४।१)

अर्थ : मेरे द्वारा कुछ ललित नर-लीला की जायगी ।

० ० ०

'भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।' (बाल० २१।२)

अर्थ : वही कथा मेरे द्वारा भाषाबद्ध की जायगी ।

सं० कर्त्तव्यः>करब । सं० कर्त्तव्या>करबि

भविष्यत्कालीन आज्ञार्थ क्रियापद

१. मध्यम पुरुष, एकवचन में

परिनिष्ठित हिन्दी में एकवचन और बहुवचन के रूप एक ही रहते हैं । जैसे :

मध्यमपुरुष, एकवचन	मध्यमपुरुष, बहुवचन या आदर सूचक एकवचन
१. तू कहना	१. तुम कहना ।
२. तू जानना	२. तुम जानना

किन्तु, 'रामचरितमानस' की अवधी में मध्यमपुरुष, एकवचन और मध्यमपुरुष बहुवचन में अन्तर है । भविष्यत्कालीन आज्ञार्थ में मध्यमपुरुषीय एकवचन में क्रियारूप इस प्रकार मिलते हैं :

---

१. सं० कर्त्तव्या>करबि (=की जायगी) ।

कहेसु (किष्कि० १।४) = तू कहना।
√कह् + – एसु = कहेसु।
'कहेसु जानि जिअँ सयन बुझाई।' (किष्कि० १।४)
अर्थ : हृदय में जानकर संकेत से समझाकर तू कहना।

जानेसु]उत्तर० १०६ (क)।१२ = तू] जानना।
√जान् + एसु = जासेसु।
'जानेसु संत अनंत समाना।' (उत्तर० १०९ (क)।१२)
अर्थ : तू संत को अनन्त समान जानना।

२. मध्यमपुरुष बहुवचन में

मध्यमपुरुष एकवचन में वे ही प्रयोग मिलते हैं, जो मध्यमपुरुष के आदरपरक एकवचन में पाये जाते हैं। उदाहरण :

पूँछेहु (किष्कि० २३।२) = तुम पूछना।
√पूँछ् + – एहु = पूँछेहु।
'सीता सुधि पुँछेहु सब काहू।' (किष्कि० २३।२)
अर्थ : तुम सब किसी से सीता का समाचार पूछना।

राखेहु [उत्तर० १०९(क)।१५] = तुम रखना।
√राख् + – एहु = राखेहु।
'अस बिवेक राखेहु[1] मन माहीं।' [उत्तर० १०६(क)।१५]
अर्थ : तुम ऐसा विवेक मन में रखना।

'जनि कहेहु' (अर०, दो० ३९) = तुम मत कहना।
√कह् + – एहु = कहेहु।

अवधी और बघेली नाम की जनपदीय भाषाओं में आज भी भविष्यत्‌काल में अन्य-पुरुष, एकवचन का प्रयोग प्रचलित है :
'होई' (= होगा, होगी)
जाई (= जाएगा, जाएगी)

तुलसी के रामचरितमानस की अवधी में भी उक्त प्रयोग उसी प्रकार से मिलते हैं :
'होई' (बाल० २३१।१) =
होगा, होगी, हो + ई = होई।
'धनुष जज्ञ जेहि कारन होई।' (बाल० २३१।१)
अर्थ : जिसके कारण धनुष-यज्ञ होगा।

---

१. एहु प्रत्यय भूतकाल, मध्यमपुरुष, बहुवचन का भी सूचक है :
'धर्म हेतु **अवतरेहु** गुसाईं।' (किष्कि० ६।५)

'जाई' (अयो० १००।६) = जायगा।

जा + – ई = जाई

'तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई।' (अयो० १००।६)

अर्थ : नाव भी मुनि-गृहिणी हो जायगी।

वर्त्तमान अवधी के उक्त प्रयोग सिद्ध करते हैं कि तुलसी जनपदीय अवधी से पूर्णतः परिचित थे और उसके कण-कण में उनके ज्ञान का मन रमा हुआ था।

'रामचरितमानस' में हमें यत्र-तत्र बुन्देली, व्रजभाषा और खड़ीबोली के क्रियापद भी कुछ मिल जाते हैं।

बुन्देलखण्डी क्रियापद :

भविष्यत्काल के मध्यमपुरुष, आदरसूचक एकवचन अथवा मध्यमपुरुष बहुवचन में इबी प्रत्ययान्त क्रियापद बुन्देलखण्डी बोली में प्रचलित हैं। बिहारी ने भी अपनी सतसई में यत्र-तत्र ऐसे प्रयोग किये हैं। जैसे :

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौं आइकै, गीधे गीधहिं तारि।।

—बिहारी

देखिबी = √देख् + – इबी (= तुम देखना)। [विनयपत्रिका (पद-सं० ४१)] में भी 'द्वाइबी' 'कहिबी' आदि बुन्देलखण्डी बोली के ही प्रयोग है।

तुलसी 'विनयपत्रिका' में लिखते हैं :

'कहिबी नाम दसा जनाइ।' (विनयपत्रिका, पद ४१)

अर्थ : तुम दशा-वर्णन करके नाम कहना।

इस प्रकार, 'रामचरितमानस' में भी बुन्देलखण्डी प्रयोग मिलते हैं। वे क्रियापद भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, बहुवचन अथवा आदरसूचक एकवचन के हैं। जैसे :

√'जानिबी' (बाल० ३३६।छन्द) = तुम जानना।

जान् + इबी = जानिबी

'मानिबी' (बाल० २३६।छन्द) = तुम मानना।

√मान् + इबी = मानिबी

परिबार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीसु सील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी।।

(बाल० ३३६। छन्द)

अर्थ : रानी कौशल्या रामचन्द्रजी से कहती हैं कि तुम यह जानना कि सीता परिवार, पुरजन, मुझे और राजा को प्राणों के समान प्रिय है। हे तुलसी के के स्वामी! इसके शील और स्नेह को देखकर तुम इसे अपनी दासी करके मानना।

व्रजभाषा के क्रियापद :

अवधी-भाषा के 'रामचरितमानस' में यत्र-तत्र व्रजभाषा के क्रियापद भी मिल जाते हैं।

'कहति'[1] (अयो० ५४।५) = कहती है।

$\sqrt{\text{कह्}}$ + अति = कहति।

'गदगद बचन कहति महतारी।' (अयो० ५४।५)

अर्थ : माता गद्‌गद वचन कहती है।

'मम सुमिरन कर्‌यो' 'चरनन्हि पर्‌यो' (उत्तर० २। छन्द)

'कहति' वर्त्तमानकाल के निर्देशार्थ में कृदन्त-प्रयोग है। कर्त्ता स्त्रीलिंग है, अतः क्रिया 'कहति' भी स्त्रीलिंग है। ऐसे कृदन्त-प्रयोग व्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी में अधिक पाये जाते हैं।

कर्‌यौ, पर्‌यौ व्रज की भूतकालिक क्रियाएँ हैं। **दियो, लियो** आदि भी भूतकालीन प्रयोग ही हैं, जो कन्नौजी पुटवाली व्रजभाषा के हैं।

'अब कुसल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥'

व्रजभाषा में **दियो**[2], **लियो** भूतकाल के प्रयोग हैं, जो पुंलिंग एकवचन को प्रकट करते हैं। वस्तुतः, ये प्रयोग कन्नौजी के अधिक निकट हैं।

इसी प्रकार **कर्‌यो** और **पर्‌यो** क्रियाओं के वैसे ही प्रयोग हैं, जिनमें कन्नौजीपन अपेक्षाकृत अधिक मालूम पड़ता है।

'निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो॥'
[उत्तर० २ (क)। छन्द]

लै गयो (लंका० ८४। छन्द) और **प्रभु चरनन्हि नयो** (लंका० ८४। छन्द) प्रयोग भी कन्नौजीपन लिये हुए व्रजभाषा के हैं और भूतकालसूचक हैं। निम्नांकित दोहा तो एक प्रकार से प्राचीन व्रजभाषा का ही माना जा सकता है :

'बधि बिराध खरदूषनहि, लीला हत्यो कबन्ध।
बालि एक सर मार्‌यो, तेहि जानहु दसकन्ध॥'
(लंका० ३६। दो०)

---

१. 'तू जो **कहति** बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।'—सूरसागर

२. **दियौ, दयौ, दीनौ, दीयौ** आदि भी व्रजभाषा के सामान्य भूतकालीन पुंलिंग एकवचनीय प्रयोग हैं।

व्रजभाषा के भविष्यत्कालीन प्रयोग भी मिलते हैं। अन्यपुरुष के आदरसूचक एकवचन में करहिंगे क्रियापद मिलता है। यह व्रजभाषा की क्रिया है :

'करहिंगे (किष्कि० १२ दो०) = करेंगे।
√कर् + अहि + ग् + ए = करहिंगे।
'प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन बास **करहिंगे** आइ ॥' (किष्कि० १२ दो०)

अर्थ : कृपानिधि राम कुछ दिन यहाँ आकर वास करेंगे।

करेंगे बहुवचन का प्रयोग है, तो '**करैंगो**'[1] (लंका० दो० २०) एकवचनीय है। करहिंगे आदरसूचक एकवचन अथवा बहुवचन की क्रिया है। मध्यमपुरुष में एकवचनीय प्रयोग भी 'मानस' में मिलते हैं। जैसे :

'या को फलु **पावहिगो** आगे।
बानर भालु चपेटन्हि लागे ॥' (लंका० सो० ३३।८)
करैगो = भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, एकवचन।
करहिंगे = भविष्यत्काल, अन्यपुरुष, एकवचन, आदरसूचक।
पावहिगो = भविष्यत्काल, मध्यमपुरुष, एकवचन।

खड़ीबोली की क्रियाएँ भी 'रामचरितमानस' में पायी जाती हैं। निम्नांकित उद्धरण में **देखा, आया, करिए** और **हरिए** तथा **लीजिए, कीजिए** प्रयोग खड़ीबोली के ही माने जायेंगे। इन्हें हम परिनिष्ठित हिन्दी के प्रयोग भी कह सकते हैं :

'उभय भाँति **देखा** निज मरना' (अर० २६।५)
'काम रूप केहि कारन **आया**।' (सुन्दर० ४३।६)
'अब दीन दयाल दया **करिए**।
मति मोरि बिभेदकरी **हरिए**।' (लंका० दो० १११। छन्द)
'येह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु **लीजिए**।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद **कीजिए** ॥'
(किष्कि० १०। छन्द)

सं० क्रियात् > कीजिए (उक्तिव्यक्ति० २०।३) > रामच० **कीजिए**।

करिए, हरिए, लीजिए, कीजिए आदि प्रार्थनार्थसूचक मध्यमपुरुषीय क्रियापद हैं, जो खड़ी बोली का वर्त्तमान रूप प्रस्तुत करते हैं। निम्नांकित अर्द्धाली में '**करते**' खड़ीबोली की क्रिया है :

'भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेमु न जे **करते**।'
(उत्तर० १४। छन्द)

---

१. 'प्रभु अभय करैंगो तोहि। (लंका० दो० २०)

इस प्रकार, तुलसी के 'मानस' में अवधी, संस्कृत, व्रज, बुन्देली और खड़ीबोली का भाषा-पंचामृत पाया जाता है।[1] भाषा-प्रमुखता की दृष्टि से अवधी के साथ व्रजभाषा का पुट पर्याप्त है। 'बाजों' के अर्थ में 'बाजन' (बाल० ९१।८) को बहुवचन में प्रयुक्त किया गया है; फिर भी खड़ीबोली के व्याकरणानुसार —ए प्रत्ययान्त के साथ 'बाजने' (बाल० २६३।२) ऋजु अवस्था का बहुवचनीय प्रयोग भी 'मानस' में मिलता है। जैसे : 'बाजहिं बहु बाजने सुहाए।' (बाल० २६३।२)।

तुलसी ने 'रामचरितमानस' के आदि में जो 'भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति' के अन्तर्गत 'भाषा' शब्द लिखा है, उससे कविवरेण्य महात्मा तुलसीदास का तात्पर्य ऐसी लोकभाषा से है, जिसमें पर्याप्त विस्तार और व्यापकता थी। कबीर आदि ने जिस व्यापक लोकभाषा को 'बहता नीर' कहकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनाया था, लगभग वैसा ही दृष्टिकोण तुलसी का रहा होगा। कबीर निरक्षर थे, किन्तु तुलसी शास्त्रज्ञ पण्डित थे। पाण्डित्य के प्रभाव से व्यापक लोकभाषा का जैसा साहित्यिक स्वरूप सम्भव हो सकता है, ठीक वैसा ही स्वरूप तुलसी के 'मानस' की भाषा का दृष्टिगोचर होता है। कबीर की समन्वयात्मक लोकभाषा में सधुक्कड़ीपन है, तो तुलसी के 'मानस' की संस्कृतोन्मुखी व्रजावधी में तत्कालीन अन्य पड़ोसिन लोकभाषाओं के समन्वय-सहित एक दिव्य भाषा-पंचामृत है।

संस्कृत-शब्दरूपावली की माला में बीच-बीच में यत्र-तत्र बड़े सुन्दर ढंग से तुलसी ने अपने 'मानस' में व्रजावधी के शब्दरूप भी पिरोये हैं। निम्नांकित स्तुति में संस्कृत-पदावली के साथ-साथ भाषा (हिन्दी) की पदावली द्रष्टव्य है :

'बहुरोग बियोगन्हि लोग हए।
भवदंघ्रि निरादर के फल ए॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते॥
पदपंकज प्रेमु न जे करते॥'

—(रामच०, काशि०, उत्तर० १४। छन्दपंक्ति ९।१०)

---

१. मिला० लगभग १३वीं शती की रचना 'गोरखबानी' की भाषा से, जिसमें खड़ी, व्रज और भोजपुरी आदि के व्याकरणिक तत्व समाविष्ट हैं :
'भिष्या हमारी कामधेनि बोलिये संसार हमारी बाड़ी।
गुर परसादै भिष्या षाइबा; अंतिकालिन होइगी मारी॥'
–(स० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, से २००३ वि० सबदी १०८)।

५. ९. रामचरितमानस की अंगी भाषा

अंगी भाषा से हमारा तात्पर्य उस व्यापक प्रमुख भाषा से है, जो 'रामचरितमानस' में बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक सर्वत्र पाई जाती है।

यद्यपि भाषा के सम्बन्ध में कुछ संकेतात्मक वाक्य 'रामचरितमानस और सूरसागर के क्रियापदों की तुलना' शीर्षक अध्याय में लिखे गये हैं और कुछ बातें 'रामचरितमानस में भाषा-पंचामृत' शीर्षक लेख में भी कही गई है, फिर भी यहाँ हम कुछ विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हुए अपना मत 'मानस' की अंगी भाषा[1] के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से व्यक्त करना चाहते हैं।

आज का हमारा सम्पूर्ण हिन्दी-भाषी प्रदेश मुख्य रूप से दो खण्डों में बाँटा जा सकता है : १. पूर्वी खण्ड और २. पश्चिमी खण्ड। पूर्वी खण्ड बिहारी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी से सम्बद्ध है। पश्चिमी खण्ड पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी के क्षेत्र हैं।

बिहारी हिन्दी के क्षेत्र में मैथिली, मगही और भोजपुरी बोलियाँ (उपभाषाएँ) बोली जाती हैं। पूर्वी हिन्दी-क्षेत्र की प्रमुख उपभाषाएँ छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी हैं।

पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्र की मुख्य उपभाषाएँ बाँगरू, खड़ीबोली, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली हैं। राजस्थानी हिन्दी के क्षेत्र में बोली जानेवाली प्रमुख उपभाषाएँ मालवी, मेवाती, जयपुरी और मारवाड़ी हैं। कुमाऊनी और गढ़वाली पहाड़ी हिन्दी-क्षेत्र की उपभाषाएँ हैं।

पूर्वी हिन्दी-क्षेत्र की अवधी और पश्चिमी हिन्दी-क्षेत्र की ब्रजभाषा एक दूसरे के निकट होने के कारण परस्पर पर्याप्त आदान-प्रदान भी करती रही हैं। हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में लगभग ३०० वर्ष तक ब्रजभाषा उत्तर भारत में एक साहित्यिक एवं कवि-गृहीत काव्य-भाषा के रूप में भी प्रचलित रह चुकी है। काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा (ब्रजी) एक व्यापक तथा लोकप्रिय भाषा रही है। चाहे कोई कवि किसी भी प्रदेश में रहता था, किन्तु उस समय वह ब्रजभाषा में कविता करना अपना गौरव मानता था। राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने की भावना से तत्कालीन कवि ब्रजभाषा को सहज भाव से अपनाते थे। तुलसी ने तो अपने निम्नांकित ग्रन्थ ब्रजभाषा (ब्रजी) में ही लिखे थे :

१. श्रीकृष्ण गीतावली
२. गीतावली
३. कवितावली
४. विनयपत्रिका

---

१. तुलसी ने 'रामचरितमानस' को 'भाषानिबद्ध' माना है। 'भाषा' शब्द से तात्पर्य है—तत्कालीन लोकप्रचलित भाषा। बाण ने भी 'हर्षचरित' में ईशान को भाषा-कवि बताया है। वहाँ भाषा से तात्पर्य है तत्कालीन लोकभाषा अपभ्रंश।

पार्वतीमंगल जानकीमंगल, बरवै रामायण, रामललानहछू और रामाज्ञाप्रश्न नामक काव्य-रचनाएँ तुलसी द्वारा अवधी-भाषा में लिखी गई हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों की भाषाओं को देखकर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी व्रज तथा अवधी दोनों ही भाषाओं के पण्डित थे। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'रामचरितमानस' में तुलसी द्वारा किस अंगी भाषा का प्रयोग किया गया है ?

'रामचरितमानस' की भाषा के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मत इस प्रकार हैं :

१. श्रीकेलॉग ने 'मानस' की अगी भाषा को अपनी 'ग्रैमर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज' पुस्तक के प्रथम संस्करण में प्राचीन पूर्वी, और द्वितीय संस्करण में प्राचीन बैंसवाड़ी नाम दिया है।

२. डॉ० जार्ज ए० ग्रियर्सन 'मानस' की भाषा को 'अवधी' बताते हैं।

३. डॉ० बाबूराम सक्सेना के मतानुसार 'मानस' की भाषा प्राचीन अवधी ठहरती है।

४. डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के मत में 'रामचरितमानस' की अंगी भाषा 'बैंसवाड़ी' है। उनका तर्क है कि मानस में मोर, तोर, कहै, लाग आदि शब्द-रूप अधिक मिलते हैं और ये बैंसवाड़ी के हैं। उनके मत में 'मानस' की भाषा को 'बैंसवाड़ी अवधी' कहना अधिक वैज्ञानिक और न्यायसंगत है।

खड़ी बोली आकारान्त, व्रजभाषा औकारान्त, कन्नौजी[१] ओकारान्त और अवधी अकारान्त रूप लेकर अपने-अपने संज्ञा और विशेषण-पदों में दृष्टिगोचर होती है। खोटा, खोटौ, खोटो और खोट क्रमशः उनके उदाहरण हैं।

व्रज-प्रदेश की व्रजभाषा आज भी अपनी प्रकृति में उकार, औकार या ओकार लेकर जीवित है। अकारान्त संज्ञा पुंलिग शब्द व्रजभाषा में उकारान्त पद का रूप ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु उकारान्तता ऋजु अवस्था में पुंलिग संज्ञा-शब्दों के कर्त्ता और कर्मकारक के एकवचन की स्थिति में ही पाई जाती है। जैसे :

१. मोरु उड़ि गयौ (=मोर उड़ गया।)

२. चोरु अटरिया में ठाड़ो है। (=चोर अटारी में खड़ा है।)

३. जि पूतु कौन कौ है ? (=यह पुत्र किसका है ?)

यदि मोर, चोर और पूत अकारान्त पुंलिग शब्द बहुवचनीय रूप में प्रयुक्त किये जायेंगे, तो इनमें उकार नहीं आयगा। जैसे :

१. चारौ मोर उड़ि गये। (=चारों मोर उड़ गये।)

२. दौनौं चोर अटरिया में ठाड़े हैं[२]। (=दोनों चोर अटारी में खड़े हैं।)

---

१. साहित्य के धरातल पर 'कन्नौजी', विस्तृत रूपधारिणी व्रजभाषा में ही समाविष्ट हो जाती है।

२. तुम् दौनौं चोरन् मारौ। (दक्षिणी बुलन्दशहर जिला)
तुम दौनौं चोरनु मारौ। (पूर्वी अलीगढ़ जिला)।

३. जे पूत कौन के हैं ? (= ये पुत्र किसके हैं ?)

परसर्ग का योग होने पर भी उकारान्तता प्रायः समाप्त हो जाती है। जैसे :

१. **मोर** कूँ उड़ाओ (= मोर को उड़ाओ।)

२. **चोर** ते लठिया छीनि लेहु (लेउ) (= चोर से लाठी छीन लो।)

३. तुम जा पूत पै बड़ो लाड़ु करत हो। (= तुम इस पुत्र पर बड़ा प्यार करते हो।)

अकारान्त पुंलिंग संज्ञा-शब्दों में ऐसी उकारान्तता और अकारान्तता की व्याकरणिक पद-प्रकृति 'रामचरितमानस' में बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक व्यापक रूप में पाई जाती है। उदाहरण :

१. 'चूरन' का '**चूरनु**' (बाल० १।२), **केवट** का **केवटु** (अयो० १००।३)
'राम' का 'रामु' (अयो० १।१) '**लखन**' का लखनु (अयो० १००। छन्द)
'काज' का 'काजु' (अर० २७।६)
'राज' का 'राजु' (किष्कि० ६।९)
'बिलंब' का '**बिलंबु**' (सुन्दर० ३४।७)
'सुजस' का '**सुजसु**' (लंका० ७।८)
'सिर' का '**सिरु**' (उत्तर० ६।२)

२. केवट का केवट : '**सुनि केवट के बयान।**' अयो० १००। सो०)
लषन का लषन : कहत **लषन** सन (बाल० २३०।१)

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि जिस प्रकार व्रजभाषा में **मोर कूँ**, **चोर ते**, **पूत पै**, पदों में **परसर्ग** के कारण उकारान्तता नहीं है, ठीक उसी प्रकार 'मानस' के '**केवट के**' और '**लषन सन्**' पदों में भी उकारान्तता हट गई है।

व्रजभाषा में सामान्य भूतकालीन क्रियाएँ **धाइ चले**, **भये** (भए), **हारे आए**, और **गई** रूप में बोली जाती हैं। तुलसी के 'मानस' में भी ऐसे प्रयोग पर्याप्त मिल जाते हैं। जैसे : '**धाइ चले**' (अर० २९।-), **भये** (बाल० २६३।५), **हारे** (बाल० २८२।८) **आए** (उत्तर० २।७) **गई** (बाल० २३५।४)

व्रजभाषा-क्षेत्र में भूतकाल के पुँलिंग एकवचन में **भयौ**, **मार्यौ**, **गयौ** रूप प्रचलित हैं। ऐसे रूप 'मानस' में भी मिलते हैं :

भयो, **मार्यो**, **गयो** (लंका० ९७। छन्द)

व्रजभाषा में वर्त्तमानकालीन क्रियारूप **कहत**, **सुनत**, **करत**, **धरत**, **सहत** आदि आज भी प्रचलित हैं, जो 'रामचरितमानस' की भाषा-प्रकृति के अनुकूल हैं। तुलसी के 'मानस' में निम्नांकित क्रियापद मिलते हैं :

खोजत (किष्कि० २।३), **सहत** (किष्कि० १।६), **कूजत** (बाल० २२७।६), **करत** (अयो० १४४।५), **बिराजत** (बाल० २०।-), **जात** (किष्कि० ५।४), **बरनत** (सुन्दर० ५३।१) इत्यादि।

भविष्यत्काल में व्रजभाषा में 'करैगौ' रूप होता है। उसी तरह के क्रियापद 'मानस' में भी मिलते हैं :

'करैगो' (लंका० २०१-)

व्रजभाषा में क्रिया के सामान्य रूप से बने हुए 'करिबे जोग', 'हँसिबे जोग' जैसे प्रयोग प्रचलित हैं। 'मानस' में भी वैसे ही प्रयोग मिलते हैं। जैसे :

मैं तब दसन तोरिबे लायक' (लंका० ३४।१)

हँसिबे जोग' (बाल० ९।४)

सामान्य वर्त्तमानकाल के अन्यपुरुष बहुवचन में अवधी-भाषा में 'परहिं' जैसी : अहिं-प्रत्ययान्त क्रियाएँ प्रचलित हैं। ऐसी—अहिं प्रत्ययान्त क्रियाएँ 'मानस' और 'सूरसागर' में भी पाई जाती हैं।

परहिं (मानस, बाल० १९२। छन्द), करहिं (सूरसागर, ना० प्र० ६।२९)।

वर्त्तमानकाल, आज्ञादि अर्थ, मध्यमपुरुष, एकवचन में क्रिया में —उ प्रत्यय का योग 'मानस' और 'सूरसागर'—दोनों में ही पाया जाता है।

सुनु = सुन् + —उ (मानस, किष्किं० ३।७), आउ = आ + —उ (सूरसागर, ना० प्र० १।३१४)।

वर्त्तमानकाल, आज्ञादि अर्थ, मध्यमपुरुष, बहुवचन में 'आनहु' जैसी क्रियाएँ 'मानस' और 'सूरसागर' दोनों में पाई जाती हैं :

आन् + —अहु = आनहु (मानस, अर० २७।५)

आन् + — अहु—अहू = आनहू (सूरसागर, ना० प्र० १०।४०)

सामान्य भूतकाल में मध्यमपुरुष एकवचन में 'मानस' में 'चले)सि' (अर० २९।११) मिलता है और 'सूरसागर' में 'सोइसि' (ना० प्र०, स्कं० १।३३३)।

जिन मोर, तोर प्रयोगों को, डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने अपने शोध-ग्रन्थ 'तुलसीदास की भाषा' (पृ० ३६१) में बैसवाड़ी अवधी का लक्षण बताते हुए 'मानस' में, ढूँढ़ निकाला है, वैसे प्रयोग को व्रजभाषा के कवि महात्मा सूर के 'सूरसागर' में भी मिल जाते हैं। जैसे :

'बालक मोर' (सूरसागर, १०।३९८)।

'आनन तोर' (सूरसागर, १०।३६४)।

इतना ही नहीं, कबीरदास ने भी मोर जिया, तड़पै, लागौ, कातौंगी जैसे पदों का प्रयोग किया है : 'तड़पै बिन बालम मोर जिया', 'मन लागौ तौं', 'मैं कातौंगी' आदि।

इससे सिद्ध होता है कि हिन्दी-काव्य के मध्यकालीन सन्तों और भक्तों ने अपनी भाषा को व्यापक रूप में ही व्यक्त करने के लिए अपना दृष्टिकोण बनाया था, ताकि वे अपना सन्देश विशाल जन-जीवन तक पहुँचा सकें।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि 'मानस' में अवधी के साथ व्रजभाषा के तत्त्व और 'सूरसागर' में व्रजभाषा के साथ अवधी के कुछ तत्त्व मिल ही जाते हैं। ऐसी अवस्था में 'मानस' की अंगी भाषा के निर्णय का प्रश्न उपस्थित होता ही है।

हमारे विचार से साहित्य के धरातल पर लिखी हुई किसी काव्य की व्यापक भाषा को शुद्ध जनपदीय लोकभाषा के रूप में परखना और निर्णय देना उचित नहीं है। जिस प्रकार सूरदास 'सूरसागर' को अवधी-मिश्रित व्रजभाषा में लिख रहे थे, उसी प्रकार तुलसी भी अपने 'रामचरितमानस की रचना व्रजभाषा-मिश्रित अवधी में कर रहे थे। अवधी की प्रधानता मानते हुए हम 'मानस' की व्यापक काव्यभाषा को व्रजावधी' कह सकते हैं। साहित्यिक रूप प्राप्त करनेवाली भाषा में उसके जनपदीय रूप से कुछ अन्तर पाया जाना तो स्वाभाविक ही है। 'रामजन्म' के स्थान 'अयोध्या' की भाषा अवधी में' मानस' लिखना तो तुलसी चाहते ही होंगे। किन्तु, व्यापकता और महत्त्व की दृष्टि से व्रजभाषा को भी छोड़ना न चाहते होंगे। समन्वयवादी विचारधारा के पक्षपाती तो वे थे ही। अतः, तुलसी की लेखनी से मानस की रामकथा की भाषा 'व्रजावधी' रूप में अभिव्यक्त हुई।

५.१०. 'मानस' की वे उक्तियाँ, जो लोकोक्तियों की तरह लोकप्रिय हैं :

लोकोक्तियों से तात्पर्य उन उक्तियों से है, जो सामान्य जन-जीवन की नैरन्तर्यमयी अनुभूतियों से उद्भूत होती हैं। लोक-हृदय की पहचानवाले कवि उन उक्तियों को अपनी कविता के दुकूल में ऐसे ढंग से टांक लेते हैं कि उस दुकूल का सौन्दर्य उनके कारण और अधिक बढ़ जाता है। कभी-कभी कवि की अपनी व्यक्तिगत अनुभूति भी ऐसी उक्ति को को जन्म देती है कि वह उक्ति समष्टि की अनुभूति का श्रेय प्राप्त करके लोक में लोकोक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है। तुलसी के 'रामचरितमानस' में उपर्युक्त दोनों प्रकारों की लोकोक्तियों की झलक मिल सकती है। जब किसी कवि या गद्यलेखक की कोई उक्ति लोक में अतिप्रचलित होकर लोकोक्ति का रूप धारण कर लेती है, तब उसे भी लोकोक्ति ही कह देते हैं। वस्तुतः, वह प्रज्ञोक्ति होती है। भाव की चमत्कार मण्डित प्रज्ञोक्ति को सूक्ति कहते हैं।

लोकोक्तिसदृश उक्तियों का वर्गीकरण :

१. नीति-अनीति सम्बन्धी उक्तियाँ :

१.१ 'समरथ कहुँ नहि दोषु गो)साईं[१]।' (काशि०, बाल० ६९।८)
अर्थ : हे गोस्वामी ! समर्थ को दोष नहीं है।

१.२ 'का छति लाभु जून धनु तोरें।' (काशि० बाल० २७२।२)
अर्थ : पुराने धनुष को तोड़ने से क्या हानि-लाभ है ?

१.३ 'को)उ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥' (काशि०, अयो० १६।६)
अर्थ : कोई राजा हो, हमें क्या हानि ? दासी को छोड़कर अब क्या मैं रानी होऊँगी।

१.४ 'बाल दोष गुन गनहिं न साधू।' (काशि०, बाल० २७५।५)
अर्थ : सज्जन बालक के गुण-दोषों पर ध्यान नहीं देते हैं।

१.५ 'जो लरिका कछु अचगरि करहीं।
गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥ (काशि०, बाल० २७७।३)
अर्थ : यदि बालक कुछ शैतानी करते हैं तो गुरु, पिता और माता मन में प्रसन्न होते हैं।

१.६ 'छमहु चूक अनजानत केरी।' (काशि०, बाल० २८२।४)
अर्थ : अनजानते हुए की भूल क्षमा कीजिए।

१.७ 'बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू।' (काशि०, बाल० ९४।१)
अर्थ : राहू टेढ़े चन्द्रमा को नहीं ग्रसता है।

---

१. ऐसा ')' चिह्न स्वर की ह्रस्वता का सूचक है। 'गो)' का 'ओ' यहाँ ह्रस्व बोला जायगा।

१.८ 'जस दूलहु तसि बनी बराता ।' (काशि, बाल० ९४।१)
अर्थ : जैसा दूल्हा था, वैसी ही बरात बनी।

१.९ 'सोचिअ बिप्र जो)बेद बिहीना ।' (काशि, अयो० १७१।३)
अर्थ : जो ब्राह्मण वेद-विहीन है, वह शोचनीय है ।

१.१० 'सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी ।' (काशि, अयो० १७१।७)
अर्थ : अपने पति को छलनेवाली नारी शोचनीय है ।

१.११ 'जस काछिअ तस चाहिअ नाँचा ।' (काशि०, अयो० १२६।८)
अर्थ : जैसा वेश बनाया जाय, बैसा ही नाचा जाय ।

१.१२ 'तसि पूजा चाहिअ जस दे)वता ।' (काशि०, अयो० २१२।७)
अर्थ : जैसा देवता हो, वैसी ही पूजा चाहिए ।

१.१३ 'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।।'
(काशि०, सुन्दर० ५९।६)
अर्थ : ढोल, गँवार शूद्र और पशु स्त्री—ये सब दण्ड के अधिकारी हैं ।

१.१४ 'जगु भल भले)हि पोच कहुँ पोचू ।' (काशि०, अयो० २१६।७)
अर्थ : संसार भले को भला, और बुरे को बुरा है ।

१.१५ 'जो जस करइ सो)तस फलु चाखा ।' (काशि, अयो० २१८।४)
अर्थ : जो जैसा करता है, वह वैसा फल चाखता है ।

१.१६ हमहुँ कहबि अब ठकुरसो)हाती ।' (काशि०, अयो० १६।४)
अर्थ : हम भी अब ठकुरसुहाती कहेंगी। अर्थात् मेरे द्वारा भी अब ठकुरसुहाती बात कही जायगी ।

१.१७ 'रिपु रिन रंच न राखब काऊ ।' (काशि०, अयो० २२८।२)
अर्थ : बैरी और ऋण कभी रंचमात्र भी न रखा जाना चाहिए ।

१.१८ 'अरघ तजहिं बुध सरबसु जाता ।' (काशि०, अयो० २५५।२)
अर्थ : बुद्धिमान् सम्पूर्ण धन जाते हुए देखकर उसमें से आधा त्याग देते हैं ।

१.१९ 'पितु आये)सु सब धरम क टीका ।' (काशि०, अयो० ५५।८)
अर्थ : पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है ।

१.२० 'धीरजु धर्म मित्र अरु नारी ।
आपदकाल परिखिअहि चारी ।।' (काशि०, अर० ५।७)
अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नी—इन चारों की आपत्तिकाल में परीक्षा की जानी चाहिए ।

१.२१ 'अनुजबधू भगिनी सुतनारी । सुनु सठ कन्या सम ये चारी ।।'
(काशि०, किष्कि० ९।७)
अर्थ : हे शठ ! सुन । छोटे भाई की बहू, बहिन, पुत्रवधू और कन्या—ये चारों समान हैं ।

१.२२ 'मारसि गाइ नहारू लागी।' (काशि०, अयो० ३६।८)
अर्थ : ताँत के लिए तू गाय मारती है।

१.२३ 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥' (काशि०, लंका० ७८।२)
अर्थ : दूसरों को उपदेश देने में बहुत-से मनुष्य कुशल हैं, किन्तु उन उपदेशों को जो आचरण में निबाहते हैं, वे मनुष्य अधिक नहीं हैं।

१.२४ 'मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा।' (काशि०, उत्तर० ९८।३)
अर्थ : जिसको जो अच्छा लगता है, उसके लिए वही मार्ग है।

२. भवितव्यता-सम्बन्धी उक्तियाँ :

२.१ 'होइहि सोइ जो राम रचि राखा।' (काशि०, बाल० ५२।७)
अर्थ : जो प्रभु ने रच रखा है, वही होगा।

२.२ 'हरि इच्छा भावी बलवाना।' (काशि०, बाल० ५६।६)
अर्थ : हरि-इच्छा रूपी भावी बलवती है।

२.३ 'भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।' (काशि०, बाल० ७०।५)
अर्थ : शंकर होनहार को भी मिटा सकते हैं।

२.४ 'तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपुनु आवै ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥' (काशि०, बाल० १५९।-)
अर्थ : तुलसीदास कहते हैं, जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह (होनहार) आप ही उसके पास आती है या उस व्यक्ति को वहाँ (घटना-स्थल पर) ले जाती है।

२.५ 'हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।' (काशि० अयो० १७०।–)
अर्थ : हानि, लाभ, जीना, मरना, यश और अपयश विधाता के हाथ में हैं।

३. भावों या वृत्तियों से सम्बद्ध उक्तियाँ :

३.१ 'निज कबित्त केहि लाग न नीका।' (काशि०, बाल० ८।११)
अर्थ : अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती, अर्थात् सभी को अपना काव्य प्रिय लगता है।

३.२ 'होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन कियें दुराव।' (काशि०, बाल० ४५।--)
अर्थ : गुरु से छिपाव करने से हृदय में उज्ज्वल ज्ञान नहीं होता है।

३.३ 'प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं[1]।' काशि०, बाल० ६०।८)
अर्थ : प्रभुता पाकर जिसे मद (अभिमान) न हो।

---

१. लोक-जीवन में 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं' प्रचलित है।

३.४ 'सब तें कठिन जाति अवमाना। (काशि०, बाल० ६३।७)
अर्थ : जाति-अपमान सबसे अधिक कठिन है।

३.५ 'पराधीन सपने)हु सुखु नाही।' (काशि० बाल० १०२।५)
अर्थ : परतन्त्र व्यक्ति को स्वप्न में भी सुख नहीं है।

३.६ 'चहत उड़ावन फूँकि पहारू।' (काशि०, बाल० २७३।३)
अर्थ : क्या पहाड़ को फूँककर उड़ाना चाहते हो ?

३.७ 'इहाँ कुम्हड़बतिआ को)उ नाहीं।
जे तरजनीं देखि मरि जाहीं॥' (काशि० बाल, २७३।४)
अर्थ : यहाँ कोई कुम्हड़े की जइयाँ नहीं, जो तर्जनी उँगली देखकर मर जाती हैं।

३.८ 'तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा।' (काशि०, बाल० २७५।१)
अर्थ : तुम तो मानो काल को ही बुलाकर ले आये। अर्थात्, मानों तुम्हारे द्वारा मेरे लिए हाँक से काल लाया गया।

३.९ 'देखत छोट खोट नृप ढोटा।' (काशि०, बाल० २८०।७)
अर्थ : छोटा राजपुत्र खोटा मालूम पड़ता है।

३.१० 'काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।' (काशि०, अयो० १४।-)
अर्थ : कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल तथा कुचाली समझकर।

३.११ 'बैर पेमु नहि दुरइ दुराएँ।' (काशि०, अयो० २६३।२)
अर्थ : वैर या प्रेम छिपाने से नहीं छिपता।

३.१२ 'हित अनहित पसु पंछिहु जाना।' (काशि०, अयो० २६३।४)
अर्थ : हित-अहित पशु-पक्षी भी जानते हैं।

३.१३ 'भय बिनु होइ न प्रीति।' (काशि०, सुन्दर० ५७।--)
अर्थ : बिना भय के प्रीति (अनुकूल कार्य) नहीं होती है।

३.१४ 'छूटै मल कि मलहि कें धोयें।' (काशि०, उत्तर० ४९।५)
अर्थ : क्या मल से धोने से मल छूटता है।

३.१५ 'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।' (काशि०, उत्तर० ४१।१)
अर्थ : परपीड़ा के समान नीचता नहीं है।

३.१६ 'पण्डित सोइ जो) गाल बजावा। (काशि०, उत्तर० ९८।३)
अर्थ : जो गाल बजाता है, वही पण्डित है।

३.१७ 'नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं[1] संन्यासी।'
(काशि०, उत्तर० १००।६)
अर्थ : पत्नी मरी और घर की सम्पत्ति नष्ट हुई, तब सिर मुड़ाकर लोग संन्यासी हो जाते हैं।

---

१. लोक में 'होहिं' के स्थान पर 'भए' प्रचलित हैं।

३.१८ 'ससुरारि पिआरि लगी तब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें।'
(काशि, उत्तर० १०५।५)

अर्थ : जबसे ससुराल प्यारी लगी, तबसे कुटुम्बी जन वैरी के समान हो गये।

३.१९ 'के)हि[२] न राजमद दीन्ह कलंकू।' (काशि०, अयो० २२८।१)

अर्थ : किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया।

३.२० 'जम बौराइ राजपदु पाएँ।' (काशि०, अयो० २२७।८)

अर्थ : राजपद पाने से संसार बावला हो जाता है।

४. राजा अथवा प्रजा-सम्बन्धी उक्तियाँ :

४.१ 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥' (काशि०, अयो० ७१।६)

अर्थ : जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी हो, वह राजा अवश्य नरक का अधिकारी (पात्र) है।

४.२ 'मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं।
ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥' (काशि०, अयो०, सो० १२५।३)

अर्थ : मुनि और तपस्वी जिनसे कष्ट पाते हैं, वे राजा अग्नि के विना जल जाते हैं।

४.३ 'सोचिअ नृपति जो) नीति न जाना।' (काशि०, अयो० १७१।४)

अर्थ : जो राजा नीति (न्याय) नहीं जानता, वह शोचनीय है।

४.४ 'चाहिअ धरमसील नरनाहू।' (काशि०, अयो० १७८।१)

अर्थ : राजा को धर्मशील होना चाहिए।

५. सत्संग-सम्बन्धी उक्तियाँ :

५.१ 'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।' (काशि०, बाल० ३।९)

अर्थ : सत्संग पाकर शठ सुधर जाते हैं।

५.२ 'गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
(काशि०, बाल० ७।९)

अर्थ : धूल पवन के साथ आकाश में चढ़ जाती है। वही धूल नीच (निम्नगामी) जल के साथ कीचड़ में मिल जाती है।

५.३ 'के)हिं न सुसंग बड़प्पनु पावा।' (काशि०, बाल० १०।८)

अर्थ : किसने सत्संग से बड़प्पन नहीं पाया ? अर्थात्, सबने पाया है।

५.४ 'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहि संता।' (काशि०, सुन्दर० ७।४)

अर्थ : प्रभु की कृपा के विना सन्त नहीं मिलते हैं।

---

२. 'केहि' द्वितीया और तृतीया विभक्ति में 'मानस' में मिलता है।
केहि = किसको, किससे। 'केहि' (अयो० १७४।५) = किससे।

६. स्वभाव-सम्बन्धी उक्तियाँ :

६.१ 'पायस[1] पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।।' (काशि०, बाल० ५।२)
अर्थ : यदि कौए अत्यन्त प्रेमपूर्वक खीर खिलाकर पाले जायँ, तो भी क्या वे निरामिष हो सकते हैं अर्थात्, नहीं हो सकते।

६.२ 'सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।'
(काशि०, बाल० ६।-)
अर्थ : सन्त रूपी हंस दोष-रूपी जल को त्याग कर गुण-रूपी दूध को ग्रहण करते हैं।

६.३ 'लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।'
(काशि०, अयो० २२८।-)
अर्थ : धूल के समान कौन नीच है? अर्थात्, कोई नहीं। वह भी लात के मारने से सिर पर चढ़ती है।

६.५ 'द्विजदेवता घरहि के बाढ़े।' (काशि०, बाल० २७६।७)
अर्थ : विप्रदेव घर में ही बहादुर होते हैं।

६.५ 'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।' (काशि०, बाल० २८४।४)
अर्थ : रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते।

६.६ 'खल विनु स्वारथ पर अपकारी।' (काशि०, उत्तर० १२१।१८)
अर्थ : खल बिना स्वार्थ के भी पर-अपकारी होता है।

६.६.१ "बहुरि बंदि खलगन सतिभाएँ।"
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।।' (काशि०, बाल० ४।१)
अर्थ : सच्चे भाव से पुन: खलों की वंदना करके जो अकारण ही दाहिने से बायें होते हैं।

६.७ 'मूरुखहृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंच सत।'
(काशि० लंका० १६।-)
अर्थ : यदि सौ ब्राह्मा भी गुरु बनकर आयें, तो भी मूर्खहृदय नहीं चेतता है।

६.८ 'जरहिं सदा परसंपति देखी।' (काशि०,उत्तर० ३९।३)
अर्थ : (दुष्ट) दूसरे की सम्पत्ति देखकर जलते हैं।

६.९ 'जिमि सुतंत्र भयें बिगरहिं नारी।' (काशि०, किष्कि० १५।७)
अर्थ : जैसे स्वतन्त्र होने से नारियाँ बिगड़ती हैं।

६.१० 'मोह न नारि नारी के रूपा।' (काशि०, उत्तर० ११६।२)
अर्थ : नारी नारी के रूप पर नहीं मोहती।

६.११ 'सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।' (काशि०, अयो० २५७।१)
अर्थ : ज्वारी को अपना दाँव ही सूझता है।

---

१. गीता प्रेस-संस्करण और गुप्त-संस्करण में 'बायस' पाठ है।

६.१२ ऊंच निवासु नीचि करतूती ।
देखि न सकहिं पराइ बिभूती ।।' (काशि० अयो० १२।६)
अर्थ : निवास ऊँचा, कर्म नीचा । पराया ऐश्वर्य नहीं देख सकते ।

७. स्वार्थ-सम्बन्धी उक्तियाँ :

७.१ 'सुर नर मुनि सबकें यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।।' (काशि०, किष्कि० १२।२)
अर्थ : देवता, मनुष्य और मुनि सबके यहाँ यही रीति है कि वे सब स्वार्थ के मिल ही प्रीति करते हैं ।

७.२ 'स्वारथमीत सकल जग माहीं ।' (काशि० उत्तर० ४७।६)
अर्थ : संसार में सब स्वार्थ के मित्र हैं ।

७.३ 'कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू ।
रहत न आरत कें चित चेतू ।।' (काशि०, अयो० २६८।४)
अर्थ : मैं सब वचन स्वार्थ के लिए कहता हूँ । आर्त्त के चित्त में चेत नहीं रहता हैं ।

७.४ 'खल बिनु स्वारथ पर अपकारी ।' (काशि०, उत्तर० १२१।१८)
अर्थ : दुष्ट विना स्वार्थ के ही पर-अपकारी होते हैं ।

८. मुहावरोंवाली उक्तियाँ[1] :

८.१ 'मनमोदकहिं कि भूख बताई ।' (काशि०, बाल० २४६।१)
अर्थ : मन के लड्डुओं से क्या भूख मिटती है ? (बताइ=बुझती है ।) ।

८.२ 'व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई ।' (काशि०, बाल० २४६।१)
अर्थ : व्यर्थ गाल बजाकर मत मारो ।

८.३ 'भामिनि भइहु दूध कइ माखी ।' (काशि०, अयो० १९।७)
अर्थ : हे भामिनी ! तुम दूध की मक्खी हो गई ।

८.४ 'करौं तोहि चखपूतरि आली ।' (काशि०, अयो० २३।३)
अर्थ : हे सखी ! तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी ।

८.५ 'हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।' (काशि०, अयो० ३५।५)
अर्थ : ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना ।

८.६ दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ।' (काशि०, अयो० १८९।६)
अर्थ : मेरे दोनों हाथों में आनन्द के लड्डू हैं ।

---

१. 'मुहावरा' वास्तव में भाषा-सौन्दर्य-हेतु वाक्यगत पद या पदों की प्रयोगमयी प्रक्रिया है, किन्तु 'लोकोक्ति' लोकमानस से उद्भूत एक नैतिक या व्यावहारिक उक्ति हैं, जो कि एक पूर्ण वाक्य के रूप में होती है। 'फीका पड़ना' एक मुहावरा है । 'ऊँची दुकान फीका पकवान' एक लोकोक्ति है ।

८.७ 'भाजनु गूँगेहि गिरा प्रसादू।' (काशि०, अयो० ३०६।४)

अर्थ : मानो गूँगे को वाणी का प्रसाद मिला।

८.८ 'जिमि दसनन्हि महु जीभि बिचारी।' (कासि०, सुन्दर ७।१)

अर्थ : जैसे दाँतों में बेचारी जीभ।

९. फुटकर उक्तियाँ :

९.० 'बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्टसंग जनि देइ बिधाता।।' (काशि० सुन्दर० ४६।७)

अर्थ : हे तात ! नरक का वास बहुत अच्छा है, लेकिन विधाता दुष्ट का साथ न दे।

९.१ 'वर कन्या अनेक जग माहीं।'(काशि०, बाल० ८१।४)

अर्थ : जग में वर-कन्या अनेक हैं।

९.२ 'बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा।' (काशि०, बाल० ९७।४)

अर्थ : क्या बाँझ स्त्री जनन की पीड़ा जानती है ?

९.३ 'दुलहिनि लै गे लच्छि निवासा।' (काशि०, बाल० १३५।४)

अर्थ : लक्ष्मी-निवास भगवान् दुलहिन को ले गये।

९.४ 'बिन औषध बिआधि बिधि खोई।' (काशि०, बाल० १७१।४)

अर्थ : विधाता ने विना दवा के रोग हटा दिया।

९.५ 'बीर बिहीन महीं मैं जानी।' (काशि०, बाल० २५२।३)

अर्थ : मेरे द्वारा पृथ्वी वीर-विहीन जानी गई।

९.६ 'सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगलमूल अमंगल दमनू।।' (काशि०, अयो० ९।५)

अर्थ : सेवक के घर स्वामी का आगमन मंगलकारी और अमंगलनाशक होता है।

९.७ 'चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई।' (काशि०, अयो० २७।५)

अर्थ : चोर की पत्नी जैसे सबके सामने नहीं रोती।

९.८ 'कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।'
(काशि०, अयो० २३०।-)

अर्थ : क्या कभी खटाई की बूँदों से क्षीरसागर फट सकता है ?

९.९ 'ऊषर बरषे तृन नहि जामा।' (काशि०, किष्कि० ५१।१०)

अर्थ : ऊसर भूमि में वर्षा होने पर भी अन्न का तिनका नहीं जमता।

९.१० 'बड़े भाग मानुषतनु पावा।' (काशि० उत्तर० ४३।७)

अर्थ : बड़े भाग्य से मनुष्य शरीर पाया है।

९.११ 'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।' (काशि०, बाल० १४।९)
अर्थ : यश, कविता, विभूति वही अच्छी है, गंगाजी के समान जो सबको कल्याणकारी हो।

९.१२ 'बरौं संभु न त रहौं कुआरी।' (काशि०, बाल० ८१।५)
अर्थ : शंकर को बरूँगी, नहीं तो कुमारी रहूँगी।

९.१३ 'टूटत हीं धनु भये)उ बिबाहू।' (काशि०, बाल० २८६।८)
अर्थ : धनुष टूटते ही विवाह हुआ।

९.१४ 'छुद्र नदीं भरि चलीं तो)राई।' (काशि०, किष्कि० १४।५)
अर्थ : भरी हुई छोटी नदियाँ किनारे तोड़कर चलीं।

९.१५ 'जिय संसय कछु फिरती बारा।' (काशि०, किष्कि० ३०।१)
अर्थ : लौटती बार के लिए हृदय में कुछ संशय है।

९.१६ 'बहुरि बंदि खलगन सति भाएँ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ।।' (काशि०, बाल० ४।१)
अर्थ : जो अकारण दाहिने से बायें हो जाते हैं, उन खलों को भी सत्यभाव से वन्दना करके... ।

९.१७ 'मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू ।।' (काशि०, बाल० २।७)
अर्थ : सन्त-समाज प्रसन्नतादायक और कल्याणकारी होता है, जो संसार में जंगम तीर्थराज है।

९.१८ 'चोरहि चंदिनि राति न भावा।' (काशि०, अयो० ११।७)
अर्थ : चोर को चाँदनी रात नहीं भाती।

९.१९ 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ।।' (आसि० लंका० ७८।२)
अर्थ : दूसरों को उपदेश देने में बहुत से चतुर बनते हैं। जो आचरण करते हैं, ऐसे लोग अधिक नहीं हैं।

सहायक ग्रन्थ-सूची

लेखक तथा सम्पादक	ग्रन्थ
अंजनीनन्दनशरण (सम्पा०)	मानस-पीयूष, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
अप्पय्यदीक्षित	कुवलयानन्द, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस-१, सन् १९५६ ई० ।
आप्टे, वामन शिवराम (सम्पा०)	संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९६३ ई०
(डॉ०) उदयनारायण तिवारी	हिन्दी-भाषा का उद्गम तथा विकास, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग प्रथम संस्क० ।
कतिपय सभासद् (काशी नागरी प्रचारिणी सभा के) सम्पादक	मानस कोश, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०९ ई० ।
(डॉ०) कत्रे, सुमित्रमगेश	प्राकृत लैंग्वेजेज ऐण्ड कण्ट्रीब्यूशन टू इण्डियन कल्चर, भारती विद्याभवन, सन् १९४५ ई० ।
कामताप्रसाद गुरु	हिन्दी-व्याकरण, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी । सं० २००९ वि० ।
कालिकाप्रसाद तथा अन्य (सम्पा०)	बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लि०, बनारस, संवत् २००६ वि० ।
किशोरीदास वाजपेयी	हिन्दी-शब्दानुशासन, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१४ वि०, व्रजभाषा का व्याकरण, कनखल, सन् १९४३ ई० ।
केलॉग, ऐस्० ऐच्०	ए ग्रामर ऑव दि हिन्दी लैंग्वेज, लन्दन, १९५५ ई० ।
गणेशदत्त शास्त्री (सम्पा०)	पद्मचन्द्र कोश, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर, सन् १९२५ ई०
ग्रियर्सन, जॉर्ज ए०	नोट्स ऑन तुलसीदास । नोट्स ऑन दि ग्रामर ऑव रामायण ऑव तुलसीदास ।
ग्रीव्स, एडविन	
(डॉ०) चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार	ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेण्ट ऑव बंगाली लैंग्वेज, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, प्रेस, प्रथम संस्करण ।
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	पुरानी हिन्दी, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २००५ वि० ।

जगन्मोहन वर्मा (सम्पा०) — चित्रावली, उस्मान-कृत, नागरी-प्रचारिणी सभा, सन् १९१२ ई० ।

जूल ब्लॉख — ग्रैमैटिकल स्ट्रक्चर ऑव ड्रैवीडियन लैंग्वेजेज, डकन कॉलेज, हैण्डबुक सीरीज, ३ । पूना, सन् १९५४ ई०।

(डॉ०) तगारे, गणेश वासुदेव दामोदर — हिस्टोरिकल ग्रामर ऑव अपभ्रंश, सन् १९४८ ई० ।
उक्तिव्यक्तिप्रकरण, एम्० जे० एस्०, बम्बई, प्रथम संस्करण ।

(डॉ०) देवकीनन्दन श्रीवास्तव — तुलसीदास की भाषा, लखनऊ वि०, वि० लखनऊ, संवत् २०१४ वि० ।

देवेन्द्रकुमार — अपभ्रंश-प्रकाश, गणेशप्रसाद वर्णी, जैन ग्रन्थमाला, भदैनी, काशी, सं० २००० वि० ।

द्वारकाप्रसाद शर्मा (सम्पा०) — संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, लाला रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सन् १९२८ ई० ।

(डॉ०) धीरेन्द्र वर्मा —
१. हिन्दी-भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९४० ई० ।
२. व्रजभाषा-व्याकरण, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई० ।
३. व्रजभाषा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई० ।

नन्ददुलारे वाजपेयी (सम्पा०) —
१. सूरसागर, नागरी, प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्क०, भाग १ और २ ।

(डॉ०) नामवर सिंह — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, साहित्य-भवन लि०, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई० ।

(डॉ०) नेमिचन्द्र शास्त्री —
१. अभिनव प्राकृत-व्याकरण, तारा पब्लिकेशंस, कमच्छा, वाराणसी, सन् १९६३ ई० ।
२. ए क्रिटिकल स्टडी ऑव सिद्धहैमशब्दानुशासन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६३ ई० ।

(डॉ०) पिशल, आर० — हेमचन्द्र-कृत देशीनाममाला, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, सन् १९३८ ई० ।

(डॉ०) पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल (सम्पा०) — गोरखबानी, साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण । सं० २००३ वि०

(डॉ०) प्रेमनारायण टण्डन — सूर की भाषा, हिन्दी-साहित्य-भण्डार, लखनऊ, सन् १९५७ ई०।

बद्रीदास अग्रवाल (सम्पा०) — मानस-शब्दसागर, काशिप्रसाद विजयकुमार अग्रवाल, ८३, विडिन स्ट्रीट, कलकत्ता-६।

(डॉ०) बाबूराम सक्सेना — १. इवोल्यूशन ऑव अवधी, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९३७ ई०।
२. दखिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५२ ई०।
३. कीर्त्तिलता (विद्यापति-कृत) द्वितीय संस्करण।

भण्डारकर, आर्० एस्० — विल्सन्स फाइलॉजिकल लेक्चर्स।

भानु — छन्दःप्रभाकर, सन् १८६० ई०।

(डॉ०) भोलानाथ तिवारी (सम्पा०) — तुलसी-शब्दसागर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई०।

(डॉ०) मंगलदेव — १. ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्, खण्ड १,२,३, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्क०।
२. भाषाविज्ञान, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९६२ ई०।

(डॉ०) माताप्रसाद गुप्त (सम्पा०) — १. रामचरितमानस (तुलसी-कृत) साहित्य-कुटीर प्रयाग, सन् १९४९ ई०।
२. जायसी-ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५२ ई०।
३. रोडा-कृत राउल वेलि और उसकी भाषा, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् १९६३ ई०।
४. दाऊदकृत चाँदायन, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, सन् १९६७ ई०।

मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह — उर्दू-हिन्दी-शब्दकोश, प्रकाशन-शाखा, सूचना-विभाग, उत्तरप्रदेश, लखनऊ, प्रथम संस्करण।

मोनियर विलियम्स — संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड, क्लैरेण्डन प्रेस, सन् १८९९ ई०।

रघुनाथ दास (सम्पा०) — मानसकोष, प्रथम संस्क०।

रामचन्द्र वर्मा (सम्पा०) — संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् २०१४ वि०।

(डॉ०) लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (अनु०)	भारतीय आर्यभाषा (ज्यूल्स ब्लाख-कृत ल आँदा एरियाँ का हिन्दी-अनुवाद) हिन्दी-समिति, सूचना-विभाग, लखनऊ, प्रथम संस्करण।
वररुचि	प्राकृतप्रकाश, चौखम्बा संस्कृत-सीरीज, बनारस, सं० २००६ वि०।
(डॉ०) वासुदेवशरण अग्रवाल (सम्पा०)	जायसी-कृत पदमावत (मूल और संजीवनी व्याख्या)। साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, सं० २०१२ वि०।
विजयानन्द त्रिपाठी (सम्पा०)	मानस-व्याकरण, प्रथम संस्करण।
विश्वनाथप्रसाद मिश्र (सम्पा०)	रामचरितमानस, काशिराज संस्क०, सर्वभारतीय काशिराज-न्यास, वाराणसी, प्रथम संस्करण।
(डॉ०) वीरेन्द्र श्रीवास्तव	अपभ्रंश-भाषा का अध्ययन, भारती-साहित्य-मन्दिर, दिल्ली, सन् १९६५ ई०।
(डॉ०) वैद्य, पी० एल० (सम्पा०)	हेमचन्द्राज प्राकृत ग्रामर, पूना, सन् १९२८ ई०
(डॉ०) व्लादीमीर मिल्तनर	दि हिन्दी सेंटेंस स्ट्रक्चर इन दि वर्क्स ऑव तुलसीदास, मुंशीराम मनोहरलाल, नई सड़क, दिल्ली-६ सन् १९६७।
शालिग्राम उपाध्याय (सम्पा०)	हेमचन्द्र-विरचित अपभ्रंश-व्याकरण, भाषा-परिषद् पियरीकलाँ, वाराणसी, सं० २०१४ वि०।
(डॉ०) शिवप्रसाद सिंह (सम्पा०)	कीर्त्तिलता और अवहट्ट-भाषा, साहित्य-भवन, लि० इलाहाबाद, सन् १९५५ ई०।
समीर, रामाज्ञा द्विवेदी	अवधी-कोश, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५५ ई०।
(डॉ०) सरयूप्रसाद अग्रवाल	प्राकृत - विमर्श, लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००९ वि०।
सांकृत्यायन, राहुल (सम्पा०)	सरह-कृत दोहाकोश, प्रथम संस्क०।
(डॉ०) सूर्यकान्त शास्त्री (संपा०)	इण्डैक्स वर्बोरम ऑव दि रामायण ऑव तुलसीदास, प्रथम संस्क०।
(डॉ०) हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी (सम्पा०)	सन्देशरासक, अद्दहमाण-कृत, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई-४, सन् १९६० ई०।
हनुमानप्रसाद पोद्दार (सम्पा०)	श्रीरामचरितमानस (तुलसी-कृत) गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१६ वि०।
हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द शेठ (सम्पा०)	पाइअसद्दमहण्णवो, २६, जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता, प्रथम आवृत्ति।

(डॉ०) हरदेव बाहरी — ग्रामीण-हिन्दी बोलियाँ, किताब-महल, इलाहाबाद, सन् १९६६ ई०।

हार्नले — ईस्टर्न हिन्दी ग्रामर, प्रथम संस्करण

हेमचन्द्र —
१. अभिधानचिन्तामणि, विद्याविजय मुद्रणालय, भावनगर, वीर-संवत् २४४१।
२. देशीनाममाला, पूना-संस्करण, सन् १९३८ ई० (पिशल-सम्पादित)।
३. सिद्धहेमशब्दानुशासन, चौखम्बा, वाराणसी, सन् १९६३ ई०।

(डॉ०) हेमचन्द्र जोशी (अनु०) — पिशल-कृत प्राकृत-भाषाओं का व्याकरण, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९५८ ई०।